

भारत में अंगरेज़ी राज

दूसरी जिल्द

भारत में अंगरेज़ी राज

दूसरी जिल्द

सुन्दरलाल

प्रकाशक

त्रिवेणी नाथ बाजपेयी

ओंकार प्रेस, इलाहाबाद ।

१९३८

दूसरा संस्करण १०,०००]   [पूरी पुस्तक का मूल्य ७) रु०

पहला संस्करण सन् १६२६—२,०००
दूसरा संस्करण सन् १६३८—१०,०००

मुद्रक
विश्वम्भरनाथ बाजपेयी
ओंकार प्रेस, इलाहाबाद।

विषय सूची

पन्द्रवाँ अध्याय

टीपू सुलतान

सोलवाँ अध्याय

अवध और फ़र्रुख़ाबाद

सत्रवाँ अध्याय

तओर राज का अन्त

अठारवाँ अध्याय

करनाटक की नवाबी का अन्त

उन्नीसवाँ अध्याय

सूरत की नवाबी का ख़ात्मा

बीसवाँ अध्याय

पेशवा को फाँसने के प्रयत्न

चौबीसवाँ अध्याय

साम्राज्य विस्तार

पचीसवाँ अध्याय

जसवन्तराव होलकर

छब्बीसवाँ अध्याय

भरतपुर का मोहासरा

सत्ताईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का अन्त

अट्ठाईसवाँ अध्याय

प्रथम लार्ड मिण्टो

उनतीसवाँ अध्याय

भारतीय उद्योग धन्धों का सर्वनाश

तीसवाँ अध्याय

नैपाल युद्ध

इक्तीसवाँ अध्याय

हेस्टिंग्स के अन्य कृत्य

बत्तीसवाँ अध्याय

तीसरा मराठा युद्ध

तैंतीसवाँ अध्याय

लार्ड एमहर्स्ट

चौंतीसवाँ अध्याय

लार्ड विलियम बेंटिङ्क

चित्र सूची

दूसरी जिल्द

नक़्शे



टीपू सुलतान के प्रपौत्र शाहज़ादे अहमद हलीमुज़्ज़माँ और शहज़ादे ग़ुलाम हुसैन शाह की कृपा द्वारा एक तत्कालीन

भारत में अंगरेज़ी राज

पन्द्रवाँ अध्याय

टीपू सुलतान

सन् १७६२ की सन्धि के बाद

पिछले अध्यायों में टीपू सुलतान के जन्म, बाप की मृत्यु के बाद उसकी मसनद नशीनी और मैसूर के पहले दोनों युद्धों में अंगरेज़ों के साथ उसकी लड़ाइयों का ज़िक्र आ चुका है। सन् १७६२ में अंगरेज़ों, निज़ाम और मराठों ने मिल कर टीपू पर हमला किया और उसका आधा राज छीन कर आपस में बाँट लिया। इन चारों शक्तियों के बीच उस समय मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। टीपू पर तीन करोड़ से ऊपर युद्ध का दंड लगाया गया, जिसमें से एक करोड़ उसी समय वसूल कर लिया गया, बाक़ी की अदायगी के लिए

दो साल की मियाद नियत थी। कॉर्नवालिस के पत्रों से ज़ाहिर है उसे यह आशा थी कि टीपू, जिसका आधा राज छिन चुका था और बाक़ी रौंदा और बरबाद किया जा चुका था, दो साल के अन्दर इतनी भारी रक़म को अदा न कर सकेगा और कम्पनी को इस बहाने उसका रहा सहा राज हड़पने का भी मौक़ा मिल जावेगा। किन्तु कॉर्नवालिस को इस विषय में निराशा हुई। टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक था, वह अपनी ज़बान का भी सच्चा था। उसने अपनी ओर से सन्धि की शर्तों का सच्चाई के साथ पालन किया। इतिहास लेखक मैलकम लिखता है कि—"अथक परिश्रम और ज़बरदस्त उत्साह के साथ वह हर उचित उपाय से अपनी खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने की कोशिश में अपनी पूरी ताक़त लगा देने का गम्भीर संकल्प कर चुका था।" इसीलिए सन् १७९२ से :—

"टीपू ने सब से पहले अपनी आन क़ायम रखते हुए ठीक समय पर उस भारी रक़म को अदा कर दिया, जो सन्धि के समय उसके शत्रुओं की ओर से नियत कर दी गई थी। इस तरह ठीक मियाद के अन्दर इतनी बड़ी रक़म का अदा हो जाना एक असाधारण बात है। फिर अपनी मुसीबतों से घबरा कर बैठ जाने के बजाय युद्ध द्वारा मुल्क की जो बरबादी हुई थी, टीपू सुलतान ने उसे फिर से दुरुस्त करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसने अपनी राजधानी की रक्षा के लिए क़िलेबन्दी को बढ़ाना, सवारों की सेना को फिर से पूरा करना, पैदल सेना में नए रंगरूट भर कर उन्हें शिक्षा देना, अपने उन सामन्त सरदारों को, जो शत्रु से मिल गए थे, दण्ड देना, और

अपने राज में खेती बाड़ी को उन्नति देना शुरू किया ; जिससे थोड़े ही दिनों में उसका देश फिर पहले की तरह खुशहाल दिखाई देने लगा ।"*

टीपू को मिटाने का सङ्कल्प

ऊपर लिखा जा चुका है कि टीपू ने सच्चाई के साथ सन्धि की शर्तों का पालन किया । किन्तु टीपू की वीरता और उसकी योग्यता और उसके राज का फिर से पनपना ही अंगरेज़ों के लिए सब से अधिक खतरनाक था । कॉर्नवालिस के पत्रों से साबित है कि वह टीपू के अस्तित्व ही को भारत में अंगरेज़ी राज के लिए खतरनाक मानता था । वेलसली के पत्रों से साबित है कि वह भारत में क़दम रखने से पहले आशा अन्तरीप ही में टीपू पर हमला करने और जिस तरह हो सके उसे कुचलने का सङ्कल्प कर चुका था । उसकी निज़ाम और पेशवा को पङ्गुल कर देने की कोशिशें एक प्रकार से टीपू को कुचलने की अधिक गहरी योजना के केवल अङ्ग थे ।

---

* " with that unremitting activity and zealous warmth which we could look for in a prince, who had come to a serious determination by every reasonable means in his power to regain what he had lost

" . I shall take a short retrospect of the leading features of his conduct since 1792

" This was first marked by an honourable and unusually punctual discharge of the large sum which remained due at the conclusion of the peace to the allies Instead of sinking under his misfortunes, he exerted all his activity to repair the ravages of war He began to add to the fortifications of his capital—to remount his cavalry, to recruit and discipline his infantry, to punish his refractory tributaries, and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity "
—*Wellesley's Despatches* vol i, Appendix pp 668, 669

टीपू पर झूठे इलज़ाम

टीपू पर हमला करने से पहले उस पर कोई न कोई इलज़ाम लगाना ज़रूरी था। कहा गया कि टीपू अंगरेज़ों पर हमला करने वाला है, और इसके लिए फ्रांसीसियों के साथ गुप्त षड्यन्त्र रच रहा है। बयान किया गया कि मारीशस के टापू में फ्रांसीसियों ने एक एलान प्रकाशित किया है, जिसमें लिखा है कि टीपू ने अपने कुछ विशेष दूत एक जहाज़ में मारीशस भेजे हैं और उन दूतों के ज़रिए अंगरेज़ों के विरुद्ध फ्रांसीसियों के साथ मेल करने का विचार प्रकट किया है, इत्यादि। इसी इलज़ाम की बिना पर बिना टीपू से कोई पूछ ताछ किए कारखाई शुरू कर दी गई। ९ जून सन् १७९८ को मार्किस वेल्सली ने इस फ्रांसीसी एलान की एक कापी मद्रास के गवरनर हैरिस के पास भेजी और उसे आदेश दिया कि तुम तुरन्त टीपू के विरुद्ध सेना जमा करो। इसके बाद २० जून सन् १७९८ को वेल्सली ने हैरिस को एक दूसरे पत्र द्वारा अपने "अन्तिम निश्चय" की सूचना दी और लिखा कि—"मैं समुद्र तट पर सेना एकत्रित करने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।" इस पत्र में "टीपू पर अचानक हमला करना" वेल्सली ने अपना "उद्देश" बताया, और अन्त में इस बात पर ज़ोर दिया कि इस सारे मामले को "गुप्त" रखना "अत्यन्त आवश्यक" है। *

* ". . . my final determination . . . to assemble the army upon the coast . . . with the object of striking a sudden blow against Tipoo, . . . you will of course feel the absolute necessity of keeping the contents of this letter secret."—Marquess Wellesley to General Harris, 20th June, 1798

सन् १७९२ में निज़ाम और पेशवा दोनों ने टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया था। उस समय की सन्धि में यह तय हो गया था कि यदि टीपू की ओर से सन्धि की शर्तों का उल्लङ्घन होगा तो अंगरेज़, निज़ाम और पेशवा तीनों मिलकर उसका मुक़ाबला करेंगे। टीपू ने ईमानदारी के साथ सब शर्तों का पालन किया, इस लिए अब वेलसली ने टीपू पर हमला करने से पहले निज़ाम और पेशवा से सलाह करने के बजाय निज़ाम को अपने 'सबसीडीयरी एलायन्स' के जाल में क़ैद कर लिया, और जब पेशवा के दरबार में 'सबसीडीयरी एलायन्स' की चाल न चल सकी तो पेशवा को फँसाए रखने के लिए सींधिया को उकसा कर उसे एक विशाल सेना सहित पेशवा के पीछे लगा दिया और उस सेना द्वारा पेशवा के इलाक़े को लुटवाना शुरू कर दिया।

जेम्स मिल ने अपने इतिहास में साबित किया है कि फ्रांसीसियों के उस समय टीपू के साथ मिलकर ब्रिटिश भारत पर हमला करने की कोई किसी तरह की सम्भावना तक न थी। उसने यह भी दिखलाया है कि जिन काग़ज़ों के आधार पर टीपू पर फ्रांसीसियों के साथ साज़िश करने का इलज़ाम लगाया गया उनमें से कुछ ऐसे थे जिनसे टीपू का कोई दोष साबित नहीं होता और बाक़ी साफ़ जाली थे।*

इससे अधिक हमें इन झूठे इलज़ामों की छान बीन की आवश्यकता नहीं है। मद्रास के गवरनर हैरिस ने २३ जून सन्

* *History of India* by Mill vol. vi

१७६८ को एक पत्र में मार्किस वेल्सली को दर्शाया कि आपकी आशङ्काएँ बिलकुल बेबुनियाद हैं और टीपू से इस समय युद्ध छेड़ना अनुचित है। मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी जोशिया वेब ने ६ जुलाई सन् १७६८ को वेलसली को लिखा कि—"फ्रांस की जो सेना मारीशस टापू में थी भी वह सब वहाँ से यूरोप को भेज दी गई है और फ्रांसीसी जहाज़ तक वहाँ से हटा लिए गए हैं, इसलिए फ्रांसीसियों और टीपू के बीच साज़िश होना असम्भव है।" किन्तु वेलसली के लिए फ्रांसीसियों और टीपू की साज़िश केवल एक बहाना थी, उसका असली उद्देश टीपू सुलतान को मिटाकर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को बढ़ा लेना और भविष्य के लिए अपने मार्ग से एक ज़बरदस्त रुकावट को दूर कर देना था।

टीपू के साथ धोखा

९ जून सन् १७६८ को वेलसली ने जनरल हैरिस को लिखा कि टीपू के विरुद्ध सेना जमा की जावे, और उसके पाँच दिन बाद १४ जून को उसने टीपू को एक अत्यन्त प्रेम भरा पत्र लिखा। इसके अलावा टीपू को और भी पूरी तरह धोखे में रखने के लिए उसने एक नई चाल चली। सर जॉन शोर के समय से वाईनाद के इलाके के विषय में कम्पनी और टीपू के बीच कुछ झगड़ा चला आता था। वेलसली ने अपना प्रेम दर्शाने के लिए अब वह इलाक़ा टीपू को लौटा दिया। वेलसली के प्रेम भरे पत्र के उत्तर में भोले टीपू ने अंगरेज़ गवरनर जनरल को लिखा :—

"आपका मित्रता सूचक पत्र × × × मिला × × × उससे मुझे इस

क़दर ख़ुशी और तसल्ली हुई कि जिसे पूरी तरह काग़ज़ पर बयान नहीं किया जा सकता। × × × ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम का उच्च सम्बन्ध और दोस्ती और मेल की बुनियादें पूरी मज़बूती से क़ायम हैं। मुझे हमेशा इसका ख़याल रहता है कि मौजूदा सुलहनामों की शर्तों पर क़ायम रहूँ। आप दिल से मेरे दोस्त और ख़ैरख़्वाह हैं, और मुझे विश्वास है कि आप ध्यान से एकता और प्रेम को क़ायम रक्खेंगे।"*

निस्सन्देह टीपू को वेल्सली की वास्तविक इच्छा और उसकी दुरङ्गी नीति का पता न था। वेल्सली एक ओर टीपू को अपनी मित्रता का विश्वास दिलाता रहा और दूसरी ओर उस पर हमला करने की गुप्त तैयारियाँ करता रहा। धीरे धीरे कुछ भनक टीपू के कानों तक भी पहुँच गई। २८ सितम्बर सन् १७९८ को वेल्सली के पास टीपू का एक और पत्र पहुँचा, जिसमें टीपू ने लिखा :—

"दुष्ट लोग थोथे झगड़े और तनाज़े खड़े करके, अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं, किन्तु ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम के चश्मे इतने पाक और साफ़ बह रहे हैं कि स्वार्थी लोगों की चालों से वे गन्दे नहीं हो सकते।"

वेल्सली ने एक महीने से ऊपर तक इस पत्र का कोई उत्तर न दिया। इस बीच मिश्र देश के उत्तर में अंगरेज़ सेनापति नेलसन ने फ़्रान्स के जहाज़ी बेड़े का ख़ातमा कर डाला। फ़्रांसीसियों का डर शुरू से झूठा था। यह डर किसी स्वतन्त्र भारतीय नरेश पर

* Tipoo's letter to Governor General received in Calcutta 10th July 1798

हमला करने के लिए कोई बहाना भी नहीं हो सकता था। फिर भी यदि इससे पहले फ़्रांसीसियों के भारत पर हमला करने की कोई सम्भावना हो सकती थी तो अब वह भी बिलकुल जाती रही। किन्तु जैसा हम लिख चुके हैं ये सब बातें वेलसली के लिए केवल बहाना थीं, उसका असली उद्देश दूसरा और स्पष्ट था। ४ नवम्बर को वेलसली ने फिर टीपू को एक अत्यन्त मित्रता सूचक पत्र लिखा। ८ नवम्बर को अपनी तैयारी देखकर वेलसली ने रङ्ग बदला और एक अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण पत्र में मारीशस के एलान का ज़िक्र करते हुए टीपू को लिखा कि—"आप यह गुमान न करें कि मेरे देश के शत्रुओं के और आपके बीच जो बातें हुई हैं उनकी ओर से मैं उदासीन रह सकता हूँ।" इत्यादि। केवल चार दिन के अन्दर टीपू की ओर वेलसली के रुख़ में यह अचानक परिवर्तन हो गया।

छेड़छाड़

इसी पत्र में वेलसली ने टीपू को यह धमकी दी कि एक अंगरेज़ अफ़सर मेजर डवटन को इस उद्देश से आपके दरबार में भेजा जायगा ताकि शान्ति क़ायम रखने के लिए जिन जिन ज़िलों की अंगरेज़ों को ज़रूरत है, उन्हें वह आप से माँग ले। अंगरेज़ों की तैयारी अब पूरी हो चुकी थी, इसी लिए टीपू से अब साफ़ छेड़छाड़ शुरू कर दी गई।

पाँच दिन बाद वेलसली ने अपनी जल सेना के सेनापति रेनियर को लिखा कि—"हैदराबाद को ठीक कर लिया गया है, और समुद्र तट पर दोनों ओर हमारी युद्ध की तैयारियाँ ख़ूब हो चुकी हैं"—इसलिए "यह अवसर हमारे लिए अच्छा है और मैं इस अवसर से

लाभ उठाकर केवल डर दिखाकर या लड़कर टीपू को शक्तिहीन कर देने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।"

इसके बाद बिना टीपू के उत्तर का इन्तज़ार किए वेल्सली कलकत्ते से चल दिया और ३१ दिसम्बर सन् १७९८ को स्वयं युद्ध के मैदान के समीप रहने के उद्देश से मद्रास पहुँच गया। मद्रास पहुँचते ही उसे अपने ८ नवम्बर के पत्र के उत्तर में टीपू का साफ़ साफ़ पत्र मिला।

टीपू और वेल्सली में पत्र व्यवहार

मॉरीशस वाले मामले के जवाब में टीपू ने लिखा :—

"इस ख़ुदादाद सरकार मे एक क़ौम ऐसे व्यापारियों की है जो ख़ुश्की पर और समुद्र पर दोनों जगह तिजारत करते हैं। इनके गुमाश्तों ने एक दो मस्तूल वाला जहाज़ ख़रीदा और उसमें चावल भर कर तिजारत के लिए निकले। अकस्मात् यह जहाज़ मारीशस टापू जा पहुंचा। वहाँ से चालीस आदमी फ़्रांसीसी और काले रङ्ग के, जिनमें से १० या १२ दस्तकार थे और बाक़ी नौकर थे, जहाज़ का किराया देकर रोज़ी की तलाश मे यहाँ आ गए। उनमें से जिन्होंने नौकरी करना पसन्द किया वे रख लिए गए, बाक़ी इस ख़ुदादाद सरकार की सीमा से बाहर चले गए। शायद फ़्रांसीसियों ने, जिनमें बुराई और छल भरा हुआ है, इस जहाज़ के जाने से फ़ायदा उठाकर इन दोनों सरकारों के दिलों में मैल पैदा कर देने के उद्देश से ये अफ़वाहे उड़ा दी हैं।

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है और मैं सदा इसी कोशिश में लगा रहता हूँ कि सुलहनामे की शर्तें पूरी हों और कम्पनी बहादुर की सरकार के साथ दोस्ती और मेल की बुनियाद स्थाई और मज़बूत रहे। × × × इस

परिस्थिति में आपके मित्रता सूचक पत्र में युद्ध का सङ्केत × × × पढ़ कर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ।"

वेल्सली की धमकी के जवाब में टीपू ने लिखा :—

"यह समझा गया है कि ख़ुदा के फ़ज़ल से सुलह के वक्त चारों सरकारों के बीच क़समें खाकर जो प्रतिज्ञाएँ की गई हैं, वे इतनी पक्की और सर्वस्वीकृत हैं कि हमेशा क़ायम रहेंगी × × × मैं नहीं समझ सकता कि दोस्ती और मेल की बुनियादों को स्थाई बनाने के लिए, सलतनतों को सुरक्षित रखने के लिए और सब के लाभ और भले के लिए इससे ज़्यादा कारगर और कौन से उपाय किए जा सकते हैं।"*

३१ दिसम्बर सन् १७९८ को वेल्सली को टीपू का यह पत्र मिला। ९ जनवरी सन् १७९९ को वेल्सली ने टीपू को एक और लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने टीपू को साफ़ लिख दिया कि आप अपने समुद्र के किनारे के सब नगर और बन्दरगाह अंगरेज़ों के हवाले कर दें। पत्र मिलने के २४ घण्टे के अन्दर टीपू से जवाब माँगा गया। वास्तव में यह पत्र टीपू को केवल युद्ध की सूचना थी।

टीपू अब अच्छी तरह समझ गया कि जिन विदेशियों को हैदर ने पूरी तरह परास्त करके भी उनके साथ दया और उदारता का व्यवहार किया, जिन्हें स्वयं टीपू ने एक बार अपनी मुट्ठी में लाकर उनके वादों पर विश्वास करके छोड़ दिया, जिन्होंने अभी छै साल पहले उसके साथ मित्रता की सन्धि की थी, वे अब भी उस पर झूठे

---

* *Wellesley's Dispatches*, vol i p 382 383

दोष लगा कर उसे मिटा देने पर कटिबद्ध थे। पराजित शत्रु की ओर उदारता दिखलाना एशियाई नरेशों का सदा से एक ख़ास गुण रहा है, किन्तु अनेक बार उन्हें इस उदारता का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है।

युद्ध का एलान

३ फ़रवरी सन् १७९९ को कम्पनी की सेना टीपू के राज की ओर बढ़ी। टीपू इस युद्ध के लिए तैयार न था। १३ फ़रवरी को उसने वेल्सली को पत्र लिखा कि मामले को शान्ति से तय करने के लिए मेजर डवटन को मेरे दरबार में भेज दिया जावे। इसके बाद भी कई बार टीपू ने प्रार्थना की कि पहले बातचीत से मामले को तय करने की कोशिश कर ली जावे। किन्तु वेलसली ने इन प्रार्थनाओं की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। २२ फ़रवरी को टीपू के साथ युद्ध का एलान कर दिया गया। कम्पनी की सेनाएँ जनरल हैरिस के अधीन थीं। जल और स्थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया। विवश होकर टीपू ने भी वीरता के साथ मुक़ाबले का निश्चय किया।

विश्वासघात का जाल

वेलसली जानता था कि बावजूद इतनी तैयारी के कम्पनी की सेना का टीपू को परास्त कर सकना इतना सरल न था। इसलिए उसने कम्पनी की प्राचीन प्रथा के अनुसार टीपू के अफ़सरों और उसकी प्रजा के साथ पहले ही से गुप्त साज़िशें शुरू कर दी थीं। वेल्सली ने मद्रास के गवरनर हैरिस को लिखा :—

"मेरे पास यह मानने के लिए काफ़ी वजह है क टीपू सुलतान के बहुत

से सामन्त सरदार, मुख्य मुख्य अफ़सर और प्रजा के अन्य लोग अपने नरेश के ख़िलाफ़ बग़ावत करके कम्पनी और उसके साथियों की पनाह में आने के लिए तैयार हैं। सुलतान की दग़ाबाज़ी और ज़्यादती की वजह से जिस युद्ध में हमें फिर से पड़ना पड़ा है उसमें सुलतान के आदमियों की बदअमनी और उनकी बग़ावत से जहाँ तक हो सके, लाभ उठाना हमारे लिए जायज़ और मुनासिब है।"*

एक बाज़ाब्ता कमीशन

'दग़ाबाज़ी और ज़्यादती' वास्तव में किस ओर थी, यह इतिहास के पन्ने पन्ने से ज़ाहिर है। रहा विपक्षी के 'आदमियों की बदअमनी और उनकी बग़ावत से जहाँ तक हो सके लाभ उठाना', नहीं बल्कि उनमें बदअमनी और बग़ावत पैदा करके उन्हें अपनी ओर फोड़ना—सो यह काम सदा ही कम्पनी के लिए 'ज़ायज़ और मुनासिब' समझा गया। इस काम के लिए यानी पहले से जा जा कर टीपू के आदमियों से मिलने और उन्हें फोड़ने के लिए वेल्सली ने अपने भाई करनल वेल्सली, करनल क्लोज़, करनल एगन्यु, कप्तान मैलकम और कप्तान मैकॉले, पाँच आदमियों का

* "I have reason to believe that many of the tributaries, principal officers, and other subjects of Tipoo Sultan, are inclined to throw off the authority of that prince, and to place themselves under the protection of the Company and of our allies. The war in which we are again involved by the treachery and violence of the Sultan, renders it both just and expedient that we should avail ourselves, as much as possible, of the discontent and disaffection of his people."—Marquess Wellesley's letter to General Harris. *Wellesley's Dispatches*, p. 442.

एक बाज़ाब्ता कमीशन नियुक्त किया। इस समय के पत्रों से ज़ाहिर है कि टीपू के विरुद्ध इससे पहले के युद्ध में भी कॉर्नवालिस इस तरह के उपायों को काम में ला चुका था।

मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी ने अपनी फ़ारसी पुस्तक "निशानए हैदरी" में ख़ासे विस्तार के साथ बयान किया है कि किस तरह कम्पनी की सेनाओं ने एकाएक चारों ओर से टीपू को जा घेरा, किस तरह वीरता और आन के साथ टीपू ने मरते दम तक शत्रुओं का मुक़ाबला किया और किस तरह टीपू के दरबार और उसकी सारी सेना को विश्वासघातकों से छलनी छलनी करके अन्त में अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की।

टीपू पर चारों ओर से हमला

उस पुस्तक से पता चलता है कि इस युद्ध में निज़ाम और उसके वज़ीर मीर आलम ने अंगरेज़ों को फिर ख़ूब सहायता दी। चार हज़ार सेना मद्रास से जनरल हैरिस के अधीन थी। चार हज़ार सबसीडीयरी सेना हैदराबाद से आकर मिली। दो हज़ार सेना बंगाल की थी। आठ हज़ार सवार मीर आलम के अधीन थे और हैदराबाद ही के छे हज़ार सवार रोशनराव के अधीन थे। कुछ सेना बम्बई से आई। इस तरह कुल मिलाकर क़रीब ३० हज़ार सेना ने चारों ओर से टीपू पर एक साथ चढ़ाई की।

इस युद्ध के विविध संग्रामों को बयान करने के बजाय हम केवल युद्ध के उस पहलू को संक्षेप मे बयान करेंगे, जो वास्तव में टीपू के नाश और अंगरेज़ो की सफलता का कारण हुआ। सब से

पहला धोखा जो टीपू के कुछ नमकहराम सलाहकारों और जासूसों ने उसे दिया वह यह था कि उन्होंने टीपू को विश्वास दिलाया कि कम्पनी की सारी सेना चार या पाँच हज़ार से अधिक नहीं है।

विश्वासघातक पूर्निया

टीपू ने ख़बर पाते ही अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री और सेनापति पूर्निया के अधीन कुछ सवार शत्रु के मुक़ाबले के लिए भेजे। रायकोट नामक स्थान से क़रीब दो कोस पर इस सेना की कम्पनी की सेना से मुठभेड़ हुई। किन्तु पूर्निया भीतर से अंगरेज़ों से मिला हुआ था। उसने बजाय मुक़ाबला करने के कम्पनी की सेना के दाएँ बाएँ चक्कर लगाने शुरू किए। कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। पूर्निया की सेना के एक दल ने आगे बढ़कर वीरता के साथ शत्रु को रोका और एक बहुत बड़ी संख्या को तलवार के घाट उतारा। पूर्निया ने यह देख कर अपने वीर सवारों को शाबाशी देने की जगह उन्हें अत्यन्त कड़े शब्दों में लानत मलामत की। सवार समझ गए कि पूर्निया लड़ना नहीं चाहता। इसके बाद कम्पनी की बढ़ती हुई सेना को रोकने या उनसे लड़ने के बजाय विश्वासघातक पूर्निया की सेना शत्रु के आगे पीछे बतौर उनके संरक्षकों के चलती रही।

नमकहराम कमरुद्दीन

यह ख़बर सुन कर कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है, सुलतान टीपू ने स्वयं सेना सहित आगे बढ़ने का विचार किया। उसके सलाहकारों ने फिर उसे धोखा दिया। जनरल हैरिस की सेना एक

ख़ास रास्ते से श्रीरंगपट्टन की ओर बढ़ रही थी। टीपू के सलाह-कारों ने उसे दूसरा रास्ता बतला दिया और टीपू ने एक ग़लत सड़क पर जाकर डेरे डाल दिए। ज्योंही टीपू को इस विश्वासघात का पता चला, उसने फ़ौरन तेज़ी के साथ आगे बढ़ कर गुलशनाबाद के पास सामने से हैरिस की सेना को रोका। कुछ देर तक ख़ूब घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान के अनेक सिपाहियों और सेनानियों ने वीरता के हाथ दिखाए। कम्पनी की सेना और ख़ास कर तोपख़ाने को ज़बरदस्त हानि सहनी पड़ी। ठीक मौक़े पर सुलतान ने अपने एक सेनापति कमरुद्दीन ख़ाँ को सवारों सहित आगे बढ़कर शत्रु को समाप्त कर देने की आज्ञा दी। किन्तु कमरुद्दीन ख़ाँ भी अपने आपको अंगरेज़ों के हाथ बेच चुका था, मौक़ा मिलते ही शत्रु पर हमला करने के बजाय वह थोड़ा आगे बढ़कर उलटा लौटा और एकाएक अपने सवारों सहित सुलतान की सेना के एक भाग पर टूट पड़ा। टीपू के अनेक जाँबाज़ सिपाही इस समय काम आए, अनेक हैरान होकर पीछे हट गए और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात के प्रताप मैदान अंगरेज़ों के हाथ रहा।

बम्बई की सेना

इतने में टीपू को पता चला कि एक दूसरी सेना जनरल स्टूअर्ट के अधीन बम्बई से श्रीरंगपट्टन की ओर बढ़ी चली आ रही है, फ़ौरन कुछ सरदारों को जनरल हैरिस के मुक़ाबले के लिए छोड़कर टीपू अपनी समस्त सेना और तोपख़ाने सहित जनरल स्टूअर्ट का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा।

दो रात और एक दिन के लगातार कूच के बाद टीपू ने बम्बई

की सेना को जा पकड़ा और पहुँचते ही हमले की आज्ञा दी। टीपू की सेना ने इस समय भी पूरी वीरता दिखलाई। कम्पनी की सेना को भारी शिकस्त खानी पड़ी। अनेक वीर मैदान में काम आए और अनेक माल असबाब छोड़कर जान बचाकर आस पास के जंगल में जा छिपे। टीपू के जासूसों ने आकर उसे ख़बर दी कि बम्बई की सेना युद्ध का इरादा छोड़कर जंगल के रास्ते पीछे लौट गई। टीपू अपनी विजयी सेना सहित श्रीरंगपट्टन की ओर मुड़ आया।

मालूम होता है पूर्निया और कमरुद्दीन जैसे विश्वासघातकों ने टीपू के चारों ओर नमकहराम मुख़बिर और सलाहकार पैदा कर रक्खे थे।

श्रीरंगपट्टन की लड़ाई

टीपू के श्रीरंगपट्टन पहुँचते ही जनरल हैरिस की सेना नगर के सम्मुख आ पहुँची। सामने की ओर श्रीरंगपट्टन का क़िला था और पीछे नगर। अंगरेज़ी सेना ने क़िले और नगर के अन्दर आग बरसानी शुरू की। टीपू के कुछ सलाहकारों ने उसे यह राय दी कि आप नगर छोड़ कर भाग जाइये या सुलह की बातचीत शुरू कीजिये। वीर टीपू ने उस स्थिति में दोनों बातों से इनकार कर दिया। उसने अन्त समय तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात का उसे अभी तक पता न था। उसने फिर इन्हीं दोनों सेनापतियों के अधीन सेना नियुक्त करके क़िले से बाहर भेजी। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है

कि दोनों सेनापति इस सेना को लेकर बार बार अंगरेज़ी सेना के दाएँ बाएँ चक्कर लगाते रहे, बार बार सेना के बहादुर सवार जो टीपू के वफ़ादार थे शत्रु पर हमला करने की इजाज़त माँगते थे और बार बार उनके सेनापति उन्हें इजाज़त देने से इनकार करते थे; सिपाही दुख और निराशा से हाथ मलते रह जाते थे; यहाँ तक कि बम्बई की अंगरेज़ी सेना भी हैरिस की मदद के लिए आ पहुँची।

सय्यद ग़फ़्फ़ार की वफ़ादारी

अन्त में घमासान संग्राम हुआ। इस संग्राम में महताब बाग़ का मोरचा श्रीरंगपट्टन के क़िले की कुंजी था। टीपू का एक विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार, जिसका ज़िक्र दूसरे मैसूर युद्ध के बयान में आ चुका है, महताब बाग़ का संरक्षक था। सय्यद ग़फ़्फ़ार देर तक वीरता के साथ शत्रु के हमलों से महताब बाग़ की रक्षा करता रहा। दुशमन ने देख लिया कि सय्यद ग़फ़्फ़ार के रहते महताब बाग़ को जीत सकना असम्भव है। सय्यद ग़फ़्फ़ार को धन का लोभ दिया गया। उस पर इसका कोई असर न हुआ। अन्त में गुप्त सलाह होकर टीपू के आस पास के नमकहरामों ने टीपू को कुछ समझा बुझाकर सय्यद ग़फ़्फ़ार को महताब बाग़ से हटवाकर क़िले के अन्दर बुलवा लिया। जिस मनुष्य ने सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह ली वह अंगरेज़ों का धनक्रीत था। सय्यद ग़फ़्फ़ार के जाते ही उसने महताब बाग़ अंगरेज़ी सेना के हाथों में दे दिया और इस प्रकार श्रीरंगपट्टन के क़िले का दरवाज़ा शत्रु के लिए खोल दिया।

टीपू का मुख्य सलाहकार इस समय उसका एक दीवान मीर सादिक़ था। भोले टीपू को बहुत देर तक इसका पता न चल सका कि यह मीर सादिक़ भी उसके दुश्मनों से मिला हुआ था। यहाँ तक कि मीर सादिक़ ने टीपू के एक विश्वस्त अफ़सर ग़ाज़ी ख़ाँ को क़त्ल करवा दिया और क़िले की दीवारों के टूट जाने पर भी टीपू से इस ख़बर को छिपाए रक्खा। अन्त में जब टीपू को अपने कुछ विश्वस्त आदमियों द्वारा इन सब बातों का और मीर सादिक़ और उसके अन्य साथियों के विश्वासघात का पता चला, टीपू ने एक दिन सुबह को अपने हाथ से विश्वासघातकों की एक लम्बी सूची तैयार करके मीर मुईनुद्दीन के हाथ में दी और उसे आज्ञा दी कि आज ही रात को इन सब नमकहरामों का, जिस तरह हो, काम तमाम कर दिया जावे।

विश्वासघातकों की सूची

अकस्मात् जिस समय मीर मुईनुद्दीन ने इस सूची को खोल कर पढ़ना चाहा, महल का एक फ़र्राश, जो पढ़ना जानता था और मीर सादिक़ से मिला हुआ था, मीर मुईनुद्दीन के पीछे खड़ा हुआ था। इस फ़र्राश ने मीर सादिक़ का नाम सूची में सबसे ऊपर पढ़ कर फ़ौरन जाकर मीर सादिक़ को इसकी ख़बर दे दी। मीर सादिक़ सावधान हो गया।

उसी दिन सुलतान टीपू ने घोड़े पर चढ़कर क़िले की चहार-दीवारी का निरीक्षण किया, टूटी हुई दीवारों की मरम्मत का हुकुम दिया और ऐन एक

ज्योतिषियों की पेशीन गोई

दीवार के ऊपर अपना ख़ेमा लगवाया। कहते हैं कि कुछ ज्योतिषियों ने टीपू से आकर अर्ज़ की कि आज का दिन दोपहर से सात घड़ी बाद तक आप के लिए शुभ नहीं है। इन हिन्दू ज्योतिषियों की सलाह के अनुसार टीपू ने अपने महल में जाकर स्नान किया, हिन्दू क़ायदे से हवन, पूजा और जाप कराया और दो हाथी, जिन पर काली झूलें पड़ी थीं और जिनकी झूलों के चारों कोनों में सोना, चाँदी, मोती और जवाहरात बँधे थे, एक ब्राह्मण को दान दिए। इसके बाद उसने अनेक ग़रीबों और मोहताजों में भोजन, वस्त्र और धन बँटवाया।

सय्यद ग़फ़्फ़ार की हत्या

दोपहर के समय टीपू अभी भोजन करने के लिए बैठा ही था और अभी पहला ही कौर उसके मुँह में जाने पाया था कि किसी ने बाहर से आकर सूचना दी कि विश्वासघातकों ने सुलतान के विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार को, जो उस समय क़िले का प्रधान संरक्षक था, क़त्ल कर डाला। टीपू के लिए दूसरा कौर हराम हो गया। ख़बर सुनते ही वह फ़ौरन दस्तरख़ान छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार होकर स्वयं सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह लेने के लिए अपने कुछ ख़ास ख़ास सरदारों सहित पीछे की ओर से क़िले के अन्दर घुस गया।

उधर विश्वासघातकों ने सय्यद ग़फ़्फ़ार को ख़तम करते ही फ़ौरन दीवार पर चढ़ कर सफ़ेद रूमाल दिखा कर बाहर की अंगरेज़ी सेना को इशारा किया और पेशतर इसके कि टीपू मौक़े पर

पहुँच कर फिर से अपने आदमियों को जमा कर सके, शत्रु के सिपाही दीवार के टूटे हुए हिस्से से श्रीरंगपट्टन के क़िले के अन्दर घुस आए।

नमकहराम मीर सादिक़ का क़त्ल

जब दीवान मीर सादिक़ को पता चला कि सुलतान खुद सेना जमा करके क़िले के अन्दर गया है, उसने घोड़े पर चढ़ कर सुलतान का पीछा किया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले के अन्दर गया था, उसे मज़बूती से बन्द करवा कर, ताकि टीपू किसी तरह बच कर न निकल सके, बाहर से सहायता पहुँचाने के बहाने एक दूसरे दरवाज़े से खुद बाहर निकलना चाहा। इस दूसरे दरवाज़े पर पहुँचते ही उसने वहाँ के पहरेदारों को आज्ञा दी कि जब मैं बाहर चला जाऊँ तो तुम दरवाज़े को मज़बूती से बन्द कर लेना और फिर किसी के कहने पर भी न खोलना। किन्तु अभी वह इन पहरेदारों से बात कर ही रहा था कि टीपू के एक वीर सिपाही ने सामने से आकर ललकार कर कहा—"ऐ कम्बख़्त मलऊन! अपने ख़ुदातर्स सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके अब तू जान बचा कर भागना चाहता है? ले यह तेरे गुनाह की सज़ा है!" यह कह कर उसने अपनी तलवार के एक वार से नमकहराम मीर सादिक़ के दो टुकड़े कर डाले। मीर सादिक़ की लोथ घोड़े से ज़मीन पर जा गिरी।

किन्तु टीपू और उसके देश को अब इससे क्या लाभ हो सकता था। टीपू ने जब अच्छी तरह देख लिया कि मेरे आदमियों ने मेरे साथ दग़ा की और क़िला शत्रु के हाथों में चला गया, तो उसने

एक बार उसी दरवाज़े से फिर बाहर जाना चाहा; किन्तु एक मामूली क़िलेदार ने, ज़िसे मीर सादिक़ ने पहले से समझा रक्खा था, इस समय अपने स्वामी और नरेश टीपू सुलतान की आज्ञा पर क़िले का दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया।

टीपू का वीरोचित अन्त

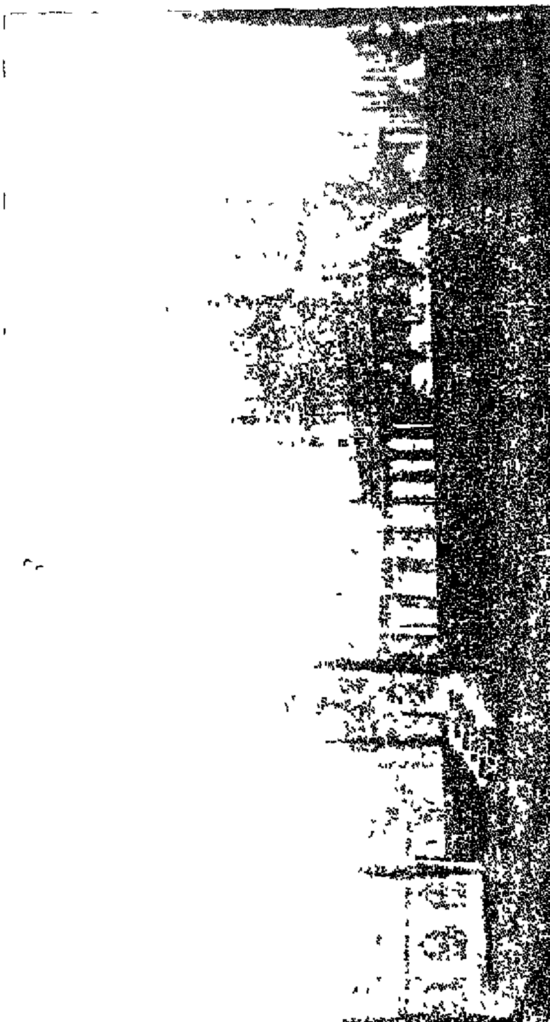
अंगरेज़ी सेना दीवार के टूटे हुए हिस्से पर से क़िले के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी। टीपू अब फिर लौट कर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित बढ़ते हुए शत्रु की ओर लपका। उसने अपनी शक्ति भर अपने इन रहे सहे सिपाहियों को जोश दिलाया। उसने चिल्ला कर कहा—"आख़ीर वक़्त तक क़िले की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है"—"इन्सान को मौत सिर्फ़ एक मरतबा आ सकती है, फिर क्या परवा है कि ज़िन्दगी कब ख़त्म हो!"* यह कह कर उसने अपनी बन्दूक़ से शत्रु की ओर गोलियाँ चलाना शुरू किया। कई यूरोपियन अफ़सर उसकी गोलियों का शिकार होकर गिर पड़े। किन्तु शत्रु की संख्या बहुत अधिक थी। अन्त में एक गोली टीपू की छाती में बाईं ओर आकर लगी। टीपू ज़ख्मी हो गया, फिर भी उसने बन्दूक़ हाथ से न छोड़ी और न वह पीछे मुड़ा। इस ज़ख्मी हालत में भी वह बराबर अपनी बन्दूक़ से शत्रु पर गोलियाँ बरसाता रहा। थोड़ी देर बाद एक दूसरी गोली टीपू की छाती में दाहिनी ओर आकर लगी। टीपू का घोड़ा अब ज़ख्मों से छलनी

---

* "*History of Hyder Shah and Tippoo Sultan*" by Prince Gholam Mohammad

छलनी होकर गिर पड़ा। टीपू की पगड़ी ज़मीन पर जा गिरी। शत्रु अधिक निकट आ पहुँचे। प्यादा पा और नंगे सर टीपू ने अब बन्दूक फेंक कर दाहिने हाथ में अपनी तलवार सँभाली। टीपू की छाती से अब दो दो धारें ख़ून की बह रही थीं। उसके कुछ वफ़ादार साथियों ने उसकी यह अवस्था देख कर सहारा देकर उसे एक पालकी में बैठा दिया। पालकी एक मेहराब के नीचे रख दी गई। इस हालत में टीपू के एक मुलाज़िम ने उसे सलाह दी कि अब आप अपने आपको अंगरेज़ों के हवाले कर दीजिये और उनकी उदारता पर छोड़ दीजिये, किन्तु वीर टीपू ने बड़े तिरस्कार के साथ इस सलाह को अस्वीकार किया। इतने में कुछ अंगरेज़ सिपाही पालकी के पास तक आ पहुँचे। इनमें से एक ने टीपू को ज़ख्मी देख कर उसकी कमर से जड़ाऊ पेटी उतारना चाहा। टीपू ने अभी तक तलवार हाथ से न छोड़ी थी। उसने इस तलवार से गोरे सिपाही पर वार किया और एक बार में उसका घुटना उड़ा दिया। फ़ौरन एक तीसरी गोली टीपू की दाहिनी कनपटी में आकर लगी, जिसने एक क्षण के अन्दर उसके ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया। उस दिन रात को जिस समय टीपू का मृत शरीर लाशों के ढेर में से ढूंढ़ कर निकाला गया तो उस समय तक तलवार उसके हाथ से न छूटी थी। दाहने हाथ का पूरा पञ्जा तलवार के कब्ज़े पर कसा हुआ था। टीपू प्रायः कहा करता था—"दो दिन शेर की तरह जीना ज़्यादा अच्छा है बजाय दो सौ वर्ष भेड़ की तरह जीने के।"





निस्सन्देह टीपू का जीवन और उसकी मृत्यु दोनों इस कथन के अनुरूप थी।

लालबाग़ श्रीरङ्गपट्टन में टीपू, हैदर और हैदर की माँ फ़ातिमा, तीनों की क़बरें एक ही जगह एक ही छत के नीचे बनी हुई हैं। जो अनेक सुन्दर कविताएँ वहाँ टीपू की मृत्यु के सम्बन्ध में लिखी हुई हैं उनमें टीपू को 'शाहे शुहदा' यानी शहीदों का सम्राट और 'नूरे इसलामो दीन' यानी इसलाम और दीन का नूर कहा गया है।

टीपू के बड़े बेटे के साथ झूठा वादा

टीपू की आयु उस समय ५० वर्ष की थी। १७ साल वह अपने पिता के तख़्त पर बैठ चुका था। उसका सबसे बड़ा बेटा फ़तह हैदर सुलतान इस समय क़िले से बाहर कारीघाट पहाड़ी के निकट शत्रु से लड़ रहा था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही वह क़िले की ओर लपका। सलाह के लिए उसने तुरन्त अपने वज़ीरों और अमीरों को जमा किया। इनमें एक ओर मलिक जहान ख़ाँ और उसके साथी लड़ाई जारी रखने के पक्ष में थे और दूसरी ओर पूर्निया और उसके साथी फ़ौरन सुलह कर लेने पर ज़ोर दे रहे थे। इतने में जनरल हैरिस ने सुलह की बातचीत करने के बहाने अपने कुछ अफ़सरों सहित आकर फ़तह हैदर सुलतान से भेंट की और अत्यन्त आदर और प्रेम के साथ सबके सामने उससे वादा किया कि यदि आप लड़ाई बन्द कर दें तो अंगरेज़ सरकार आपको फिर से आपके पिता के तख़्त पर बैठा देगी। इस साफ़ वादे पर और पूर्निया जैसों के ज़ोर देने पर फ़तह हैदर सुलतान ने शस्त्र रख

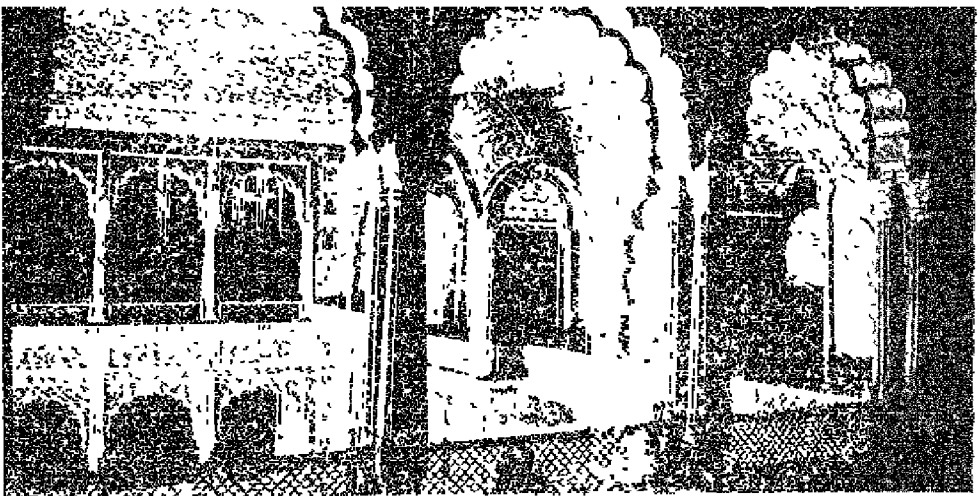
दिए। जनरल हैरिस ने वहाँ से लौटते ही अपने इस वादे को साफ़ तोड़ डाला। निस्सन्देह यह वादा केवल एक चाल थी। श्रीरङ्गपट्टन के क़िले पर अंगरेज़ी सेना का पूरी तरह क़ब्ज़ा हो गया।

श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के बाद अंगरेज़ी सेना के लिए नगर में प्रवेश करना बाक़ी था। मार्किस वेल्सली के नाम से एक एलान प्रकाशित किया गया कि अंगरेज़ी सेना नगर निवासियों के जान और माल दोनों की रक्षा करेगी और किसी पर किसी तरह का अन्याय न होगा। किन्तु विजयी अंगरेज़ी सेना के नगर में घुसते ही "श्रीरङ्गपट्टन की गलियों में एक एक दीवार और एक एक दरवाज़े से खून बहने लगा।" इतना ही नहीं, श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद कई दिन तक कम्पनी के सिपाहियों और ख़ास कर गोरे सिपाहियों ने जो अकथनीय अत्याचार नगर निवासियों पर जारी रक्खे और जिन्हें स्वयं अंगरेज़ अफ़सरों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है, उनके सामने किसी भी भारतीय नरेश के काले से काले पाप फीके मालूम होते हैं। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि क़त्ल, लूट और नगर की स्त्रियों के ऊपर बलात्कार इस ज़ोरों से बढ़ा कि बयान करना नामुमकिन है।

श्रीरङ्गपट्टन में अंगरेज़ी सेना के अत्याचार

इसके बाद अंगरेज़ी सेना शाही महल के अन्दर घुसी। टीपू को अपने बाप के समान शेर पालने का शौक़ था। उसके महल के बाहरी सहन में बेशुमार शेर खुले फिरते रहते थे। अंगरेज़ों को भीतर

टीपू के महल की लूट



दरिया दौलत, श्रीरङ्गपट्टण में टीपू के महल का भीतरी दृश्य



घुसने से पहले इन शेरों को गोली से उड़ा देना पड़ा। महल के भीतर टीपू का ख़ज़ाना धन और जवाहरात से लबालब था। यह माल, हाथी, ऊँट और तरह तरह का असबाब कम्पनी और उसके अंगरेज़ सिपाहियों के हाथों में आया। टीपू के सुन्दर तख़्त को, जो सोने का बना हुआ था, तोड़ डाला गया और हीरे, जवाहरात, मोतियों की मालाएँ और ज़ेवरों के पिटारे नीलाम किए गए। यहाँ तक कि केवल महल के जवाहरात की लूट का अन्दाज़ा उस समय १,११,४३,२१६ पाउण्ड यानी क़रीब १२ करोड़ रुपये का किया गया। टीपू का विशाल पुस्तकालय और अनेक अन्य बहुमूल्य पदार्थ श्रीरङ्गपट्टन से उठाकर विलायत भेज दिए गए।

टीपू के राज का अन्त

४ मई सन् १७९९ को टीपू की मृत्यु हुई। उसी दिन अंगरेज़ी सेना ने श्रीरङ्गपट्टन में प्रवेश किया। ५ मई को टीपू की लाश हैदरअली के मक़बरे के पास लाल बाग़ में दफ़न कर दी गई। इसके बाद फ़तह हैदर सुलतान के साथ जनरल हैरिस के वादे को मिट्टी में मिलाकर अंगरेज़ों ने टीपू के भाई करीमसाहब, टीपू के १२ बेटों और उसकी बेगमों सबको क़ैद करके रायवेलोर के क़िले में भेज दिया।

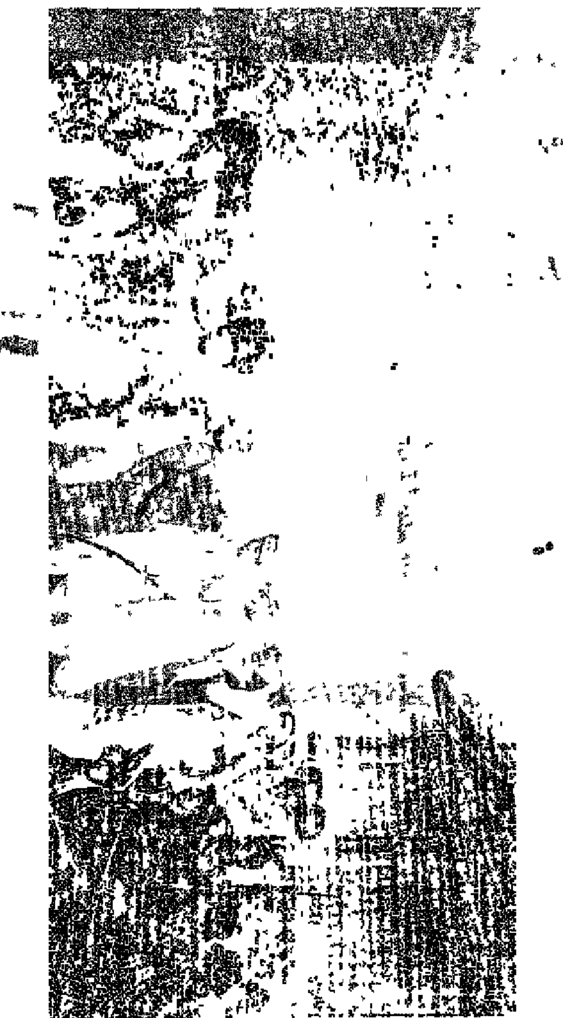
टीपू की सल्तनत के कई टुकड़े कर दिए गए। अधिकांश भाग कम्पनी को मिला। एक फाँक निज़ाम के हिस्से में आई। बाक़ी हिस्से पर मैसूर के पुराने हिन्दू राजकुल का शासन रहने दिया गया, और उस कुल का एक पाँच साल का बालक राजा बनाकर बैठा दिया गया, क्योंकि इस कुल के कुछ लोगों ने भी टीपू के

विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी थी। मैसूर के 'देव" का पद भविष्य के लिए उड़ा दिया गया; और विश्वासघातक पूर्निया बालक राजा का वज़ीर और रक्षक नियुक्त हुआ।

८ जुलाई सन् १७९९ को मैसूर के नए महाराजा और अंगरेज़ कम्पनी के बीच सोलह शर्तों का एक नया सन्धि पत्र लिखा गया। इन शर्तों का सार यह था कि कम्पनी की सबसीडीयरी सेना मैसूर में रहा करेगी, मैसूर के राजा को इस सेना के ख़र्च के लिए सात लाख पैगोदा यानी क़रीब पच्चीस लाख रुपए सालाना देने होंगे, रियासत के तमाम क़िले और पूरा फ़ौजी शासन अंगरेज़ों के हाथों में रहेगा, राज के हर महकमे मे दख़ल देने का गवरनर जनरल को पूरा अधिकार रहेगा, गवरनर जनरल की आज्ञा हर समय और हर हालत में राजा को माननी होगी, और राजा का एक मात्र अधिकार यह होगा कि रियासत की आमदनी में से फ़ौजी और अन्य सब ख़र्च निकाल कर कम से कम एक लाख पैगोदा सालाना उसे अपने निजी ख़र्च के लिए मिलता रहे।

मैसूर के नए बालक महाराजा के साथ सन्धि

टीपू के जिन सरदारों और अन्य नौकरों ने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया था उनमें से कुछ को इनाम में जागीरें और पेनशनें दी गईं। इङ्गलिस्तान की सरकार ने उन सब अंगरेज़ों को इनाम दिए जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया था। गवरनर जनरल का नाम पहले 'अर्ल' मॉरनिङ्गटन था, अब रुतबा बढ़कर उसका नाम 'मार्किस' वेलसली हो गया। जनरल



हैरिस आइन्दा के लिए जनरल 'लॉर्ड हैरिस ऑफ़ श्रीरङ्गपट्टन' हो गया।

टीपू के सरदारों में से एक वीर मलिक जहान ख़ाँ ने, जिसे धूँडिया बाघ भी कहा जाता है, अन्त तक विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। केवल एक घोड़ा साथ लेकर श्रीरङ्गपट्टन के पतन के समय वह नगर से निकल गया और थोड़े ही दिनों में उसने क़रीब तीन हज़ार सवार और पैदल अपने साथ जमा कर लिए। दो साल तक कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदियों के बीच के इलाक़े में वह अंगरेज़ों और उनके साथियों को दिक़ करता रहा। अनेक लड़ाइयों में उसने विजय प्राप्त की। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। अभी इस अरसे में वह कोई बाज़ाब्ता क़िला या केन्द्र अपने लिए न बना सका। इतने में दो साल तक इस तरह मुक़ाबला करने के बाद एक जगह करनल आरथर वेल्सली की सेना के साथ उसका अन्तिम संग्राम हुआ जिसमें कड़प्पा और करनूल के अफ़ग़ानों ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे करनल वेल्सली के हवाले कर दिया। अंगरेज़ इतिहास लेखक आज़ादी के इस सच्चे प्रेमी को जिसने लगातार दो साल तक अनन्त कष्ट सहन करते हुए भी विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की, प्रायः उसी तरह डाकू बतलाते हैं जिस तरह छत्रपति शिवाजी को।

आज़ादी का सच्चा प्रेमी मलिक जहान ख़ाँ

इस तरह वीर हैदरअली की नसल में राजसत्ता का अन्त कर

दिया गया और भारत में अंगरेज़ी राज के मार्ग की सब से ज़बरदस्त बाधा दूर हो गई।

टीपू की मौत पर खुशियाँ

टीपू की मृत्यु का समाचार जब कलकत्ते पहुँचा तो वहाँ के अंगरेज़ों ने बड़े बड़े जलसे किए और खुशियाँ मनाई, बाक़ायदा जलूस निकाले गए, गवरनर जनरल और बाक़ी सब अफ़सरों ने एक ख़ास दिन नियत करके बड़े ठाट बाट के साथ कलकत्ते के नए गिरजे में जाकर खुदा का शुक्रिया अदा किया; क्योंकि उस समय के बंगाल के अंगरेज़ चीफ़ जस्टिस सर जॉन ऐन्सट्रूथर के शब्दों में टीपू की ताक़त ही—"उस समय एक मात्र ताक़त थी जो हमारी सेनाओं का मुंह मोड़ने का अपने में बल रखती थी।" और "भारत में हमारा (अंगरेज़ी) साम्राज्य अब से पक्का और महफ़ूज़ हो गया।"*

टीपू के चरित्र को कलंकित करने की कोशिशें

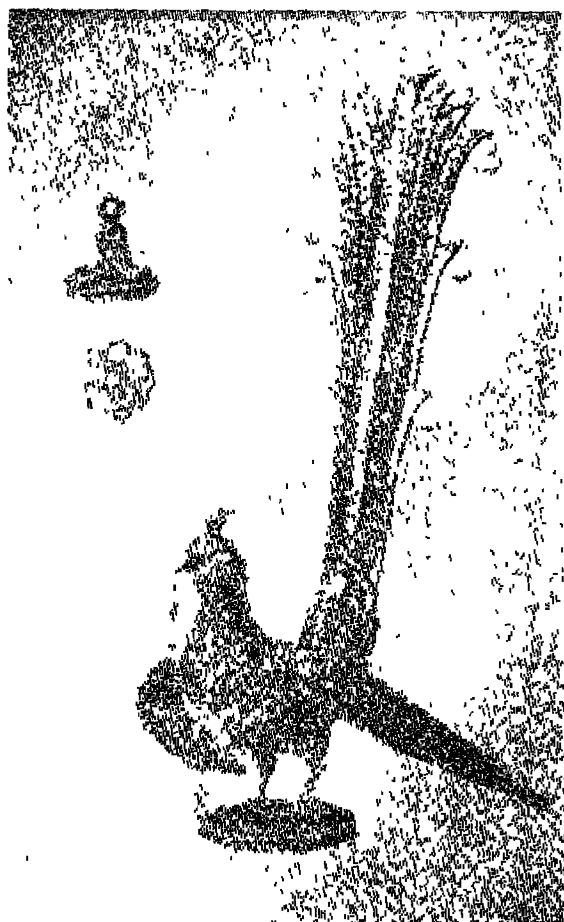
प्रसिद्ध इतिहास लेखक जेम्स मिल को छोड़कर बहुत कम अंगरेज़ लेखक ऐसे हैं जिन्होंने टीपू के चरित्र के साथ न्याय करने की कोशिश की हो। इनमें से अधिकांश लेखकों ने टीपू को बदनाम करने के भरसक प्रयत्न किए हैं, यहाँ तक कि मुसलमान लेखकों को धन देकर उनसे फ़ारसी में सुलतान टीपू की कल्पित जीवनियाँ लिखा डाली गई हैं। इन अंगरेज़ों या अंगरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू के अत्याचारों के अनेक कल्पित क़िस्से भरे हुए हैं। संसार के इतिहास में शायद बहुत कम लोगों के

* Sir John Anstruther to the Governor General, 17th May, 1799

टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्न-जटित मोर

टीपू सुलतान का सिंहासन सोने का बना हुआ था। यह मोर उस सिंहासन की छतरी के ऊपर की कलग़ी था। इतिहास लेखक बेवरिज इसके सौन्दर्य और कारीगरी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। इसकी गर्दन ज़मुर्रदों की बनी हुई थी। शरीर हीरों का बना हुआ था जिसके बीच बीच में तीन पंक्तियाँ लालों की थीं। चोंच की जगह एक बड़ा ज़मुर्रद था जिसके सिरे पर सोना मढ़ा था और जिससे एक लाल और दो मोती लटक रहे थे। मोर के सिर के ऊपर कलग़ी की जगह एक ज़मुर्रद और उस पर एक मोती था। पङ्ख और पर लाल, हीरों और ज़मुर्रदों की पंक्तियों के बने हुए थे जिनसे दोनों ओर छोटे छोटे मोती लटक रहे थे। टीपू सुलतान की मृत्यु और श्रीरंगपट्टन की लूट के समय से यह मोर इंगलिस्तान के राजमहल विण्डसर कैसल में रक्खा हुआ है।

[हेनरी बेवरिज की 'ए काम्प्रिहेन्सिव हिस्टरी ऑफ़ इण्डिया' जिल्द २]



टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का
रत्न जटित मोर
[द० ब० पारसनीस कृत इतिहास संग्रह में]

चरित्र पर इतने अधिक झूठे कलङ्क लगाए गए होंगे जितने उन भारतीय वीरों के चरित्र पर, जिन्होंने समय समय पर इस देश के अन्दर अंगरेज़ी राज के जमने को रोकने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध और प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जॉन के, जो सन् ५७ के स्वाधीनता युद्ध के बाद इंगलिस्तान के भारतमन्त्री के दफ़्तर में 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रहा, साफ़ साफ़ लिखता है—

"हम लोगों में यह एक प्रथा है कि पहले किसी देशी नरेश का राज छीनते हैं और फिर उस पर और उसका उत्तराधिकारी बनने वाले पर झूठे कलङ्क लगा कर उन्हें बदनाम करते हैं।"*

दो मुख्य इलज़ाम

दो तरह के इलज़ाम टीपू सुलतान पर लगाए जाते हैं। एक यह कि अपने अंगरेज़ क़ैदियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था और दूसरा यह कि टीपू एक धर्मान्ध मुसलमान था।

पहले इलज़ाम के विषय में हम केवल इतना कहेंगे कि सिवाय कप्तान बेयर्ड जैसे अंगरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कोई गवाही इस 'क्रूर व्यवहार' की नहीं मिलती, और यह अंगरेज़ क़ैदी न निष्पक्ष माने जा सकते हैं और न सर्वथा सत्यवादी। इसके अलावा यदि बेयर्ड और उसके साथियों के सारे बयान सच भी मान लिए

---

* "... it is a custom among us ... to take a Native Ruler's Kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor"—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, vol. iii, pp 361, 362

जावें तो भी वे सब अत्याचार, जो टीपू ने बेयर्ड और उसके साथी अंगरेज़ों पर किए, उन अत्याचारों के मुक़ाबले में बिलकुल फीके मालूम होते हैं जो अंगरेज़ों ने इन्हीं मैसूर के युद्धों में अपने हिन्दोस्तानी क़ैदियों और मैसूर की प्रजा के साथ किए।

टीपू की धार्मिकता

दूसरा इलज़ाम इस देश में हिन्दू मुसलिम वैमनस्य को बढ़ाने का अंगरेज़ लेखकों के हाथों में सदा से एक ख़ास साधन रहा है। टीपू पर इस कलङ्क के विषय में हम सब से पहले इतिहास लेखक जेम्स मिल की राय नक़ल करते हैं। जेम्स मिल लिखता है :—

"टीपू के चरित्र की एक और विशेषता उसकी धार्मिकता थी। उसके मन पर इस धार्मिक भाव का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। दिन का अधिकांश समय वह ईश्वर प्रार्थना में ख़र्च किया करता था। अपनी सलतनत को वह 'ख़ुदादाद' यानी 'ईश्वर प्रदत्त' कहा करता था। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी पालकता में उसे इतना गहरा विश्वास था कि इस विश्वास का प्रभाव उसके जीवन के समस्त कार्यों पर पड़ता था। वास्तव में जिन चीज़ों ने उसे फँसाने के लिए जाल का काम दिया उनमें से एक उसका ईश्वर की सहायता पर विश्वास था; क्योंकि वह ईश्वरीय सहायता पर इतना अधिक भरोसा करता था कि कभी कभी अपनी रक्षा के दूसरे उपायों की अवहेलना कर जाता था।"*

---

* "Another feature in the character of Tipu was his religion, with the sense of which his mind was most deeply impressed. He spent a considerable part of every day in prayer. He gave to his Kingdom, or state a particular religious title, '*Khudadad*' or God-given, and he lived under a

यह बयान एक विद्वान और प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास लेखक का है। निस्सन्देह इस विषय में हैदरअली और टीपू सुलतान में अन्तर था। हैदरअली सम्राट अकबर के समान बिलकुल आज़ाद ख़याल का था। टीपू ईश्वर में अधिक विश्वासी और धार्मिक विचार का था। हैदरअली किसी धर्म को भी पूर्ण या निर्भ्रान्त न समझता था। टीपू धार्मिक प्रवृत्ति का मनुष्य था और ख़ास कर इसलाम धर्म को मानता था। किन्तु जिस तरह का ईश्वरभक्त और विश्वासी मनुष्य टीपू था उस तरह की धार्मिकता एक चीज़ है और धर्मान्धता बिलकुल दूसरी चीज़ है।

अंगरेज़ों और अंगरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू की धर्मान्धता और ग़ैर मुसलमानों के प्रति उसके अनुचित व्यवहार की इतनी कहानियाँ दर्ज हैं कि इस विषय में अपनी अन्तिम राय क़ायम करने से पहले हमने और अधिक खोज की आवश्यकता अनुभव की। हम वर्तमान मैसूर राज के पुरातत्व विभाग के विद्वान डाइरेक्टर डॉक्टर शामशास्त्री, मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत श्रीकान्तिया और वहाँ के उन अन्य सज्जनों के अहसान मन्द हैं जिन्होंने इस खोज में हमें हर तरह मदद दी।

इस तमाम छानबीन में हमें केवल दो लेख इस तरह के मिल

---

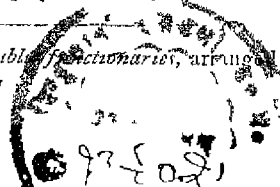
peculiarly strong and operative conviction of the Superintendence of a Divine Providence. His confidence in the protection of God was, indeed, one of his snares; for he relied upon it to the neglect of other means of safety." - *History of India* By James Mill

टीपू के दो एलान

सकें जिन्हें किसी तरह भी प्रामाणिक कहा जा सके और जिनसे टीपू में धार्मिक सङ्कीर्णता का आभास हो सके। पहला लेख टीपू का उस समय का एक एलान है जब कि अंगरेज़ों और नवाब करनाटक के साथ टीपू का युद्ध जारी था। इस एलान में टीपू ने क़ुरान की आयतों और महाकवि हाफ़िज़ की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए शत्रु के इलाक़े में रहने वाले मुसलमानों से प्रार्थना की है कि आप लोग विदेशियों को मदद न दें और शत्रु के इलाक़े को छोड़कर मैसूर राज में आ बसें। एलान में दर्शाया गया है कि किसी मुसलमान के लिए हिन्दोस्तान के हित के विरुद्ध विदेशियों की सहायता करना पाप है। टीपू ने इस एलान में करनाटक और बंगाल के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों की ओर इशारा करते हुए लिखा है—"हिन्द के नरेशों की निर्बलता के कारण वह मदोद्धत जाति (यानी अंगरेज़) व्यर्थ यह समझ बैठी है कि सच्चे दीनदार लोग निर्बल, तुच्छ और निकृष्ट हो गए हैं।" एलान में यह भी लिखा है कि हमने अपनी सलतनत भर में प्रजा और राजकर्मचारियों को यह आज्ञा भेज दी है कि जो लोग शत्रु के इलाक़े से आकर मैसूर राज में बसना चाहें उनके जान माल की पूरी हिफ़ाज़त की जाय और उनकी जीविका इत्यादि का मुनासिब प्रबन्ध करा दिया जाय, इत्यादि।*

दूसरा लेख मैसूर राज में रहने वाले हिन्दोस्तानी ईसाइयों से

* *Select Letters of Tipu Sultan to various public functionaries,* arranged and translated by William Kirkpatrick, pp 293-97



सम्बन्ध रखता है। इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर बयान किया जा चुका है कि हैदरअली ने उदारतावश अपने राज में यूरोप के ईसाई पादरियों को अपने मत प्रचार की इजाज़त दे दी थी और उनकी इच्छानुसार कई तरह की सुविधाएँ कर दी थीं, जिसके सबब ख़ासकर समुद्र तट के कुछ लोगों ने ईसाई मत स्वीकार कर लिया था। किन्तु कम्पनी और हैदरअली के संग्रामों में इन्हीं यूरोपियन और भारतीय ईसाइयों ने हैदरअली के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया। अपनी ईसाई प्रजा की ओर से इसी तरह का कटु अनुभव कई बार टीपू सुलतान को भी हुआ। ये हिन्दोस्तानी ईसाई वास्तव में यूरोपियन पादरियों के हाथों में खेल रहे थे। मजबूर होकर टीपू को उनके विरुद्ध उपाय करना पड़ा। जिस लेख की ओर हम सङ्केत कर रहे हैं, उसमें लिखा है कि एक बार समुद्र तट के कुछ ईसाइयों की "ज़्यादती को सुनकर" टीपू ने आज्ञा दी कि तुम लोग अब या तो मैसूर राज छोड़ कर चले जाओ और या मुसलमान हो जाओ। एक इतिहास लेखक लिखता है कि साठ हज़ार ईसाई मर्द, औरत और बच्चे गिरफ्तार करके सुलतान के सामने पेश किए गए, उन्हें इसलाम धर्म में ले लिया गया और जीविका के लिए उन्हें राज की सेना में भरती कर लिया गया। एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि इन लोगों की संख्या क़रीब तीस हज़ार थी।* सम्भव है इस दूसरे अन्दाज़े

---

* *Historical Sketches of the South India etc* by Colonel Mark Wilks vol ii, pp 529, 530

में भी अत्युक्ति की काफ़ी मात्रा हो।

जो हो, टीपू की इन दोनों आज्ञाओं के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें ध्यान देने योग्य हैं।

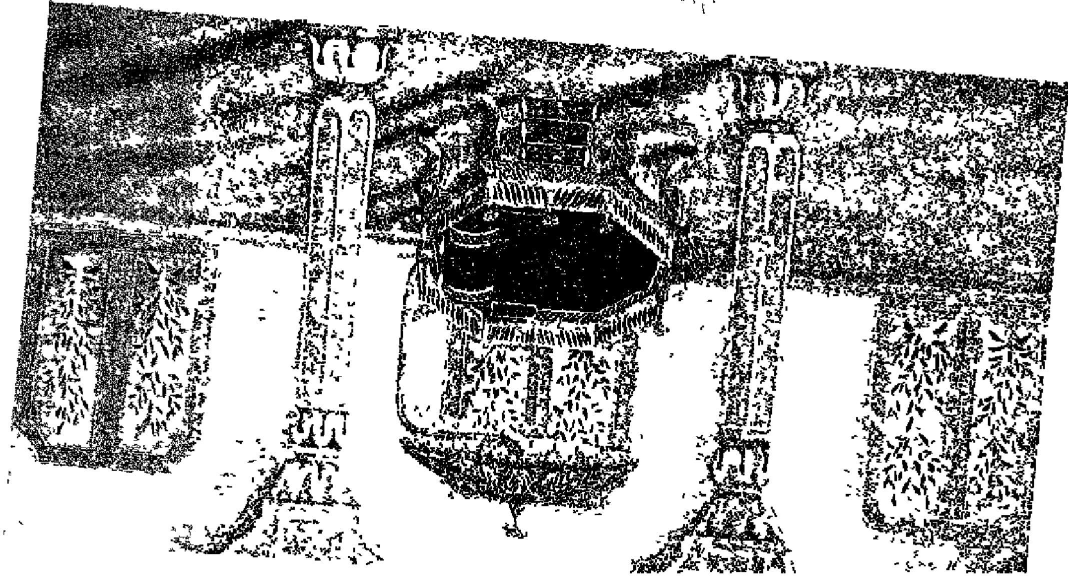
पहला एलान साफ़ युद्ध से सम्बन्ध रखता था, उससे धार्मिक सङ्कीर्णता का कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरे के विषय में, अपने और अपने राज के साथ ईसाइयों के विश्वासघात का हैदरअली और टीपू दोनों को काफ़ी कटु अनुभव हो चुका था। यही ईसाई बरसों तक टीपू के राज में सुख और स्वतन्त्रता से रह चुके थे, और जब तक उनके दुष्कृत्य और अपने देश की ओर उनकी विश्वासघातकता अधिक नहीं बढ़ी, उनके साथ कोई छेड़ छाड़ नहीं की गई। टीपू की इस दूसरी आज्ञा के सम्बन्ध में ठीक ठीक संख्या का या उसमें 'ज़बरदस्ती' की मात्रा का अनुमान कर सकना भी कठिन है।

इसके अलावा ईसाइयों को छोड़ कर मैसूर की बाक़ी सब हिन्दू और अन्य ग़ैर मुसलिम प्रजा के साथ टीपू के अनुचित व्यवहार का इसमें कहीं ज़िक्र नहीं।

हिन्दुओं के साथ टीपू का व्यवहार

मैसूर की अधिकांश जन संख्या हिन्दू थी और हिन्दुओं के साथ टीपू के किसी तरह के अनुचित व्यवहार का हमें एक भी प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत अपनी हिन्दू प्रजा के साथ टीपू के उदार और प्रेम भरे व्यवहार की बेशुमार मिसालें उस समय के इतिहास में भरी पड़ी हैं।





अन्त समय तक टीपू के दरबार में ऊँची से ऊँची पदवियाँ हिन्दुओं को मिली हुई थीं। उसके दो मुख्य मन्त्री पूर्निया और कृष्णराव ब्राह्मण थे, जिनमें पूर्निया उसका प्रधान मन्त्री था। इन दोनों मन्त्रियों का प्रभाव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। इनके अलावा बेशुमार ब्राह्मण टीपू के दरबार में खास कर राजदूतों का काम करने और दरबार में लोगों का परिचय कराने पर नियुक्त थे।

एक बार मलबार तट की नय्यर जाति के कुछ लोगों ने अपने ईसाई मत स्वीकार करने या न करने के विषय में टीपू सुलतान से सलाह माँगी। टीपू ने उत्तर दिया :—

"राजा प्रजा का पिता होता है। इस हैसियत से मेरी आपको यह सलाह है कि आप लोग अपने पूर्व पुरुषों के मज़हब (यानी हिन्दू मज़हब) पर क़ायम रहें; और यदि आपको अपना मज़हब बदलने की इच्छा है ही तो आप, (ईसाई होने की जगह) अपने पिता तुल्य राजा का मज़हब स्वीकार करें।"

जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य का शृङ्गेरी मठ मैसूर के राज में था।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य के नाम टीपू के पत्र

टीपू उस समय के शृङ्गेरी स्वामी जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती का बहुत बड़ा आदर करता था। जगद्गुरु के नाम टीपू सुलतान के समय समय पर भेजे हुए तीस से ऊपर पत्र इस समय मौजूद हैं, जो अत्यन्त मान सूचक शब्दों में लिखे हुए हैं।

मैसूर राज के पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर ने दो मूल पत्रों के फ़ोटो हमारे पास भेजे हैं, जिनमें से एक को नमूने के तौर पर हम इस पुस्तक में प्रकाशित कर रहे हैं। पत्र कनड़ी भाषा में है।

पत्र का हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है :—

मोहर टीपू सुलतान

श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त बिरुदांकित शृंगेरी श्री स्वामी सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की सेवा में टीपू सुलतान बादशाह का सलाम।

श्री महाराज के लिखकर भेजे हुए पत्र से सकल अभिप्राय विदित हुआ। आप जगद्गुरु है, सर्वलोक के क्षेम और सबकी स्वस्थता के हित आप तपस्या करते रहते हैं। ऐसे ही दया कर इस सरकार के क्षेम और उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के लिए तीनों काल में तपस्या करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करने की कृपा कीजिए। आप जैसे महापुरुष जिस देश में निवास करते है, उस देश में वर्षा अच्छी होती है, कृषि फूलती फलती है और सदा सुभिक्ष रहता है। आप इतने अधिक दिनों तक परदेश में क्यों रह रहे हैं? जिस उद्देश से श्री महाराज वहाँ गए हैं उसे शीघ्र अपने अनुकूल सिद्ध करके अपने स्थान को वापस आने की कृपा कीजिए।

ता० २६, महीना राजी साल सहर सन् १२२० महम्मदी, तदनुसार परीधावी सम्वतसर माघ कृष्णा चतुर्दशी, लिखा हुआ सुब्राऊ मुन्शी हुजूर। (हस्ताक्षर टीपू सुलतान)

यह पत्र सन् १७९३ ईसवी का उस समय का लिखा हु[illegible] [illegible] कि जगद्गुरु किसी कार्यवश कुछ समय के लिए शृङ्गेरी म[illegible] [illegible]हर पूना की ओर गए हुए थे। पत्र जगद्गुरु के एक पत्र के



जगद्गुरु शङ्कराचार्य के नाम टीपू सुलतान के एक मूल कनाड़ी पत्र का फोटो सन् १७९३

[By courtesy of the Director, Archeological Department, Mysore]

मूल कनाड़ी पत्र, नागरी लिपि में

श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त विरुदांकितरादन्था श्रृंगेरी श्री सच्चिदानन्द भारती स्वामी गलवरिगे । टिप्पू सुलतान बादशाह ग्वरु सलाम ।

ना उ बरसि कलुहिसिद पत्रिकेइन्द सकल अभिप्रायऊ तिलियलायितु । ता उ जगद्गुरु गलु, सर्वलोकक्कु क्षेम आगबेकु, जनरु स्वस्थदल्लि, इरबेकिम्बदागि तपस्सु माडुत्तले इद्दीरी । सरकारद क्षेमवु उत्तरोत्तर अभिवर्धमान आगुवन्ते, त्रिकाल तपस्सु माडुवल्लियु ईश्वरप्रार्थने माडुत्ता बरुउदु, तस्मन्था दोड्डवरु, यावदेश दल्लो इधारयो, आदेशिक्के मले बिलो सकलवु, आगि सुभिक्षवागि इरतक्कदादरिन्द, परस्थल दल्लि, बहल दिवस ना उ यातक्के इरबेकु, होदकेलसवन्नु क्षिप्रदल्लि अनुकूलपडिसिकोण्डु, स्थलक्के सागिबरुवन्ते माडिसूवदु ।

तारीक २९ माहे राजीमाल सहर सन् १२२० महम्मद

परीधावी सम्वत सरद माघ बहुल १४ लु खत्त सुभाऊ मुनशी हजूर ।

में है। इस पत्र व्यवहार से स्पष्ट है कि उस समय के जगद्गुरु शङ्कराचार्य में और टीपू सुलतान में किस प्रकार का सम्बन्ध था।

हिन्दू पुरोहित और ज्योतिषी

टीपू के महल के अन्दर अनेक हिन्दू पुरोहित और ज्योतिषी रहा करते थे, और टीपू की ओर से यज्ञ, हवन, जप इत्यादि करते रहते थे। मरते दम तक टीपू ने ब्राह्मणों को दान दिए और हिन्दू ज्योतिषियों के आदेशानुसार यज्ञ हवन करवाए। भाद्रपद शुक्ला द्वितीया विरोधीकृत सम्वत्सर अर्थात् सन् १७९१ का लिखा हुआ जगद्गुरु के नाम टीपू का एक और पत्र हमारे पास मौजूद है, जिसमें टीपू ने अपने ख़र्च पर जगद्गुरु से 'शतचंडी सहस्र पाठ' की व्यवस्था कर देने की प्रार्थना की है।

मन्दिरों को जागीरें

नञ्जुनगुड, श्रीरङ्गपट्टन और मेलकोट इत्यादि के अनेक हिन्दू-मन्दिरों को टीपू ने अनेक बार नज़रें और जागीरें दीं। इनमें से बंगलोर में टीपू के ज़नाने महल के ठीक सामने श्रीवेङ्कटरामन्न स्वामी का मन्दिर, महल से मिला हुआ श्रीनिवास का मन्दिर, श्रीरङ्गपट्टन के महल के पास श्रीरङ्गनाथ स्वामी का मन्दिर और श्रीरङ्गपट्टन के अन्य अनेक मन्दिर आज तक टीपू की धार्मिक उदारता के साक्षी मौजूद हैं।

टीपू की धार्मिक उदारता के विषय में इससे अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह के नरेश पर अपने तुच्छ स्वार्थ की दृष्टि से झूठे कलङ्क लगाना उसके, उसके देश और उसकी जाति के साथ घोर अन्याय करना है।

टीपू की प्रजापालकता

टीपू के शेष चरित्र के विषय में, उस समय के समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों से साबित है कि टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक और अपनी प्रजा का सच्चा हितचिन्तक था। उसकी सारी प्रजा उससे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट थी। किसानों का वह विशेष मित्र था। उसने अपने राज भर में इस बात की कड़ी आज्ञा दे रक्खी थी कि कोई पटेल, आमिलदार या अन्य सरकारी कर्मचारी प्रजा के किसी मनुष्य से किसी तरह की 'बेगार' न ले, यानी उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न करावे। लगान की वसूली में किसी प्रकार की भी सख़्ती की इजाज़त न थी।

टीपू का कोई बड़े से बड़ा कर्मचारी भी यदि प्रजा पर किसी तरह का अत्याचार करता तो टीपू उसे सख़्त से सख़्त सज़ा देता था।

हर गाँव के लोगों को अपने यहाँ के रस्म रिवाज सम्बन्धी या अन्य आपसी झगड़े स्वयं पञ्चायत द्वारा तय करने का अधिकार था और किसी राजकर्मचारी को उनमें दख़ल देने की इजाज़त न थी।*

टीपू का एक शिलालेख

किसानों की बहबूदी के दूसरे तरीक़ों की ओर से भी टीपू बेख़बर न था। हाल में मैसूर राज के अन्दर खेतों की आबपाशी और अन्य कामों के लिए कावेरी नदी के ऊपर एक बहुत बड़ा जलाशय

* Tippu Sultan 1749-1799 A. D. by V. Raghavendra Rao, M. A. *The Mysore Scout* for July 1927

टीपू सुलतान का फारसी शिलालेख, नागरी अक्षरों में।

या फत्ताहो !

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

बतारीख़ बिस्तोनहुम माहे तक़ी साल शादाब सन् १२२१ यक हज़ार दो सद बिस्तोयक वक्त़श मौलूदे मोहम्मद सल्लल्लाहो अलैहेवस्सल्लम बमुताबिक बिस्तोहफ़्तुम शवेज़ीहिज्जा सन् १२१२ यक हज़ार दो सद दोवाज़दह रोज़ दोशम्बा हिजरीय नबवी अलस्सबाह पेशज़तुलूए आफ़ता दर तालए सौर व साअते ज़ोहरा शुरू शुद सुही के जेहते मग़रिब दारूस्सल्तनत वाके अस्त बफ़ज़्ले इलाही व एआनत-ए-रेसालत पनाही ख़लीफ़-ए-ज़मीनो-ज़मॉ शहन्शाहे दौरे दौराँ जनाब ज़िल्लुल्लाहे मलेकिस्सुल्तान हज़रत टीपू सुलतान ख़ल्लदल्लाहो मुल्कोहू व ख़िलाफ़तोहू दर दरिया-ए-कावेरी बिना फ़रमूदन्द, अश्शुरूओ मिन्ना वल इतमामो अलल्लाहे। दर रोज़े-बिना सम्शो क़मर व ज़ोहरओ मुश्तरी दर बुर्जे हमल करतुस्सादैन मी दाश्तन्द। बेऑनेही तआला सिद्दे मज़कूर ता योमुत्तनाद काएम व मानिन्दे बुरूजे सआबित ख्वाहद बूद। बिना बर तय्यारीये सद्दे मरकूम उँचे के ज़र अज़ सरकारे ख़ुदादाद लख़्वहा ख़र्च शुदा महज़ फ़ी सबीलिल्लाह नमूदा शुद, सिवाए ज़राअते क़दीमो जदीद हर के दर ज़मीने ग़ैर मज़रूअ मज़रूअ कुनद दरो हासिल अज़ क़िस्मे असमारो ग़ल्ला सरकारे ख़ुदादाद मिस्ले रेआयाए दीगर उन्चे के बाशद दरॉ बहारूम हिस्सा फ़ी सबीलिल्ला मआफ़ अस्त, से हिस्सा ब सरकारे ख़ुदादाद बेदेहद व ज़मीन ज़राअते-नौ हर के मी कुनद ता क़यामे अरज़ो समा बर औलादो अख़फ़ादे साहबे ज़राअत कायम व बहाल बाशद। अगर कसे तख़ल्लुल वरज़द मानए ईं ख़ैराते जारिया गरदद आं नाकस मिस्ले शैताने लईन व दुश्मने वनीनौए बशर व लुत्फ़ए मज़ारेईन बल्के लुत्फ़ए तमामीए मख़लूक़ीनस्त।

व ख़त्ते सय्यद ज़ाफ़र।

कृष्ण राजा सागर की नींव में, टीपू सुलतान
फ़ारसी शिलालेख का फ़ोटो

[By courtesy of the Registrar Mysore University]

तैयार हुआ है, जो भारत में अपनी क़िस्म का सबसे बड़ा जलाशय बताया जाता है। इस जलाशय की बुनियाद टीपू सुलतान ने रखी थी। इस बार जलाशय के लिए खुदाई होते समय एक पुराना पक्का बाँध दिखाई दिया, जिसकी नींव में से टीपू सुलतान के समय का फ़ारसी अक्षरों में खुदा हुआ एक शिलालेख मिला जो मैसूर में जलाशय की इमारत के फाटक पर सुरक्षित रखा हुआ है। इस शिलालेख का फ़ोटो हम इस पुस्तक के साथ दे रहे हैं। शिलालेख से मालूम होता है कि सब से पहले सन् १७९७ ई० में टीपू सुलतान ने अपने हाथ से इस विशाल जलाशय की नींव रक्खी थी। यह शिलालेख टीपू सुलतान ही के हाथ का रक्खा हुआ बाँध का बुनियादी पत्थर है। सब से विचित्र बात इस शिलालेख से यह मालूम होती है कि जब कि आजकल आबपाशी के हर नए प्रबन्ध के साथ साथ भूमि का लगान बढ़ा दिया जाता है, टीपू सुलतान ने जो 'लखूखा' रुपए इस शुभ कार्य में ख़र्च किए वे केवल 'अल्लाह की राह पर' ख़र्च किए गए; यह आज्ञा दे दी गई कि जो किसान इस जलाशय की सहायता से नई ज़मीन में खेती बाड़ी करेंगे, उन्हें औरों की अपेक्षा अधिक लगान देने के स्थान पर अन्य किसानों से एक चौथाई कम लगान देना होगा, और ये ज़मीनें उन किसानों के कुलों में सदा के लिए पैतृक रहेंगी। इसी लेख में टीपू ने अपने वारिसों और भविष्य के शासकों को कड़ी से कड़ी क़समें दी हैं कि कोई इस 'अनन्त धर्मकार्य' में बाधा न डाले, यानी न उन किसानों की सन्तति से कभी ज़मीनें छीनी जावें और न कभी

का लगान बढ़ाया जावे । किन्तु दुर्भाग्यवश बाँध की बुनि
दे जाने के दो साल के अन्दर ही टीपू की इस आज्ञा का फ
ल एक ऐतिहासिक लेख से अधिक न रह गया ।

फ़ारसी शिलालेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :—

या फ़त्ताह (ऐ खोलने वाले यानी सब कठिनाइयों को दूर करने वाले ईश्वर) !

उस अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है !

सन् १२२१ शादाब (सौर), जो मोहम्मद साहब—ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे—के जन्म से शुरू हुआ, उसके तक़ी (ज्येष्ठ) महीने की २६ तारीख को, तदनुसार शब २७ ज़िलहिज सन् १२१२ हिजरी (चान्द्र), सोमवार के दिन, बहुत सवेरे, सूर्योदय से पहले, वृषभ लग्न और शुक्र घड़ी के प्रारम्भ में, ईश्वर की कृपा और रसूल की सहायता से, ज़मीन और ज़माने के खलीफ़ा चक्रवर्ती शहनशाह, जनाब हज़रत टीपू सुलतान ने,—जो साया हैं उस अल्लाह का जो सब का मालिक है और सब का दाता है, ईश्वर सदा उनके राज्य और उनकी खिलाफ़त को बनाए रक्खे—, कावेरी नदी के ऊपर राजधानी के पश्चिम में 'मुही' (अर्थात् जान डालने वाला) नामक बाँध की नींव रक्खी । शुरू करना हमारा काम है, पूरा करना अल्लाह के हाथ में है ।

जिस शुभ दिन नींव रक्खी गई उस दिन सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पति, चारों का मेष राशि में एक घर के अन्दर



कृष्ण राजा सागर, जिसके बाँध की नींव टीपू सुलतान ने रखी थी



शुभ योग था। अल्लाह ताला की मदद से यह बाँध क़यामत के दिन तक क़ायम और स्थिर तारों के समान अटल रहे।

इस बाँध की तैयारी में जो लखूखा रुपए सरकार खुदादाद ने खर्च किए, वे केवल अल्लाह की राह में खर्च किए गए हैं। सिवाय इस समय की पुरानी या नई खेती बाड़ी के, जो कोई मनुष्य कि पड़ती ज़मीन में (इस नए जलाशय के जल की सहायता से) खेती बाड़ी करेगा, अपनी ज़मीन के फलों या नाज की पैदावार का जो भाग आम तौर पर नियम के अनुसार दूसरी प्रजा सरकार को देती है, उस भाग का वह केवल तीन चौथाई खुदादाद सरकार को दे और बाक़ी एक चौथाई अल्लाह की राह में माफ़ है। और जो कोई मनुष्य कि नई ज़मीन में खेती बाड़ी करेगा उसकी औलाद और उसके वारिसों के पास वह ज़मीन पीढ़ी दर पीढ़ी उस समय तक क़ायम व बहाल रहेगी जिस समय तक कि ज़मीन और आसमान क़ायम हैं। अगर कोई शख्स इसमें रुकावट डाले या इस अनन्त खैरात में बाधक हो तो वह कमीना, शैतान एमलऊन के समान, मनुष्य जाति का दुश्मन और किसानों की नसल का बल्कि समस्त प्राणियों की नसल का दुश्मन समझा जायगा।

लिखा सय्यद जाफ़र

नेस्सन्देह इस राजकीय लेख के भावों का आजकल के राजकीय में मिल सकना नामुमकिन है।

राज के उद्योग धन्धों और व्यापार को टीपू ने अपूर्व उन्नति दी। ख़ास कर मैसूर के अन्दर सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ों के उद्योग ने जितनी तरक़्क़ी टीपू के समय में की, उतनी उससे पहले या उसके बाद आज तक कभी नहीं की। उसके लोहे इत्यादि के कारख़ानों में अन्य चीज़ों के अलावा बढ़िया से बढ़िया तोपें और दोनली तथा तीन नली बन्दूकें ढलती थीं।

उद्योग धन्धों की तरक़्क़ी

टीपू स्वयं विद्वान था और विद्या और विद्वानों से उसे बड़ा प्रेम था। विद्वान पण्डितों और मौलवियों दोनों का उसके दरबार में जमघट रहा करता था। उसका विशाल पुस्तकालय असंख्य, अमूल्य और अलभ्य पुस्तकों से भरा हुआ था। उसकी समस्त प्रजा सशस्त्र और सन्नद्ध थी, और उसके राज में चारों ओर वह ख़ुशहाली नज़र आती थी जो आस पास के अंगरेज़ी इलाक़े में कहीं देखने को भी न मिलती थी।

टीपू का विद्या प्रेम

टीपू का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल, शुद्ध और संयमी था। उसका आहार अधिकतर दूध, बादाम और फल थे। शराब और अन्य मादक द्रव्यों से उसे सख़्त परहेज़ था। यहाँ तक कि उसने अपने राज भर में हर तरह की मदिरा और मादक द्रव्यों का बनना बिकना क़तई बन्द कर रक्खा था। स्त्री जाति के सतीत्व की रक्षा का उसे ज़बरदस्त ख़याल रहता था। अपनी लड़ाइयों में वह इसका ख़ास ख़याल रखता था कि उसके सिपाही इस विषय में कोई ग़लती न

व्यक्तिगत चरित्र

कर बैठें। यदि कभी किसी से इसके विपरीत आचरण हो जाता था तो टीपू अपराधी को कड़े से कड़ा दण्ड देता था। मराठों के साथ उसके संग्रामों में कम से कम दो बार अनेक मराठा स्त्रियाँ, जिनमें कुछ सरदारों की पत्नियाँ भी थीं, उसकी सेना के हाथों में आ गईं। दोनों बार टीपू ने उन स्त्रियों को बड़े आदर के साथ अलग ख़ेमों में रक्खा और फिर जब कि अभी युद्ध जारी ही था, उन्हें पालकियों में बैठाकर अपनी सेना की हिफ़ाज़त में मराठों के ख़ेमों तक पहुँचवा दिया।*

अंगरेज़ों का पक्का दुश्मन

इस सब के अलावा टीपू अपने बाप के समान वीर योद्धा और ऊँचे दर्जे का सेनापति था। १७ साल की अल्प आयु से ही उसने संग्राम विजय करने शुरू कर दिए थे। पिता ही के समान वह आज़ादी का सच्चा प्रेमी और देश के अन्दर विदेशियों की साम्राज्य पिपासा का पक्का दुश्मन था। अपने समय का वही एकमात्र भारतीय नरेश था, जिसके पास विदेशियों के मुक़ाबले के लिए सुसन्नद्ध और प्रबल जलसेना थी, क्योंकि मराठों की जलसेना उस समय तक काफ़ी घट चुकी थी। वास्तव में हैदर और टीपू से बढ़कर शत्रु अंगरेज़ों को भारत में कोई नहीं मिला। टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखकों के विष उगलने की यही एक मात्र वजह है।

टीपू की असफलता के कारण

किन्तु टीपू अपने समस्त सामन्तों और अनुयायियों को उस तरह वफ़ादारी और ख़ैरख़्वाही के पाश में बाँध कर न रख सका, जिस तरह के पाश में हैदर

---

* *Tipu Sultan*, By Colonal Miles pp 75, 81, 95, 96, 201 and 202

अली ने उन्हें बाँध रक्खा था। इसके कई सबब हो सकते हैं। एक इतिहास लेखक लिखता है कि हैदर अपने जिन बाग़ी मुलाज़िमों को एक बार बरख़ास्त कर देता था उन्हें दोबारा अपने यहाँ न रखता था। किन्तु टीपू का व्यवहार इसके विपरीत था। वह इस तरह के आदमियों को एक बार सज़ा देकर उन्हें फिर बहाल कर देता था। इस इतिहास लेखक की राय है कि यह एक त्रुटि ही टीपू के नाश का कारण हुई।

असलीयत यह है कि विश्वासघात का जो पौधा हैदरअली के रहते हुए मैसूर की भूमि में न फल सका, वह धीरे धीरे टीपू के शत्रुओं के लगातार परिश्रम और सिञ्चन द्वारा टीपू के समय में आकर फल देने लगा। सम्भव है कि देशघातकता के उस महान श्राप से भारतीय आत्मा को मुक्त करने के लिए—जिसने कि वास्तव में वीर टीपू की शक्ति को चारों ओर से घेर कर चकनाचूर कर दिया—भारत का एक बार विदेशी शासन के कटु अनुभवों में से निकलना आवश्यक था। जो कुछ हो, टीपू वीर, योग्य और अपनी प्रजा का सच्चा हितैषी था। उसके शत्रु भी इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि उसने अपने रुधिर के अन्तिम बिन्दु से अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने कभी किसी के साथ दग़ा नहीं की। उसकी मृत्यु एक आदर्श वीर की मृत्यु थी। भारत की स्वाधीनता के रक्षकों में उसका पद अत्यन्त ऊँचा था और संसार के स्वतंत्रता के 'शहीदों' में उसका नाम सदा के लिए यादगार रहेगा।

उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता

हमें दुःख और लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि औरङ्गज़ेब की मृत्यु के समय से सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम तक अंगरेज़ों और भारत के सम्बन्ध के डेढ़ सौ वर्ष के राजनैतिक इतिहास में हमें हैदर और टीपू दो और केवल दो, व्यक्ति ही ऐसे नज़र आते हैं जिन्होंने कभी किसी अवसर पर भी अपने किसी देशवासी के विरुद्ध विदेशियों के साथ 'समझौता' करना अङ्गीकार नहीं किया। विशेष कर टीपू यदि चाहता तो इस उपाय द्वारा आसानी से अपनी सत्ता के कुछ न कुछ अवशेष और सौ दो सौ साल के लिए छोड़ सकता था। वह मर मिटा, किन्तु मरते मरते उसने अपने दामन पर यह दाग़ लगने नहीं दिया। ध्यान पूर्वक खोज करने पर भी इन डेढ़ सौ साल के अन्दर हमें कोई और हिन्दू या मुसलमान, नरेश या नीतिज्ञ ऐसा नहीं मिलता जिसका चरित्र इस सम्बन्ध में सर्वथा निष्कलंक रहा हो।

टीपू की मृत्यु के बाद उसकी समाधि के ऊपर एक कवि ने मृत्यु की तारीख़ लिखते हुए कहा है—

चुं आँ मर्दे मैदाँ निहाँ शुद ज़ दुनिया,
यके गुफ़्त तारीख़ शमशीर गुम शुद।

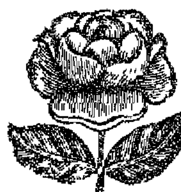
अर्थात्—जिस समय वह वीर संसार की दृष्टि से अतीत हुआ, किसी ने तारीख़ के लिए ये शब्द कहे—'शमशीर गुम शुद',*—अर्थात् तलवार गुम हो गई।

---

* इन फ़ारसी शब्दों से टीपू की मृत्यु का सन् निकलता है।

मृत्यु के २४ साल बाद उसकी याद में उसके किसी ने एक मरसीया लिखा। इस मर्मस्पर्शी मरसीये के के अन्त में एक अनुपद आता है, जिसका अक्षर यह है—

"अल्लाह ! इस तरह मर जाना अच्छा है,
"जब कि युद्ध के बादल हमारे सरों पर ख़ून बरसा रहे हों,
"बजाय इसके कलंक की ज़िन्दगी बसर की जावे,
"और सन्ताप और लज्जा के साथ उम्र काटी जावे।"





स्तानी पोशाक में लखनऊ का रेज़िडेंट सर जॉन रसल
और उसका मुन्शी अल्ताफ़ हुसैन

he Courtesy of the Curator Victoria Memorial Cal u

सोलवाँ अध्याय

अवध और फ़र्रुख़ाबाद

हिन्दोस्तान का बाग़

अवध की धन सम्पन्न भूमि उन दिनों 'हिन्दोस्तान का बाग़' कहलाती थी। अवध का लोभ विदेशी कम्पनी के प्रतिनिधियों के लिए कोई मामूली लोभ न था। अवध के नवाब के साथ कम्पनी की सब से पहली सन्धि बक्सर की लड़ाई के बाद सन् १७६५ में हो चुकी थी। उस समय से ही कम्पनी का एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट अवध के नवाब के दरबार में रहा करता था।

उन दिनों के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट

भारत के समस्त राजदरबारों में उस समय अंगरेज़ रेज़िडेण्ट हिन्दोस्तानी ढंग से रहते थे, हिन्दोस्तानी पोशाक पहनते थे और अपने यहाँ हिन्दोस्तानी मुन्शी नौकर रखकर उनसे हिन्दोस्तानी भाषाएँ और हिन्दोस्तानी रहन सहन के तरीक़े सीखते थे।

इन रेज़िडेण्टों का मुख्य कार्य हर भारतीय दरबार के अन्दर वहाँ के नरेश के विरुद्ध साज़िश करना और दरबार में आपसी फूट डलवाना होता था। धीरे धीरे अवध के अन्दर भी रेज़िडेण्ट की साज़िशें और उनका प्रभाव बढ़ता चला गया। इसके बाद अवध के नवाब के साथ लॉर्ड कॉर्नवालिस और सर जॉन शोर की ज़्यादतियों का बयान ऊपर किया जा चुका है। टीपू और उसकी सल्तनत का अन्त कर देने के बाद मार्किस वेल्सली की दृष्टि भी अवध की ओर गई।

अवध के साथ सन् १७९८ की सन्धि

सन् १७९८ में सर जॉन शोर ने नवाब वज़ीरअली को क़ैद करके बनारस भेज दिया था और सआदतअली को उसकी जगह नवाब बनाकर उसके साथ एक नई सन्धि की थी, जिसे "चिरस्थायी मित्रता" (Perpetual friendship) की सन्धि लिखा गया है। इस सन्धि की १७ वीं धारा में दर्ज है— "कम्पनी की सरकार और नवाब की सरकार दोनों के बीच समस्त व्यवहार अत्यन्त प्रेम और मित्रता के साथ हुआ करेगा; और अपने घरेलू मामलों, अपनी पैतृक सल्तनत, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर नवाब का अनन्य अधिकार रहेगा।" सआदतअली ने सन्धि की शर्तों का पूरी ईमानदारी के साथ पालन किया। किन्तु इस सन्धि को अभी दो साल भी न हुए थे कि वेल्सली ने उसे तोड़ने के लिए बहाने ढूंढ़ना शुरू किया।

वज़ीरअली इस समय बनारस में क़ैद था। चेरी नामक एक

अंगरेज़ उसकी देख रेख करता था। कहा गया कि वज़ीरअली अवध के कुछ सरदारों के साथ गुप्त साज़िश कर रहा है। इस पर वज़ीरअली को बनारस से कलकत्ते भेजने का हुकुम हुआ। इसी पर वज़ीरअली और चेरी में कुछ कहा सुनी हो गई। यहाँ तक कि किसी बात पर वज़ीरअली ने अपनी तलवार खींच ली और चेरी और उसके साथ के दो और अंगरेज़ों को वहीं ख़त्म कर दिया। वज़ीरअली बनारस से भाग कर अवध पहुँचा। कुछ और अवधनिवासी जो ज़ाहिर है इस बात को महसूस कर रहे थे कि अंगरेज़ों ने वज़ीरअली के साथ अन्याय किया है, अब उसके साथ मिल गए। इन लोगों ने अवध के कुछ इलाक़ों को अपने अधीन कर लिया।

वज़ीरअली से झगड़ा

नवाब सआदतअली ने कम्पनी की उस सबसीडीयरी सेना की सहायता से, जिसके ख़र्च के लिए सन् १७९८ की सन्धि के अनुसार सआदतअली को ७६ लाख रु० सालाना देने पड़ते थे, इस बग़ावत को शान्त कर दिया। किन्तु वेल्सली को अपनी इच्छा पूरी करने के लिए यह ख़ासा अच्छा अवसर मिल गया।

इस घटना के आधार पर ५ नवम्बर सन् १७९९ को वेल्सली ने नवाब सआदतअली को एक पत्र लिखा, जिसमें सआदतअली को यह सलाह दी कि आप अपने यहाँ की सेना में अमुक अमुक 'सुधार' कीजिये। इन सुधारों का मतलब केवल यह था कि नवाब के पास अभी तक जो कुछ अपनी सेना रहा करती थी, उसमें से

नवाब सआदतअली से नई मांगे

केवल थोड़ी सी रखकर जितनी कि मालगुज़ारी वसूल करने या शाही जलसों आदि के लिए आवश्यक हो, बाक़ी तमाम तोड़ दी जाय और उसकी जगह कम्पनी की कुछ पैदल और कुछ सवार पलटनें और बढ़ा दी जावें, जिनका ख़र्च ७६ लाख की रक़म के अलावा नवाब अदा किया करे।*

नवाब सआदतअली इस नई तजवीज़ को सुनकर चकित रह गया। उसने अपने एतराज़ लिखकर भेजना चाहा। किन्तु वेल्सली ने, बिना नवाब को जवाब का समय दिए, एक नई पलटन नवाब के इलाक़े में रवाना कर दी, और नवाब को उसके ख़र्च के लिए ज़िम्मेदार क़रार दिया। इसके बाद एक दूसरी पलटन तैयार कर ली गई और यह आज्ञा दी गई कि पहली के अवध पहुँचते ही यह दूसरी पलटन भी अवध के लिए रवाना हो जावे।

नवाब सआदतअली का पत्र और वेल्सली का जवाब

इस पर नवाब सआदतअली ने ११ जनवरी सन् १८०० को एक विस्तृत, स्पष्ट, तर्कयुक्त और नम्रता पूर्ण पत्र उस समय के रेज़िडेण्ट स्कॉट की मार्फ़त वेल्सली के पास भेजा। इस पत्र में नवाब सआदतअली ने अंगरेज़ों और अवध के नवाबों के पुराने सम्बन्ध का ज़िक्र करते हुए यह दिखलाया कि अवध की सेना को तोड़ देने का नतीजा सल्तनत के हज़ारों पुराने वफ़ादार नौकरों को बेरोज़गार कर देना होगा, जिसका असर प्रजा के ऊपर बड़ा अहितकर होगा। सआदतअली ने लिखा कि—"सब से ज़्यादा

---

* *Dacoitee in Excelsis* by Major Bird

मुझे इस बात का ख़याल है कि इस काम से कम्पनी के एतबार और उसकी इज़्ज़त में फ़रक आ जायगा और स्वयं मेरी न फिर अपनी मुल्क में कोई इज़्ज़त रह जायगी और न बाहर। × × × यदि ऐसा हुआ तो इन प्रान्तों में मेरी हुकूमत का अन्त हो जायगा।" नवाब ने वेल्सली को विश्वास दिलाया कि—"अपने मसनद पर बैठने के समय मैंने कम्पनी के साथ जो सन्धि की है उससे मैं कभी बाल भर भी इधर उधर न हूँगा; और × × × मुझे विश्वास है कि कम्पनी का इरादा भी उस सन्धि से फिरने का नहीं है।" सन् १७९८ की सन्धि का हवाला देते हुए नवाब सआदतअली ने दिखाया कि कम्पनी की मौजूदा माँग अनावश्यक, अनुचित और सन् १७९८ की सन्धि के साफ़ विरुद्ध है। उस सन्धि की १७ वीं धारा में लिखा था कि—"अपने घरेलू मामलों, अपने पैतृक राज, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर नवाब का अनन्य अधिकार रहेगा।" सआदतअली ने पूछा कि—"यदि अपनी सेना का इन्तज़ाम तक मेरे हाथों से छीन लिया गया तो मैं पूछता हूँ कि अपने घरेलू मामलों, अपने पैतृक राज, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर मेरा अधिकार कहाँ रहा ?"

अन्त में नवाब सआदतअली ने लिखा कि—"ऊपर लिखे कारणों से और कम्पनी सरकार की उदारता और आपकी इनायत से मुझे यह आशा है कि आप मेरी मित्रता और वफ़ादारी पर हर मौके के लिए पूरा एतबार करते हुए उस सन्धि के अनुसार मेरे राज, मेरी सेना और मेरी प्रजा के ऊपर मेरा पूरा अधिकार क़ायम रहने देंगे।"

इस लम्बे पत्र के और अधिक वाक्य नक़ल करने की आवश्यकता नहीं है। लखनऊ ही के असिस्टेण्ट रेज़िडेण्ट मेजर बर्ड का बयान है कि नवाब सआदतअली के एतराज़ "जैसे जायज़ और तर्कयुक्त थे वैसे ही न्यायपूर्ण भी थे" और मेजर बर्ड ही के शब्दों में वेलसली का उत्तर "अहंकारयुक्त" था।*

वेलसली के उत्तर का सारांश यह था कि सआदतअली का पत्र इतने गुस्ताख़ी के शब्दों में लिखा हुआ है कि गवरनर जनरल को उसे लेने से इनकार है, पत्र नवाब को वापस कर दिया जाय, और यदि नवाब ने फिर इसी तरह अंगरेज़ सरकार की न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक ज़ाहिर किया तो उसे उचित दण्ड दिया जायगा।

इतिहास लेखक मिल की राय

नवाब सआदतअली और वेलसली के इस पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में इतिहास लेखक जेम्स मिल लिखता है—

"दो पक्षों में एक सन्धि होती है। एक पक्ष अपनी ओर से सन्धि की सब शर्तों को इतने ठीक समय पर पूरा कर देता है कि जो उसकी स्थिति के मनुष्य के लिए बिलकुल बेमिसाल है। दूसरा पक्ष सन्धि का घोर उल्लंघन करना चाहता है, या कम से कम पहले पक्ष को उसका कार्य सन्धि का घोर उल्लंघन मालूम होता है। पहले पक्ष को दूसरे

---

* "To this remonstrance, as reasonably stated as it was justly founded, the following haughty reply was made by the Governor General."
—*Dacoitee in Excelsis* by Major Bird

पक्ष के व्यवहार में और सन्धि में साफ़ विरोध दिखाई देता है। उस विरोध को वह स्पष्ट किन्तु अत्यन्त विनीत शब्दों में दर्शाता है। उन शब्दों से दूसरे की ओर अनादर के स्थान पर पहले पक्ष ही के गिड़गिड़ाने की कहीं अधिक बू आती है। इस पर दूसरा पक्ष कहता है कि यह मेरी न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक करना है। पहला पक्ष जब दूसरे पक्ष की इच्छा पूरी करने से इनकार करता है तो उसे दण्ड देने का इरादा किया जाता है, और इस दण्ड के लिए यदि पहले कोई दोष उस पक्ष का न भी दिखाया जा सकता था तो अब यह शक करना एक ऐसा अपराध उससे हो गया जो शायद किसी भी सज़ा से नहीं कट सकता। ज़ाहिर है कि इस ढंग से कभी भी और किसी भी सन्धि को तोड़ने के लिए बहाना निकाला जा सकता है। जिस पक्ष को हानि सहनी पड़ती है, यदि वह बिना एतराज़ किए सर झुका दे तो कहा जाता है कि उसकी रज़ामन्दी है, और यदि वह शिकायत करे तो उस पर यह इलज़ाम लगाया जाता है कि तुम सबल पक्ष की न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक ज़ाहिर करते हो; और यह एक इतना ज़बरदस्त अपराध गिना जाता है कि इसके बाद ऐसे निकम्मे मनुष्य की ओर सबल पक्ष की कोई ज़िम्मेदारी रह ही नहीं जाती।"*

---

* "A party to a treaty fulfils all its conditions with a punctuality which, in his place was altogether unexampled a gross infringement of that treaty, or at least what appears to him a gross infringement is about to be committed on the other side, he points out clearly but in the most humble language, savouring of abjectness much more than disrespect, the inconsistancy which appears to him to exist between the treaty and the conduct this is represented by the other party as an impeachment of their honor and justice, and if no guilt existed before to form a ground for punishing the party who declines compliance with their will, a guilt is now

इसके बाद २२ जनवरी सन् १८०१ को लॉर्ड वेल्सली ने नवाब सआदतअली को एक दूसरा पत्र लिखा कि—"या तो कुछ सालाना पेनशन लेकर सलतनत से अलग हो जाओ और या जो दो नई अंगरेज़ी पलटनें अवध भेजी जा चुकी हैं उनके बदले में अपना आधा राज कम्पनी के हवाले कर दो।" इस दूसरे मज़मून की सन्धि का एक मसौदा तक तैयार करके गवरनर जनरल ने पहले से रेज़िडेण्ट के पास भेज दिया।

नवाब के साथ खुली ज़बरदस्ती

नवाब ने बार बार एतराज़ किया, किन्तु वेल्सली ने २८ अप्रैल सन् १८०१ को रेज़िडेण्ट को लिख दिया कि यदि नवाब रज़ामन्दी से अपना आधा राज हवाले न कर दे तो "सेना द्वारा उस पर कब्ज़ा कर लिया जाय।" इन पत्रों में वेल्सली ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि मेरी आन्तरिक इच्छा यह है कि—"नवाब की सैनिक शक्ति को खत्म कर दिया जाय" और "अवध की सारी सलतनत पर दीवानी और फ़ौजदारी शासन का अनन्य अधिकार कम्पनी के हाथों में ले लिया जाय।

अंगरेज़ कम्पनी के ऊपर अवध के नवाबों के बेशुमार अहसान

---

contracted which hardly any punishment can expiate This, it is evident is a course by which no infringement of a *treaty can ever* be destitute of a justification if the party *injured* submits without a word, his consent is alleged If he complains he is treated as impeaching the honor and justice of his superior, a *crime of* so prodigious a magnitude as to set the superior above all obligation to such a worthless connection" —*History of British India* by James Mill, vol vi, p 191

थे। किन्तु इस समय सआदतअली चारों ओर कम्पनी की सेनाओं से घिरा हुआ था। अपने और अपने कुल के चिर मित्रों की ओर से इस अचानक व्यवहार को देख कर नवाब सआदतअली एक दिन बातचीत में चिल्ला पड़ा—"हक़ीक़त में यही हाल रहा तो बाक़ी का मुल्क मुझसे छिन जाने में भी ज़्यादा देर न लगेगी।" रेज़िडेण्ट स्कॉट ने और गवरनर जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी और सगे भाई हेनरी वेलस्ली ने बड़े ज़ोरों के साथ नवाब को विश्वास दिलाया कि बाक़ी राज पर आप के अनन्य अधिकार में कभी कोई हस्तक्षेप न किया जायगा। सआदतअली ने बेज़ार होकर मसनद से बिलकुल दस्तबरदार होने की इच्छा प्रगट की और कहा कि—"मुझे फ़ौरन इजाज़त दी जाय कि मैं सफ़र और हज के लिए परदेस को निकल जाऊँ, क्योंकि अब यहाँ की रिआया को मुंह दिखाना मेरे लिए ज़िल्लत है।"

अवध की आधी रियासत का नवाब से छीन लिया जाना

किन्तु नवाब सआदतअली का यह निश्चय केवल क्षणिक नैराश्य का नतीजा था। अन्त में कोई चारा न देख १४ नवम्बर सन् १८०१ को नवाब सआदत अली ने गवरनर जनरल वेलसली के भेजे हुए सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए। इस नई सन्धि द्वारा नवाब सआदतअली ने अपनी सल्तनत का आधा, किन्तु अधिक उपजाऊ हिस्सा, जिसकी सालाना आमदनी उस समय एक करोड़ ३५ लाख रुपए थी और जिससे आजकल के 'संयुक्त प्रान्त' की बुनियाद पड़ी, सदा के लिए कम्पनी

के हवाले कर दिया। मार्किस वेलसली ने अपने भाई हेनरी वेलसली को इस नए ब्रिटिश प्रान्त का पहला लेफ्टेनेएट गवरनर नियुक्त किया।

६ मार्च सन् १८०८ को इंगलिस्तान की पार्लिमेएट के अन्दर वक्तृता देते हुए लॉर्ड फ़ॉकस्टोन ने इस घटना के सम्बन्ध में नवाब सआदतअली की ईमानदारी, उसके धैर्य और उसकी परवशता तथा मार्किस वेलसली की बेईमानी और उसके खुले अन्याय को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों मे स्वीकार किया और विस्तार के साथ हवाले देकर साबित किया।

एक दूसरे मेम्बर आर० थॉर्नटन ने पार्लिमेएट के अन्दर इस सन्धि के विषय में कहा :—

'सन्धि' अथवा 'डाका'

"यदि यह 'सन्धि' थी, तो फिर खुले मैदान से जाते हुए किसी मुसाफ़िर के ऊपर किसी डाकू के टूट पड़ने और उसे लूट लेने को भी 'सन्धि' का नाम दिया जा सकता है।"*

जिस तरह वारन हेस्टिंग्स के अत्याचारों के लिए पार्लिमेएट में मुक़दमा चलाया गया था उसी तरह इस बार वेलसली के इस अन्याय के लिए वेलसली पर मुक़दमा चलाया गया। कुछ उदार अंगरेज़ों ने पूरी तरह सारे मामले की पोल खोली और बड़ी बड़ी धुंआधार वक्तृताएं हुईं। ३ साल तक मुक़दमा चला, अन्त में

* " . . . one might as well call a robbery committed by a footpad on a traveller on Hanslow Heath, a treaty !"—R Thornton before the British Parliament

पार्लिमेण्ट ने वेलसली को दण्ड देने के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्य की इस सच्ची सेवा के बदले में उसे "धन्यवाद" देने का एक प्रस्ताव पास किया।

इसके छै महीने के अन्दर वेलसली ने एक दूसरी छोटी सी रियासत फ़रु ख़ाबाद पर क़ब्ज़ा किया।

फ़रु ख़ाबाद की रियासत का अन्त

फ़रु ख़ाबाद अवध की एक सामन्त रियासत थी। वहाँ के नवाब चार लाख रुपए सालाना बतौर ख़िराज अवध के नवाब को दिया करते थे। एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट भी फ़रु ख़ाबाद के दरबार में रहा करता था। इस अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने रियासत के प्रबन्ध में इस तरह दख़ल देना शुरू किया और इस तरह की ज़्यादतियाँ कीं कि फ़रु ख़ाबाद के नवाब और अवध के नवाब दोनों को सख़्त एतराज़ हुआ। मजबूर होकर सन् १७८७ में लॉर्ड कॉर्नवालिस ने रेज़िडेण्ट को वापस बुला लिया और यह वादा किया कि आइन्दा न कोई रेज़िडेण्ट फ़रु ख़ाबाद भेजा जायगा और न रियासत के मामलों में किसी तरह का दख़ल दिया जायगा।

नवम्बर सन् १८०१ में लॉर्ड वेलसली ने इस वादे के विरुद्ध अपने भाई हेनरी वेलसली को फ़रु ख़ाबाद भेजा और उसे हिदायत की कि तुम किसी तरह वहाँ के नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ को इस बात पर राज़ी कर लो कि वह एक लाख रुपए सालाना पेनशन लेकर अपनी तमाम रियासत सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दे और उससे लिखवा कर दस्तख़त करा लो। नवाब इमदादहुसेन

ख़ाँ अभी हाल ही में बालिग़ हुआ था। गवरनर जनरल ने हेनरी वेलसली को आदेश दिया कि इमदादहुसेन ख़ाँ के रिश्तेदारों, सलाहकारों और दोस्तों में से जो इस काम में अंगरेज़ों की मदद करने को तैयार हों, उन्हें काफ़ी इनाम देने के वादे कर लेना और जो राज़ी न हों उन्हें खूब डर दिखलाना।

इस पर भी नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ का इस तरह के पत्र पर दस्तख़त कर देना इतना आसान न था। गवरनर जनरल के हुकुम से इमदादहुसेन ख़ाँ को लखनऊ बुलाया गया। इसके बाद साज़िश, चोरी और जालसाज़ी से मिलाकर काम लिया गया। यहाँ तक कि लखनऊ पहुँचते ही इमदादहुसेन ख़ाँ ने देखा कि उसके दस्तख़त की मोहर किसी तरह उसके बकस से उड़कर खुद बखुद लखनऊ के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के मकान में पहुँच गई। जो कुछ हो, कहा जाता है कि ४ जून सन् १८०२ को बरेली पहुँच कर नवाब इमदादहुसेन ख़ाँ ने अपने और अपनी औलाद के लिए १ लाख ८ हज़ार रुपए सालाना पेनशन लेकर अपनी तमाम रियासत अपने दस्तख़त से सदा के लिए अंगरेज़ कम्पनी के सुपुर्द करदी।

हेनरी वेलसली ही फ़र्रुख़ाबाद रियासत का पहला अंगरेज़ शासक नियुक्त हुआ।



सत्रवाँ अध्याय

तञ्जोर राज का अन्त

भारत के दक्खिन में तञ्जोर एक छोटी सी मराठा रियासत थी, जिसे १७ वीं सदी के मध्य में छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी ने क़ायम किया था। शाहजी के बाद तञ्जोर का राज शिवाजी के एक सौतेले भाई वेङ्कोजी को मिला।

अंगरेज़ों के ऊपर तञ्जोर के राजा के अहसान

इतिहास लेखक विलियम हिके लिखता है—

"अपने सब और हर तरह के कार बार में तञ्जोर के राजा इतनी ईमानदारी का व्यवहार करते थे, जो केवल सच्चाई के असूल से ही उत्पन्न हो सकती थी। ज़ाहिर है कि उन्होंने सच्चाई ही को अपना असूल बना रक्खा था। जब अंगरेज़ दक्खिनी भारत में पहुँचे और उन्होंने इस देश में बसना चाहा तो उनके सब से पक्के और सब से सच्चे दोस्त तञ्जोर ही के राजा थे।"*

---

* *The Tanjore Mahratta Principality in Southern India*—by William Hickey, p 2

इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है—

"करमण्डल तट पर अंगरेज़ों के सब से पहले मददगारों में तञ्जोर का राजा था।"*

प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् महादेव गोविन्द रनाडे ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"करनाटक की समस्त लड़ाइयों मे तञ्जोर की सेना ने फ्रांसीसियों के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष मे बड़े महत्व का भाग लिया।"†

टॉरेन्स लिखता है कि सन् १७४२ में तञ्जोर का राजा साहूजी किसी आपसी झगड़े के कारण गद्दी से उतार दिया गया और राजा प्रतापसिंह उसकी जगह बैठा। अंगरेज़ों ने प्रतापसिंह को राजा स्वीकार कर लिया। सात साल से ऊपर तक अंगरेज़ों और प्रतापसिंह में मित्रता रही, यहाँ तक कि इस बीच प्रतापसिंह ने फ्रांसीसियों के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी।

राजा प्रतापसिंह के साथ दग़ा

इसके बाद अंगरेज़ों ने बिना किसी वजह के प्रतापसिंह के विरुद्ध पिछले राजा साहूजी के साथ गुप्त पत्र व्यवहार शुरू किया। दोनों में सौदा हो गया। अंगरेज़ों ने प्रतापसिंह को गद्दी से उतार कर साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठा देने का वादा किया, और इसके बदले में साहूजी ने अंगरेज़ों का सारा खर्च और उसके अलावा

* *Empire in Asia etc.*—by Torrens

† *The Rise of the Marhatta Power*—by Ranade p. 250

देवीकोट का क़िला और उसके आस पास की कुछ जागीर कम्पनी को देने का वादा किया।

प्रतापसिंह कम्पनी का मित्र था। टॉरेन्स लिखता है कि प्रताप सिंह के ख़िलाफ़ कोई बहाना अंगरेज़ों के पास न था फिर भी थोड़े से धन और जागीर के लालच में प्रतापसिंह को गद्दी से उतारने के लिए कम्पनी की सेना भेज दी गई। इस सेना को प्रतापसिंह से हार खाकर लौट आना पड़ा। फिर एक दूसरी सेना भेजी गई। इस दूसरी सेना ने साहूजी का भी साथ छोड़कर सबसे पहले देवीकोट के क़िले को घेरा और उस पर क़ब्ज़ा कर लिया।

साहूजी के साथ विश्वासघात

किन्तु प्रतापसिंह का बल बढ़ा हुआ था। देवीकोट पर क़ब्ज़ा करते ही अंगरेज़ों ने प्रतापसिंह के साथ सुलह की बातचीत शुरू की। सुलह हो गई। अंगरेज़ों ने साहूजी का पक्ष छोड़ दिया और वादा किया कि हम अब कभी राजा प्रतापसिंह का विरोध न करेंगे। प्रतापसिंह ने इसके बदले में देवीकोट और उसके पास के कुछ इलाक़े पर बतौर जागीर कम्पनी का क़ब्ज़ा रहने दिया। जिस साहूजी का पक्ष लेकर अंगरेज़ों ने यह लड़ाई छेड़ी थी उसे अब उन्होंने स्वयम् क़ैद कर लिया और राजा प्रतापसिंह के ख़र्च पर उसे अपने यहाँ नज़रबन्द रखने का वादा किया। टॉरेन्स लिखता है कि "हिन्दोस्तान की विजय का इस तरह प्रारम्भ हुआ।"*

---

* "This was the beginning of the conquest of Hindostan"—*Empire in Asia*, by Torrens, pp 20, 21

प्रतापसिंह से अब फिर अंगरेज़ों की मित्रता क़ायम हो गई। किन्तु तञ्जोर का राज करनाटक में मिला हुआ था और अपने धन वैभव के लिए दूर दूर तक मशहूर था। करनाटक और अवध के नवाब कई पीढ़ियों तक अंगरेज़ों के लिए कामधेनु का काम करते रहे। इन दोनों नवाबों से धन चूसने के लिए आवश्यक था कि अंगरेज़ उनके पास के इलाक़ों को लूटने में उन्हें मदद दें। इसी लिए रुहेलखण्ड, फ़र्रुखाबाद इत्यादि के लूटने में कम्पनी ने अवध के नवाबों को समय समय पर मदद दी। इसी नीति के अनुसार सन् १७६२ में अंगरेज़ों ने करनाटक के नवाब मोहम्मदअली को तञ्जोर के राजा पर हमला करने में सहायता दी। हमले के बाद अंगरेज़ ही मध्यस्थ बने। तय हुआ कि भविष्य में तञ्जोर करनाटक की एक सामन्त रियासत समझी जावे, तञ्जोर के राजा करनाटक के नवाब को चार लाख रुपए सालाना ख़िराज दिया करें और अंगरेज़ कम्पनी इस बात के लिए ज़ामिन रहे कि भविष्य में करनाटक का नवाब कभी तञ्जोर पर हमला न करेगा।

तञ्जोर पर हमला

प्रतापसिंह के बाद उसका बेटा तुलजाजी तञ्जोर का राजा हुआ। सन् १७७१ में तुलजाजी के समय में करनाटक के नवाब ने फिर तञ्जोर पर चढ़ाई की और मद्रास के गवरनर ने सन् १७६२ के वादों को तोड़कर कम्पनी की सेना नवाब की मदद के लिए भेजी। राजा तुलजाजी ने एक बहुत बड़ी रक़म अंगरेज़ों और करनाटक

तञ्जोर पर फिर हमला और लूट

के नवाब को देकर अपनी जान बचाई। इसके बाद सन् १७७३ में नवाब ने तीसरी बार अंगरेज़ों की मदद से तञ्जोर पर चढ़ाई की और खूब लूट मार मचाई। तञ्जोर के राजा इस सारे समय में अपना नियत ख़िराज बराबर करनाटक के नवाब को देते रहते थे, किन्तु हर बार के हमले में इस ख़िराज की रक़म को और अधिक बढ़ा दिया जाता था। वास्तव में नवाब करनाटक के पास अपने अंगरेज़ ऋणदाताओं और कम्पनी के अफ़सरों की आए दिन की नाजायज़ माँगों को पूरा करने का और कोई उपाय ही न था।

संधि और उसका उल्लंघन

होते होते सन् १७८७ में अंगरेज़ कम्पनी और तञ्जोर के राजा तुलजाजी के बीच पहली बाज़ाब्ता सन्धि हुई जिसमें कम्पनी और राजा के बीच अब सदा के लिए 'स्थाई मित्रता' (Perpetual Friendship) क़ायम हो गई। छै साल के अन्दर राजा तुलजाजी की मृत्यु हो गई। तुलजाजी के कोई पुत्र न था। किन्तु मरने से कुछ दिन पहले वह सार्बोजी को गोद ले चुका था। अंगरेज़ों को फिर एक बहुत अच्छा मौक़ा हाथ आया। कुछ पण्डितों से व्यवस्था दिला दी गई कि सार्बोजी का गोद लिया जाना शास्त्रानुकूल नहीं है। प्रत्येक भारतवासी जानता है कि काशी और नदिया तक के धुरन्धर पण्डितों से इस तरह की व्यवस्थाएँ दिला देना कितना आसान है। सार्बोजी को हटाकर तुलजाजी के एक सौतेले भाई अमरसिंह को कम्पनी की सेना की सहायता से अब ज़बरदस्ती तञ्जोर की गद्दी पर बैठा दिया गया।

सबसीडीयरी सन्धि का जाल

इसी समय यह भी महसूस किया गया कि सन् १७८७ की स्थाई मित्रता की सन्धि में भी कुछ दोष रह गए थे। इसीलिए सन् १७९३ में फिर एक नई सन्धि राजा अमरसिंह के साथ की गई। इस बार की सन्धि में अब कम्पनी ने सदा के लिए तञ्जोर राज की रक्षा करने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और उसके बदले में राजा अमरसिंह ने एक बहुत बड़ी सालाना रक़म सेना के ख़र्च के लिए कम्पनी को अदा करते रहने का वादा किया। इस प्रकार तञ्जोर की रियासत भी 'सबसीडीयरी सन्धि' के जाल में फँस गई।

राजा अमरसिंह के विरुद्ध साज़िश

राजा अमरसिंह के चरित्र के विषय में एक अंगरेज़ लेखक लिखता है कि—"तञ्जोर का राजा अमरसिंह एक निहायत ही अच्छे चरित्र और उच्च सिद्धान्तों का आदमी था, और ब्रिटिश गवरमेंट का निहायत ही सच्चा शुभचिन्तक था।"*

किन्तु अंगरेज़ों की इच्छा अभी पूरी न हुई थी। वे जितनी जल्दी हो सके, तञ्जोर राज को ख़त्म कर देने का इरादा कर चुके थे। सबसीडीयरी सन्धि उनके लिए केवल एक बीच का साधन थी। उनकी दुरङ्गी चालें बराबर जारी रहीं। एक ओर उन्होंने अमरसिंह को गद्दी पर बैठा दिया और दूसरी ओर एक

* "The Raja of Tanjore (Amar Singh) was a man of extremely good character and high principle and exceedingly well disposed towards the British Government"—Life of General, the Right Honorable, Sir David Baird, Bart, vol. i, p 119

मशहूर ईसाई पादरी रेवरेण्ड पूवार्ट्ज़ को सार्बोजी का शिक्षक नियुक्त करके भेज दिया। एक दूसरा अंगरेज़ मैक्लाउड तञ्जोर के दरबार में रेज़िडेण्ट नियुक्त करके भेजा गया। पादरी पूवार्ट्ज़ और रेज़िडेण्ट मैक्लाउड ने मिलकर अब राजा अमरसिंह और तञ्जोर राज के खिलाफ़ नए सिरे से साज़िशें शुरू कीं।

भेदों का खुलना

थोड़े दिनों में राजा अमरसिंह के साथ रेज़िडेण्ट मैक्लाउड का व्यवहार इतना उद्दण्ड हो गया कि राजा अमरसिंह ने इसकी शिकायत की। जिस अंगरेज़ को हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं, वह लिखता है कि :—

"धीरे धीरे इस तरह के भेद खुले जिनसे राजा अमरसिंह को × × × विश्वास हो गया कि कम्पनी ने अपने इस मुलाज़िम मैक्लाउड को तञ्जोर के दरबार में केवल मात्र इस लिए नियुक्त करके भेजा था, ताकि मैक्लाउड द्वारा अभागे राजा को समझा कर, या यदि ज़रूरत हो तो किसी तरह मजबूर करके उससे राज छीन लिया जावे और उसे अपने शेष सांसारिक जीवन के लिए कम्पनी का एक पेनशनर बनाकर रक्खा जावे।"

"× × × माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी जिन उपायों से दूसरों के राज प्राप्त करती थी, उनमें ईमानदारी और बेईमानी का बहुत अधिक विचार न किया जाता था।"*

---

* " ... circumstances gradually transpired which convinced ... the Raja ... that this civil servant of the Honourable East India Company had been placed at the Court of Tanjore for no other purpose than that of inducing, or even (if necessary,) compelling the unfortunate Rajah to give up his territory and become a pensioner of the said

खुली ज़बरदस्ती

राजा अमरसिंह के दिल में केवल डर बैठाने के लिए रेज़िडेएट ने कई बार बिना किसी वजह के कम्पनी की सेना को राजमहल के फाटक तक बुलवाया और उसका प्रदर्शन करवाकर वापस कर दिया। यह वही अंगरेज़ी सेना थी जो पिछली सन्धि के अनुसार राजा की रक्षा के लिए और राज के ख़र्च पर तञ्जोर में रक्खी गई थी। २३ जनवरी सन् १७९६ को रेज़िडेएट ने इस सेना के अंगरेज़ अफ़सर करनल बेयर्ड को हुकुम दिया कि—"राजा अमरसिंह का सरकील शिवराव और राजा के दो भाई त्रिम्बाजी और शंकरराव, तीनों में से कोई क़िले से बाहर न निकलने पावे।"

अगले दिन २४ जनवरी को रेज़िडेएट ने सेना लेकर अचानक राजा अमरसिंह को घेर लिया और उसे डर दिखा कर उससे एक काग़ज़ पर दस्तख़त करा लिए, जिसमें राजा अमरसिंह ने अपना सारा राज कम्पनी के हवाले कर दिया।

इसके अगले ही दिन राजा अमरसिंह ने गवरनर जनरल सर जॉन शोर को लिखा कि—"मुझे घेर कर, डर दिखा कर और तरह तरह के झूठ बोलकर रेज़िडेएट ने मुझसे उस काग़ज़ पर दस्तख़त करा लिए हैं, इसलिए मेरा राज मेरे पास रहने दिया जावे।" राजा अमरसिंह ठीक समय पर पिछली सन्धि की सब शर्तें पूरी

Honorable' East India Company for the remaining term of the natural life

" ... The Honorable East India Company was not exceedingly scrupulous as to the means by which territory was to be acquired, ... "
—*Life of General, the Right Honorable Sir David Baird*, pp 119 et seq

करता रहा था। कोई बहाना उससे राज छीनने का कम्पनी के पास न था। अंगरेज़ संसार को यह दिखाना चाहते थे कि अमरसिंह खुशी से अपना राज कम्पनी को दे रहा है, किन्तु यह चाल न चल सकी। रेज़िडेण्ट का ज़ुल्म साबित था। राज के अन्दर साज़िश अभी पूरी तरह पक्की न थी। लाचार होकर गवरनर जनरल ने रेज़िडेण्ट को हुकुम दिया कि राजा अमरसिंह का सारा राज उसके हाथों में रहने दिया जाय। दूसरी ओर साज़िश को पक्का करने की कोशिशें जारी रहीं।

तञ्जोर पर कब्ज़ा

दो साल बाद मार्किस वेल्सली का समय आया। वेल्सली को इंगलिस्तान ही में आदेश मिल चुका था कि जिस तरह हो सके, तञ्जोर के राज पर कम्पनी का कब्ज़ा जमाया जावे। इंगलिस्तान के शासकों से वह बादशाहतों पर बादशाहतें लाद देने का वादा कर चुका था। जिस लेखक के कई वाक्य हम ऊपर नक़ल कर चुके हैं, वह लिखता है :—

"जब कभी माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति या उसके स्वार्थ के लिए इस बात की ज़रूरत मालूम होती थी कि किसी भारतीय नरेश को गद्दी से अलग किया जावे, तो बहाने की कभी कमी न होती थी।"*

अब सार्वोजी को राजा अमरसिंह के विरुद्ध साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। पादरी शूवार्ट्ज़ इस काम के लिए अरसे से

* " whenever policy or aggrandisement seemed to warrant the measure a pretext was never wanting to the Honorable East India Company, to remove a native prince."—Ibid p. 138

साबोंजी के पास मौजूद था ही। उसने इस बार रेज़िडेण्ट मैकूला-उड का खूब साथ दिया। सब से पहले राजा अमरसिंह पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुम तुलाजाजी की विधवा रानियों के साथ और उसके दत्तक पुत्र साबोंजी के साथ अच्छा सलूक नहीं करते, जिससे उन्हें बहुत कष्ट है। इन इलज़ामों का केवल मात्र आधार पादरी श्वार्ट्ज़ की शिकायतों पर था जो किसी तरह भी विश्वास के योग्य नहीं समझी जा सकतीं। इस बदसलूकी के बहाने से ज़बरदस्ती साबोंजी को और तुलजाजी की विधवाओं को मद्रास बुला लिया गया। साबोंजी को बहका कर तैयार करने का काम पादरी श्वार्ट्ज़ के सुपुर्द था।

सन् १७९८ में एकाएक अंगरेज़ों पर यह रहस्य खुला कि वह अमरसिंह, जिसे स्वयं अंगरेज़ों ने गद्दी पर बैठाया था और जिसे वे लगभग दस साल तक तञ्जोर का राजा स्वीकार कर चुके थे, गद्दी का अधिकारी नहीं है, बल्कि वास्तविक अधिकारी तुलजाजी का दत्तक पुत्र साबोंजी है, जिसके गोद लिए जाने को दस साल पहले इन्हीं अंगरेज़ों ने पण्डितों से 'शास्त्र विरुद्ध' कहला दिया था। इस समय कुछ विद्वान पण्डितों ने पिछली व्यवस्था के विरुद्ध फिर साबोंजी के पक्ष में व्यवस्था दे दी। राजा अमरसिंह से किसी तरह की पूछताछ तक नहीं की गई, और कम्पनी की उस सेना ने जिसे १० साल तक राजा अमरसिंह अपने ख़र्च से पाल चुका था, तुरन्त उसे तञ्जोर की गद्दी से उतार कर साबोंजी को उसकी जगह बैठा दिया।

इतिहास लेखक मिल अंगरेज़ों के इस फ़ैसले की खुदग़रज़ी और बेइन्साफ़ी को स्वीकार करता है। जिस अंगरेज़ को हम ऊपर नक़ल करते चले आए हैं वह लिखता है कि—"इन्साफ़ राजा अमरसिंह की ओर था। वही गद्दी का असली हक़दार न्याय्य और सर्वस्वीकृत नरेश और राज का उस समय मालिक था; किन्तु अंगरेज़ों का स्वार्थ तञ्जोर पर क़ब्ज़ा करने में था।"*

वास्तव में कम्पनी के लिए अमरसिंह और सार्वोजी में कोई अन्तर न था, उसका असली उद्देश कुछ और ही था, जो सार्वोजी को गद्दी मिलते ही प्रगट हो गया। तुरन्त सार्वोजी ने एक नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए, जिसमें उसने अपना सारा राज कम्पनी के हवाले कर दिया और स्वयं जीवन भर कम्पनी का एक पेनशनर होकर तञ्जोर के क़िले के अन्दर रहना स्वीकार कर लिया।

* Interest declared for the possession of Tanjore justice upheld the claims of the Raja the undoubted heir the legally acknowledged prince, the actual possessor of the territories."—Ibid pp 161, 162



अठारवाँ अध्याय

करनाटक की नवाबी का अन्त

पिछले अध्यायों में करनाटक के नवाब के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यवहार का ज़िक्र किया जा चुका है, और यह दिखलाया जा चुका है कि किस तरह छोटे से बड़े तक कम्पनी के सब अंगरेज़ ज़बरदस्ती करनाटक के नवाब से आए दिन मनमानी रक़में वसूल करते रहते थे, किस तरह वे नवाब को मदद देकर उसके ज़रिए आस पास की रियासतों को लुटवाते रहते थे, और किस तरह अनेक अंगरेज़ व्यापारियों ने नवाब को अपने भयङ्कर क़र्ज़ों के नीचे दबा रक्खा था, जिनमें से अधिकतर क़र्ज़े झूठे थे। जब करनाटक से काफ़ी धन खींचा जा चुका और नवाब का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया तो मार्किस वेल्सली ने अपनी निश्चित नीति के अनुसार रियासत पर क़ब्ज़ा कर लेने की तजवीज़ें शुरू कीं।

करनाटक की नवाबी और अंगरेज़

करनाटक के नवाब मोहम्मदअली को वालाजाह भी कहते थे। मोहम्मदअली अंगरेज़ों का बहुत बड़ा दोस्त था। मोहम्मदअली और कम्पनी के बीच 'चिरस्थाई मित्रता' की सन्धि हो चुकी थी, जिसमें अंगरेज़ों ने मोहम्मदअली और उसके राज की रक्षा के लिए अपनी एक सेना करनाटक में रखने का ज़िम्मा लिया था और उस सेना के खर्च के लिए नवाब ने ६ लाख पैगोदा यानी क़रीब ३० लाख रुपए सालाना अदा करने का वादा किया था। यह रक़म माहवारी क़िस्तों में अदा की जाती थी। नवाब मोहम्मदअली हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहा, यहाँ तक कि उसने अपने कुछ ज़िलों की मालगुज़ारी बतौर ज़मानत इस अदायगी के लिए अलग कर रक्खी थी। मोहम्मदअली के बाद उसका बेटा उमदतुल उमरा करनाटक का नवाब हुआ। उमदतुल उमरा बाप की तरह हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहा और सन्धि की शर्तों का ठीक ठीक पालन करता रहा। इसलिए करनाटक पर क़ब्ज़ा करने का बहाना भी इतनी आसानी से न मिल सकता था।

नवाब उमदतुल उमरा के नाम वेल्सली का पत्र

वेल्सली का दिमाग़ इन बातों में खूब चलता था। २४ अप्रैल सन् १७६६ को, टीपू के साथ दोबारा युद्ध छेड़ते समय, उसने नवाब उमदतुल उमरा को एक लम्बा पत्र लिखा। इस पत्र में उमदतुल उमरा पर यह इलज़ाम लगाया गया कि आपने करनाटक के वे ज़िले, जिनकी आमदनी कम्पनी को देने के

लिए अलग कर दी गई थी, अपने कुछ कर्ज़दारों के पास रहन रख दिए हैं, आपकी आर्थिक हालत ख़राब है, और भविष्य में कम्पनी को रकम की अदायगी में कठिनाई की सम्भावना है। इसी पत्र में वेल्सली ने स्वीकार किया कि उमदतुल उमरा हर महीने ठीक समय कम्पनी की रक़म अदा करता रहता था। फिर भी इस भावी 'कठिनाई की सम्भावना' की बिना पर नवाब को यह सलाह दी गई कि आप कम से कम उस समय तक के लिए, जिस समय तक कि कम्पनी और टीपू में युद्ध रहे, अपनी सल्तनत और उसकी मालगुज़ारी का इन्तज़ाम कम्पनी के सुपुर्द कर दीजिये।

नवाब मोहम्मदअली ने हैदरअली और टीपू के साथ अंगरेज़ों के युद्धों में सदा अंगरेज़ों का साथ दिया था। सन् १७६२ के मैसूर युद्ध के बाद की किसी सन्धि में कहीं एक वाक्य यह भी रख लिया गया था कि भविष्य में यदि करनाटक या उसके आस पास कोई युद्ध होगा तो कम्पनी को उस युद्ध की सफलता के लिए इस बात का अधिकार होगा कि वह करनाटक के जितने भाग पर आवश्यक समझे, थोड़े समय के लिए क़ब्ज़ा करले। नवाब मोहम्मदअली के उस सन्धि पर दस्तख़त न थे। बल्कि वेल्सली ने अपने पत्र में साफ़ लिखा है कि मोहम्मदअली और उसका बेटा उमदतुल उमरा दोनों इस शर्त के ख़िलाफ़ थे। फिर भी अपनी इस समय की माँग को जायज़ साबित करने के लिये वेल्सली ने अपने पत्र में अब उस शर्त का हवाला दिया।

नवाब उमदतुल उमरा समझ गया कि वेल्सली इस बहाने

करनाटक के एक बहुत बड़े भाग को अंगरेज़ी राज में मिला लेना चाहता है। वेल्सली के पत्र में धमकियाँ भी भरी हुई थीं। फिर भी उमदतुल उमरा इतनी आसानी से अपने बाप दादा से मिला हुआ राज छोड़ देने के लिए राज़ी न हो सका। इस बीच सुलतान टीपू की मृत्यु हो गई और श्रीरङ्गपट्टन अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। जिस सेना ने श्रीरङ्गपट्टन विजय किया, उसमें वे सब पलटनें भी शामिल थीं जिनके ख़र्च के लिए उमदतुल उमरा कम्पनी को ९ लाख पैगोडा सालाना दिया करता था। श्रीरङ्गपट्टन की विजय के बाद १३ मई सन् १७९९ को नवाब ने वेल्सली के पत्र के उत्तर में हिम्मत के साथ एक अत्यन्त विनीत, किन्तु उचित और गम्भीर पत्र लिखा।

इस पत्र में नवाब उमदतुल उमरा ने वेल्सली को लिखा—

नवाब उमदतुल उमरा का जवाब

"मैं नहीं समझ सकता कि आपने किन बातों की बिना पर यह राय क़ायम की है कि मेरी स्थिति ख़राब या कमज़ोर है, न मुझे उन बातों को जानने की आवश्यकता है। मेरे लिए यह जानना काफ़ी है कि मेरा कारबार कम से कम इतना अच्छा ज़रूर चल रहा है कि मैं बख़ूबी ठीक समय पर अपने वादों को पूरा कर सकता हूं। × × ×

"मैं आपको निहायत साफ़ शब्दों में, एक नरेश के वचन और ईमान पर विश्वास दिलाता हूं कि जो ज़िले सन् १७९२ की सन्धि के अनुसार (आपकी रक़म की अदायगी के लिए) अलग कर दिए गए हैं, उनमें से एक फ़ुट ज़मीन भी किसी तरह पर, किसी ज़रिए से ख़ुद या दूसरों की

मार्फ़त किसी भी शख़्स के नाम न मैंने रहन वग़ैरह की है और न मेरे इल्म में किसी दूसरे ने की है; इस तरह सञ्जीदगी के साथ और साफ़ साफ़ शब्दों में यह एलान करने के बाद मैं उम्मीद करता हूं कि मुझे और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।"

अपने पिता की मरते समय की आज्ञा का हवाला देते हुए नवाब उमदतुल उमरा ने वेलसली को लिख दिया कि पिछली सन्धि को तोड़कर अब मैं कोई नई सन्धि हरगिज़ मंज़ूर नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना "हर तरह के दीन और ईमान के ख़िलाफ़" है।

इसके बाद अंगरेज़ों की हाल की विजय पर वेलसली को बधाई देते हुए नवाब ने लिखा कि करनाटक का कुछ इलाक़ा, जो हैदरअली ने छीनकर अपने राज में मिला लिया था और जिसे अब अंगरेज़ों ने टीपू से फ़तह कर लिया है, करनाटक को वापस मिल जाना चाहिए। यह वही इलाक़ा था जो हैदरअली से सुलह करते समय अंगरेज़ों ही ने अपने मित्र करनाटक के नवाब से लेकर हैदरअली को दे दिया था। पत्र के अन्त में नवाब ने वेलसली से प्रार्थना की कि चूंकि करनाटक की सबसीडीयरी सेना ने भी इस युद्ध में भाग लिया है, इस लिए इन्साफ़ यह है कि टीपू से जीते हुए मुल्क में से अपनी सेना के ख़र्च के औसत से करनाटक को भी कुछ हिस्सा मिलना चाहिए।

निस्सन्देह नवाब उमदतुल उमरा का उत्तर और उसकी मांग सब न्यायानुकूल थी; किन्तु उनकी न्याय्यता को स्वीकार करना उस समय कम्पनी के लिए लाभदायक न था। वेलसली समझ

गया कि इस ढङ्ग से करनाटक पर क़ब्ज़ा करना असम्भव है। उसने नवाब के इस पत्र का उत्तर तक न दिया।

नवाब से राज छीनने का इंगलिस्तान से आदेश

उधर इंगलिस्तान के शासक भी करनाटक की स्वाधीनता का ख़ात्मा करने के लिए अधीर हो रहे थे। २१ मार्च सन् १७९९ को भारत मन्त्री डण्डास ने वेलसली के नाम एक पत्र लिखा, जो ५ अगस्त सन् १७९९ को कलकत्ते पहुँचा। इस पत्र में डण्डास ने वेलसली को लिखा कि—"करनाटक के नवाब के साथ हमारी जो सन्धियाँ हो चुकी हैं उनसे इस समय हम मजबूर हैं, फिर भी आप मुनासिब मौक़ों की ताक में रहिये और नवाब को ख़ुश करने इत्यादि के ऐसे उपाय काम में लाइये जिनसे हमारी दिली इच्छा पूरी होने की अधिक सम्भावना हो।"*

वेलसली की तजवीज़ और नवाब पर झूठे इलज़ाम

इस पत्र के उत्तर में वेलसली ने लिख भेजा कि—"मौजूदा नवाब के जीते जी इस तरह के मौक़े की आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है। आगे चलकर इसी पत्र में वेलसली ने लिखा—

"मुझे पूरा विश्वास है कि उस देश की मुसीबतों का कभी कोई पक्का इलाज नहीं हो सकता, जब तक कि हम नवाब से कम से कम उसी तरह के विस्तृत अधिकार प्राप्त न कर लें जिस तरह के कि कम्पनी को हाल में तञ्जौर की सन्धि द्वारा प्राप्त हुए हैं। मौजूदा नवाब के मरने के

---

* Right Honourable Henry Dundas to Earl of Mornington, 21st March 1799

बाद मुमकिन है कि उसके उत्तराधिकारी के साथ इस तरह की सन्धि आसानी से की जा सके, (बशर्ते कि इस नवाब के बाद भी यह मुनासिब समझा जावे कि कम्पनी के अलावा करनाटक का नाम मात्र का नरेश कोई दूसरा बना रहे) । × × × मौजूदा नवाब के मरने पर उत्तराधिकारी नियुक्त करने का सारा सवाल पूरी तरह कम्पनी के फ़ैसले के लिए खुला होगा। मेरी इस समय राय यह है कि सबसे मुनासिब यह होगा कि उस शख्स को, जो नवाब उमदतुल उमरा का बेटा माना जाता है, मसनद पर बैठा दिया जावे, और उसके साथ उसी तरह की सन्धि कर ली जावे जिस तरह की हाल में तञ्जोर के राजा के साथ की गई है। तो भी मुनासिब है कि आप फ़ौरन यह भी सोच रक्खें कि क्या यह अधिक पक्का प्रबन्ध न होगा कि हम वालाजाह और उमदतुल उमरा के वंश की हर शाख के लिए गुज़ारे का काफ़ी प्रबन्ध कर दें और नाम तथा काम दोनों की दृष्टि से करनाटक देश का राजा कम्पनी ही को बना लें।"

किन्तु संसार को दिखाने के लिए भी कोई बहाना लेना ज़रूरी था। इसलिए वेल्सली ने इस पत्र में लिखा—

"श्रीरंगपट्टन पर कब्ज़ा करने के बाद परलोकवासी टीपू सुलतान के जो पत्र आदि हमारे हाथ आए हैं, उनसे मुझे अत्यन्त प्रामाणिक और अकाट्य शहादत इस बात की मिल गई है कि पिछले नवाब वालाजाह ने अपने जीवन के अन्त के दिनों मे मौजूदा नवाब उमदतुल उमरा द्वारा टीपू सुलतान के साथ इस तरह का गुप्त पत्र व्यवहार शुरू किया था, जिससे ब्रिटिश सत्ता की ओर उनकी गहरी शत्रुता साबित होती है।"*

* I am thoroughly convinced, that no effectual remedy can ever be

आगे की घटनाओं को बयान करने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि नवाब मोहम्मदअली और टीपू सुलतान के बीच का यह 'गुप्त पत्र व्यवहार' क्या था। कहा यह गया कि यह पत्र व्यवहार टीपू के उन नौकरों की मार्फ़त हुआ था जो उसके दोनों नाबालिग़ क़ैदी बच्चों के साथ मद्रास भेजे गए थे। अंगरेज़ों ही के एक जाँच कमीशन ने इस इलज़ाम के सुबूत में कुछ गवाहियाँ भी जमा कर लीं।

---

applied to the evils which afflict that country, without obtaining from the Nabob powers at least as extensive as those vested in the Company by the late treaty of Tanjore. At the death of the present Nabob such a treaty might easily be obtained from his successor. If after that event it should be thought advisable to admit any nominal sovereign of the Carnatic excepting the Company the whole question of the succession will therefore be completely open to the decision of the Company, upon the decease of the present Nabob. The inclination of my opinion is, that the most advisable settlement would be to place Omdatul Omra's supposed son on the Musnud, under a treaty similar to that which was lately concluded with the Rajah of Tanjore. It will however be expedient that you should immediately consider whether it might not be a more effectual arrangement to provide liberally for every branch of the descendants of Wallajah and Omdatul Omrah and to vest even the nominal sovereignty of the Carnatic in the Company.

" the records of the late Tipu Sultan which fell into our hands after the capture of Seringapatam, have furnished me with the most authentic and indisputable evidence that the secret correspondence of a nature the most hostile to the British Power, was opened with Tipu Sultan by the late Nabob Wallajah towards the close of his life, through the agency of Omdatul Omra the present Nabob."—Lord Mornington's letter to Right Hon'ble Henry Dundas, *Wellesley's Despatches*, vol. ii, pp. 244-246.

कम से कम दो योग्य अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने मोहम्मदअली और उमदतुल उमरा के चरित्र, टीपू के साथ उनके ३० साल के सम्बन्ध, उस समय की तमाम स्थिति और जाँच कमीशन की गवाहियों की पूरी तरह जाँच करके यह साफ़ राय ज़ाहिर की है कि मोहम्मदअली और टीपू के "गुप्त पत्र व्यवहार" का यह सारा क़िस्सा जाली और झूठा है। इनमें इतिहास लेखक मेजर ईवन्स बेल का कथन है—

विश्वस्त अंगरेज़ इतिहास लेखकों की राय

"हमसे आशा की जाती है कि हम इस बात पर विश्वास कर लें कि जो नवाब वालाजाह पचास साल तक अंगरेज़ों का वफ़ादार दोस्त और मददगार रह चुका था, जो तीस साल तक हैदरअली और टीपू सुलतान के साथ क़रीब क़रीब लगातार युद्ध कर चुका था और जिसे नुक़सान पहुँचाने और नीचा दिखाने का कोई मौक़ा इन दोनों ने और ख़ासकर टीपू ने हाथ से जाने नहीं दिया था—उस वालाजाह को एकाएक बुढ़ापे में जाकर अपने तीस साल के पुराने शत्रुओं से मिलकर अपने आधी शताब्दी के दोस्तों के विरुद्ध साज़िश करने की सूझी। और हमसे इस बात पर भी विश्वास कर लेने के लिए कहा जाता है कि बूढ़े नवाब ने अपने इस तरह अचानक रुख़ बदलने के लिए ठीक वही समय चुना जब कि उसके दोस्तों की ताक़त इतनी पक्की जम चुकी थी कि ज़ाहिरा कोई उनका मुक़ाबला करने वाला न रहा था और जब कि उसके पुराने दुश्मन का बल यहाँ तक चूर हो चुका था कि उसके उभरने की कोई आशा न थी। वालाजाह और उमदतुल उमरा पर इलज़ाम यह है कि उन्होंने टीपू के साथ ये साज़िशें लॉर्ड कॉर्नवालिस के युद्ध के बाद

सन् १७९२ में शुरू की, जब कि टीपू विवश होकर अपना आधा राज दे चुका था, जब कि उसे तीन करोड़ तीस लाख रुपए युद्ध दण्ड देना पड़ गया था और अपने दो बेटों को बतौर बन्धकों के मद्रास भेजने की ज़िल्लत सहनी पड़ी थी। और कहा जाता है कि अपने विजयी दोस्तों और मददगारों के विरुद्ध अपने पराजित शत्रु के साथ मिलकर नवाबों ने यह जो तोड़ साज़िश टीपू के उन दो नौकरों की मारफ़त की जो इन दोनों शहज़ादों की हमराही में मद्रास भेजे गए थे।

"इस तरह की साज़िश की कहानी निस्सन्देह अत्यन्त असङ्गत मालूम होती है। फिर भी यदि उसके लिए काफ़ी सुबूत होता तो हमें उस पर विश्वास करना पड़ता। किन्तु कोई भी विश्वास योग्य गवाही पेश नहीं की गई। इतना ही नहीं, बल्कि टीपू सुलतान के दोनों वकीलों गुलामअली और अलीरज़ा ने अपनी मद्रास से लिखी हुई रिपोर्टों में जो श्रीरङ्गपट्टन के काग़ज़ों में पाई गई और जाँच कमीशन के सामने अपने बयानों में जितनी बातें कही हैं वे सब की सब यदि सच मान ली जावें तो भी उनसे किसी तरह की साज़िश साबित नहीं होती। जाँच कमीशन ने वालाजाह और उसके सब से बड़े बेटे के ख़िलाफ़ गुप्त साज़िशों और दुश्मनी के इरादों के अनेक सुबूत जमा किए; इन सब सुबूतों को यदि सच भी मान लिया जाय तो भी वास्तव में वे इतने तुच्छ हैं कि यदि लॉर्ड वेल्सली के दिल में करनाटक के शासन को हाथ में लेने का कोई न कोई बहाना ढूँढ़ निकालने की प्रबल इच्छा न होती—और हम लॉर्ड वेल्सली के पहले प्रयत्नों से जानते हैं कि उसमें यह प्रबल इच्छा मौजूद थी—तो हमें इस बात पर आश्चर्य

होता कि उसने गप्पों और अन्दाज़िया बातों के इस तमाम ढेर को अपने रद्दी के टोकरे में क्यों नहीं फेंक दिया ।"*

इतिहास लेखक जेम्स मिल ने इससे भी अधिक योग्यता, निष्पक्षता और परिश्रम के साथ इस तमाम मामले की विवेचना की

---

* "We are called upon to believe that the Nawab Wallajah, in his old age after fifty years of faithful alliance and friendship with the English, and thirty years of almost incessant warfare with *Hyder Ali* and Tipoo Sultan—both of whom and especially the latter, had seized every opportunity of injuring him and of loading him with insults,—suddenly took it into his head *to conspire against* his friends of half a Century, and to league with his enemies of thirty years. And we are called *upon* to believe that the time chosen for this sudden change of policy was just when the power of his friends was apparently *established* without a competitor, and when the power of his old enemy had fallen to nothing beneath all hope of recovery. Wallajah and Oomdatul Omrah are accused of having begun their hostile intrigues with Tipoo in 1792, after Lord Cornwallis' campaign when he had been compelled to cede half his *dominions*, to pay three crores and thirty lacs of rupees as a war *indemnity*, and to submit to the humiliating *condition* of sending two of his sons as hostages to Madras. And it is with two of Tippu's officials who were sent to Madras in attendance on these young *Princes*, that the Nawabs are accused *of having* concerted and carried on this desperate conspiracy with *their* discomfited foe against their triumphant friends and allies.

Extravagantly improbable as such a tale of conspiracy must appear, we should of course be bound to believe it if a sufficiency of evidence were produced. But *not only* is there no trustworthy evidence brought forward, but if every *statement* made by Ghulam Ali and Ali Raza, Tipu Sultan's Vakils, both in their written reports from *Madras* found among the records at Seringapatam, and in their depositions before the Commission *of enquiry*, were to be accepted as truth, it would amount to nothing. *The* proofs of dark designs and hostile intentions on the part of Wallajah and his eldest son, which were collected by the *Commission of* enquiry, are really so

और अन्त में साबित किया है कि करनाटक के नवाबों के विरुद्ध यह तमाम इलज़ाम झूठा था ।*

जब तक नवाब उमदतुल उमरा ज़िन्दा रहा, वेल्सली ने कभी उसके सामने इस 'गुप्त पत्र व्यवहार' के क़िस्से को पेश न किया और न उसे इसकी कोई ख़बर तक होने दी । चुपचाप वह उमदतुल उमरा के मरने का इन्तज़ार करता रहा ।

नवाब की मृत्यु और अंगरेज़ों का सुअवसर

जुलाई सन् १८०१ के शुरू में ख़बर मिली कि नवाब करनाटक की मृत्यु होने वाली है । बूढ़ा नवाब उस समय चिपौक के महल में था । ५ जुलाई सन् १८०१ को करनल मैकनील कम्पनी की सेना सहित महल की ओर बढ़ा, और यह कह कर कि नवाब की मृत्यु के बाद लड़ाई झगड़े का डर है और अमन क़ायम रखने की ज़रूरत है, उसने चारों ओर से महल को घेर लिया । यह वही सेना थी जो नवाब के ख़र्च पर नवाब के इलाक़े में रक्खी गई थी । जिस समय इस सेना ने महल के भीतर घुसना चाहा और मृत्यु शय्या पर पड़े हुए नवाब के कानों तक ख़बर पहुँची, तो नवाब चौंक पड़ा और पास के एक अंगरेज़ अफ़सर से गिड़गिड़ा कर

---

frivolous, even if considered as true, that but for the strong bias towards any conclusion affording a pretext for assuming the administration of the Carnatic, which we know from his previous endeavours in that direction actuated Lord Wellesley we should be surprised that he did not throw the whole mass of gossip and guess-work into his waste-paper basket."—*The Empire of India* by Major Evans Bell, pp 107, 108

* Mill's *History of British India* vol vi, pp 217-244

कहने लगा—"महल के अन्दर घुसकर मुझे मेरी रिश्राया की नज़रों में न गिराइए !" ५ जुलाई से १५ जुलाई तक कम्पनी की सेना ने महल को घेरे रक्खा। १५ जुलाई को नवाब उमदतुलउमरा की मृत्यु हुई। अन्त तक अंगरेज़ अफ़सर बूढ़े नवाब के पास रहे और उसे अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते रहे। उमदतुल उमरा का बेटा शहज़ादा अलीहुसेन भी उसी महल में था। जिस दिन उमदतुल-उमरा का शरीर छूटा उसी दिन करनाटक की मसनद के वारिस शहज़ादे अलीहुसेन को ज़बरदस्ती कमरे से बाहर ला कर अंगरेज़ों ने अचानक उसे यह सूचना दी कि तुम्हारे बाप और दादा ने अंगरेज़ों के ख़िलाफ़ हैदर और टीपू के साथ गुप्त पत्र व्यवहार किया था, इसलिए गो तुम्हें उसका कोई पता नहीं, फिर भी गवरनर जनरल का फ़ैसला है कि अपने बाप की मसनद पर बैठने के बजाय तुम एक मामूली रिश्राया की हैसियत से अपनी बाक़ी ज़िन्दगी व्यतीत करो। शहज़ादे को डराकर उससे कहा गया कि तुम तञ्जोर की सन्धि की तरह की एक सन्धि पर दस्तख़त कर दो। ख़ेमों के अन्दर शहज़ादे अलीहुसेन और अंगरेज़ अफ़सरों में बातचीत हो रही थी और बाहर कम्पनी के सिपाही नंगी तलवारें लिए फिर रहे थे। इतने पर भी अलीहुसेन ने न माना।

करनाटक की नवाबी का अन्त

इसके बाद अलीहुसेन को अलग करके और बीच के कई हक़दारों को छोड़ कर अलीहुसेन के एक दूर के रिश्तेदार आज़मुद्दौला से अंगरेज़ों ने वहीं पर बातचीत शुरू की। आज़मुद्दौला ने अंगरेज़ों की

बात मान ली। २८ जुलाई सन् १८०१ को आज़मुद्दौला करनाटक की मसनद पर बैठा दिया गया। जिस तरह की सन्धि अंगरेज़ों ने चाही उसी तरह की सन्धि पर आज़मुद्दौला ने दस्तख़त कर दिए। इस सन्धि के अनुसार करनाटक का सारा राज कम्पनी के हाथों में आगया और आज़मुद्दौला केवल राजधानी अरकाट और चिपौक के महल का नवाब रह गया।

शहज़ादे अलीहुसेन की हत्या

नए नवाब को चिपौक के महल में रक्खा गया। उसी महल में शहज़ादे अलीहुसेन और उसकी विधवा माँ को क़ैद कर दिया गया। शहज़ादे ने कई बार अंगरेज़ों से प्रार्थना की कि मुझे किसी दूसरी जगह भेज दिया जावे, नहीं तो डर है कि नया नवाब किसी रोज़ मुझे ख़तम कर देगा। किन्तु सुनाई न हो सकी। चन्द रोज़ के बाद ही एक दिन कहा जाता है कि पेचिश से शहज़ादे अलीहुसेन की मृत्यु हो गई। मालूम होता है यह वही पेचिश थी जिससे ३६ साल पहले लॉर्ड क्लाइव के ज़माने में मुर्शिदाबाद के नवाब नजमुद्दौला की मृत्यु हुई थी। १७ मई सन १८०८ को इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने शहज़ादे अलीहुसेन की मृत्यु के सम्बन्ध में वक्तृता देते हुए सर टॉमस टरटन ने कहा था—"मुझे विश्वास है इस मामले में कुछ न कुछ दग़ा अवश्य थी।"*

पहले की तरह पार्लिमेण्ट के सामने करनाटक का सारा मामला

* " something unfair in this transaction . . . . he believed there was."—Sir Thomas Turton before British Parliament 17th May, 1808

पेश किया गया। काफ़ी भेद खोले गए। वेल्सली के विरुद्ध और नवाब के पक्ष में ज़ोरदार भाषण हुए। एक मेम्बर ने टीपू और मोहम्मदअली की साज़िश की ओर संकेत करते हुए कहा कि—"सहज विश्वासी भोली जनता को धोखा देने का इससे अधिक वीभत्स प्रयत्न मैंने कभी नहीं सुना।" फिर भी अन्त में इस खुली राजनैतिक डकैती के लिए वेल्सली की सराहना का एक प्रस्ताव पास हुआ।

विण्ढैम नामक एक मेम्बर ने उस अवसर पर बिल्कुल सच कहा—

भारत में कम्पनी की नीति

"× × × भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति को देख कर मुझे एक गीत की अन्तिम पंक्ति याद आ जाती है, जो डॉक्टर स्विफ़्ट ने एक डाकू के लिए लिखा था। उस पंक्ति का अर्थ यह है—'जिस मनुष्य का जी चाहे वह अपने पास वाले को लूट सकता है।' × × × हमारे सामने मार्ग प्रदर्शन के लिए साफ़ असूल यह है कि भारतवासियों के कोई हक़ नहीं, हमारे कोई फ़र्ज़ नहीं, हम सब उनके बादशाह हैं और जो हम फ़ैसला कर दें सो ठीक।"*

---

* "... the policy of the East India Company in India, reminded him of the last line of a song, written by Dr Swift for a high-way man, 'every man round may rob if he pleases,' ... the principle by which we were to be guided was that the natives of India had no right, that we had no duties and that all was to depend upon the decision of our Majesties."—Mr Windham before the British Parliament

क्षित छोड़ दिया, कुछ मन्दिरों को लूटा, और कहा जाता है सोमनाथ पर हमला करके वहाँ की मूर्ति को तोड़ा और लूट का बहुत सा माल लेकर ग़ज़नी वापस चला गया। सोमनाथ पर महमूद ग़ज़नवी के हमले की सच्चाई के विषय में भी प्रामाणिक इतिहासज्ञों में ज़बरदस्त मतभेद है। महमूद के चरित्र के अनेक गुणों की भी अनेक इतिहास लेखक मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।"* किन्तु यह सब बहस हमारे प्रसंग से बाहर है। इसमें सन्देह नहीं कि महमूद की सेना में हज़ारों सिपाही हिन्दू थे, उसका एक प्रसिद्ध सेनापति हिन्दू था, जिसका नाम तिलक था और जिसने एक बार महमूद के एक मुसलमान सेनापति के विद्रोह को दमन किया था। जो कुछ भी हो महमूद के हमलों का कोई स्थायी असर भारत पर न रह सकता था। महमूद के हमलों का मूल्य ज़्यादा से ज़्यादा एक धन लोलुप आक्रामक के हमलों से अधिक नहीं कहा जा सकता। इस देश पर उसका प्रभाव भी क्षणभङ्गुर था।

मोहम्मद ग़ोरी

सौ साल बाद तुरकों ने अफ़ग़ानिस्तान के ग़ोरी राजकुल को दबाना और खदेड़ना शुरू किया, जिसके फलस्वरूप मोहम्मद ग़ोरी को भारत पर हमला करने के लिए क़रीब क़रीब विवश होना पड़ा। मोहम्मद ग़ोरी के समय से पञ्जाब पर भी मुसलमानों का शासन जम गया। मोहम्मद ग़ोरी के भारत आने के समय तक भारत की राजनैतिक अव्यवस्था हद को पहुँच गई थी। तेरहवीं सदी तक उत्तर भारत पर मुसलमानों का राज जम गया।

---

* *Medieval Hindu India*, by C. V. Vaidya vol iii, p. 104. and *History of Medieval India*, by Ishwari Prashad, p. 91

रिशवत दी कि जब अंगरेज़ क़िले पर हमला करें तो दूसरी ओर से उनका कोई मुक़ाबला न करे। डच कोठी के अफ़सर को भी अंगरेज़ों ने इस गरज़ से रिशवत दी कि वह अंगरेज़ों के विरुद्ध नवाब को मदद न दे।* अन्त में नवाब और अंगरेज़ों में सन्धि हो गई। अंगरेज़ व्यापारियों को कुछ विशेष रिआयतें मिल गईं और आइन्दा के लिए उन्होंने वादा किया कि हम कभी सूरत के शासन इत्यादि में किसी तरह का दख़ल न देंगे। किन्तु वास्तव में उसी समय से सूरत के नवाब पर अंगरेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा और नवाब धीरे धीरे अंगरेज़ों के हाथों की एक कठपुतली बनता चला गया। यह दो अमली चालीस साल तक जारी रही। सन् १७७७ में इस दो अमली को बयान करते हुए पारसन्स नामक एक इतिहास लेखक लिखता है :—

दो अमली हुकूमत

"यदि फ्रांसीसी, पुर्तगाल निवासी या डच लोग महसूल में कोई भी तबदीली कराना चाहते हैं या कोई नई रिआयत चाहते हैं; और यदि अंगरेज़ मुखिया उनकी इच्छा पूरी करना नहीं चाहता, तो वह उन्हें नवाब के पास भेज देता है और साथ ही नवाब से कहला भेजता है कि उनकी प्रार्थना का अमुक उत्तर दिया जावे × × × वे सब इस तमाशे को समझते हैं।"

स्टैवोरिनस लिखता है :—

"सब के लिए क़ानून बनाने वाले अंगरेज़ हैं; उनकी ख़ास रज़ामन्दी के बिना न यूरोपियन कुछ कर सकते हैं और न हिन्दोस्तानी। इस विषय में

* *Bombay Gazetteer, Surat vol p. 127 foot-note*

शहर के नवाब में और छोटे से छोटे नगरनिवासी में कोई अन्तर नहीं। गो कि अंगरेज़ ऊपर से नवाब के प्रति कुछ आदर दिखलाते हैं और खुले तौर पर कभी न मानेंगे कि नवाब उनके अधीन है, फिर भी नवाब को अंगरेज़ों की आज्ञाएँ माननी पड़ती हैं।"

सन् १७५९ से १७९९ तक चार नवाबों के शासन काल में यही दो अमली जारी रही। मार्किस वेल्सली ने आकर इसे ख़त्म करने का इरादा किया।

अंगरेज़ों का नई सन्धि द्वारा और धन और रिआयतें हासिल करना

नवाब को लिखा गया कि अपने यहाँ के "शासन प्रबन्ध में सुधार" करो। इस "शासन सुधार" का मतलब यह था कि अपनी सेना को बरख़ास्त कर दो, तीन पलटन कम्पनी की सेना अपने यहाँ रक्खो और उनके ख़र्च के लिए कम्पनी को सालाना धन दिया करो। नवाब ने वेल्सली की बात मानने से इनकार कर दिया। उसका एक एतराज़ यह भी था कि कम्पनी की यह माँग सन् १७५९ की सन्धि के विरुद्ध है। किन्तु जब नवाब को ज़्यादा दबाया गया तो उसने समझौता कर लिया और कम्पनी को एक लाख रुपए सालाना देना और उसके अलावा ३०,००० रु० सालाना से ऊपर की और रिआयतें उनके साथ कर देना स्वीकार कर लिया। अभी इस नए मज़मून के सन्धिपत्र पर दस्तख़त न होने पाए थे कि ८ जनवरी सन् १७९९ को नवाब की मृत्यु हो गई। नवाब के एक दुधमुहा बेटा था, किन्तु अपने पिता के एक महीने बाद उसकी भी मृत्यु

हो गई। इस बच्चे का चचा नसीरुद्दीन सूरत की मसनद पर बैठा।

नसीरुद्दीन पर ज़ोर दिया गया कि तुम एक लाख रुपए सालाना की रकम को, जिसे हाल में दोनो पक्ष मंज़ूर कर चुके थे, और बढ़ा दो। नसीरुद्दीन ने अपनी माली हालत बताते हुए माफ़ी चाही, और एक लाख सालाना देने का वादा किया। वेलसली ने फिर ज़ोर दिया। १८ अगस्त सन् १७९९ को सूरत की कोठी के मुखिया सिटॉन ने बम्बई के गवरनर को लिखा :—

"मैंने कोई कसर उठा नहीं रक्खी; नवाब पर हद दर्जे का दबाव डाल चुका हूं। मुझे पूरा यक़ीन है कि अगर नवाब के पास गुन्जाइश होती तो वह ज़रूर ज़्यादा दे देता।"

वेलसली को इसकी सूचना दे दी गई। इसके जवाब में १८ फ़रवरी सन् १८०० को गवरनर जनरल वेलसली ने बम्बई के गवरनर को एक गुप्त पत्र लिखा :—

सूरत की नवाबी को ख़त्म करने का इरादा

"× × × मैं पक्का इरादा कर चुका हूं कि नसीरुद्दीन को उस समय तक नवाब स्वीकार नहीं करूँगा, जब तक कि वह अपने और अपने कुटुम्ब के गुज़ारे के क़ाबिल सालाना पेनशन लेकर, जो कि कम्पनी उसे सूरत की सालाना आमदनी में से दिया करेगी, सूरत की दीवानी और फ़ौजदारी के समस्त अधिकार और तमाम मालगुज़ारी कम्पनी के हाथों में दे देने के लिए राज़ी न हो जावे।"*

इसके बीस दिन बाद इसी मज़मून की सन्धि का एक मसौदा लिखाकर वेलसली ने बम्बई के गवरनर के पास भेज दिया। साथ

* *Wellesley's Despatches*, vol. ii, pp. 222, 223

ही गवरनर को आज्ञा दी कि तुम हिन्दुस्तानी पैदल सिपाहियों की दो नई रेजिमेण्ट अपने यहाँ बढ़ा लो, नई सन्धि पर नवाब नसीरुद्दीन के दस्तख़त कराने के लिए ख़ुद सूरत जाओ और अपने पहुँचने से पहले एक कम्पनी गोरे तोपख़ाने की, दो कम्पनियाँ गोरे पैदलों की और एक पूरी रेजिमेण्ट हिन्दुस्तानी पैदलों की सूरत भेज दो।

सूरत की बेमुल्क नवाबी

अन्त में नवाब नसीरुद्दीन को वेल्सली की ख़्वाहिश पूरी करनी पड़ी। १३ मई सन् १८०० को नवाब ने नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए और अपनी पैतृक रियासत से सदा के लिए हाथ धो लिए। दिल्ली के दूरवर्ती मुग़ल दरबार में उस समय इतना बल न रह गया था कि अपने अधीन नवाब की रक्षा कर सके। नवाब का राजपाट छीन कर भी उसे बेमुल्क नवाब बनाए रखना ज़रूरी समझा गया। जिस दिन नसीरुद्दीन ने सन्धिपत्र पर दस्तख़त किए उससे अगले दिन उसे शान शौकत के साथ नवाबी की मसनद पर बैठाया गया। अंगरेज़ सरकार ने अब उसका नवाब होना स्वीकार कर लिया। सन्धिपत्र के शुरू में लिखा गया—"माननीय अंगरेज़ कम्पनी और नवाब नसीरुद्दीन ख़ाँ इत्यादि के दरमियान जो दोस्ती मौजूद थी, उसे इस सन्धि द्वारा अधिक मज़बूत और पक्का किया जाता है।"

इतिहास लेखक मिल ने सूरत के निर्बल नवाब के साथ कम्पनी के इस अन्याय को और वेल्सली के झूठ और बेईमानी को निष्पक्षता के साथ स्वीकार किया है।*

---

* *History of British India* by Mill, vol. vi, pp. 208-211

बीसवाँ अध्याय

पेशवा को फाँसने के प्रयत्न

अंगरेज़ों को मराठों से ख़तरा

गो कि ऊपर से देखने में मराठों और कम्पनी के बीच मित्रता की सन्धि क़ायम थी, फिर भी कम्पनी को उस समय भारत में हैदरअली और टीपू से उतर कर अपने दूसरे प्रतिस्पर्धी मराठे ही नज़र आते थे। टीपू के बाद दूसरी भारतीय शक्ति, जिसका नाश करने की अंगरेज़ों को सबसे अधिक चिन्ता थी, मराठा मण्डल और विशेष कर पेशवा दरबार की शक्ति थी। टीपू और अंगरेज़ों के पहले युद्ध के समय ही इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के अन्दर भारतीय स्थिति पर बहस करते हुए पार्लिमेण्ट के कई मेम्बरों ने यह विचार प्रकट किया था कि—"हिन्दोस्तान के अन्दर इंगलिस्तान के हितों को सब से भारी ख़तरा मराठों से है।" चुनाँचे मैक्फ़रसन के समय

से लेकर वेल्सली के समय तक हर गवरनर जनरल के समय में मराठों के बल को तोड़ने के लिए बराबर साज़िशें जारी रहीं।

मराठों के साथ व्यवहार

इस सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि इतिहास में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जिसमें कि मराठों ने अंगरेज़ों के साथ विश्वासघात किया हो, किन्तु इसके विपरीत मराठों के साथ अंगरेज़ों के व्यवहार को बयान करते हुए एक अंगरेज़ विद्वान लिखता है—

"अब हम मराठा राज का ज़िक्र करते हैं, जिसका अंगरेज़ों के शुरू ज़माने के साथ गहरा सम्बन्ध है। उस ज़माने की हालत को हम चाहे कितनी भी सफ़ाई के साथ क्यों न बयान करें, उसमें अनेक बातें ऐसी हैं जिन पर अंगरेज़ों को शर्म आनी चाहिए।"*

हेस्टिंग्स की स्वीकृति

इसी प्रकार वारन हेस्टिंग्स ने पार्लिमेण्ट के सामने अपने जुर्मों की जवाबदेही करते हुए और नाना फड़नवीस, हैदरअली तथा निज़ाम के उस मेल की ओर इशारा करते हुए, जिसे हम एक पिछले अध्याय में बयान कर चुके हैं, बड़े अभिमान के साथ कहा था—

"महान भारतीय सङ्घ के एक सदस्य (निज़ाम) को मैंने ठीक मौक़े पर उसका कुछ इलाक़ा वापस करके उस सङ्घ से फोड़ा; दूसरे (मूदाजी भोंसले) के साथ मैंने गुप्त पत्र व्यवहार जारी रक्खा और उसे अपना मित्र

---

* We now arrived at the Marhatta Raj, which is closely coupled with the earlier days of the British. However fairly told, there is much for the English to be ashamed of in this period."—Sir Frederick Lely in his *History as Taught in Indian Schools.*

बना लिया; तीसरे (माधोजी सींधिया) को दूसरे कामों मे लगाकर और पत्र व्यवहार करके मैंने भुलाए रक्खा और सुलह के लिए बतौर अपने यन्त्र के उसका उपयोग किया।"*

मराठों के नाश में वेल्सली का हिस्सा

मराठों की सत्ता के नाश करने में सबसे अधिक हिस्सा मार्किस वेल्सली और उसके भाई करनल आरथर वेल्सली ने लिया, जो बाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम से मशहूर हुआ। इन दोनों भाइयों के "सरकारी" और "प्राइवेट" पत्रों में मराठों के नाश के अनेक गुप्त प्रयत्न भरे पड़े हैं।

मार्किस वेल्सली के भारत आने के समय राघोबा का पुत्र बाजीराव पेशवा की मसनद पर था। नाना फड़नवीस क़ैद में था। करनल पामर पूना के दरबार में रेज़िडेण्ट था। और माधोजी सींधिया की जगह उसका पौत्र दौलतराव सींधिया ग्वालियर की गद्दी पर था।

होलकर कुल के झगड़े

होलकर कुल में १५ अगस्त सन् १७९७ को तुकाजी की मृत्यु हुई। तुकाजी के दो बेटे थे, काशीराव और मलहरराव, और दो दासी पुत्र थे, जसवन्तराव और विठू जी। बड़ा बेटा काशीराव गद्दी का वास्तविक

* 'I won one member (the Nizam) of the Great Indian Confederacy from it by an act of seasonable restitution; with another (Moodaji Bhonsle) I maintained a secret intercourse and converted him into a friend; a third (Madhoji Scindhia) I drew off by diversion and negotiation, and employed him as the instrument of peace.'—Warren Hastings before the British Parliament.

अधिकारी था। जसवन्तराव और विठू जी ने मलहरराव का पक्ष लिया। दौलतराव सींधिया ने काशीराव को सहायता दी। अन्त में सींधिया की सेना की सहायता से मलहरराव मारा गया, काशीराव गद्दी पर बैठा, जसवन्तराव भाग कर नागपुर चला गया और विठूजी कोल्हापुर गया। इस प्रकार होलकर कुल के ऊपर दौलतराव सींधिया का प्रभाव जम गया।

दौलतराव के मराठा सत्ता को मज़बूत करने के प्रयत्न

दौलतराव सींधिया योग्य, वीर और समझदार था। उसके पितामह माधोजी सींधिया के साथ अंगरेज़ों ने जो विश्वासघात किया था उससे वह अच्छी तरह परिचित था। वह यह भी समझता था कि इस सङ्कट के समय में नाना फ़ड़नवीस की सेवाएँ मराठा मण्डल के अस्तित्व के लिए कितनी मूल्यवान हो सकती हैं, और अकेले बाजीराव के हाथों में मराठा साम्राज्य की बाग रहने से इस साम्राज्य को कितना ख़तरा है। नाना फ़ड़नवीस और दौलतराव सींधिया में पत्र व्यवहार हुआ। और सबसे पहला काम दौलतराव ने यह किया कि पूना पहुँच कर नाना फ़ड़नवीस को क़ैद से निकाल कर उसे फिर से पेशवा का प्रधानमन्त्री बनवाया। नाना और दौलतराव में अब मित्रता बढ़ने लगी, बाजीराव भी इन्हीं के कहने में था, और मराठा साम्राज्य की नीति का सञ्चालन इन्हीं दोनों योग्य व्यक्तियों के हाथों में आ गया।

टीपू और अंगरेज़ों के पहले युद्ध में अंगरेज़ों की विजय का मुख्य कारण मराठों की सहायता थी। मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी

जोसाया वेब ने ८ जुलाई सन् १७९८ के पत्र में साफ़ लिखा है कि यदि ठीक समय पर मराठों की सेना मदद के लिए न पहुँचती तो अंगरेज़ों को उस युद्ध में सफलता न मिल सकती। किन्तु टीपू के साथ दूसरे युद्ध में टीपू की निर्दोषता और अंगरेज़ों का अन्याय दोनों इतने साफ़ थे कि इस बार वेल्सली और उसके साथियों को मराठों से सहायता की आशा न थी।

अंगरेज़ों को दौलतराव से आशंका

इसके विपरीत दौलतराव सींधिया के पास एक विशाल और सबद्ध सेना थी। दौलतराव एक योग्य सेनापति था। वह अपनी सेना सहित इस समय पूना में था और वेल्सली को डर था कि कहीं टीपू पर अंगरेज़ों के हमला करने के समय दौलतराव अपनी सेना सहित टीपू की मदद के लिए न पहुँच जावे। इसलिए टीपू पर दूसरी बार हमला करने के पूर्व मराठों की ओर वेल्सली की नीति के दो मुख्य अङ्ग थे। एक यह कि जिस तरह हो सके पेशवा बाजीराव को निज़ाम की तरह सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फाँस कर पङ्गुल कर दिया जाय और दूसरा यह कि दौलतराव सींधिया और उसकी सेना को किसी न किसी तरह पूना से हटाकर उत्तर की ओर भेज दिया जाय। बिना पेशवा को सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फाँसे मराठों की सत्ता का नाश कर सकना सर्वथा असम्भव था और बिना दौलतराव के पूना से टले पेशवा को इस जाल में फाँस सकना अथवा टीपू पर निःशङ्क हो हमला कर सकना दोनों असम्भव मालूम होते थे।

वेल्सली अच्छी तरह समझता था कि जब तक बाजीराव के ऊपर दौलतराव सींधिया और नाना फड़नवीस का प्रभाव है, तब तक बाजीराव अंगरेज़ों की किसी चाल में नहीं आ सकता। इस लिए सब से पहले वेल्सली ने सींधिया और उसकी सेना को पूना से हटा देने की चालें चलनी शुरू कीं। ८ जुलाई सन् १७९८ को वेल्सली ने रेज़िडेण्ट पामर को लिखा कि—"सींधिया के पूना रहने से टीपू को पूरी तरह सहायता मिलने की सम्भावना है, इसलिए किसी प्रकार सींधिया को वहाँ से हटाकर उत्तर भारत भेज देना आवश्यक है।"

दौलतराव को पूना से हटाने की चालें

इसके लिए सब से पहले वेलसली और उसके साथियों ने यह अफ़वाह उड़ाई कि अहमदशाह अब्दाली का पौत्र काबुल का बादशाह ज़मानशाह उत्तरी भारत पर हमला करने वाला है। इतिहास लेखक ग्रॉण्ट डफ़ लिखता है :—

"अंगरेज़ों के एजण्टों ने ज़मानशाह के हमला करने के इरादों की अफ़वाहें इस लिए ख़ूब ज़ोर दे दे कर उड़ानी शुरू कीं ताकि इन बातों में आकर सींधिया अपने राज की रक्षा के लिए उत्तरी हिन्दोस्तान लौट जावे।"*

इतिहास लेखक मिल लिखता है कि ज़मानशाह के हमले की इन ख़बरों की कोई बुनियाद इन अफ़वाहों के अतिरिक्त और थी ही

---

* "The reported designs of Zaman Shah, . were strongly set forth, by the British agents, in order to induce Scindhia to return for the protection of his dominions in Hindustan "—Grant Duff, p 540

नहीं और जान बूझ कर सन् १७९८ में यह ख़बरें उड़ाई गईं। मिल लिखता है कि इससे पहले भी अंगरेज़ अपने मतलब के लिए काबुल के बादशाह के हमलों की झूठी ख़बरें उड़ा चुके थे।*

किन्तु दौलतराव सींधिया अंगरेज़ों को समझता था। वह उनकी इस चाल में न आ सका। मिल लिखता है :—

"गोकि इस तरह के हमले से किसी दूसरे को इतनी अधिक हानि न पहुँच सकती थी जितनी महाराजा सींधिया को, तिसपर भी उसने पूना ही में ठहरे रहना पसन्द किया। असलीयत यह मालूम होती है कि सींधिया जानता था कि शाह का भारत पर हमला करना नामुमकिन है।"*

वेल्सली के लिए अब कोई दूसरी चाल चलना ज़रूरी हो गया।

दौलतराव के विरुद्ध वेल्सली की असफल चालें

लार्ड कॉर्नवालिस के समय से कोई रेज़िडेण्ट सींधिया के दरबार में न भेजा गया था। वेल्सली ने अब करनल कॉलिन्स नामक एक अंगरेज़ को वहाँ रेज़िडेण्ट नियुक्त करके भेजा। सींधिया स्वयं पूना में था, तथापि करनल कॉलिन्स को सीधा उत्तरी भारत की ओर सींधिया की राजधानी में भेजा गया। कहा गया कि कॉलिन्स को भेजने का उद्देश सींधिया और अंगरेज़ों की मित्रता को पक्का करना है; किन्तु वास्तविक उद्देश था महाराजा दौलतराव की अनुपस्थिति में सींधिया राज के अन्दर फूट डलवाना, जगह जगह विद्रोह खड़े करना और इस प्रकार की स्थिति पैदा कर देना जिससे दौलतराव को मजबूर होकर अपनी सेना सहित पूना से

* Mill, vol vi, pp 125, 128-130

उत्तर की ओर लौट आना पड़े। भारत की स्वाधीन रियासतों के अन्दर कम्पनी के रेज़िडेण्टों का मुख्य कार्य उन रियासतों के बल और उनकी आन्तरिक कमज़ोरियों को भाँपना और उनमें अन्दर ही अन्दर फूट डलवा कर उनका नाश करना ही होता था। वेलसली ने अपने खुले सरकारी पत्रों में बार बार रेज़िडेण्टों को यह आदेश दिया कि तुम लोग देशी राज्यों के अन्दर "आपसी द्वेष और असन्तोष से लाभ उठाओ।" जिसका साफ़ शब्दों में मतलब यह था कि उन रियासतों में आपसी द्वेष और असन्तोष पैदा करो। इस समय जब कि वेलसली की इच्छा के अनुसार कॉलिन्स सींधिया के राज में जगह जगह झगड़े खड़े कर रहा था, रेज़िडेण्ट पामर पूना दरबार में उसी प्रकार फूट के बीज बो रहा था, और ख़ास कर दौलतराव के ख़िलाफ़ बाजीराव और उसके सलाहकारों के कान भरा करता था।

करनल कॉलिन्स ने अब अपनी पूरी कोशिश से सींधिया की स्थानीय सेना और उसकी प्रजा के अन्दर असन्तोष पैदा करना और लोगों को सींधिया के विरुद्ध भड़काकर झगड़े तथा विद्रोह खड़े करना शुरू किया। किन्तु यह चाल भी दौलतराव के विरुद्ध अधिक सफल न हो सकी। वह योग्य नरेश पूना में बैठे हुए वहीं से अपने राज्य के इन सब झगड़ों को सुन्दरता के साथ तय करता रहा।

मार्किस वेल्सली को इस समय ख़ासी कठिनाई का सामना

करना पड़ा। टीपू पर हमला करने और उसका नाश करने की उसे बेहद जल्दी थी। देर होने से टीपू के अधिक सावधान हो जाने अथवा उसके मददगार खड़े हो जाने का डर था। उधर न वेल्सली सींधिया और उसकी सेना का एतबार कर सकता था, न सींधिया किसी प्रकार पूना से हटता था। और बिना सींधिया के पूना से हटे पेशवा बाजीराव को 'सबसीडीयरी सन्धि' अथवा अन्य किसी जाल में फँसा सकना भी असम्भव था। वेल्सली समझ गया कि जब तक दौलतराव सींधिया को कोई वास्तविक आपत्ति अपने सिर पर खड़ी हुई दिखाई न देगी, दौलतराव पूना से न टलेगा और पूना से उसे हटाना आवश्यक था। एक नया षड्यन्त्र रचा गया। दौलतराव पर यह इलज़ाम लगाया गया कि वह अंगरेज़ों के विरुद्ध बनारस के क़ैदी नवाब वज़ीरअली के साथ साज़िश कर रहा है। ३ मार्च सन् १७९९ को मद्रास से बैठे हुए वेल्सली ने करनल पामर के नाम एक "प्राइवेट" पत्र लिखा। इस पत्र में पामर को सूचना दी गई :—

वेल्सली की कठिनाई और उसके नए प्रयत्न

"माधोदास के बाग़ पर हमला करते समय वज़ीरअली के जो पत्र पकड़े गए हैं, उनमें उत्तरी हिन्दोस्तान में रहने वाले सींधिया के मुख्य सेनापति अम्बाजी का एक पत्र मिला है। इस पत्र से मालूम होता है कि अम्बाजी ने दौलतराव सींधिया की ओर से वज़ीरअली के साथ एक गुप्त सन्धि की है।

"वह सन्धि गवरमेण्ट के पास नहीं है, किन्तु अम्बाजी के पत्र से, कामगार ख़ाँ और नामदार ख़ाँ के पत्रों से, और वज़ीरअली के दूसरे पत्रों से इसमें

कोई सन्देह नहीं रह जाता कि इस सन्धि के मुख्य उद्देश कम्पनी के लिए अत्यन्त अहितकर हैं, और इन उद्देशों को पूरा करने के लिए यह तजवीज़ हो रही है कि सींधिया की मदद से वज़ीरअली को अवध की मसनद पर बैठाया जाय और सींधिया और वज़ीरअली में इस तरह का सम्बन्ध क़ायम कर दिया जाय जिससे एक के हित में दूसरे का हित हो।"

वेलसली ने इस पत्र में आगे चल कर करनल पामर को आज्ञा दी कि तुम इस सम्बन्ध में और बातें पता लगाने का प्रयत्न करो और मुझे उनकी सूचना दो।

दौलतराव पर चढ़ाई का बहाना

उस समय के अन्य सरकारी तथा ग़ैर सरकारी पत्रों की छान बीन करने से साफ़ पता चलता है कि यह साज़िश केवल वेलसली के दिमाग़ की कल्पना थी और दौलतराव पर चढ़ाई करने का कोई बहाना पैदा करने और उसे पूना से हटाने के लिए गढ़ी गई थी। पामर के नाम पत्र में 'और बातें पता लगाने' का अर्थ यह था कि पामर 'और बातें गढ़े' और मौक़े की झूठी गवाहियाँ तैयार करके वेलसली की कल्पना को सच्चाई का रूप दे।

इसी पत्र में वेलसली ने पामर को लिखा :—

"जो विशाल सेना इस समय सर जेम्स क्रेग के अधीन है वह अवध की सरहद पर जमा रहेगी, और मैं आशा करता हूँ कि जब सींधिया और अम्बाजी को इस बात का पता चलेगा तो वे कम्पनी के हित के विरुद्ध कोई भी कारवाई करने से रुके रहेंगे।"

इसका मतलब यह था कि जब और कोई चाल न चल सकी

तो इस ग़रज़ से, ताकि दौलतराव सींधिया डर कर अपने राज्य में वापस आजावे, इस बहाने वेलसली ने उसके राज की उत्तर पूर्वी सरहद पर अवध की समस्त अंगरेज़ी सेना लाकर खड़ी कर दी।

इतना ही नहीं, बल्कि वेल्सली ने इस समय तक पूरा इरादा कर लिया कि टीपू से निपटने के बाद दौलतराव सींधिया के साथ युद्ध शुरू कर दिया जाय, क्योंकि दौलतराव सींधिया ही उस समय मराठा साम्राज्य के अन्दर सब से ज़बरदस्त नरेश था। इस कार्य के लिए वेल्सली ने भारत के अन्य नरेशों को सींधिया के विरुद्ध फोड़ने के प्रयत्न शुरू कर दिए थे। करनल पामर के नाम पूर्वोक्त पत्र लिखने से बहुत पहले, अर्थात् नवाब वज़ीरअली के पत्रों (!) में वज़ीरअली और अम्बाजी की साज़िश का पता लगने से भी पहले वेल्सली ने कोलब्रुक नामक एक अंगरेज़ को बरार के राजा के दरबार में अपना दूत नियुक्त करके भेजा। कोलब्रुक को भेजने का उद्देश बरार के सैन्यबल का पता लगाना और टीपू और सींधिया दोनों के विरुद्ध बरार के राजा के साथ गुप्त साज़िश करना था।

दौलतराव के नाश की तजवीज़ें

३ मार्च सन् १७६६ से पहले वेलसली ने कोलब्रुक को एक पत्र में लिखा—

"बरार के राजा का इलाक़ा ऐसे मौक़े पर है कि दौलतराव सींधिया के विरुद्ध उसकी मदद हमारे लिए विशेष उपयोगी साबित होगी।"*

* "The local position of the Raja's territories appears to render him a peculiarly serviceable ally against Daulat Rao Scindhia —Governor General's letter to Colebrooke

इसी पत्र में वेल्सली ने कोलब्रुक को लिखा कि तुम्हें जिस बात की ओर लक्ष्य रखना चाहिए वह यह है कि बरार के राजा, निज़ाम और कम्पनी तीनों के बीच सींधिया और टीपू के विरुद्ध एक इस तरह की सन्धि हो जावे कि जिसमें बाजीराव पेशवा भी जब चाहे शामिल हो सके। किन्तु इसी पत्र में वेल्सली ने यह भी लिखा—

"× × × बरार के राजा अथवा पेशवा अथवा निज़ाम से सींधिया के विरुद्ध एक ऐसी सन्धि का प्रस्ताव करना जिसमें सींधिया का नाम आता हो, बुद्धिमत्ता नहीं है। इस विषय में पहले बरार के राजा के भाव जानने के लिए जो कुछ आप शुरू में कार्रवाई करें वह भी बहुत सावधानी से करनी चाहिए। हमें दिखाना चाहिए कि हमें डर टीपू सुलतान से है; और यद्यपि सन्धि में आम तौर पर 'सन्धि करने वाली शक्तियों का कोई और शत्रु' ये शब्द ले आने चाहिएँ, तथापि अभी कोई ऐसी बात सुझानी तक नहीं चाहिए, जिससे सींधिया का नाम सामने आ सके × × ×।

"इस लिए राजा के सामने आपको एक ऐसी सन्धि पेश करनी चाहिए जिसका वर्तमान और प्रकट उद्देश केवल टीपू सुलतान के हमला करने की सूरत में कम्पनी और राजा के परस्पर सहायता के वादे को स्पष्ट और मज़बूत कर लेना हो, किन्तु सन्धि के शब्द ऐसे रक्खे जायँ कि यदि हस्ताक्षर होने से पहले आवश्यकता पड़ जाय तो सींधिया का नाम बीच में जोड़ा जा सके।"*

---

* " . . . it is not prudent to propose to the Raja of Berar, or even to the Peshwa or to the *Nizam*, a treaty of defence nominally against

दौलतराव के विरुद्ध भोंसले को फोड़ने के प्रयत्न

वास्तव में टीपू बरार के राजा या अंगरेज़ों दोनों में से किसी पर भी हमला करने वाला न था, और न दौलत राव सींधिया उस समय तक किसी तरह का इरादा अंगरेज़ों के विरुद्ध कर रहा था। हमें स्मरण रखना चाहिए कि 'वज़ीरअली के पत्रों' की गप्प भी इसके बाद की गढ़ी हुई थी। किन्तु अंगरेज़ टीपू और दौलतराव दोनों के नाश का इरादा कर चुके थे। वेल्सली यह भी जानता था कि नागपुर के राजा भोंसले को खुले तौर पर निर्दोष दौलतराव के विरुद्ध फोड़ सकना इतना आसान नहीं है। ऊपर से अभी तक दौलतराव के साथ भी वेल्सली मित्रता दर्शा रहा था। इसलिए वह इस धोखे से दौलतराव के विरुद्ध दूसरों की सहायता को पक्का कर लेना चाहता था।

३ मार्च सन् १७९९ को वेल्सली ने एक "प्राइवेट" पत्र हैदराबाद

Scindhia Even the preliminary measures for ascertaining the disposition of the Raja of Berar on this subject, must be taken with the greatest caution The object of our apprehension should appear to be Tippu Sultan, and although any other enemy of the contracting powers' may be named in general terms, no suggestion should yet be given by which the name of Scindhia could be brought into question

' A treaty Might, therefore, be proposed to the Raja, the immediate and ostensible object of which should be to strengthen and define his defensive engagements against Tippu Sultan but the terms of which should be such as to admit the insertion of Scindhia's name, if such a measure should become necessary previously to the conclusion of the treaty "—Governor General's letter to Colebrooke enclosed in the Governor General's letter to Captain Kirkpatrick, dated 3rd March, 1799

के रेज़िडेण्ट कमान कर्कपैट्रिक को लिखा, जिसके साथ उसने पामर तथा कोलब्रुक दोनों के नाम के अपने पत्रों की नक़लें नत्थी कर दीं।

कोलब्रुक को नागपुर भेजने का ज़िक्र करते हुए वेलसली ने कर्कपैट्रिक को लिखा—

"अच्छा यह होगा कि बरार के राजा और कम्पनी के बीच यह सम्बन्ध हैदराबाद दरबार को बीच में लेकर पक्का किया जाय; और अन्त में शायद सींधिया और टीपू दोनों के विरुद्ध एक परस्पर सहायता की सन्धि कर ली जाय × × × जब तक मैसूर युद्ध समाप्त न हो तब तक सींधिया के साथ लड़ाई छेड़ना ठीक नहीं।"

वास्तव में निज़ाम पूरी तरह कम्पनी के हाथों में था। कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति सर एल्यूरेड क्लॉर्क इस समय कलकत्ते में था। ८ मार्च सन् १७९९ को मद्रास से वेलसली ने सर एल्यूरेड क्लॉर्क के नाम एक "प्राइवेट और गुप्त" पत्र लिखा जिसके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

दौलतराव की सरहद पर अंगरेज़ी सेना का जमाव

"मैंने जितने प्राइवेट पत्र आपको लिखे हैं उन सब में × × × मैंने बराबर यह इच्छा प्रकट की है कि (सींधिया की) उस ओर की सरहद पर ख़ासी सेना रक्खी जाय, ताकि यदि दौलतराव कभी कोई चाल चले तो उसे रोका जा सके।

× × ×

"मेरी इच्छा यह है कि आप फ़ौरन फिर से अवध में इतनी सेना जमा

कर लें जितनी × × × यदि सींधिया हिन्दोस्तान लौट आए तो उसकी सारी सेना के मुक़ाबले के लिए काफ़ी हो। आप इसका भी ध्यान रक्खें कि बहुत सम्भव है हमें स्वयं जल्दी ही सींधिया के राज्य पर हमला करना पड़े।

"बहुत मुमकिन है कि इस सेना के जमा होने से अम्बाजी और सींधिया को सन्देह हो जाय और वे आप से इस कार्रवाई का कारण पूछें। यदि ऐसा हो तो आप उनसे कह दीजियेगा कि वज़ीरअली बनारस से भाग गया है, डर है कि वह ज़मानशाह से मिल जाने का प्रयत्न न कर रहा हो, इस लिए उस आपत्ति का मुक़ाबला करने के लिए यह सब किया जा रहा है।"

और आगे चलकर—

"यदि लड़ाई शुरू होने लगे × × × तो आप राजपूतों को और सींधिया के दूसरे सामन्तों को उसके विरुद्ध भड़काने की हर तरह कोशिश कीजियेगा और जयनगर और जोधपुर के राजाओं को इस बात के लिए राज़ी कर लीजियेगा कि वे पूरे दिल के साथ इस युद्ध में भाग लें; साथ ही बाइयों (माधोजी सींधिया की विधवा रानियों) और लकवाजी दादा के पक्षवालों को तथा सींधिया कुल के उन लोगों और नौकरों को, जो दौलतराव के शासन से बैर रखते हों—इन सब को भड़काने और उनके प्रयत्नों में स्वयं सहायता देने के उचित उपाय कीजियेगा।"

सींधिया के सामन्तों को फोड़ने के प्रयत्न

अन्त में—

"मुझे यह नीति बिलकुल ठीक मालूम होती है कि ज्योंही हमें अपने मतलब का मौक़ा दिखाई दे, हम तुरन्त सींधिया के बल को नष्ट कर डालें, किन्तु जब तक सींधिया दक्खिन में है, और हमारी सेनाएँ टीपू सुलतान से

लड़ रही हैं, तब तक दक्खिन मे हमे दिक़ करने का सींधिया के पास काफ़ी सामान रहेगा; इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जब तक या तो सींधिया हिन्दोस्तान लौट न जाय और या टीपू सुलतान के साथ सन्धि होकर हमारी हालत ऐसी न हो जाय कि हम अधिक सफलता के साथ सींधिया की दग़ा के लिए उसे दण्ड दे सकें, तब तक सींधिया से लड़ाई न छेड़ी जाय।"

'दग़ा' सींधिया की ओर थी अथवा वेलसली की ओर, यह बात इतिहास के एक एक पन्ने से साफ़ ज़ाहिर है। किन्तु अब यह भी स्पष्ट था कि वेलसली सींधिया के नाश पर कटिबद्ध था, उसके उपाय सोच रहा था, अन्य भारतीय नरेशों को सींधिया के विरुद्ध भड़का रहा था, सींधिया राज्य के अन्दर जगह जगह विद्रोह खड़े करवा रहा था, स्वयं सींधिया कुल के अन्दर दौलतराव के विरुद्ध गुप्त साज़िशें कर रहा था और ऊपर से साफ़ झूठ बोलकर ऐन मौके तक निर्दोष सींधिया को धोखे में रखना चाहता था।

दौलतराव के नाश की ज़बरदस्त तय्यारी

दौलतराव ने जब यह सब समाचार सुने और उसे मालूम हुआ कि कम्पनी की सेना मेरी सरहद पर जमा हो रही है तो उसे विश्वास हो गया कि अंगरेज़ मेरे राज्य पर हमला करने वाले हैं। मजबूर होकर अब वह पूना छोड़ कर अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्तर की ओर चला आया। वेलसली की एक बहुत बड़ी इच्छा पूरी हो गई। उसके लिए अब टीपू को कुचल डालना और बाजीराव को

सींधिया का पूना से रवाना होना

जाल में फँसा सकना दोनों काम पहले से कहीं आसान हो गए।

८ अप्रैल सन् १७९९ को रेज़िडेण्ट पामर ने वेल्सली को पूना से लिखा—

मराठों पर झूठे दोष

"(सींधिया) के वकील रूआह गॉवर ने मुन्शी फ़क़ीरुद्दीन से कहा है × × × कि जब मैंने जाधो बौशार से सींधिया के दरबार के हालात पूछे तो बौशार ने मुझसे कहा कि पेशवा और सींधिया मिलकर निज़ाम पर हमला करने और अन्त में टीपू सुलतान के साथ सन्धि करने की तजवीज़ कर रहे हैं।"

अब हमें यह देखना होगा कि निज़ाम और अंगरेज़ों के विरुद्ध मराठों की जिस साज़िश की ओर ऊपर के पत्र में संकेत किया गया है वह कहाँ तक सच हो सकती थी और दौलतराव सींधिया अथवा पेशवा दरबार का उसमें कहाँ तक दोष पाया जाता है। निस्सन्देह इतिहास से पता चलता है कि नाना फ़ड़नवीस और दौलतराव सींधिया उन दिनों टीपू की ख़ासी क़द्र करते थे और अंगरेज़ों द्वारा टीपू के सर्वनाश को देश के लिए हितकर न समझते थे। यही कारण है कि अंगरेज़ भी पूना में दौलतराव की उपस्थिति से डरते थे। नाना और दौलतराव जैसे नीतिज्ञ इस बात को भी अच्छी तरह समझ रहे थे कि देशघातक निज़ाम से अंगरेज़ों को कितना लाभ और देश को कितनी हानि पहुँच रही थी। कुर्दला में निज़ाम और मराठों के बीच सन्धि हो चुकी थी। कुर्दला के संग्राम में कम्पनी की सबसीडीयरी सेना तक ने निज़ाम को सहायता देने

से इनकार कर दिया था। तथापि अदूरदर्शी निज़ाम अब फिर अंगरेज़ों ही के बहकाए में आकर कुर्दला की शर्तों को पूरा करने से इनकार कर रहा था। दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार निज़ाम के यहाँ से मराठों को 'चौथ' मिला करती थी। कुर्दला में निज़ाम ने नए सिरे से इस 'चौथ' को अदा करते रहने का वादा किया था। किन्तु अब वह फिर मराठों को 'चौथ' देने से इनकार कर रहा था। टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों के दोनों युद्धों में अंगरेज़ों को सब से अधिक सहायता निज़ाम से मिली। इस परिस्थिति में कोई आश्चर्य नहीं कि नाना और दौलतराव सींधिया निज़ाम पर हमला करके अपनी 'चौथ' वसूल करने और कुर्दला की शर्तों पर अमल कराने का विचार कर रहे हों। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, यदि पेशवा दरबार उस समय टीपू सुलतान के साथ अधिक घनिष्ट सम्बन्ध पैदा करने के फ़िक्र में हो। बहुत सम्भव है कि दौलतराव सींधिया के सेना सहित पूना में पड़े रहने का एक उद्देश यह भी रहा हो कि यदि अंगरेज़ निरपराध टीपू पर हमला करें तो दौलतराव टीपू की मदद के लिए पहुँच जाय। वेल्सली का बयान है कि टीपू के वकील इस अरसे में बराबर पूना मे ठहरे हुए थे और टीपू ने इस काम के लिए १३ लाख रुपए पेशवा दरबार के पास भेजे थे, ताकि पेशवा दरबार टीपू की मदद के लिए सेना तैयार कर सके। यदि ये सब बातें सच भी हों तो मराठों का अधिक से अधिक अपराध यह था कि वे निज़ाम से अपना हक़ वसूल करने और टीपू को कम्पनी के अन्याय से रक्षा करने का विचार कर रहे थे।

दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि अंगरेज़ रेज़िडेएटों की प्रथा के अनुसार पामर ने केवल दौलतराव सींधिया के विरुद्ध वेल्सली के हाथों को अधिक मज़बूत कर देने के लिए यह तमाम गप गढ़ी हो और झूठी गवाहियों से उसे पुष्ट करने का प्रयत्न किया हो। करनल पामर ने स्वयं पूर्वोक्त पत्र में वेल्सली को यह भी लिखा कि "इस ख़बर की सच्चाई अथवा विश्वास्यता के विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।" करनल पामर की दी हुई ख़बर सच्ची हो या न हो, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि वेलसली और पामर की नीयत बुरी थी। नाना और सींधिया के इरादों में कोई बात न्याय विरुद्ध न थी और ये दोनों जागरूक मराठा नीतिज्ञ भी कूटनीति में अपने अंगरेज़ विपक्षियों को न पा सके।

पेशवा दरबार के साथ चालें

दौलतराव सींधिया के पूना से हटते ही अंगरेज़ों ने पेशवा बाजीराव पर इस बात के लिए ज़ोर देना शुरू किया कि तुम कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लो। इस सन्धि की आवश्यकता दर्शाते हुए वेलसली ने यह लिखा कि कम्पनी को टीपू के साथ युद्ध छिड़ने की सम्भावना है, इसलिए अंगरेज़ अपने सब मित्रों की सहायता को पक्का कर लेना चाहते हैं। नाना अभी पूना में मौजूद था। उसकी सलाह से पेशवा बाजीराव ने सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार करने से इनकार कर दिया। किन्तु वेलसली ने फिर ज़ोर दिया। इस पर पेशवा दरबार ने बजाय कम्पनी के साथ 'सबसी-डीयरी' सन्धि करने के कम्पनी को टीपू के विरुद्ध सैनिक सहायता

देने का वादा कर लिया। फ़ौरन परशुराम भाऊ के अधीन एक सेना टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों की मदद के लिए तैयार कर दी गई।

इस सेना की तैयारी में पेशवा दरबार ने काफ़ी ख़र्च किया, किन्तु वेलसली जानता था कि टीपू पर अंगरेज़ों का हमला न्याय विरुद्ध है। वेलसली के दिल में चोर था, वह उस समय के हालात को भी देख रहा था। उसे भीतर से पेशवा दरबार पर विश्वास न हो सका। उसने पहले पेशवा को यह लिख दिया कि परशुराम भाऊ की सेना पूना के पास हरदम कूच के लिए तैयार रहे और मौक़े पर उसे मदद के लिए बुला लिया जायगा। उधर टीपू और अंगरेज़ों में लड़ाई छिड़ चुकी थी। पेशवा की सेना तैयार थी और बुलाने के इन्तज़ार में रही।

३ अप्रैल सन् १७९९ को वेलसली ने पामर को लिखा कि कम्पनी और उसके बाक़ी मददगारों अर्थात् निज़ाम, करनाटक आदिक की सेनाएँ टीपू सुलतान को परास्त करने के लिए काफ़ी हैं और पेशवा की सेना अब न बुलाई जायगी। पेशवा दरबार का सारा ख़र्च और परिश्रम व्यर्थ गया। वेलसली के इस इनकार का कारण ग्रॉएट डफ़ ने इस प्रकार बयान किया है—

"टीपू के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई छिड़ जाने के बाद, बावजूद ब्रिटिश रेज़िडेण्ट के बार बार एतराज़ करने के टीपू के वकीलों को खुले पूना दरबार मे आने दिया गया। १९ मार्च को करनल पामर को बाज़ाब्ता सूचना दी गई कि उन वकीलों को दरबार से अलग कर दिया गया है, किन्तु उसके बाद भी ये वकील पूना से केवल २५ मील नीचे एक ग्राम

कड़वी में ठहरे रहे। × × × ब्रिटिश रेज़िडेण्ट को यह भी मालूम हुआ कि बाजीराव को टीपू से १३ लाख रुपए मिले हैं, सींधिया की भी इसमें सलाह थी, किन्तु नाना फ़ड़नवीस को उस समय इसका हाल मालूम न था × × ×"।

ग्रॉण्ट डफ़ के कहने का मतलब यह है कि पेशवा दरबार ने ऊपर से अंगरेज़ों की मदद करने का वादा कर लिया था और भीतर से वह टीपू से मिला हुआ था। सम्भव है कि नाना फ़ड़नवीस और दौलतराव सींधिया की नीति इस प्रकार की रही हो। कोई आश्चर्य नहीं कि मराठे अपने कूटनीति के गुरु अंगरेज़ों से इस समय तक ये सब चालें सीख गए हों। निस्सन्देह वेल्सली और पामर जैसों के साथ इस तरह की चाल चलना उस समय मराठों के लिए इतना अधिक लज्जाजनक न था, जितना निरपराध टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद देना। फिर भी हम ऊपर लिख चुके हैं कि मराठों के समस्त इतिहास में एक भी घटना ऐसी नहीं मिलती जब कि उन्होंने अंगरेज़ों के साथ अपना वचन भङ्ग किया हो। इसके अतिरिक्त ३ अप्रैल सन् १७९९ के जिस पत्र में वेल्सली ने पामर को लिखा कि पेशवा की सेना अब न बुलाई जायगी उसमें इन १३ लाख का कहीं ज़िक्र नहीं और न टीपू के साथ पेशवा की साज़िश का कहीं ज़िक्र है। इसके अतिरिक्त वेल्सली को मराठों और टीपू की साज़िश का पता सब से पहले रेज़िडेण्ट पामर के उस पत्र से लगा, जो ८ अप्रैल सन् १७९९ को पूना से रवाना हुआ और वेल्सली का वह पत्र, जिसमें उसने

पेशवा की मदद लेने से इनकार किया, इससे पाँच दिन पहले अर्थात् ३ अप्रैल सन् १७९९ को मद्रास से चल चुका था।

वेल्सली ने अपने लम्बे पत्र में पेशवा की सहायता से इनकार करने के दो कारण बताए हैं। एक यह कि पेशवा ने अपनी सेना के लिए आवश्यक खर्च और सामान देने में कुछ देर की। यह एक ग़लत और व्यर्थ की बात थी। दूसरे यह कि पेशवा ने टीपू सुलतान के वकीलों को पूना में रहने दिया। इस दूसरे एतराज़ के जवाब में नाना ने पामर को याद दिलाया कि पहले मैसूर युद्ध के समय भी, जिसमें मराठा सेना ने अंगरेज़ों को ज़बरदस्त और निर्णायक मदद दी थी, टीपू के वकील बराबर पूना में रहते रहे, और हिन्दोस्तान के नरेशों में यह एक साधारण प्रथा थी। बल्कि इस बार वेल्सली के कहने पर पेशवा ने टीपू के वकीलों को पूना से अलग भी कर दिया था। फिर भी वेल्सली को विश्वास न हो सका और न हो सकता था। ग्रॉएट डफ़ का यह कहना भी कि सींधिया और पेशवा ने मिल कर कोई ऐसी बात की हो, जिसका जागरूक नाना को पता न हो, बुद्धि सङ्गत नहीं है। इसके अतिरिक्त वेल्सली यह भी जानता था कि यदि वह मराठा सेना को बुला लेता और वह सेना टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दे जाती तो टीपू से जो इलाक़ा लिया जाता उसका एक भाग मराठों को देना पड़ता, जिससे मराठों का बल और बढ़ जाता। वेल्सली इसे किसी तरह सहन न कर सकता था। इसके विपरीत वह मराठों के सर्वनाश की तदबीरें सोच रहा था। सींधिया की सेना पूना से हट चुकी थी, टीपू के

कुचलने के लिए निज़ाम, करनाटक इत्यादि की सेनाएँ काफ़ी थीं; इसी लिए वेल्सली ने पेशवा दरबार को अन्त समय तक झूठी आशा से लटकाए रक्खा और अन्त में अपनी स्थिति को काफ़ी मज़बूत देख कर पेशवा की सहायता लेने से इनकार कर दिया।

दूसरी ओर यदि नाना और पेशवा दरबार की नीयत कुछ और भी रही हो तो दो बातें स्पष्ट हैं। एक यह कि सत्य और न्याय की दृष्टि से वेल्सली की अपेक्षा टीपू और मराठों का पल्ला कहीं भारी था। दूसरी यह कि पेशवा दरबार अपनी नीति के अनुसार कार्य करने में अत्यन्त ढीला रहा। यदि उनका इरादा टीपू की मदद करना था तो केवल वेल्सली के बुलाने के इन्तज़ार में परशुराम भाऊ की सेना का पूना में रोके रखना एक घातक भूल थी।

पेशवा दरबार को झूठा लोभ

किन्तु अभी तक न श्रीरंगपट्टन का पतन हुआ था और न टीपू अंगरेज़ों के क़ाबू में आया था। अभी तक परशुराम भाऊ की सेना से अंगरेज़ों को नुक़सान पहुँच जाने की सम्भावना थी। इसलिए ३ अप्रैल ही के पत्र में वेल्सली ने एक और चाल चली। उसने पामर को लिखा—

"× × × मैं इसमें न चूकूँगा कि टीपू सुलतान से जो कुछ इलाक़े लिए जायँगे उनमें कम्पनी के अन्य मददगारों के साथ साथ पेशवा को भी बराबर का हिस्सा दिया जायगा। मैं आपको अधिकार देता हूँ कि आप अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में पेशवा और नाना दोनों को इस बात की सूचना दे दें × × × मुझे विश्वास है कि इससे कम से कम अपने दोनों मित्रों

(निज़ाम और पेशवा) की ओर ब्रिटिश सरकार का निस्वार्थ प्रेम साबित हो जायगा ।"

यह "निस्वार्थ प्रेम" का प्रदर्शन और उसके साथ यह वादा "अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में" किया गया । उसके साथ कोई किसी तरह की शर्त न थी । किन्तु इस वादे का उद्देश भी पेशवा दरबार को केवल झूठी आशाओं में फँसाए रखना था ।

श्रीरंगपट्टन के पतन का समाचार पाने से पहले पेशवा ने फिर एक बार वेल्सली को लिखा कि पेशवा दरबार की सेना को मदद के लिए बुला लिया जाय, किन्तु व्यर्थ ।

श्रीरंगपट्टन विजय के बाद मराठों की ओर वेल्सली का रुख़

४ मई को श्रीरंगपट्टन का पतन हुआ । उसी दिन टीपू की मृत्यु हुई । मैसूर राज अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । २३ मई सन् १७६६ को वेल्सली ने पूना के रेज़िडेण्ट के नाम एक और पत्र लिखा, जिसमें उसने एक दम अपना रुख़ बदल दिया और लिखा—

"जो इलाक़ा हमने जीता है उसका कोई हिस्सा पेशवा को देने से पहले मैं उस प्रबन्ध (अर्थात् सबसीडीयरी सन्धि) को पूरा करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ, जो कि मैंने ८ जुलाई सन् १७६८ की हिदायतों में आपको लिख भेजा है । और मैं आपसे बहुत जल्दी यह जानना चाहता हूँ कि यदि इस समय की स्थिति में ये सब प्रस्ताव फिर से पूना दरबार के सामने पेश किए जायँ तो पूना दरबार को मंज़ूर होंगे या नहीं ।"

इसका सीधा मतलब यह कि अब काम निकल चुका था ।

पेशवा के साथ वादा पूरा करने के लिए अब यह शर्त रक्खी गई कि पहले पेशवा निज़ाम की तरह अपनी सारी सेना बरख़ास्त कर दे और उसकी जगह कम्पनी की सेना अपने ख़र्च पर अपनी राजधानी के अन्दर रखना स्वीकार कर ले।

अंगरेज़ों के निकालने के नाना के अन्तिम प्रयत्न

नाना फड़नवीस अंगरेज़ों को ख़ूब पहचानता था। बीस साल पहले दिल्ली सम्राट के नाम अपने पत्र में वह कह चुका था कि—"इन टोपी वालों का व्यवहार बेईमानी और चालबाज़ी का है।" इन बीस वर्ष के अन्दर उसका यह विश्वास और भी ज़्यादा मज़बूत हो चुका था। किन्तु शायद नाना को भी यह आशा न थी कि वेल्सली इस प्रकार अपने वादे से फिर जायगा।

बीस साल पहले नाना ने दिल्ली के मुग़ल सम्राट की छत्र-छाया में भारत के समस्त स्वाधीन नरेशों को इन विदेशियों के विरुद्ध मिला लेने का प्रयत्न किया था, और उस समय के अंगरेज़ गवरनर जनरल को मराठों के साथ नाना की बताई हुई शर्तों पर सन्धि करनी पड़ी थी। किन्तु इस बीस साल के अन्दर हिन्दोस्तान की हालत और गिर चुकी थी। निज़ाम इस समय पूरी तरह अंगरेज़ों के हाथों में था। नाना के उस समय के सब से ज़बरदस्त साथी और अंगरेज़ों के कट्टर शत्रु हैदरअली तथा उसके वीर पुत्र टीपू सुलतान दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। जो विशाल राज्य हैदरअली ने अपने बाहुबल से विजय किया था, वह अब विदेशियों के हाथों में था। फिर भी नाना ने हिम्मत न हारी। उसने कम्पनी के साथ



नाना फ़ड़नवीस

[चित्रशाला प्रेस पूना की कृपा द्वारा]



सबसीडीयरी सन्धि करने से फिर साफ़ इनकार कर दिया और वेल्सली पर ज़ोर दिया कि जो इलाक़ा अंगरेज़ों ने टीपू से विजय किया है, उसका एक भाग वेल्सली के वादे के अनुसार पेशवा दरबार को दिया जाय। इसके अलावा मुग़ल सम्राट की आज्ञा के अनुसार पेशवा दरबार को सूरत के नवाब, हैदराबाद के निज़ाम और मैसूर दरबार से सालाना चौथ मिला करती थी। जब तक यह इलाक़े अंगरेज़ों के असर में न आए थे, तब तक मराठों को उनसे यह चौथ बराबर मिलती रही। अब सूरत और मैसूर दोनों कम्पनी के हाथों में थे और निज़ाम कम्पनी का एक बन्दी था। इसलिए नाना ने पेशवा दरबार की ओर से इन तीनों राज्यों की चौथ वेल्सली से तलब की और आइन्दा के लिए इसका फ़ैसला कराना चाहा। किन्तु नाना ने देख लिया कि वेल्सली इनमें से कोई एक बात भी पूरी करने को तैयार न था, वरन् इसके विपरीत वह अब और ज़ोरों के साथ समस्त मराठा सत्ता को नष्ट करने के उपायों में लगा हुआ था। मजबूर होकर नाना ने फिर एक बार परशुराम भाऊ की नई सेना को केन्द्र बनाकर उसके साथ समस्त मराठा नरेशों और सरदारों को निज़ाम और अंगरेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार किया।

मराठा जागीरदारों में फूट

किन्तु दुर्भाग्य से इस बार भी नाना को सफलता न मिल सकी। ठीक उस मौक़े पर, जब कि परशुराम भाऊ की सेना निज़ाम और अंगरेज़ों दोनों से फ़ैसला कर लेने के लिए तैयार हुई, अचानक

पेशवा के अनेक दक्षिणी जागीरदारों ने पेशवा के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया।

टीपू से युद्ध छेड़ते समय वेल्सली ने टीपू के सामन्तों और सरदारों को अपनी ओर मिलाने के लिए पाँच अंगरेज़ों का एक कमीशन नियुक्त किया था। श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद इन पाँच में से तीन अर्थात् करनल आरथर वेलसली, करनल बेरी क्लोज़ और कप्तान मैलकम का एक नया कमीशन नियुक्त हुआ, जिसका ज़ाहिरा उद्देश था मैसूर राज्य का नया बन्दोबस्त करना, किन्तु जिसका असली काम था टीपू के रहे सहे अनुयायियों को डराकर अथवा लोभ देकर वश में करना। मैसूर की सरहद पेशवा राज्य की दक्षिणी सरहद से मिली हुई थी और मराठों की ओर वेल्सली के प्रकट इरादों को देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं यदि पेशवा के दक्षिणी जागीरदारों के अचानक विद्रोह में, जो ठीक उस समय हुआ जिस समय कि यह कमीशन सरहद पर अपना काम कर रहा था, इस कमीशन का हाथ रहा हो।

नाना की मृत्यु

नाना फ़ड़नवीस को अंगरेज़ों पर अथवा निज़ाम पर हमला करने से पहले अपने दक्षिणी इलाके की ओर ध्यान देना पड़ा। परशुराम भाऊ की सेना इन विद्रोही जागीरदारों को परास्त करने के लिए भेजी गई। किन्तु अभी दक्षिण के ये विद्रोह पूरी तरह शान्त भी न हो पाए थे कि १३ फ़रवरी सन् १८०० ई० को नाना फ़ड़नवीस की मृत्यु हो गई। पूना दरबार में नाना फ़ड़नवीस ही एक जागरूक और दूरदर्शी

नीतिज्ञ था, जो अंगरेज़ों की चालों को थोड़ा बहुत समझता था। निस्सन्देह उसने अपने जीवन भर मराठा मण्डल के बल को बनाए रखने और भारत की स्वाधीनता की रक्षा करने के अनेक प्रयत्न किए। किन्तु उसके रास्ते में कई रुकावटें थीं। एक तो वह स्वयं न पेशवा था और न सेनापति। दूसरे मराठा मण्डल के अन्दर आए दिन के परस्पर झगड़ों और अंगरेज़ रेज़िडेण्टों की साज़िशों ने उसे कामयाब न होने दिया। नाना की मृत्यु के साथ साथ मराठा मण्डल के पुनरुज्जीवन की रही सही आशा समाप्त हो गई और अंगरेज़ों का मार्ग भारत के अन्दर कहीं अधिक सरल हो गया।

बाजीराव को फाँसने की चेष्टा

ऊपर लिखा जा चुका है कि पेशवा बाजीराव स्वयं निर्बल और अदूरदर्शी था। जब तक दौलतराव सींधिया और नाना फ़ड़नवीस जैसे प्रौढ़ नीतिज्ञों का पूना के दरबार में प्रभाव रहा तब तक अंगरेज़ बाजीराव को अपने जाल में न फँसा सके। बाजीराव को नाना और दौलतराव सींधिया से लड़ाने के भी अंगरेज़ों ने अनेक प्रयत्न किए। अब, जब कि नाना मर चुका था और सींधिया उत्तर में था, बाजीराव को फाँसने की वेल्सली ने फिर चेष्टा की। किन्तु दौलतराव सींधिया की अनुपस्थिति में भी दौलतराव का प्रभाव पूना के अन्दर बहुत काफ़ी था। २० अगस्त सन् १८०० को करनल वेल्सली ने मेजर मनरो (सर टॉमस मनरो) के नाम एक पत्र में लिखा कि—"पूना में सींधिया का प्रभाव इतना ज़बरदस्त है कि हमारी चाल नहीं चल सकती।" इसलिए वेल्सली की मुख्यतम

चाल इस समय यह थी कि दौलतराव के विरुद्ध बाजीराव के खूब कान भरे जायँ और किसी प्रकार बाजीराव को पूना से भगा कर एक बार अंगरेज़ी इलाके में लाया जाय और वहाँ पर उससे सबसीडीयरी सन्धि पर दस्तख़त करा लिए जायँ।

श्रीरङ्गपट्टन के पतन के बाद टीपू के एक सरदार मलिक जहान ख़ाँ ने, जिसका दूसरा नाम धूंडाजी वाघ या धूंडिया वाघ भी था, कुछ सेना जमा करके मैसूर के इलाके में इधर उधर घूम कर अंगरेज़ों को दिक़ करना शुरू कर दिया था। करनल वेल्सली के अधीन एक काफ़ी बड़ी सेना मलिक जहान ख़ाँ को दमन करने के लिए भेजी गई। किन्तु बाद में मालूम हुआ कि इस सेना को भेजने का गुप्त उद्देश कुछ और भी था।

मैसूर की सरहद बराबर मराठों की सरहद से मिली हुई थी।

पेशवा के साथ छल

गवरनर जनरल वेल्सली ने मित्रता के नाते पेशवा बाजीराव से प्रार्थना की कि इस सेना को, जो धूंडिया के नाश के लिए निकली थी, जहाँ जहाँ ज़रूरत हो पेशवा राज्य से होकर आने जाने की इजाज़त दे दी जाय। बाजीराव ने सब से पहली ग़लती यह की कि इतने महत्वपूर्ण मामले में बिना दौलतराव सींधिया से सलाह किए वेल्सली की प्रार्थना स्वीकार कर ली। करनल वेल्सली ने अब सैनिक आवश्यकता के बहाने नीचे से पेशवा के राज्य में घुसकर अनेक मारके के स्थानों पर चुपके से क़ब्ज़ा कर लिया। धीरे धीरे साबित हो गया कि इस सेना का गुप्त उद्देश पूना पर अचानक

चढ़ाई करके ठीक उसी प्रकार पेशवा दरबार को फाँसना था, जिस प्रकार कुछ वर्ष पहले मद्रास से एक सेना हैदराबाद भेजकर निज़ाम को फाँसा गया था। वेल्सली इस समय तक कलकत्ते लौट आया था। वहाँ से २३ अगस्त सन् १८०० को उसने मद्रास के गवरनर लॉर्ड क्लाइव के नाम, जो प्रसिद्ध क्लाइव का पुत्र था, एक पत्र में लिखा :—

"× × × सम्भव है कि करनल वेल्सली की अधिकांश सेना, निज़ाम की सेना और बम्बई से एक सेना को मिलकर हाल में पूना पर चढ़ाई करनी पड़े। इसलिए करनल वेल्सली इस बीच जहाँ कहीं आए जाए सदा इस सम्भावना को अपनी नज़र के सामने रक्खे।

"× × × उचित यह है कि करनल वेल्सली मराठा इलाक़े पर अपना क़ब्ज़ा बनाए रक्खे, × × × नीचे लिखी दोनों बातों में से कोई सी एक हो सकती है—पहली यह कि बाजीराव पूना छोड़ कर भाग आए और दूसरी यह कि दौलतराव सींधिया बाजीराव को रोके रक्खे। इन दोनों सूरतों में, यदि करनल वेल्सली ने अभी से मराठा सरहद के अन्दर अपने आपको पक्की तरह जमाए रक्खा, तो उसे पूना पर चढ़ाई करने में आसानी होगी। × × ×

"इसलिए आप फ़ौरन करनल वेल्सली को सूचना दे दें कि अंगरेज़ी सेना को आज्ञा दी जाती है और अधिकार दिया जाता है कि ज्योंही उसे बाजीराव के भाग आने या क़ैद कर लिए जाने की पक्की ख़बर मिल जाय फ़ौरन × × × अंगरेज़ी सेना पेशवा का नाम लेकर और पेशवा की ओर से कृष्णा नदी के किनारे तक सारे देश पर क़ब्ज़ा कर ले। इस सीमा के अन्दर

जिन जिन क़िलों या मज़बूत स्थानों को करनल वेल्सली अंगरेज़ी सेना के हाथों मे रखना उचित समझे, उन पर भी पेशवा के नाम से क़ब्ज़ा जमा लिया जाय।

"× × × करनल वेल्सली को सावधानी रखनी होगी कि देश के रहने वालों को यह तसल्ली देता रहे कि इन कार्रवाइयों से ब्रिटिश सरकार का केवल मात्र उद्देश यह है कि पेशवा को फिर से उसके न्याय्य अधिकार दिलवा दिए जायँ।"*

---

* ". . . it may become necessary for a large proportion of the troops under the command of Colonel Wellesley to proceed (in concert with those of the Nizam and with a detachment from Bombay) towards Poona. The intermediate motions of Colonel Wellesley must be guided with a view to this probable contingency.

". . . it is advisable that Colonel Wellesley should continue to occupy the Maratha territory, . . . In either of two possible events, . . . first, the flight of Baji Rao from Poona, second the seizure of His Highness's person by Daulat Rao Sindhia, in either of these cases Colonel Wellesley's secure establishment, within the Maratha frontier, would facilitate his advance towards Poona

"I, therefore, request your Lordship to inform Colonel Wellesley, without delay, that on his receiving authentic and unquestionable intelligence either of the flight or imprisonment of Baji Rao . . . the British army is directed and authorized to take immediate possession, in the name, and on the behalf, of the Peshwa, of all the country as far the bank of the Krishna Colonel Wellesley will also summon in the name of the Peshwa, such forts and strong places within the limits described as it shall be judged expedient for the British troops to occupy

". . . Colonel Wellesley . . . will take care to satisfy the inhabitants of the country that the British Government entertain no other view in them than the restoration of the Peshwa's lawful authority"—Marquis Wellesley's letter to Lord Clive, dated 23rd August, 1800

इस पत्र व्यवहार से ज़ाहिर है कि वेलसली का इस समय मुख्य उद्देश यह था कि बाजीराव को किसी तरह दौलतराव सींधिया से फोड़कर और उसे पूना से भगाकर उससे सबसीडीयरी सन्धि पर दस्तख़त करा लिए जायँ। इसी पत्र से यह भी ज़ाहिर है कि जो सेना करनल वेलसली के अधीन धूँडिया वाघ को वश में करने के बहाने भेजी गई थी, उसका मुख्य उद्देश पूना पर चढ़ाई करना था।

करनल पामर ने पूना में बहुतेरी कोशिश की कि बाजीराव या तो पूना छोड़ कर भाग जाय और या अंगरेज़ी सेना को स्वयं पूना बुला ले। दौलतराव सींधिया से उसे लड़ाने की भी तरह तरह से कोशिश की गई। किन्तु अभी तक सींधिया का प्रभाव काफ़ी था। पामर की न चल सकी और दोनों वेलसली भाइयों को फिर निराश होना पड़ा। ज़ाहिर था कि बिना युद्ध के मराठों से निबटारा न हो सकता था।

फिर भी बाजीराव की ग़लती के कारण दो ज़बरदस्त लाभ अंगरेज़ों को पहुँचे। एक यह कि उन्हें धूँडिया को पकड़ कर मार डालने का मौक़ा मिल गया, और दूसरे यह कि इस बहाने भावी मराठा युद्ध के लिए उन्हें पूना से नीचे के मार्गों, नदियों, क़िलों और ऊँच नीच का पूरा पता चल गया। इस विषय पर करनल वेलसली ने इसी समय के अनुभवों से अपने देश बन्धुओं की जानकारी के लिए एक पत्रिका लिखी, जिसमें उस इलाक़े का सैनिक दृष्टि से पूरा वर्णन दिया। इस पत्रिका का पहला वाक्य है

—"आशा है कि हमें जल्दी ही मराठों से युद्ध करना पड़े, इसलिए उसके उपाय जान लेना उचित है × × × ।"

मराठों को तजरुबा था कि लगभग २५ साल पहले राघोबा के पूना से भागने का नतीजा कितना बुरा हुआ था; इसलिए इस बार दौलतराव सींधिया ने इस बात की पूरी सावधानी की कि बाजीराव अपने पिता का अनुसरण करने न पावे।

सबसीडीयरी सन्धि के लिए पेशवा पर ज़ोर

वेलसली करनल पामर की मार्फ़त बाजीराव पर 'सबसीडीयरी' सन्धि के लिए बराबर ज़ोर देता रहा। होते होते बाजीराव किसी तरह राज़ी भी हो गया। इतिहास लेखक मिल लिखता है कि बाजीराव ने स्थायी तौर पर कम्पनी की छै पैदल पलटन सेना और उसी के अनुसार तोपख़ाने का ख़र्च देना स्वीकार कर लिया। इतना ही वेलसली चाहता था। इस ख़र्च के लिए बाजीराव ने उत्तर हिन्दोस्तान में २५ लाख रुपए सालाना का इलाक़ा भी अलग कर देने का वादा किया। अब वेलसली की माँग और बाजीराव के कहने में अन्तर केवल इतना रह गया कि वेलसली चाहता था कि यह सेना पेशवा के इलाक़े में रहा करे और बाजीराव कहता था कि सेना सदा कम्पनी के इलाक़े में रक्खी जाय और केवल उस समय पेशवा के इलाक़े में आए जब पेशवा को उसकी ज़रूरत हो। बाजीराव इस पर डट गया। जिस पत्र में पामर ने गवरनर जनरल को बाजीराव के इस प्रस्ताव की सूचना दी उसी में पामर ने लिखा—"मुझे डर है कि जब तक असन्दिग्ध नाश सामने खड़ा

हुआ दिखाई न देगा तब तक बाजीराव इससे अधिक के लिए राज़ी न होगा।"* इतिहास लेखक मिल ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में दिखाया है कि किस प्रकार पेशवा की भलाई दिखा कर अंगरेज़ इस समय उसकी स्वाधीनता पूरी तरह हर लेने के प्रयत्न कर रहे थे और यही प्रयत्न अन्य मराठा राज्यों में भी जारी थे, अर्थात् अन्य मराठा नरेशों को भी इसी तरह की सबसीडीयरी सन्धियों में फाँसने के प्रयत्न किए जा रहे थे।

बाजीराव के वेल्सली की पूरी बात न मानने का कारण स्पष्ट था। निज़ाम की मिसाल उसकी आँखों के सामने थी। वह जानता था कि निज़ाम को अंगरेज़ों की दोस्ती के मूल्य में सन् १७९८ में अपने राज का एक भाग कम्पनी को दे देना पड़ा था। सन् १८०० में सन् १७९८ की सन्धि को तोड़कर निज़ाम का और अधिक, और पहले से कहीं बड़ा इलाक़ा उससे ले लिया गया। टीपू के साथ दोनों युद्धों में अर्थात् सन् १७९२ में और सन् १७९९ में निज़ाम ने धन और सेना से दोनों तरह अंगरेज़ों को मदद दी। विजित इलाके में से निज़ाम को एक हिस्सा दिया गया। किन्तु दोस्ती के बदले में फिर वह तमाम इलाक़ा निज़ाम से छीन लिया गया। नतीजा यह हुआ कि सन् १७९० में निज़ाम के पास जितना इलाक़ा था, सन् १८०० में उससे कहीं कम रह गया। इसके अतिरिक्त निज़ाम की स्वाधीनता का इस अरसे में अन्त हो गया और

* "I apprehend, that *nothing short of imminent and certain destruction* will induce him (the Peshwa) to make concession . . . etc."—Colonel Palmer's letter to Governor General

क्रियात्मक दृष्टि से वह कम्पनी के हाथों का केवल एक क़ैदी रह गया। ये सब बातें बाजीराव को मालूम थीं और यही कारण था कि वह कम्पनी की दोस्ती आधे दिल से स्वीकार कर रहा था और कम्पनी की सबसीडीयरी सेना को अपने राज से बाहर रखना चाहता था।

रेज़िडेण्ट के नाम वेल्सली का 'गुप्त' पत्र

मालूम होता है वेल्सली भी बाजीराव की बात मान लेने के लिए कुछ कुछ राज़ी था और अधिक के लिए प्रयत्न भी कर रहा था। इस बीच पामर को पूना दरबार से हटाकर करनल क्लोज़ को उसकी जगह रेज़िडेण्ट नियुक्त किया गया। यह वही करनल क्लोज़ था, जो कमीशन के एक मेम्बर की हैसियत से टीपू के आदमियों को अपनी ओर फोड़ने में काफ़ी तजरुबा हासिल कर चुका था और उसके बाद कुछ दिनों नए मैसूर राज्य में रेज़िडेण्ट का काम भी कर चुका था। २३ जून सन् १८०२ को वेल्सली के सेक्रेटरी एडमॉन्स्टन ने करनल क्लोज़ के नाम एक 'गुप्त' पत्र में लिखा—

"एक ब्रिटिश सेना का ख़र्च बरदाश्त करने की तजवीज़ के साथ पेशवा ने जो शर्तें लगा दी है, उन्हें यदि हम मान लें तो भी इस तजवीज़ द्वारा तुरन्त कुछ न कुछ दर्जे तक पेशवा अवश्य अंगरेज़ों की ताक़त के अधीन हो जायगा। × × × जब कोई राज किसी अंश मे एक बार दूसरे की शक्ति के अधीन हो जाता है, तो फिर स्वभावतः उसकी पराधीनता बढ़ती जाती है। जब वह एक बार किसी विदेशी ताक़त की मदद के सहारे अपने लई

सुरक्षित समझने लगता है तो फिर उसकी सावधानी और जागरूकता में ढीलापन आने लगता है। जिस तरह की सन्धि का प्रस्ताव किया जा रहा है, उसका एक परिणाम यह भी होगा कि पूना का दरबार मराठा साम्राज्य के दूसरे सदस्यों से फूट जायगा, जिससे ब्रिटिश सत्ता के ऊपर पेशवा की पराधीनता और भी अधिक वेग के साथ बढ़ती जायगी।"

और आगे चलकर इस पत्र में लिखा है—

"यदि हमने पेशवा के साथ इस तरह की सन्धि कर ली तो फिर समस्त मराठा राज्यों के आपस में मिल जाने की सम्भावना जाती रहेगी, × × × मराठा साम्राज्य की किसी एक शाखा के साथ इस तरह का पृथक सम्बन्ध क़ायम कर लेने से न केवल हमारी स्थिति ही अधिक मज़बूत हो जायगी, बल्कि इससे धीरे धीरे एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा हो जायगी जिससे मजबूर होकर उस साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे राज्यों को भी हमारे साथ इसी तरह की सन्धि स्वीकार करनी पड़ेगी।"*

---

* "The measure of subsidizing a British force, even under the limitations which the Peshwa has annexed to that proposal, must immediately place him in some degree in a state of dependence upon the British Power, *The dependence of a state of any degree upon the power of another naturally tends to increase* A sense of security derived from the support of a foreign power, produces a relaxation of vigilance and caution Augmenting the dependence of the Peshwa on the British Power under the operation of the proposed engagements, would be accelerated by the effect which those engagements would produce of detaching the state of Poona from the other members of the Maratha Empire"

"The conclusion of such engagements with the Peshwa would preclude the practicability of general confederacy among the Maratha state. This separate connection with one of the Branches of the Maratha Empire would not only contribute to our security, but would tend to produce

एक दूसरे पत्र में मार्किस वेल्सली ने लिखा है कि यदि किसी एक भी मराठा नरेश ने कम्पनी के साथ इस तरह की सन्धि स्वीकार करली तो परिणाम यह होगा कि—"तमाम मराठा रियासतें अंगरेज़ सरकार के अधीन हो जायँगी: जो इस सन्धि को स्वीकार कर लेंगी वे सन्धि द्वारा हमारे अधीन हो जायँगी और जो स्वीकार न करेंगी वे सन्धि से वञ्चित रहने के कारण हमारे अधीन हो जायँगी।"*

वेल्सली का दूसरा 'गुप्त' पत्र

ऊपर के "गुप्त" पत्रों की भाषा निष्कपट है और उनसे देशी रियासतों की और अंगरेज़ों की नीयत साफ़ ज़ाहिर है; 'सबसीडीयरी' सन्धियों का एक मात्र उद्देश यह था कि हिन्दोस्तान के राज्यों की स्वाधीनता छीनकर और उन्हें एक दूसरे से फाड़ कर विदेशी सत्ता के आश्रित बना लिया जाय; फिर भी जिन नरेशों के साथ ये सन्धियाँ की जाती थीं उन्हें बड़े विस्तार के साथ बताया जाता था कि ये सब निस्वार्थ प्रयत्न केवल तुम्हारे भले और तुम्हारे कल्याण के लिए किए जा रहे हैं।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि वेल्सली का लक्ष्य इस समय मराठों

---

a crisis of affairs which may compel the remaining states of the Empire to accede to the alliance "—Secret letter dated 23rd June, 1802, from N B Edmonstone Secretary to Government, to Lt Colonel Close Resident at Poona.

* "Every one of the Maratha states would become *dependent* upon the English *Government*, *those* who accepted the alliance, by the alliance, those who did *not* accept it, by being *deprived of it*"—Marquis Wellesley as quoted by *Mill*, vol vi, p 271.

के समस्त बल को तोड़ना था। इसीलिए वह इस प्रयत्न में था कि पहले किसी भी एक मराठा नरेश के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर ली जाय। इतिहास लेखक मिल ने बड़ी अच्छी तरह दिखलाया है कि किस प्रकार वेलसली "एक एक कर तमाम मराठा रियासतों की स्वाधीनता हर लेने की आशा करता था।"

दक्षिण में करनल क्लोज़ बाजीराव को समझा बुझा रहा था और उत्तर में करनल कॉलिन्स दौलतराव सींधिया को 'सबसीडीयरी' सन्धि के जाल में फाँसने की कोशिशें कर रहा था।

दौलतराव की दूरदर्शिता

किन्तु दौलतराव काफ़ी समझदार और दूरदर्शी था। कॉलिन्स के अनेक तरह समझाने बुझाने पर भी उसने न केवल स्वयं वेलसली और कॉलिन्स की चालों में आने से इनकार किया, वरन् इस बात पर भी ज़ोर दिया कि मराठा मण्डल के सदस्य की हैसियत से पेशवा के मामलों में दख़ल देने का भी मुझे अधिकार है। उसने इस बात की पूरी कोशिश की कि पेशवा भी इस नई सन्धि की चाल में न आने पावे। वेलसली को अपनी असफलता की सूचना देते हुए कॉलिन्स ने लिखा :—

"सींधिया और अंगरेज़ सरकार के बीच इस समय जो मित्रता क़ायम है उसे बनाए रखने के लिए सींधिया उत्सुक है। साथ ही आपको यह सूचित कर देना मैं अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ कि मुझे पक्का विश्वास है कि इस सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए वह क़तई राज़ी नहीं हो सकता।"*

* "Sindhia was anxiously desirous to preserve the relations of friend-

इतिहास लेखक मिल ने करनल कॉलिन्स के इन वाक्यों का भाषान्तर इस प्रकार किया है :—

"दूसरे शब्दों में सींधिया अभी तक इतना नीच न हो पाया था कि स्वयं जान बूझ कर उस स्थिति में चला आता जिससे वेल्सली की 'परस्पर-सैनिक-सहायता-सन्धि' की प्रणाली में एक बार शामिल होकर वह अवश्य गिर जाता।"†

कॉलिन्स ने अब वेल्सली पर ज़ोर दिया कि पहले पेशवा ही को वश में करने का प्रयत्न किया जाय। उधर करनल क्लोज़ वेल्सली को लिख चुका था कि—"जब तक असन्दिग्ध नाश सामने खड़ा हुआ दिखाई न देगा तब तक बाजीराव इससे अधिक के लिए राज़ी न होगा।" इस लिए अब किसी न किसी प्रकार 'असन्दिग्ध नाश' बाजीराव के सामने खड़ा कर देना आवश्यक था।

उधर दौलतराव सींधिया को भी इस बात की चिन्ता थी कि बाजीराव कहीं अंगरेज़ों की चालों में न आ जाय। वह समझता था कि पेशवा के सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार करने का परिणाम मराठा मण्डल के लिए घातक होगा। इस बीच वह फिर एक बार

ship at that time subsisting between him and the English Government At the same time, I consider it my indispensable duty to apprise your excellency that I am firmly persuaded he feels no inclination whatever to improve these relations"—Resident Collins' letter to the Governor General, Mill vol vi, p 272

† "In other words he (Sindhia) was not yet brought so low, as willingly to descend into that situation in which a participation in the 'system of defensive alliance and mutual guarantee' would of necessity place him" —Mill, vol vi, p 272

मौक़ा पाकर पूना लौट आया। वेल्सली और उसके साथियों को अब एक और नया और अधिक प्रबल कुचक्र रचना पड़ा।

जसवन्तराव का अंगरेज़ों से मिल कर दौलतराव पर हमला

ऊपर आ चुका है कि जसवन्तराव होलकर इस समय नागपुर में था और विट्ठोजी होलकर कोल्हापुर में था। वेल्सली ने इन दोनों को अपनी ओर फोड़ा। अंगरेज़ दूत कोलब्रुक बरार के राजा को सींधिया के विरुद्ध फोड़ने के लिए नागपुर पहुँच चुका था। कोलब्रुक को अब तक काफ़ी सफलता प्राप्त हो चुकी थी। इधर दौलतराव सींधिया के राजपूत सामन्तों और माधोजी सींधिया की विधवाओं को अपनी ओर करने में भी वेल्सली को चुपचाप बहुत अंशों में सफलता मिल चुकी थी। अंगरेज़ों ने अब जसवन्तराव होलकर को दौलतराव सींधिया के विरुद्ध तैयार किया और अंगरेज़ों की मदद से जसवन्तराव ने नागपुर से भाग कर सेना जमा करके सींधिया के राज पर हमला कर दिया और सींधिया के इलाक़े को लूटना और बरबाद करना शुरू किया।

होलकर और सींधिया की आपसी लड़ाई

दौलतराव को इस अचानक हमले का समाचार सुनते ही फिर पूना छोड़ कर मालवा की ओर लौट आना पड़ा। किन्तु इस बार वह अपनी विशाल सेना में से पाँच पलटन पैदल और दस हज़ार सवार पूना छोड़ गया। शेष सेना लेकर वह मालवा पहुँचा। कई स्थानों पर होलकर और सींधिया की सेनाओं में

संग्राम हुए, जिनमें विजय कभी एक ओर रही और कभी दूसरी ओर। दौलतराव ने जसवन्तराव के साथ सुलह करना चाहा। जसवन्तराव एक बार राज़ी भी हो गया। किन्तु जसवन्तराव इस समय विदेशियों के हाथों का केवल एक शस्त्र था। एक बार राज़ी होकर उसने फिर सींधिया के साथ विश्वासघात किया।

दौलतराव की अनुपस्थिति में पूना में उपद्रव

उधर सींधिया के दक्खिन से चलते ही पूना में फिर उपद्रव खड़े हो गए। विट्ठोजी होलकर ने कोल्हापुर में पेशवा के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। पेशवा की सेना ने विद्रोही विट्ठोजी को गिरफ़्तार करके ख़त्म कर दिया। जसवन्तराव होलकर विट्ठोजी की मृत्यु का बदला लेने के बहाने अपनी सेना सहित मालवा से पूना की ओर बढ़ा। पेशवा और सींधिया दोनों कम्पनी के दोस्त थे। फिर भी मार्किस वेल्सली के पत्रों से साफ़ ज़ाहिर है कि अंगरेज़ इस समय जसवन्तराव को हर तरह मदद दे रहे थे। करनल वेल्सली के अधीन अंगरेज़ी सेना भी पूना के पास तक आ पहुँची थी। इस हालत में जसवन्तराव को बढ़ते देख कर ११ अक्तूबर सन् १८०२ को पेशवा बाजीराव ने घबराकर वेल्सली की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। उसने रेज़िडेण्ट को लिख भेजा कि कम्पनी की जिस सबसीडीयरी सेना का ख़र्च देना मैंने स्वीकार कर लिया है, उसके स्थाई तौर पर रहने के लिए मैं अपने राज के अन्दर तुङ्गभद्रा नदी के पास एक ज़िला दे दूँगा और उसके ख़र्च के लिए भी गुजरात अथवा करनाटक में २५ लाख रु० सालाना

आमदनी का इलाक़ा अलग कर दूँगा। वेल्सली की इच्छा अब १६ आने पूरी हो गई। बाजीराव का पत्र पाते ही उसने उस तजवीज पर अपने दस्तख़त कर दिए। इतने ही में होलकर की सेना पूना तक पहुँच गई।

२५ अक्तूबर सन् १८०२ को पूना में एक ज़बरदस्त संग्राम हुआ। मालूम होता है कि दौलतराव स्वयं इस संग्राम में न पहुँच सका, किन्तु पूना से चलते समय वह पाँच पलटन पैदल और दस हज़ार सवार अपनी सेना के पूना में छोड़ गया था। होलकर की सेना एक ओर और पेशवा और सींधिया की सेनाएँ दूसरी ओर। सींधिया की सेनाएँ अभ्यस्त और शिक्षित थीं। उनके मुक़ाबले में होलकर की सेनाएँ अनभ्यस्त थीं। एक बार मालूम होता था कि विजय पेशवा की ओर रहेगी। किन्तु ऐन मौक़े पर सींधिया की सेना का यूरोपियन सेनापति कप्तान फ़ाइलॉस निस्सन्देह वेल्सली के इशारे पर अपने मालिक के साथ दग़ा करके होलकर से मिल गया और सींधिया और पेशवा की संयुक्त सेनाओं को हार खानी पड़ी।

पूना का संग्राम

अदूरदर्शी बाजीराव को अन्त समय तक आशा थी कि अंगरेज़ी सेना, जिसे अपने ख़र्च पर अपने राज में रखना तक वह स्वीकार कर चुका था और जो इस समय पूना पहुँच चुकी थी, विद्रोही होलकर के विरुद्ध मेरी मदद करेगी। किन्तु अंगरेज़ होलकर ही की मदद करते रहे और होलकर और बाजीराव दोनों को अपने हाथों में

होलकर और पेशवा में मेल की आशा

खिलाकर और दोनों को एक दूसरे से लड़ाकर अपना काम निकालते रहें। गवरनर जनरल वेलसली और रेज़िडेएट क्लोज़ की इच्छा अब पूरी हो गई। "असन्दिग्ध नाश" अब पराजित पेशवा की आँखों के सामने दिखाई देने लगा।

इतिहास लेखक मिल लिखता है कि इस समय एक बार बाजीराव ने इस बात की भी इच्छा प्रकट की कि बाजीराव और जसवन्तराव में सुलह हो जाय। मिल यह भी स्पष्ट लिखता है कि जसवन्तराव होलकर भी इस सुलह के लिए तैयार था, वह बाजीराव से मिलना चाहता था और चाहता था कि बाजीराव पेशवा बना रहे और पेशवा के साथ मेरा सम्बन्ध वैसा ही रहे जैसा सींधिया और मराठा मण्डल के अन्य सदस्यों का।* ग्रॉएट डफ़ लिखता है कि बाजीराव के पूना से चले जाने के बाद भी जसवन्तराव ने फिर एक बार उसे पूना बुला लेने का प्रयत्न किया।

बाजीराव का पूना छोड़ना

किन्तु बाजीराव और जसवन्तराव में मेल कम्पनी के लिए हितकर न था। गवरनर जनरल वेलसली के पत्रों में साफ़ लिखा है कि वेल्सली को उस समय मुख्य चिन्ता किसी प्रकार बाजीराव को पूना से भगाकर अपने चङ्गुल में करने की थी। असहाय बाजीराव जसवन्तराव से हार खाते ही अंगरेज़ रेज़िडेएट की सलाह से पूना से भागकर सिंहगढ़, सिंहगढ़ से रायगढ़, रायगढ़ से म्हाड़ और फिर स्वर्ण दुर्ग इत्यादि होता हुआ, कम्पनी के एक जहाज़ में बैठकर

---

* Mill, book vi, Chapter ii

जो ख़ास तौर पर इस काम के लिए भेजा गया था, १६ दिसम्बर सन् १८०२ को बसई पहुँच गया।

२४ दिसम्बर सन् १८०२ को वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र में लिखा :—

"मराठा साम्राज्य के अन्दर हाल में जो झगड़े खड़े हो गए हैं उनसे एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है जो ब्रिटिश सत्ता के स्थायित्व के लिए अत्यन्त महत्व की है। × × × मालूम होता है कि देश के इस भाग में अङ्गरेज़ कौम के हितों को ठोस और चिरस्थायी नींवों पर उन्नति देने का इस संयोग से बढ़कर अत्यन्त लाभदायक अवसर पहले कभी न आया था।"

और आगे चलकर :—

"ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को पूरी तरह पक्का कर लेने का इससे बढ़कर मौक़ा मुझे कोई नज़र न आ सकता था। × × ×"*

होलकर का अमृतराव को पेशवा बनाना

अंगरेज़ अब इस सफ़ाई के साथ जसवन्तराव होलकर और पेशवा बाजीराव दोनों को एक साथ खिला रहे थे कि एक ओर वे बाजीराव को अपने साथ भगा कर बसई ले गए और दूसरी ओर

* "The recent distractions in the Maratha Empire have occasioned a combination of the utmost importance to the stability of the British Power . . . a conjuncture of affairs which appeared to present the utmost advantageous opportunity that has ever occured, of improving the British interests in that quarter on solid and durable foundations

"This crisis of affairs appeared to me to afford the most favourable opportunity for the complete establishment of the interests of the British Empire, . . ."—Lord Wellesley to the Court of Directors, dated 24th December, 1802

रेज़िडेण्ट क्लोज़ विजयी होलकर के साथ पूना में रहा। राघोबा के दो पुत्र थे, जिनमें बड़ा बाजीराव था। इन दोनों के अतिरिक्त राघोबा ने एक तीसरे बालक अमृतराव को गोद ले रक्खा था। जसवन्तराव होलकर को जब बाजीराव के साथ सुलह करने में सफलता न मिल सकी तो मजबूर होकर उसने और उसके सलाहकारों ने बाजीराव के पूना से भाग जाने का अर्थ पदत्याग लिया और उसकी जगह अमृतराव को पेशवा की मसनद पर बैठा दिया। निस्सन्देह यह कार्य रेज़िडेण्ट क्लोज़ की मौजूदगी में और उसकी राय से किया गया।

बसई में पेशवा का सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार करना

दूसरी ओर बसई में अंगरेज़ों ने बाजीराव से यह वादा किया कि तुम्हे फिर से पूना ले जाकर पेशवा की मसनद पर बैठा दिया जायगा। ३१ दिसम्बर सन् १८०२ को बाजीराव से एक नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त करा लिए गए। इस सन्धि द्वारा बाजीराव ने सबसीडीयरी सेना का जुआ अपने कन्धे पर रख लिया, सबसीडीयरी सेना को अपने राज में रहने की इजाज़त दे दी, उसके ख़र्च के लिए अपना एक इलाक़ा कम्पनी के नाम कर दिया, आइन्दा के लिए वादा किया कि बिना अंगरेज़ों की सलाह के पेशवा दरबार किसी दूसरे भारतीय नरेश के साथ किसी तरह का सम्बन्ध क़ायम न करेगा, और अन्य अनेक ऐसी शर्तें स्वीकार कर लीं, जिन्हें पूना में रहते हुए वह कभी स्वीकार न करता। पेशवा बाजीराव अब सर्वथा अंगरेज़ों की इच्छा के अधीन

होगया। लगभग पचास वर्ष से अंगरेज़ नीतिज्ञ मराठा मण्डल को फोड़ने के लिए अनेक जोड़ तोड़ लगा रहे थे। लगातार चार वर्ष से गवरनर जनरल वेल्सली इन्हीं प्रयत्नों में लगा हुआ था। अब वेल्सली के प्रयत्न सफल हुए और जिस बात को रोकने का दौलतराव सींधिया अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहा था वह अन्त में हो गई।

बसई की सन्धि में बाजीराव की विवशता

जिस तरह विवश होकर पेशवा बाजीराव ने बसई की सन्धि पर दस्तखत किए उसके विषय में एक अंगरेज़ लेखक लिखता है :—

"× × × बाजीराव जानता था कि विदेशियों के साथ इस सन्धि को स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि मेरी राजनैतिक स्वाधीनता का सर्वथा अन्त हो जायगा। यह बात सदा उसकी आँखों के सामने रहती थी अथवा उसके आस पास के लोग उसे सुनाते रहते थे कि टीपू का अन्त क्या हुआ, और कम्पनी की सबसीडीयरी सेना को अपने राज में रखने के कारण निज़ाम की दशा कितनी अपमानजनक और पराधीन होगई; इससे हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि बाजीराव ने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवश होकर बसई की सन्धि को स्वीकार किया।"*

---

* " accepting the terms of a foreign alliance, which he was aware would lead to a total annihilation of his political independence The fate of Tipu and the state of humiliating dependence to which the Nizam had been reduced by the acceptance of our subsidiary force were always present to his imagination or sounded in his ears, by those who were

बसई की सन्धि से मराठा मण्डल की सत्ता और स्वाधीनता दोनों समाप्त होगईं, और "अंगरेज़ों तथा राघोबा के परस्पर सम्बन्ध के कारण" राघोबा के अदूरदर्शी और निर्बल पुत्र के पेशवा की मसनद पर बैठाए जाने से नाना फ़ड़नवीस ने जो आशङ्कायें बरसों पहले प्रकट की थीं वे सच्ची साबित हुईं।

---

near him, and we may conclude that it was not without great reluctance that he consented to the treaty of Bassein"—*Origin of the Pindaries etc*, by an Officer in the service of the Honourable East India Company, 1818



इक्कीसवाँ अध्याय

बाजीराव का पुनरभिषेक

वसई की सन्धि से मराठा मंडल में क्षोभ

वसई की सन्धि भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य के संस्थापन में एक विशेष सीमाचिन्ह थी। इस सन्धि की ख़बर पाते ही सींधिया तथा अन्य स्वाधीन मराठा नरेशों का परेशान होना स्वाभाविक था। पूना में अब कोई समझदार नीतिज्ञ इस बात के पक्ष में न था कि निर्बल बाजीराव वसई की सन्धि अपने ऊपर लादे हुए पूना वापस आवे और विदेशी सङ्गीनो के बल फिर से पेशवा की मसनद पर बैठे।

किन्तु कम्पनी का जसवन्तराव होलकर तथा अमृतराव दोनो से काम निकल चुका था। मिल लिखता है—

"इस समय ब्रिटिश गवरमेण्ट का ध्यान दो महान उद्देश्यों की ओर लगा हुआ था। पहला यह कि बाजीराव को फिर से पेशवा बनाया जाय,

और उसे सत्ता की उस शिखर तक पहुँचा दिया जाय जो नाम मात्र को उसके किन्तु वास्तव में ब्रिटिश गवरमेण्ट के हाथों में रहे, और जिस पर से अंगरेज़ शेष मराठा राज्यों को भी अपने वश मे रख सकें। दूसरा यह कि इस घटना से लाभ उठाकर बाक़ी के अधिक शक्तिशाली मराठा नरेशों पर भी इसी तरह की सन्धियाँ लाद दी जायँ।"*

बहुत सम्भव है कि यदि होलकर ने पूना की विजय के बाद फ़ौरन बाजीराव का पीछा करके उसे गिरफ़्तार कर लिया होता, या यदि बाजीराव ही बजाय बम्बई की ओर भागने के सींधिया के पास चला गया होता, तो कम से कम कुछ समय के लिए मराठों का साम्राज्य इस देश में और जीवित रह गया होता। किन्तु बाजीराव और होलकर दोनों अंगरेज़ों के हाथों में खेल रहे थे।

बाजीराव को पूना वापस लाने में गवरनर जनरल ने जान बूझ कर कुछ देर की। इसके दो कारण थे। पहला कारण मिल के अनुसार यह था कि बावजूद ३१ दिसम्बर की सन्धि के वेलसली बराबर इस बात के प्रयत्न कर रहा था कि बाजीराव को दबा कर जहाँ तक हो सके कम्पनी के लिए और अधिक रिआयतें उससे प्राप्त कर ली जायँ और दूसरे वेलसली समझता था कि बाजीराव

* "Two grand objects now solicited the attention of the British Government. The first was the restoration of the Peshwa, and his elevation to that height of power, which, nominally his, actually that of the British Government, might suffice to control the rest of the Marhatta states The next was, to improve this event for imposing a similar treaty upon others of the more powerful Marhatta princes, ..."—Mill, vol vi, Chap 2 p 278

को फिर से पेशवा बनाने के बाद ही सींधिया और मराठा मण्डल के अन्य सदस्यों के साथ अंगरेज़ों को युद्ध करना पड़ेगा और बाजीराव को पूना लाने से पहले वह इस युद्ध की पूरी तैयारी कर लेना चाहता था।

इसी बीच ताकि जसवन्तराव के पैर पूना में मजबूती से जमने न पावें, जसवन्तराव और पेशवा अमृतराव में कुछ अनबन पैदा करवा दी गई। इतिहास लेखक ग्रॉण्ट डफ़ लिखता है कि यद्यपि शुरू में जसवन्तराव का व्यवहार अत्यन्त विनम्र था फिर भी बाद में उसे पूना निवासियों से धन वसूल करना पड़ा। पूना के नगर निवासियों की इस लूट के समय भी करनल क्लोज़ जसवन्तराव के साथ मौजूद था।

इस सब के बाद केवल बाजीराव को पूना लाने और उसके साथ साथ कम्पनी की 'सबसीडीयरी' सेना को पूना में क़ायम करने का काम बाक़ी था। करनल क्लोज़ अब चुपके से पूना छोड़कर बाजीराव से जा मिला।

अंगरेज़ों की पूना पर चढ़ाई करने की योजना

दक्खिन में एक विशाल सेना पूना पर चढ़ाई करने और वहाँ की स्थिति ठीक करने के लिए जमा की गई। इस काम के लिए कम्पनी को किसी अपनी पृथक सेना की आवश्यकता न थी। मैसूर तथा हैदराबाद दोनों राज्यों में उन राज्यों के ख़र्च पर कम्पनी की बड़ी बड़ी सबसीडीयरी सेनायें मौजूद थीं। इनके अलावा त्रिवानकुर, करनाटक इत्यादि की सेनायें थीं।

मैसूर इत्यादि की सेनाओं ने करनल वेल्सली के अधीन और निज़ाम की सेनाओं ने करनल स्टीवेन्सन के अधीन जमा होकर पूना की ओर कूच किया। करनल आर्थर वेल्सली के अधीन ११ हज़ार और करनल स्टीवेन्सन के अधीन ७ हज़ार सैनिक थे। करनल आर्थर वेल्सली इन दोनों सेनाओं का प्रधान सेनापति था। इस सेना का मुख्य कार्य दक्खिन के जागीरदारों और सरदारों को डरा कर अथवा लोभ देकर उन्हें बाजीराव के पक्ष में करना और पहले से पूना पहुँच कर वहाँ इस तरह के सामान पैदा कर देना था, जिनसे बाद में बाजीराव को लाकर आसानी से मसनद पर बैठाया जा सके। यह वही दक्खिन के जागीरदार थे, जिन्हें कुछ ही दिनों पहले अंगरेज़ों ने बाजीराव के विरुद्ध भड़का कर उनसे विद्रोह करवाया था। मैसूर की सेनाओं के साथ कम्पनी की वह नई सेना भी थी, जो बसई की सन्धि के अनुसार पेशवा के राज के अन्दर बतौर सबसीडीयरी सेना के रक्खी जाने वाली थी।

अंगरेज़ी सेना का पूना के लिये प्रस्थान

शुरू मार्च सन् १८०३ में यह सेना हरिहर नामक स्थान पर आकर जमा हो गई। मार्किस वेल्सली स्वयं पूना के पास आ पहुँचा। वेल्सली के पत्रों में लिखा है कि यहाँ तक मामला बढ़ जाने के बाद भी वेल्सली इस बात के लिए तैयार था कि यदि पूना में कोई मनुष्य बसई की सन्धि से अधिक लाभदायक सन्धि कम्पनी के साथ कर लेने को राज़ी हो तो वेल्सली उस समय भी बाजीराव को फिर अलग कर दे, किन्तु उस समय की परिस्थिति

में उसे बाजीराव से बढ़कर उपयोगी यन्त्र मराठा साम्राज्य के अन्दर मिल सकना कठिन था। बाजीराव के एक पुराने सेनापति बापूजी गणेश गोखले ने जो दक्खिनी सरहद पर नियुक्त था, वेलस्ली से मिल कर दक्खिन के जागीरदारों को वश में करने में अंगरेज़ों को काफ़ी सहायता दी। करनल वेलसली के पत्रों में गोखले और अंगरेज़ों की साज़िश का ज़िक्र आता है। उधर बाजीराव अंगरेज़ों की एक एक बात मान चुका था और बसई में बैठा हुआ अधीर हो रहा था।

६ मार्च सन् १८०३ को करनल वेलसली की विशाल सेना ने हरिहर से प्रस्थान किया और १२ मार्च को तुङ्गभद्रा नदी पार की। धूँडिया वाघ का पीछा करने के बहाने करनल वेलसली ने इस सारे प्रदेश का जो अनुभव प्राप्त कर लिया था वह इस अवसर पर उसके बहुत काम आया। भयभीत अथवा धनक्रीत जागीरदारों ने उसका किसी तरह का मुक़ाबला नहीं किया।

जसवन्तराव का पूना त्याग

पूना के अन्दर जसवन्तराव और अमृतराव में झगड़ा हो ही चुका था। जसवन्तराव बराबर अभी तक अंगरेज़ों के हाथों में खेल रहा था और अब ठीक इस मौके पर असहाय अमृतराव को पूना में छोड़कर स्वयं अपनी सेना सहित इन्दौर की ओर चल दिया। अमृतराव के पास उस समय केवल १५०० सिपाही बाक़ी थे। मार्ग में जसवन्तराव ने न केवल पेशवा के इलाके में लूट खसोट की, वरन् कम्पनी के परम मित्र निज़ाम के राज्य में घुसकर निज़ाम के कुछ इलाक़े और ख़ास कर औरंगाबाद के नगर को भी लूटा।

निज़ाम ने अंगरेज़ों से इसकी शिकायत की, किन्तु करनल वेल्सली के एक पत्र से प्रकट है कि औरंगाबाद की लूट में स्वयं वेल्सली का साफ़ इशारा था। करनल वेल्सली की विशाल सेना के पूना पहुँचने से पहले रेज़िडेण्ट क्लोज़ ने यह अफ़वाह उड़ा दी थी कि अमृतराव पूना के नगर को आग लगा देना चाहता है। उस समय के इतिहास से पूरी तरह साबित है कि यह अफ़वाह बिलकुल झूठी थी और केवल अमृतराव को बदनाम करने के लिए गढ़ी गई थी। २० अप्रैल सन् १८०३ को करनल वेल्सली ने अपनी सेना सहित पूना में प्रवेश किया। अमृतराव नगर छोड़कर भाग गया। कहा गया कि केवल वेल्सली की सेना के ऐन मौके पर पहुँच जाने के कारण पूना का नगर जलने से बच गया (!)

युद्ध की स्थिति पर वेल्सली का पत्र

२१ अप्रैल को करनल वेल्सली ने अपने भाई गवरनर जनरल वेल्सली को पूना से पत्र लिखा कि—"आमतौर पर स्थिति अच्छी दिखाई देती है। मैं समझता हूँ, अन्त में जो आप चाहते हैं वही होगा। जिन सरदारों के हमारे विरुद्ध मिल जाने की बाबत हम इतना कुछ सुन चुके हैं × × × उन्होंने हमें रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया × × × मिलकर हम पर हमला करना तो दूर रहा, अभी तक वे अपने आपस के झगड़े भी तय नहीं कर पाए × × ×।"*

* "Matters in general have a good appearance I think they will end as you wish The combined chiefs of whom we have heard so much,

निस्सन्देह वेलसली इन 'आपस के झगड़ों' को पैदा करा देने में चिर अभ्यस्त था।

बाजीराव का पुनरभिषेक

बाजीराव को फिर से मसनद पर बैठाने के लिए अब पूना में सारी तैयारी हो चुकी थी। २७ अप्रैल सन् १८०३ को गवरनर जनरल की आज्ञा पाकर करनल मरे के अधीन कम्पनी के लगभग २३०० सैनिक, जिनमें से क़रीब आधे हिन्दोस्तानी और आधे अंगरेज़ थे, और करनल क्लोज़ सबको साथ लेकर बाजीराव ने बसई से कूच किया, और १३ मई को पूना में प्रवेश कर उसी दिन अपने विदेशी मित्रों की सहायता से फिर एक बार पेशवा की मसनद पर बैठकर अपने मुख्य मुख्य नौकरों और सरदारों से नज़रें स्वीकार कीं। अंगरेज़ कम्पनी ने जो कुछ ख़र्च बाजीराव के लिए किया था उसके एवज़ में पेशवा के राज्य का कुछ और इलाक़ा इस समय कम्पनी को मिल गया और कम्पनी की सबसीडीयरी सेना मराठा साम्राज्य की राजधानी पूना में क़ायम हो गई।

गवरनर जनरल और उसके साथियों की इच्छा पूरी हुई; किन्तु महाराष्ट्र में अथवा पूना में बहुत कम ऐसे थे जिन्होंने इस काररवाई में वास्तविक उत्साह अनुभव किया हो अथवा उसे मराठा

. . . have taken no one step to impede our march, . . . they have not yet made peace among themselves, much less they have agreed to attack, or in any particular plan of attack" —*Colonel Wellesley's letter to the Governor general, dated 25th April 1803*

साम्राज्य के लिए अपमानजनक और भविष्य के लिए अशुभ सूचक न समझा हो।

पेशवा बाजीराव के पुनरभिषेक के सम्बन्ध में इतिहास लेखक मिल लिखता है—

"× × × शायद मानव प्रकृति के साथ इससे अधिक घोरतम पाप दूसरा कोई नहीं हो सकता कि विदेशी सेनाओं के बल और विदेशी शासकों की ख़ुशी अथवा उनके फ़ायदे के लिए किसी क़ौम के ऊपर ज़बरदस्ती एक ऐसी गवरमेण्ट लाद दी जाय, जिसमें इस तरह के आदमी हों, अथवा जो इस तरह के सिद्धान्तों पर क़ायम हो, जिन्हें वह जाति अपने अनुभव से बुरा समझ कर त्याग चुकी है, या जिन्हें वह इसलिए पसन्द न करती हो क्योंकि उसे उनसे अच्छे मनुष्यों या सिद्धान्तों का अनुभव मिल चुका है या उनकी आशा है।"*

२४ दिसम्बर सन् १८०२ को वेल्सली इंगलिस्तान के शासकों को लिख चुका था :—

"जिस तरह की सैनिक सन्धियाँ मैं मराठा नरेशों के साथ करना चाहता हूँ, वे भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य को पूरी तरह पक्का करने के लिए, और भारत की भावी शान्ति के लिए आवश्यक हैं।"†

---

* . . . the most flagitious perhaps of all the crimes which can be committed against human nature the imposing upon a nation by force of foreign armies and for the pleasure or interest of foreign rulers, a Government, composed of men, and involving principle which the people for whom it is destined have either rejected from experience of their *badness*, or repel from their experience or expectation of better."—Mill, vol. vi, Chapter 2, pp. 286, 87

† "In his address to the home authorities, dated the 24th of December,

इस पर मिल लिखता है :—

"किन्तु भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य को पूरी तरह पक्का कर सकना और भावी शान्ति की स्थापना कर सकना—दोनों उस समय तक असम्भव थे, जिस समय तक कि मराठा ताक़त के मुँह में काफ़ी लगाम न दे दी जाय।"*

क्लाइव के समय से लेकर अनेक मिसालें इस बात की मिलती हैं, जब कि कम्पनी ने केवल अपने फ़ायदे के लिए न्याय अन्याय अथवा प्रजा के फ़ायदे नुक़सान या उनकी इच्छाओं की ख़ाक परवा न करते हुए एक अयोग्य, अनधिकारी या दुराचारी मनुष्य को अपनी चालों या सङ्गीनों के बल किसी रियासत की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया।

1802, he declared his conviction, that 'those defensive engagements which he was desirous of concluding with the Maratha states, were essential to the complete consolidation of the British Empire in India and to the future tranquility of Hindostan' "—Mill, vol vi, Chap 2, pp 236, 87

* "Yet the complete consolidation of the British Empire in India, and the future tranquility of Hindustan, could never exist till a sufficient bridle was put in the mouth of the Maratha Power,"—Ibid

बाईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का प्रारम्भ

बाजीराव का अपनी असहाय स्थिति पर विचार

पेशवा बाजीराव अब अपनी राजधानी के अन्दर अंगरेज़ी सेना के हाथों में उसी प्रकार बन्दी था जिस प्रकार हैदराबाद का निज़ाम या लखनऊ का नवाब वज़ीर।*

किन्तु बाजीराव अपनी और मराठा साम्राज्य की स्थिति पर बसई की सन्धि के प्रभाव को थोड़ा बहुत समझता था। इससे पूर्व यदि समय समय पर उसने सबसीडीयरी सन्धि के लिए अपनी रज़ामन्दी प्रकट की थी अथवा यदि बसई

---

* "The present Peshwa ...... is himself so completely under our dominion, that he pays a subsidy to maintain the three thousand troops which surround his capital and keep him a prisoner."—*Journal of a Residence in India*, by Maria Graham, 1813 pp. 84-85

में हाल की सन्धि पर दस्तख़त किए थे तो केवल घिर कर और विवश होकर। बसई पहुँचते ही वह अपनी असहाय स्थिति को अनुभव करने लगा था। पेशवा के अतिरिक्त मराठा मण्डल के चार मुख्य स्तम्भों में से गायकवाड़ पहले मराठा युद्ध के समय से ही मण्डल से टूट चुका था। होलकर कुल में फूट पड़ी हुई थी। अंगरेज़ कभी काशीराव को जसवन्तराव से और कभी जसवन्तराव को काशीराव से लड़ा रहे थे। केवल दो बलवान मराठा नरेश और बाक़ी थे, सींधिया और भोंसले। बाजीराव ने अपनी असहाय स्थिति को अनुभव कर, बसई से बरार के राजा और दौलतराव सींधिया दोनों के पास अपने गुप्त दूत भेजे। उनसे यह प्रार्थना की कि आप मुझे फिर से पूना की मसनद पर बैठने में मदद दीजिये और साथ ही यह इच्छा प्रकट की कि किसी प्रकार इन दोनों की मदद से दौलतराव सींधिया, जसवन्तराव होलकर और बाजीराव तीनों के आपसी झगड़े तय हो जायँ और इन तीनों के प्रयत्नों से मराठा साम्राज्य में फिर से ऐक्य, बल और जीवन नज़र आने लगे।

मराठा मण्डल की परिस्थिति

मराठा मण्डल के पाँचों मुख्य सदस्यों में आरम्भ से यह परस्पर प्रतिज्ञाएँ हो चुकी थी कि आपत्ति के समय वे सदा एक दूसरे की मदद करेंगे और बिना पाँचों में सलाह हुए किसी अन्य शक्ति के साथ किसी तरह की सन्धि या समझौता न करेंगे। विशेषकर दौलतराव सींधिया और पेशवा बाजीराव इन दो में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रह चुका था। बाजीराव के लिए यह आवश्यक था कि वह सींधिय

और भोंसले दोनों से सलाह किए बिना बसई की सन्धि पर हस्ताक्षर न करना। इसके अतिरिक्त पहले मराठा युद्ध के बाद सालबाई में अंगरेज़ों और पेशवा दरबार के बीच जो सन्धि हुई थी वह दौलतराव सींधिया के पूर्वाधिकारी माधोजी सींधिया की ही मध्यस्थता में हुई थी। उस सन्धि के अनुसार आवश्यक था कि बसई में पेशवा के साथ नई और इतनी क्रान्तिकारी सन्धि करने से पूर्व अंगरेज़ और पेशवा दोनों दौलतराव से सलाह कर लेते। इतना ही नहीं, वरन् बसई की सन्धि के पक्का होने के लिए उस पर सींधिया और भोंसले दोनों के हस्ताक्षर क़तई ज़रूरी थे। बाजीराव सब समझता था, किन्तु अपनी अदूरदर्शिता के कारण पूना छोड़ने के समय से ही वह पूरी तरह दूसरों के वश में था।

बसई की सन्धि से मराठा मण्डल को आशंका

उधर दौलतराव सींधिया और बरार का राजा दोनों इस बात को समझते थे कि पेशवा का इस प्रकार विदेशियों के फन्दे में फँस जाना भविष्य में अन्य मराठा नरेशों की स्वाधीनता के लिए शुभ सूचक नहीं हो सकता और न इसके बाद मराठा साम्राज्य ही अधिक देर तक क़ायम रह सकता है।

गवरनर जनरल और अन्य अंगरेज़ों के पत्रों से साबित है कि मराठा नरेशों की ये आशङ्काएँ बिलकुल सच्ची थीं। वेल्सली की कौन्सिल के प्रमुख सदस्य बारलो ने, जिसके विषय में इंगलिस्तान के डाइरेक्टर यह आज्ञा दे चुके थे कि यदि वेल्सली की मृत्यु इत्यादि के कारण अकस्मात् गवरनर जनरल का पद ख़ाली हो तो

बारलो को तुरन्त गवरनर जनरल बना दिया जाय। १२ जुलाई सन् १८०३ को एक लम्बा पत्र लिख कर गवरनर जनरल के सामने पेश किया, जिसमें ये स्पष्ट वाक्य आते हैं :—

"× × × हिन्दोस्तान के अन्दर कोई भी देशी राज ऐसा बाक़ी नहीं रहने देना चाहिए, जो कि या तो अंगरेज़ों की ताक़त के सहारे क़ायम न हो, और या जिसका समस्त राजनैतिक व्यवहार पूरी तरह से अंगरेज़ों के हाथों में न हो। वास्तव में मराठा साम्राज्य के प्रधान यानी पेशवा को अंगरेज़ी सत्ता के बल फिर से मसनद पर बैठाने के कारण हिन्दोस्तान की शेष समस्त रियासतें भी अंगरेज़ सरकार के अधीन हो गई हैं। यदि पेशवा के साथ हमारी सन्धि क़ायम रही तो उसका स्वाभाविक और आवश्यक नतीजा यह होगा कि धीरे धीरे सींधिया × × × और बरार का राजा दोनों पहले पेशवा के आश्रित हो जायँगे, और फिर नई सन्धि के कारण (पेशवा द्वारा) अंगरेज़ों की सत्ता के अधीन हो जायँगे। यदि वे लोग बसई की सन्धि में सहमत हो जाते तब भी नतीजा उनके लिए यही होता × × ×।"*

* " no native state should be left to exist in India which is not upheld by the British Power, or the political conduct of which is not under its absolute control The restoration of the head of the Maratha Empire to his Government through the influence of the British Power, in fact, has placed all the remaining states of India in this dependent relation to the British Government If the alliance with the Peshwa is maintained, its natural and necessary operations would in the course of time reduce Scindhia and the Raja of Berar to a state of dependence upon the Peshwa, and consequently upon the British Power even if they had acquiesced in the treaty of Bassein "—Sir George Barlow's Memorandum to the Governor General, dated 12th July, 1803

वेलसली जानता था कि बसई की सन्धि को पक्का करने के लिए उस पर सींधिया और भोंसले दोनों की रज़ामन्दी ज़रूरी है। वह यह भी जानता था कि यदि बसई की सन्धि की सब शर्तें मराठा नरेशों को ठीक ठीक मालूम हो गई तो कम से कम सींधिया की उन पर स्वीकृति मिलना असम्भव है। बसई की सन्धि की कुल १६ धारायें थीं जिनमें विशेषकर तीसरी और सत्रवीं धाराओं पर सींधिया जैसे समझदार नरेशों को एतराज़ होना ज़रूरी था। तीसरी धारा वह थी जिसके अनुसार पेशवा ने अपने राज में कम्पनी की सबसीडीयरी सेना रखना स्वीकार कर लिया था। सत्रवीं धारा यह थी कि भविष्य में पेशवा बिना कम्पनी सरकार से सलाह किए न किसी दूसरे नरेश के साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार कर सकता है और न किसी से कोई सम्बन्ध रख सकता है। निस्सन्देह इस धारा का स्पष्ट अभिप्राय मराठा मण्डल को तोड़ देना है और सींधिया तथा भोंसले इसके लिए किसी तरह राज़ी न हो सकते थे। वेलसली इन सब बातों को अच्छी तरह समझता था। उसने इसके दो उपाय किए, एक उसने सींधिया और भोंसले दोनों को धोखा देकर, बिना उन्हें बसई की सन्धि की नक़ल दिए, उन्हें ज़बानी यह बहका कर कि बसई की सन्धि का प्रभाव पेशवा के साथ सींधिया और भोंसले के सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा, उस सन्धि पर उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना चाहा, और दूसरे उसने मराठा सत्ता का सर्वनाश

सींधिया और भोंसले के विरुद्ध वेलसली की युद्ध की तैयारी

करने के लिए तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद के बराबर बराबर फ़ौजें जमा करना और युद्ध की तैयारी करना शुरू कर दिया। निस्सन्देह सींधिया और भोंसले दोनों के ज़रख़ेज़ इलाकों पर वेल्सली के बहुत दिनों से दाँत थे और अब वह अपनी इच्छा को पूरा कर लेना चाहता था।

१६ अप्रैल को गवरनर जनरल वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र भेजा जिसमें लिखा है—"सींधिया ने बाजीराव के फिर से पेशवा बनाए जाने को स्वीकार कर लिया है, किन्तु बसई की सन्धि के विषय में उसने करनल कॉलिन्स से स्पष्ट कह दिया है कि जब तक सन्धि की सब शर्तें और स्वयं बाजीराव के विचार मुझे ठीक ठीक मालूम न होंगे, मैं उस सन्धि के लिए अपनी अनुमति न दूँगा। बरार के राजा राघोजी भोंसले ने भी बसई की सन्धि पर अपनी अनुमति देना स्वीकार नहीं किया।"

अंगरेज़ कमाण्डर इन-चीफ़ लार्ड लेक का परिचय

इङ्गलिस्तान के शासक भी इस समय भारत में अपना राज्य बढ़ाने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। इस काम में गवरनर जनरल वेल्सली की सहायता के लिए जनरल लेक को कम्पनी की सेनाओं का कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त करके भारत भेजा गया। दूसरे मराठा युद्ध के साथ जनरल लेक का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि आगे बढ़ने से पहले उसके चरित्र पर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।

भारत की अंगरेज़ी सेनाओं का कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त

होने से पहले जनरल लेक आयरलैण्ड के अन्दर कमाण्डर-इन-चीफ़ रह चुका था। लेक ही की सहायता से उस समय के इङ्गलिस्तान के शासकों को आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता का नाश करने में सफलता प्राप्त हुई। जिन उपायों द्वारा जनरल लेक ने आयरलैण्ड को इङ्गलिस्तान के अधीन किया उनमें मुख्य उपाय, लॉर्ड कार्नवालिस के बयान के अनुसार, उसी के शब्दों में, ये थे—"आयरलैण्ड निवासियों को धन का लोभ देना, उनके घरों को जला देना, नगर निवासियों का क़त्ल-ए-आम, लोगों को कोड़े लगा लगा कर उनसे ज़बरदस्ती जो चाहे स्वीकार करा लेना, समस्त देश भर में आयरिश स्त्रियों के साथ बलात्कार और लूट खसोट × × ×।"* जनरल लेक के इन्हीं कृत्यों के आधार पर लन्दन की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़' के सुयोग्य सम्पादक डब्ल्यू० टी० स्टेड ने जनरल लेक को "ज़ालिम और बदमाश"* लिखा है।

जनरल लेक के इन करतूतों से इङ्गलिस्तान के शासक इतने प्रसन्न हुए कि इसके बाद उसे भारत में कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त करके भेजा गया।

---

* " . . . bribe it (The Irish Parliament) with gold "— W O Brien, 'Contemporary Review' for January 1898 " . . . the burning of houses and murder of the inhabitants . . . the flogging for the purpose of extorting confession, . . . universal rape and robbery throughout the whole country "—Lord Cornwallis' letter as Lord Lieutenant of Ireland 'General Lake, a truculent ruffian . . . "—W T Stead in his 'Review of Reviews' July 1898

वेल्सली का लेक के नाम पत्र

७ जनवरी सन् १८०३ को मार्किस वेल्सली ने बैरकपुर से जनरल लेक के नाम, जो उस समय उत्तरी भारत में था, एक 'अत्यन्त गुप्त और गूढ़' (Most secret and confidential) पत्र लिखा। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"कुछ दिनों से मैं मराठा साम्राज्य की मनोरञ्जक अवस्था पर आपको पत्र लिखने की इच्छा कर रहा हूँ और यह भी लिखना चाहता हूँ कि मराठों के इस अपूर्व सङ्कट से जितना भी लाभ उठाया जा सकता है, उतना उठाने के लिए मैं किस नीति का पालन कर रहा हूँ।

"निस्सन्देह जिस शक्ति का हमें सब से अधिक डर हो सकता है और जिसे रोक कर रखना हमारे लिए सब से अधिक आवश्यक है, वह सींधिया है। और किसी ओर से गहरे या ख़तरनाक मुक़ाबले का हमें डर नहीं है, × × × हमारे लिए सबसे अधिक अमोघ उपाय सींधिया को वश में करने का निस्सन्देह यह होगा कि हम अवध के उस प्रान्त से, जो हमें हाल में मिला है, सींधिया के हिन्दोस्तान के इलाक़े पर एकाएक टूट पड़ें, ऐसी सूरत में हमें मुख्य और सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रयत्न उस स्थान से करना चाहिए, जहाँ पर कि इस समय आप हैं।

"× × × यदि कोई गहरी लड़ाई हुई तो × × × हमारी सबसे अधिक महत्व की कारस्वाई सींधिया राज्य के विरुद्ध होगी ताकि हिन्दोस्तान से सींधिया की शक्ति को नाश कर दिया जाय; दक्खिन में हमारे साथ किसी बड़े संग्राम की सम्भावना नहीं है।

"× × × मेरी योजना यह है कि × × × मराठा साम्राज्य की सरहद

के हर हिस्से पर सेनाएँ जमा करके इस तरह के प्रबन्ध किए जायँ कि जिनसे मराठा साम्राज्य के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य हमारे इस बल को देख कर ही डर जायँ।"*

सींधिया के विरुद्ध प्रयत्न

सबसे अधिक भय अंगरेज़ों को वास्तव में दौलतराव सींधिया से था। दौलतराव सींधिया को कुचलने का वेल्सली वर्षों पहले से अवसर ढूँढ़ रहा था। ८ मार्च सन् १७९९ को वह कमाण्डर-इन-चीफ़ को साफ़ लिख चुका था :—

* "I have been desirous for some time past to communicate to you the interesting state of affairs in the Maratha Empire, and the course of policy which I have adopted, with a view to derive every attainable advantage from this singular crisis

"The power, whose views might be most apprehended, and whom it is most important to hold in check, is certainly Scindhia No serious or alarming opposition is to be feared from any other quarter our most effectual mode of controlling Scindhia must be an *irruption into his dominions in Hindostan, from the ceded provinces of Oudh, and in that case the main and most critical effort must be made from the quarter where you are now present*

" if any serious contest should arise, *the most important* operations will be directed against *Scindhia's possessions to* the destruction of his power *in Hindostan, and that no* probability exists of any important *contest in the Deccan*

" . And my plan is, therfore, rather to *form such arrangements* as may present the most powerful and *menacing* aspect to every branch of the Maratha Empire, *on every point on their frontier* . "—Marquess Wellesly's '*Most secret* and confidential' letter to General Lake, dated Barrackpur, January 7th 1803



महाराजा दौलत राव सींधिया

[वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा]

"मैं इस नीति को बिलकुल ठीक समझता हूँ कि ज्योंही हमें अपने फ़ायदे का कोई मौक़ा दिखाई दे, तुरन्त सींधिया की ताक़त को नष्ट कर दिया जाय।"*

उस समय से ही वेलसली ने करनल कॉलिन्स द्वारा महाराजा सींधिया के आदमियों को अपनी ओर तोड़ना और सींधिया के विरुद्ध उसके राज में जगह जगह साज़िशें करना शुरू कर दिया था।

मराठा मण्डल में एकता के प्रयत्न

समस्त मराठा नरेश कम या अधिक इस आने वाली आपत्ति को देख रहे थे और यथाशक्ति उसके निवारण के उपाय कर रहे थे।

बाजीराव पूना पहुँचने के बाद अपनी शोचनीय पराधीनता को और अधिक ज़ोरों से अनुभव करने लगा। पूना पहुँचते ही उसने फिर सींधिया और भोंसले दोनों के पास अपने विशेष दूत और पत्र भेजे और उन्हें सलाह के लिए शीघ्र पूना बुलाया। अमृतराव पूना छोड़ चुका था। बाजीराव ही उस समय मराठा साम्राज्य का न्याय्य अधिपति था। बाजीराव की आज्ञानुसार सींधिया और भोंसले के पूना आने पर किसी को एतराज़ न हो सकता था। अंगरेज़ों को सूचना दे दी गई थी कि दौलतराव और भोंसले को पूना बुलाया गया है। सब जानते थे कि बसई की

* "I am equally satisfied of the policy of reducing the power of Scindhia, whenever the opportunity shall appear advantageous."—Governor General's letter to Sir Alured Clarke, dated 8th March, 1799

सन्धि पर जब तक सींधिया और भोंसले के हस्ताक्षर न होंगे तब तक वह पक्की नहीं समझी जा सकती। इसीलिए बाजीराव ने उनके आने तक के लिए सन्धि की काररवाई को स्थगित कर रक्खा था।

किन्तु अंगरेज़ सींधिया और बाजीराव के मिलने से डरते थे।

१३ मई सन् १८०३ को बाजीराव पूना पहुँचा। ४ जून को गवरनर जनरल वेलसली के भाई मेजर जनरल वेल्सली ने मद्रास के सेनापति जनरल स्टुअर्ट को पूना से लिखा :—

"इस देश में हमारी स्थिति ज़रा नाज़ुक है। अभी तक पेशवा ने अपने उन सरदारों के लिए कुछ नहीं किया जो यहाँ मेरे साथ आए थे, और उनमें से कोई पूना से नहीं गया। सन्धि की यह एक शर्त थी कि बाजीराव अपनी सेना मेरे सुपुर्द कर देगा। बाजीराव ने मुझसे वादा भी किया था; किन्तु इस वादे और सन्धि दोनों के विरुद्ध उसने अभी तक अपनी सेना मेरे हवाले नहीं की। × × × मुझे डर है कि सन्धि की शर्तों पर हमारी उसकी मित्रता न चल सकेगी। × × ×"

१६ जून को जनरल वेलसली ने जनरल स्टुअर्ट को एक दूसरे पत्र में लिखा :—

"पेशवा के नौकर वादे करने में बड़े तेज़ हैं, किन्तु पूरा करने में बड़े सुस्त और यद्यपि अपने देश की चीज़ें हमें ला लाकर देने में देशवासियों का ही साफ़ फ़ायदा है, फिर भी यहाँ की चीज़ों से हम इतना कम लाभ उठा पाए हैं कि मुझे क़रीब क़रीब सन्देह होने लगता है कि यह सरकार सन्धि से पीछे हटना चाहती है। × × ×"

दौलतराव सींधिया वीर और समझदार था। वह इस समस्त

स्थिति और उसकी गम्भीरता को देख रहा था। सब से पहले उसे मराठा मण्डल में फिर से ऐक्य पैदा करने की आवश्यकता नज़र आई। इसलिए पूना जाने से पहले वह बाजीराव की इच्छा के अनुसार जसवन्तराव होलकर और बरार के राघोजी भोंसले दोनों के साथ मिल कर सलाह कर लेना चाहता था। उस समय के पत्रों से साबित है कि स्वयं जसवन्तराव भी काशीराव होलकर, बाजीराव पेशवा और दौलतराव सींधिया तीनों के साथ फिर से मेल कर लेने के लिए उत्सुक था। बरहानपुर से पचास कोस पच्छिम में बदौली नामक स्थान पर दौलतराव सींधिया, जसवन्त राव होलकर और राघोजी भोंसले तीनों नरेशों का मिलना निश्चित होगया। दौलतराव ने अपनी राजधानी से चलकर नर्बदा को पार कर बरहानपुर की ओर प्रस्थान किया और बहुत दिनों तक बरहानपुर में ठहर कर ४ मई सन् १८०३ को बरहानपुर से बदौली के लिए कूच किया। सींधिया का अन्तिम लक्ष्य इस समय पूना था और उसके समस्त पत्रों से साबित है कि बसई के सन्धि के विषय में वह केवल यह साफ़ साफ़ तय कर लेना चाहता था कि उस सन्धि का प्रभाव मराठा मण्डल की संहति यानी पेशवा और अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा। अंगरेज़ भी उसे ज़बानी यही विश्वास दिला रहे थे और यही बात वह पूना पहुँच कर सब की मौजूदगी में पक्की कर लेना चाहता था।

अंगरेज़ों के अनेक पत्रों से मालूम होता है कि सींधिया

का उद्देश हरगिज़ अंगरेज़ों के साथ युद्ध छेड़ने या किसी पर हमला करने का न था।

१६ अप्रैल सन् १८०३ को माकिस वेलसली ने इंगलिस्तान के डाइरेक्टरों को लिखा—

"मैं समझता हूँ कि × × × सींधिया का अधिक से अधिक उद्देश यह हो सकता है कि × × × आत्मरक्षा के लिए सींधिया, होलकर और बरार के राजा को आपस में मिला लिया जाय, किन्तु अंगरेज़ी सत्ता के साथ युद्ध छेड़ने का हरगिज़ उसका कोई इरादा नहीं हो सकता। × × ×"

१५ मई सन् १८०३ को करनल क्लोज़ ने पूना से डाइरेक्टरों को लिखा—

"निस्सन्देह यह असम्भव है कि सींधिया (अंगरेज़ों के साथ) युद्ध छेड़ने के इरादे से इस संघ में शामिल हो रहा हो।"

यही बात उस समय के और अनेक पत्रों से भी साबित है, किन्तु जिन लोगों ने वर्षों के प्रयत्नों के बाद इतनी मेहनत से मराठा साम्राज्य के अन्दर फूट डाल कर उसके सदस्यों को एक दूसरे से तोड़ पाया था और जिनका एक मात्र लक्ष्य इस समय समस्त मराठा साम्राज्य को धीरे धीरे अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लेना था, वे दौलतराव सींधिया के इन मेल के प्रयत्नों को कब गवारा कर सकते थे ? इसलिए अंगरेज़ों ने अब सब से पहले सींधिया को पूना आने से रोकने की हर तरह कोशिश की।

करनल कॉलिन्स ने सींधिया पर खुले ज़ोर देना शुरू किया कि

आप पूना न जाइए और उधर करनल क्लोज़ और जनरल वेल्सली ने बाजीराव पर दबाव डालना शुरू किया कि आप दौलतराव को लिख दीजिये कि तुम पूना न आओ। १० मई सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को लिखा—

सींधिया को पूना जाने से रोकना

"करनल कॉलिन्स का इरादा है कि पेशवा पर इस बात के लिए ज़ोर दिया जाय कि वह सींधिया को लिख भेजे कि तुम पूना न आओ; और मैं सोचता हूँ, मुझे भी कॉलिन्स को इस आशय का एक पत्र लिख देना चाहिए कि पेशवा की इच्छा है कि सींधिया पूना न आए और उचित यह है कि पेशवा की इस इच्छा के अनुसार कार्य हो।"*

१० मई तक बाजीराव पूना पहुँचा भी न था। और पूना पहुँचने के बाद भी उसने दौलतराव को पूना बुलाने के लिए कई बार पत्र लिखे, किन्तु अपने मतलब के लिए साफ़ झूठ बोलना जनरल वेल्सली और उस समय के अन्य अंगरेज़ों के लिए एक मामूली बात थी। दूसरी ओर नए युद्ध के लिए अंगरेज़ों की तैयारी जारी थी। करनल कॉलिन्स सींधिया दरबार में अपनी साज़िशों का जाल इतनी अच्छी तरह फैला चुका था कि अब वह युद्ध के छिड़ने के लिए अधीर हो रहा था। किन्तु मॉर्किस वेल्सली और जनरल वेल्सली अभी तक अपनी तैयारी पूरी न कर पाए थे। जनरल

* "Colonel Collins intends to press the Peshwa to desire Scindhia not to advance to Poona, and I think that, I ought to write him a letter to say that such is the Peshwa's wish, and that it is proper it should be complied with,"—Major General Wellesely's letter to Lt.-General Stuart, dated 10th May, 1803

वेलसली को यह भी अनुभव हो चुका था कि मराठों के साथ लड़ाई छेड़ने का सब से अच्छा समय बरसात है। इसलिए उसने कॉलिन्स को लिखा कि अभी आप बरसात शुरू होने तक सींधिया के साथ बने रहिए और सींधिया को धोखे में रखने के लिए बराबर उससे मित्रता का दम भरते रहिए।

युद्ध की गुप्त तैयारी

जैसे जैसे अंगरेज़ों की तैयारी बढ़ती गई, वैसे वैसे ही उनका रुख़ भी बदलता चला गया। ३० मई सन् १८०३ को गवर्नर जनरल वेलसली ने महाराजा सींधिया को लिखा—"आप शान्ति क़ायम रखने के लिए तुरन्त आगे बढ़ने का इरादा छोड़कर नर्बदा पार कर अपनी राजधानी को लौट जाइए", बरार के राजा राघोजी भोंसले को लिखा कि—'आप लौट कर नागपुर चले आइए' और उसी दिन पूना के रेज़िडेण्ट करनल क्लोज़ को लिखा कि यदि सींधिया नर्बदा पार कर उत्तर की ओर चला जाय तो भी कम्पनी की सेना बराबर दक्खिन के मैदान में तैयार रहे और यदि जसवन्तराव होलकर अपनी सेना सहित पूना आना चाहे तो उसे भी रोक दिया जाय। साथ ही वेलसली ने भोंसले के कटक प्रान्त की सरहद पर मेदिनीपुर की छावनी में कम्पनी की सेना बढ़ाए जाने की आज्ञा दे दी।

इस सब का मतलब यह है कि जब कि अंगरेज़ "शान्ति और मित्रता" के नाम पर होलकर, सींधिया और भोंसले इन तीनों के मिलने या पेशवा की आज्ञा पर इनमें से किसी के पूना जाने तक को रोक रहे थे, वे स्वयं इन मराठा नरेशों का नाश करने के

लिए कम्पनी की सन्नद्ध सेनाएँ जगह जगह चारों ओर सरहद पर जमा कर रहे थे और मार्क्विस वेल्सली के शब्दों में केवल अपनी तैयारी के पूरा होने तथा मौसम के इन्तज़ार में थे।

चार दिन बाद ३ जून सन् १८०३ को वेल्सली ने कलकत्ते से कॉलिन्स को यह स्पष्ट आज्ञा दी—

"सींधिया को यह बता देना मुनासिब है कि सिवाय उस हालत के जब कि पेशवा ने साफ़ शब्दों में इजाज़त दे दी हो और ब्रिटिश सरकार ने उसे मंज़ूर कर लिया हो यदि दूसरी किसी हालत में किसी भी बहाने से सींधिया पूना जायगा तो अवश्यमेव उसे ब्रिटिश सत्ता के साथ लड़ना पड़ जायगा।"

बरार का राजा भी पेशवा के निमन्त्रण पर पूना जा रहा था। इसलिए जिस तरह का पत्र सींधिया को लिखा गया उसी तरह का पत्र वेल्सली ने बरार के राजा को लिखा, और उसे भी यह साफ़ धमकी दी कि यदि आप पूना की ओर रुख़ करेंगे तो आपके राज्य पर हमला किया जाना सम्भव है। हमें याद रखना चाहिए कि अंगरेज़ स्वयं सींधिया, भोंसले और पेशवा तीनों को अभी तक अपना 'मित्र' कहते थे और इन तीनों में से किसी की ओर से कोई कारवाई अभी तक इस 'मित्रता' के विरुद्ध न हुई थी। उन्हें पूना आने से रोकने का कोई बहाना भी होना चाहिए था। इसलिए सींधिया पर अब एक नया और अनोखा इलज़ाम यह लगाया गया कि तुम पेशवा और निज़ाम के राज्यों पर हमला करने और उन्हें लूटने का विचार कर रहे हो। २८ मई सन् १८०३ को

बरार के राजा को धमकी

करनल कॉलिन्स ने महाराजा सींधिया से मुलाक़ात की। तीन घण्टे बात चीत होती रही, जिसका हाल कॉलिन्स ने २६ मई सन् १८०३ को एक लम्बे पत्र में गवरनर जनरल को लिख कर भेजा।

कॉलिन्स का पत्र

इस पत्र में लिखा है कि—महाराजा सींधिया ने कॉलिन्स के प्रश्न के उत्तर में उसे विश्वास दिलाया कि महाराजा का कोई इरादा पेशवा या निज़ाम किसी के राज पर हमला करने का नहीं है। कॉलिन्स ने इस पर सन्तोष प्रकट किया और फिर पूछा कि महाराजा सींधिया, बरार के राजा और होलकर के बीच जो पत्र व्यवहार हो रहा है उसका उद्देश किसी तरह से बसई की सन्धि की काररवाई में कोई बाधा डालना तो नहीं है? महाराजा सींधिया ने इस पर कॉलिन्स को स्पष्ट उत्तर दिया कि बिना बरार के राजा से बातचीत हुए इस विषय में कोई बात नहीं कही जा सकती। कॉलिन्स ने फिर बार बार ज़ोर देकर और डर दिखा कर इस सम्बन्ध में महाराजा सींधिया की अन्तिम राय जानना चाहा। महाराजा सींधिया ने फिर उत्तर दिया कि राजा राघोजी से बिना बातचीत किए मेरा कुछ कहना उनके साथ दगा करना होगा, राजा राघोजी इस समय इस स्थान से केवल पचास कोस की दूरी पर हैं और दो चार दिन के अन्दर ही मेरी और उनकी मुलाक़ात होने वाली है और उस मुलाक़ात के बाद फ़ौरन ही तुम्हें (करनल कॉलिन्स को) बता दिया जायगा कि इन सब बातों का "निबटारा शान्ति से हो सकेगा या युद्ध से।"

इसी पत्र में कॉलिन्स ने गवरनर जनरल से फिर तक़ाज़ा किया कि जितनी जल्दी हो सके बाजीराव पर ज़ोर देकर उसकी ओर से सींधिया के नाम यह पत्र लिखवा दिया जाय कि आप पूना न आइए।

कॉलिन्स सच और झूठ की अधिक परवा करने वाला आदमी न था। फिर भी यदि इस पत्र की सब बातें सच हैं तब भी पत्र से ज़ाहिर है कि कॉलिन्स का बर्ताव महाराजा सींधिया के साथ धृष्टतापूर्ण था और महाराजा के सब जवाब उचित और न्याया-नुकूल थे।

तारीफ़ यह है कि अभी तक भी बसईं की सन्धि की नक़ल अंगरेज़ों ने न महाराजा सींधिया के पास भेजी थी और न राजा राघोजी भोंसले के पास।

सींधिया और भोंसले का पूना जाना स्थगित

इसके कुछ दिनों बाद ही राजा राघोजी भोंसले का ख़ेमा महाराजा सींधिया के निकट आ पहुँचा। दोनों नरेशों में बातचीत हुई, दोनों को कॉलिन्स ने समझाया कि पेशवा ही आप लोगों के पूना जाने के विरुद्ध है। दोनों को कॉलिन्स ने विश्वास दिलाया कि बसईं की सन्धि का प्रभाव पेशवा और अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा। दोनों से कॉलिन्स ने "शान्ति और मित्रता" के नाम पर पूना जाना स्थगित करके अपनी अपनी राजधानी लौट जाने की प्रार्थना की। दोनों को उसने कम्पनी की 'मित्रता' का विश्वास दिलाया, और साथ ही यह भी

धमकी दी कि यदि आप लोग पूना जाने पर ज़िद करेंगे तो कम्पनी की सेनाएँ तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद पर पड़ी हुई हैं। अन्त में दोनों मराठा नरेश अदूरदर्शिता के कारण या कायरता के कारण या सम्भव है युद्ध से यथा शक्ति बचने की इच्छा से फिर एक बार अंगरेज़ों की चालों में आगए। दोनों ने कॉलिन्स की बातों पर विश्वास करके अपना पूना जाना स्थगित कर दिया; और यह तय किया कि बसई की सन्धि के विषय में जो विश्वास हमें अंगरेज़ों ने दिलाया है वही बाजीराव से पक्का कर लेने के लिए हमारे दोनों के विश्वस्त दूत तुरन्त पूना भेजे जायँ और बाजीराव से इस विषय में सन्तोषप्रद उत्तर मिलने के बाद हम लोग अपनी अपनी राजधानी लौट जायँ।

अंगरेज़ों को इस पर कोई एतराज़ न हो सकता था और न उनके पास अब कोई किसी तरह का बहाना युद्ध का बाक़ी रह गया था। फिर भी अंगरेज़ों की ओर से युद्ध की तैयारियाँ बराबर बढ़ती चली गईं।

मराठा नरेशों के साथ युद्ध का निश्चय

२६ जून को गवरनर जनरल वेल्सली ने अपने भाई जनरल वेल्सली को एक 'गुप्त' पत्र द्वारा इस बात का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया कि—'आप बिना मुझसे पूछे जब चाहे महाराजा सींधिया या बरार के राजा के साथ युद्ध शुरू कर दे और निज़ाम, पेशवा या दूसरे मराठा नरेशों के राज्यों में

जब जो राजनैतिक या सैनिक कारवाई करना चाहें, कर डालें।'*

२७ जून को गवरनर जनरल ने अपने भाई के नाम एक दूसरा 'अत्यन्त गुप्त' पत्र लिखा जिसके नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करने के योग्य हैं—

"इस पत्र के पाते ही आप करनल कॉलिन्स को लिख दीजिये कि सींधिया और बरार के राजा दोनों से उनके साफ़ साफ़ विचार दरियाफ़्त किए जायँ और उन्हे उत्तर के लिए इतनी मियाद दी जाय जितनी कि आपको मौसम × × × और अपनी संग्राम सम्बन्धी सुविधाओं का पूरा विचार करते हुए ठीक मालूम हो।

* * *

"ऐसी स्थिति में या दूसरी किसी भी स्थिति मे जब आपको युद्ध करने की आवश्यकता अनुभव हो तब × × × मैं आपको आदेश देता हूं कि आप सींधिया और बरार के राजा इन दोनों की × × × सैनिक शक्ति का सर्वनाश कर डालने में अपनी पूरी ताक़त लगा दें। × × × विशेष आवश्यक यह है कि आप सींधिया के तोपख़ाने का और साथ ही उसके

---

* " full powers to conclude upon the spot whatever arrangements may become necessary either for the final settlement of peace, or for the active prosecution of war,

' . to vest these important and arduous powers in your hands .

"I further empower and direct you to assume and exercise the general direction and control of all the political and military affairs of the British Government in the territories of the Nizam, of the Peshwa, and of the Maratha States and Chiefs"—Governor General's 'secret' despatch to

यूरोपियन अस्त्र शस्त्रों और तमाम फ़ौजी सामान को नष्ट कर दें × × × बहुत ही अच्छा हो, यदि सींधिया अथवा राघोजी भोंसले को किसी तरह गिरफ़्तार कर लिया जाय × × × युद्ध छिड़ते ही आप सींधिया, होलकर और × × × प्रत्येक अन्य मराठा नरेश की नौकरी से यूरोपियन अफ़सरों को अपनी ओर बुला लेने के लिए जो उपाय उचित समझें, कीजियेगा।

"आपको आज़ादी दी जाती है कि इस कार्य के लिए आप जो ख़र्च ज़रूरी समझें करें और जैसे दूत अधिक उपयोगी समझें भेजें × × × मैं सोच रहा हूँ कि गोहद के राना के पास और राजपूत राजाओं के पास मैं स्वयं यथोचित दूत भेजूं। आप भी इन रियासतों को सींधिया के विरुद्ध भड़काने की हर तरह से कोशिश कीजिये। × × × यह भी सोचिएगा कि काशीराव होलकर को जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध भड़काने के लिए क्या क्या किया जा सकता है। × × ×"

किन्तु इस समस्त राजनैतिक बलात्कार के लिए इंगलिस्तान के थोड़े से उदार लोगों अथवा भावी इतिहास लेखकों के सामने कुछ बहाना रख देना भी आवश्यक था। इसलिए इस पत्र में पहली बार मार्किस वेल्सली ने अपने पुराने बहाने, भारत पर "फ़्रान्स के इरादों" का ज़िक्र किया और पत्र के अन्त में लिखा :—

"सींधिया का शीघ्र नाश कर देना × × × फ़्रान्स के इरादों के लिए सर्वथा घातक सिद्ध होगा।"*

Major General Wellesley, *dated 26th June, 1803*

* "On the receipt of this despatch you will desire Colonel Collins to demand an explicit *declaration of* the views of Scindhia and of the Raja of Berar, with in such *a number of* days as shall appear to you *to* be *reasonable*,

मराठों के साथ युद्ध करने में अंगरेज़ों का वास्तविक उद्देश

इसके बाद सींधिया को नाश करने के इस नए बहाने को रूप मिलता चला गया। धीरे धीरे यहाँ तक कहा जाने लगा कि सींधिया के राज्य में जमना के तट पर फ्रांसीसियों की एक बाज़ाब्ता बस्ती है जिसमें कप्तान पैराँ के अधीन चौदह हज़ार सशस्त्र फ्रांसीसी सेना रहती है। पूर्वोक्त पत्र के एक महीना बाद गवरनर जनरल ने जनरल लेक को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र लिखा जिसका और अधिक ज़िक्र किसी दूसरे स्थान पर किया जायगा। इस पत्र में मार्किस वेल्सली ने लिखा :—

---

consistently with a due attention to the period of the season, and to the facility of moving your army, and of prosecuting hostilities with the advantages which you now possess

* * * *

"In this event, or in other state of circumstances which may appear to you to require hostilities, I direct you to use your utmost efforts to destroy the military power of either or of both chiefs (Scindhia and Raja of Berar) . It is particularly desirable that you should *destroy Scindhia's artillery, and all arms of European construction, and all military stores which he may possess* the actual seizure of the person of *the Scindhia, or of Raghoji Bhonsla*, would be highly desirable, In the event of hostilities, you will take proper measures for withdrawing the European Officers from the Service of Scindhia, Holkar and of every other chief opposed to you

"You are at liberty to incur *any expense requisite for this service*, and to employ such *emmissaries as may appear most* serviceable . I *propose to dispatch proper* emmissaries to Gohud, and to the Rajput chiefs *You will also* employ every endeavour to excite those powers against

"इन सब बातों पर फिर से नज़र डालते हुए आपको मालूम होगा कि हिन्दोस्तान की उत्तर पश्चिमी सरहद पर सींधिया और बरार के राजा के साथ युद्ध करने के सब से अधिक लाभदायक फल मेरी राय मे ये होंगे—

"(१) जमना के किनारे जो फ़्रान्सीसियों की बस्ती है उसका और उसके तमाम फ़ौजी सामान का नाश हो जायगा।

"(२) जमना तक कम्पनी का इलाक़ा बढ़ा लिया जायगा और उसके साथ जमना के पश्चिमी और दक्खिणी तटों पर आगरा, देहली तथा अन्य छावनियों के एक काफ़ी लम्बे सिलसिले पर क़ब्ज़ा कर लिया जायगा।

"(३) मुग़ल सम्राट की नाम मात्र की सत्ता को अपने हाथों में ले लिया जायगा।

"(४) जमना के दक्खिण और पश्चिम में जयनगर से लेकर बुन्देलखण्ड तक तमाम छोटी छोटी रियासतों के साथ एक समान ढङ्ग की उपयोगी सन्धियाँ कर ली जायँगी। और

"(५) बुन्देलखण्ड को कम्पनी के राज्य में मिला लिया जायगा।"*

Scindhia . . . You will consider what steps may be taken to excite Kashi Rao Holkar against Jaswant Rao, . the early reduction of Scindhia . . . is certain and would prove a fatal blow to the views of France"—Governor General's letter marked 'Most secret' dated 27th June, 1803, to his brother Major General Wellesley

* "Reviewing those statements your excellency will observe that the most prosperous issue of a war against Scindhia and the Raja of Berar on the North Western frontier of Hindostan would in my judgment comprize

"1st The destruction of the French State now formed on the banks of the Jumna together with all its military resources,

"2nd The extension fo the Company's frontier to the Jumna, with the

इस "जमना किनारे की फ़ान्सीसी बस्ती" के विषय में सब से पहली बात यह ध्यान देने योग्य है कि इस समय तक अंगरेज़ों का जो कुछ पत्र व्यवहार या जो कुछ बातचीत सींधिया के साथ हो रही थी उसमें इस "फ़ान्सीसी बस्ती" या "फ़ान्सीसी ख़तरे" का कहीं नाम तक नहीं लिया गया। इसके अतिरिक्त इस "फ़ान्सीसी बस्ती" की असत्यता के विषय में सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा था—

"× × × मुझे मालूम है कि मराठों के ख़िलाफ़ एक बड़ी दलील यह दी जाती है कि वे हमारे प्रभुत्व को नुक़सान पहुँचाने के स्पष्ट विचार से अपने यहाँ फ़्रान्सीसी अफ़सर रखते हैं। यहाँ तक कहा जाता है कि कप्तान पैरों के अधीन चौदह हज़ार फ़्रान्सीसी सेना मौजूद है। इस सेना के अस्तित्त्व का हमारे पास अणुमात्र भी सुबूत नहीं है। × × × वास्तव में अत्यन्त बारीकी के साथ खोज करने के बाद पता लगा है कि पूरी मराठा सेना में बारह से ज़्यादा फ़्रान्सीसी अफ़सर नहीं हैं। × × × सींधिया की ज़रा भी यह इच्छा नहीं है कि अपने राज्य के अन्दर किसी फ़्रान्सीसी सेना को आने तक दे। सब जानते हैं कि अपने राज के किसी भाग में भी

---

possession of Agra, Delhi and a sufficient chain of posts on the Western and Southern banks of the Jumna ,

" 3rd The possession of the nominal authority of the Moghul ,

" 4th. The establishment of an efficient system of alliance with all the petty states to the Southward and the Westward of the Jumna from Jayanagar to Bundelkhand ,

" 5th The annexation of Bundel Khund to the Company's dominions " —Governor General's letter to General Lake dated 27th July, 1803

सींधिया किसी विदेशी सेना को रहने देने के विचार तक से घृणा करता है × × ×।"*

इसी बीच इंगलिस्तान के भारत मन्त्री लॉर्ड कासल री के दो पत्र मार्किस वेल्सली के पास आए, जिनमें साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों को उस समय भारत में फ़ान्स से क़तई किसी तरह का भी भय न था और न आइन्दा किसी फ़ांसीसी हमले की सम्भावना थी। इतिहास लेखक जेम्स मिल ने भी अपने इतिहास में इस 'फ़ान्सीसी ख़तरे' के झूठ और बनावटीपन को बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ दर्शाया है। ठीक इसी बहाने का मार्किस वेल्सली ने टीपू सुलतान को कुचलने के लिए उपयोग किया था। वास्तव में इस तरह के झूठ अधिकतर ब्रिटिश भारतीय इतिहास को भावी अध्येताओं की दृष्टि में कलङ्क रहित दिखाने के लिए गढ़े जाते थे।

फ़ांसीसियों से डर का बहाना

किन्तु इस दूसरे मराठा युद्ध का वास्तविक उद्देश ऊपर के पत्र

---

* "He was aware that the great argument against the Marathas was their harbouring French officers *among them*, with views evidently hostile to our superiority It was even asserted that there was *an army of 14,000 French troops, under Captain Perron* Of the existence of such a body of troops there was not a single title of evidence before the house Indeed, after the minutest investigation he found that there were not in the whole Maratha army *more* than twelve French Officers, as to any wish of Scindhia to admit French troops *into* his dominions, he denied its existence It was notorious that Scindhia abhorred the idea of foreign troops in any part of his states . —Sir Philip Francis on the Maratha War, before the House of Commons, on the 14th March, 1804

की दूसरी से लेकर पाँचवीं तक चार बातों के अन्दर साफ़ नज़र आता है। उद्देश केवल ब्रिटिश साम्राज्य पिपासा को शान्त करना था। वेल्सली इस समय सींधिया और बरार के अत्यन्त उपजाऊ और मालामाल इलाकों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए लालायित था और ये सब बहाने एक दूसरे के बाद इसी उद्देश की पूर्ति के लिए गढ़े जा रहे थे।

२८ जून को गवरनर जनरल ने फिर जनरल लेक को एक "अत्यन्त गुप्त और गूढ़" पत्र लिखा कि—"आप सींधिया से लड़ने के उद्देश से उसकी सरहद पर जगह जगह फ़ौज जमा करने का उचित प्रबन्ध कर लें, × × × किन्तु यह सब कार्य इस तरह किया जाय कि शत्रु सावधान होने न पावे।"*

इस पत्र के साथ ही वेलसली ने लेक को एक दूसरा पृथक् पत्र भेजा जिसमें विस्तार के साथ उसने जनरल लेक को आदेश दिया कि सींधिया के आदमियों को किस प्रकार अपनी ओर फोड़ा जाय। यह पृथक् पत्र वेलसली के छपे हुए पत्रों में मौजूद है और पाश्चात्य कूटनीति का एक सुन्दर नमूना है।

जो माँगें इस समय करनल कॉलिन्स सींधिया के सामने पेश

* "To commence the measures for, assembling a force, with a view to active operations against Scindhia,

"You will be able to collect forces at the necessary points without occasioning any alarm for war"—Marquess Wellesley's letter to General Lake marked 'Most secret and confidential, dated 28th June, 1803

कर रहा था उनके विषय में दो तीन बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि कॉलिन्स सींधिया से अपनी राजधानी लौट जाने के लिए कह रहा था, किन्तु इस लौटने के लिए एक बार भी कोई मियाद नियत नहीं की गई थी और महाराजा सींधिया का अपने अनुयाइयों और सामान के साथ तुरन्त राजधानी लौट जाना इतना सरल न था; दूसरे यह कि कॉलिन्स की एक मात्र माँग सींधिया से लौट जाने की ही न थी, कॉलिन्स के पत्रों से पता चलता है कि उसकी माँगें प्रति दिन बढ़ती और बदलती चली गईं; यहाँ तक कि इन दोनों नरेशों से उसी समय लौटने के लिए कहा जा रहा था और उसी समय उन पर यह भी ज़ोर दिया जा रहा था कि आप दोनों कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लें। तीसरी और सब से विशेष बात यह कि ये दोनों मराठा नरेश उस समय अपने ही इलाक़े के अन्दर थे। कॉलिन्स का व्यवहार महाराजा दौलतराव के साथ अधिकाधिक अशिष्ट होता चला गया, और दौलतराव बराबर उसे धैर्य और शान्ति की सलाह देता रहा। असलियत यह थी कि अंगरेज किसी न किसी तरह सींधिया को भड़का कर युद्ध छेड़ना चाहते थे और सींधिया अभी तक शान्ति के स्वप्न देख रहा था।

कॉलिन्स का अशिष्ट व्यवहार

४ जुलाई सन् १८०३ को दौलतराव सींधिया, राघोजी भोंसले और करनल कॉलिन्स तीनों की भेंट हुई। इस समय जो बातचीत हुई उससे प्रकट है कि अभी तक भी इन दोनों मराठा नरेशों को बसई की

सींधिया और भोंसले की सदिच्छाएँ

सन्धि की शर्तों का पूरी तरह पता न था। दोनों भोले भारतीय नरेशों ने इस भेंट के समय सच्चे जी से कम्पनी के साथ मित्रता और शान्ति क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की। इसी बातचीत के अनुसार ६ जुलाई को गवरनर जनरल के नाम तीन पत्र लिखे गए। एक करनल कॉलिन्स की ओर से और एक एक महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले की ओर से।

सींधिया और भोंसले ने अपने पत्रों में साफ़ लिख दिया कि

मराठों पर पहले वार करने का इरादा

हम न पूना जाने वाले हैं, न अजन्ती घाट के उस पार जायँगे, न हमारा यह इरादा है कि अंगरेज़ों और पेशवा के बीच बसई में जो सन्धि हुई है, उसमें हम किसी तरह का दख़ल दें।

सींधिया के पत्र के उत्तर में वेल्सली ने सींधिया को फिर लिखा कि—'आप शीघ्र अपनी राजधानी वापस लौट जाइए अन्यथा मित्रता नहीं रह सकती।' इस पत्र में भी वेल्सली ने जान बूझ कर सींधिया के लौटने के लिए कोई मियाद नियत न की। इसका कारण वेल्सली ने स्वयं अपने १७ जुलाई के पत्र में करनल क्लोज़ को इस प्रकार लिखा—

"मैंने दौलतराव सींधिया के लौटने के लिए मियाद इसलिए नियत नहीं की × × × क्योंकि लड़ाई शुरू करने का समय मैं अपने ही दिल के अन्दर रखना चाहता हूं। जिससे लाभ यह है कि मुझे पहले वार करने का मौक़ा मिलने की अधिक सम्भावना है × × ×।"*

* "I have not fixed when he (Daulat Rao Sindhia) should withdraw

११ जुलाई को गवरनर जनरल ने अपनी कौन्सिल की एक विशेष बैठक की। इसी के अगले दिन बारलो ने वह ख़ास पत्र लिखकर गवरनर जनरल के सामने पेश किया जिसमें लिखा है—

"हमें हिन्दोस्तान में एक भी देशी रियासत ऐसी बाक़ी नहीं रहने देनी चाहिए, जो कि या तो अंगरेज़ों की ताक़त के सहारे खड़ी न हो, और या जिसका समस्त राजनैतिक व्यवहार पूरी तरह से अंगरेज़ों के हाथों में न हो।"†

वेल्सली का लेक का पत्र

१८ जुलाई को गवरनर जनरल ने एक "गुप्त और गूढ़" पत्र में जनरल लेक को फिर लिखा कि आप सींधिया और भोंसले दोनों पर वार करने को तैयार रहिए और—

"पूर्ण विश्वास के साथ काम कीजिएगा और आपने युद्ध की जो अत्यन्त योग्यता पूर्ण योजना तैयार की है उस पर जल्दी से अमल करने की हर तरह कोशिश कीजियेगा।"*

. . because I wish to keep in my own breast the period at which hostilities will be commenced, by which advantage it becomes more probable that I shall strike the first blow "—General Wellesley's letter to Colonel Close dated 17th July 1803

† " no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British Power, or the political conduct of which is not under its absolute control" –Memorandum of Sir George Barlow to the Governor General dated 12th July 1803

* " you will therefore act confidently and you will use every effort to prepare for the early execution of the very able plan of operations which you have framed "—Marquess Wellesley's 'Secret and Confidential' letter to General Lake dated 18th July, 1803

२१ जुलाई की रात को जनरल वेल्सली के पत्र का उत्तर तय करने के लिए सींधिया और बरार के राजा के बीच फिर बातचीत हुई। २२ जुलाई को कॉलिन्स ने सींधिया को लिखा—

"चूँकि करनल कॉलिन्स को मालूम हुआ है कि कल रात महाराजा दौलतराव सींधिया और राजा राघोजी भोंसले के बीच महाराजा के नाम जनरल वेल्सली के पत्र का उत्तर तय करने के लिए बातचीत हुई है, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि महाराजा दौलतराव सींधिया उस बातचीत के नतीजे की मुझे इत्तला दें × × ×।"

२४ जुलाई सन् १८०३ को दोनों मराठा नरेशों ने कॉलिन्स के पत्र का जवाब भेज दिया। सींधिया ने लिखा—

मराठों का कॉलिन्स के पत्र का उत्तर

"ज्योंही मेरी और सेना साहब सूबा राजा राघोजी भोंसले की मुलाक़ात होगी और हम एक जगह बैठेंगे, आप से भी आने की प्रार्थना की जायगी, और जो कुछ कहना है उस समय आमने सामने बात चीत की जायगी। अभी इस मौक़े पर मेरी और राजा की मुलाक़ात आवश्यक है। यदि आप मिलने का इरादा करते हैं तो कल दो घड़ी दिन रहे आइएगा, मेरा घर आपका घर है।"

इसी तरह का जवाब राजा राघोजी भोंसले ने दिया।

अगले ही दिन २५ जुलाई को करनल कॉलिन्स और महाराजा सींधिया की मुलाक़ात हुई। कॉलिन्स ने बार बार महाराजा सींधिया पर अपनी राजधानी लौट जाने के लिए ज़ोर दिया। इसके उत्तर में सींधिया के वज़ीर ने कॉलिन्स से कहा—

सींधिया के वज़ीर का कॉलिन्स को उत्तर

"महाराजा दौलतराव और बरार के राजा दोनों की सेनाएं उनके अपने अपने इलाक़ों के अन्दर हैं। इन नरेशों ने सञ्जीदगी के साथ वादा किया है कि हम न अजन्ती घाट पर चढ़ेंगे और न पूना की ओर जायँगे। वे लिखकर और अपनी अपनी मोहरें लगाकर गवरनर जनरल को विश्वास दिला चुके हैं कि हम कभी बसई की सन्धि को उलटने की कोशिश न करेंगे, और ये तहरीरें उनकी मित्रता के इरादों का असन्दिग्ध प्रमाण हैं। अब हम अपने अपने वकील पूना भेजने की तजवीज़ कर रहे हैं ताकि जिस तरह का विश्वास हमें हाल में जनरल वेल्सली की ओर से दिलाया गया है उसी तरह का विश्वास पेशवा की ओर से भी हमें मिल जाय। [अर्थात् यह कि बसई की सन्धि का प्रभाव पेशवा और अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिलकुल न पड़ेगा।] × × × सींधिया और होलकर के बीच इस समय जिस सन्धि की बातचीत हो रही है वह अभी पूरी तरह तय नहीं हुई और जब तक वह तय न हो जाय महाराजा सींधिया राजधानी वापस नहीं जा सकते।"

सींधिया का स्पष्ट पत्र

बसई की सन्धि को हुए सात महीने हो चुके थे, किन्तु अभी तक भी उस सन्धि की कोई प्रति अंगरेज़ों ने सींधिया या बरार के राजा को न दी थी। इस बीच दोनों वेल्सली भाई अपने पत्रों में सींधिया और भोंसले दोनों को बराबर यह धोखा देते रहे कि बसई की सन्धि का सींधिया और भोंसले की स्वाधीनता पर या पेशवा के साथ उन दोनों के सम्बन्ध पर यानी मराठा मण्डल की आन्तरिक व्यवस्था पर किसी तरह का असर न

पड़ेगा। इस विश्वास पर ही इन दोनों नरेशों ने बसई की सन्धि का विरोध न करना तक स्वीकार कर लिया था। किन्तु इसी बात को वे अपने वकील भेजकर बाजीराव से भी पक्का कर लेना चाहते थे। जुलाई के अन्त में अंगरेज़ों ने उन्हें बसई की सन्धि की नक़ल दी। इस पर दौलतराव सींधिया ने तुरन्त मार्किस वेल्सली को लिखा—

"आपका मित्रतासूचक पत्र, जिसमें आपने पेशवा और अंगरेज़ कम्पनी के बीच बसई की नई सन्धि होने की मुझे सूचना दी है और साथ में उस सन्धि की एक नक़ल भेजी है, मिला और मुझे उस सन्धि की शर्तों की पूरी पूरी इत्तला हुई × × ×।

"पेशवा के और मेरे बीच जो परस्पर प्रतिज्ञाएँ हो चुकी हैं वे इस तरह की हैं कि सभी बातों का और पेशवा की सल्तनत और उसके शासन के सब मामलों का फ़ैसला मेरी सलाह और मशवरे से होना चाहिए। × × × किन्तु इसके विरुद्ध अंगरेज़ों और पेशवा के बीच हाल में जो शर्तें हुई हैं, उनकी अब मुझे सूचना दी गई है। × × × इसलिए अब करनल कॉलिन्स की उपस्थिति में राजा राघोजी भोंसले के साथ यह तय हुआ है कि पूर्वोक्त सन्धि की सब बातों का पता लगाने के लिए मेरी और राजा की ओर से विश्वस्त दूत पेशवा के पास भेजे जायँ। साथ ही अंगरेज़ों और पेशवा के बीच की बसई की उस १९ धाराओं वाली सन्धि की शर्तों को उलटने का मेरा बिलकुल भी इरादा नहीं है, इस शर्त पर कि अंगरेज़ कम्पनी या पेशवा का भी ज़रा भी इरादा उस सम्बन्ध को उलटने का न हो जो कि

बहुत काल से पेशवा की सरकार के, मेरे और राजा राघोजी भोंसले और अन्य मराठा नरेशों के बीच क़ायम है।"*

वेल्सली का युद्ध का दृढ इरादा

ज़ाहिर है कि ये दोनों मराठा नरेश केवल मराठा साम्राज्य के स्वाधीन अस्तित्व और उसकी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए चिन्तित थे और इसीलिए अपने दूत पूना भेजकर पेशवा से सब बात तय कर लेना चाहते थे। बैठे बैठाए अंगरेज़ों से या किसी से युद्ध करने का उनका कदापि इरादा न था। किन्तु अंगरेज़ भी इसी 'मराठा साम्राज्य के स्वाधीन अस्तित्व और उसकी व्यवस्था' को अन्त

---

* "I have received your Lordship's friendly letter notifying the conclusion of new engagements between His Highness the Peshwa and the English Company at Bassein, together with a copy of the treaty, and I have been fully apprized of its contents,

"Whereas the engagements subsisting between the Peshwa and me are such, that the adjustment of all affairs and of the concerns of his state and Government should be arranged and completed with my advice and participation, . Not withstanding this, the engagements which have lately been concluded between that quarter (British Government) and the Peshwa have only now been communicated Therefore, it has now been determined with Raja Raghoji Bhonsla, in presence of Colonel Collins, that confidential persons on my part and the Raja's, be despatched to the Peshwa, for the purpose of ascertaining the circumstances of the (said) engagements At the same time no intention whatever is entertained on my part to subvert the stipulations of the treaty consisting of 19 articles, which has been concluded at Bassein between the British Government and the Peshwa, *on condition that there be no design whatever on the part of the English Company and the Peshwa to subvert the stipulations of the treaty, which, since a long period of time, has been concluded between the Peshwa's Sircar, me, and the said Raja and the Maratha chiefs*"—Maharaja Doulat Rao Scindhia's letter to Marquess Wellesley, received on the 31st July, 1803.

करने की फ़िराक़ में थे। ३१ जुलाई सन् १८०३ को जनरल वेलसली ने करनल कॉलिन्स को लिखा कि—'चूंकि सींधिया और जसवन्त राव होलकर के बीच अभी तक कोई सन्धि नहीं होने पाई, इसलिए यही मौक़ा है कि हमें जल्द से जल्द युद्ध शुरू कर देना चाहिए।'

अगले दिन पहली अगस्त सन् १८०३ को सींधिया और भोंसले दोनों ने जनरल वेलसली के नाम एक अत्यन्त मित्रता सूचक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने वेलसली से फिर प्रार्थना की कि बाजीराव के पास तक हमारे दूतों के पहुँचने और लौटने का इन्तज़ार किया जाय और धैर्य और शान्ति से मामले का फ़ैसला कर लिया जाय।

युद्ध का एलान

किन्तु अंगरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी। पहली अगस्त सन् १८०३ को बिना महाराजा से पूछे या बिना दरबार को बाक़ायदा सूचना दिए करनल कॉलिन्स सींधिया के दरबार से चल दिया और ६ अगस्त सन् १८०३ को जनरल वेलसली ने कम्पनी की ओर से मराठों के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

लीस्टर का पत्र

मार्किस वेलसली के तमाम सरकारी और ग़ैर सरकारी पत्रों की पूरी छानबीन करने से मालूम होता है कि अन्त समय तक सींधिया और भोंसले दोनों इस बात के लिए उत्सुक थे कि शान्ति से सब बातों का निबटारा हो जाय।

मार्किस वेलसली के पत्रों में दौलतराव के इरादे में सन्देह उत्पन्न करने वाला केवल एक पत्र मिलता है, जो २६ जुलाई सन् १८०३ को मुरादाबाद के कलेक्टर लीस्टर ने वेलसली को लिखा।

इस पत्र के साथ दो फ़ारसी पत्रों की नक़लें थीं, जिनके विषय में कहा जाता है कि सींधिया ने सहारनपुर के पदच्युत नवाब बम्बूख़ाँ और रामपुर के पदच्युत नवाब .गुलाम मोहम्मद ख़ाँ के नाम भेजे थे, जिनमें सींधिया ने उनसे अंगरेज़ों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की थी और जिनकी नक़लें लीस्टर को बम्बूख़ाँ से मिलीं। मूल पत्र न बम्बूख़ाँ ने लीस्टर को दिए, न लीस्टर ने वेलसली को; और न कहीं मौजूद हैं। जो नक़लें इधर से उधर तक भेजी गई, उन पर तारीख़ तक नदारद। बम्बूख़ाँ अंगरेज़ों का धनक्रीत था, जिसका अधिक वृत्तान्त आगे चल कर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त युद्ध का एलान मार्किस वेलसली ने ६ अगस्त को किया और लीस्टर का पत्र वेलसली को १५ अगस्त को मिला। इसके अलावा बम्बूख़ाँ का सारा चरित्र इतना नीच और अविश्वसनीय था, इन पत्रों की भाषा इतनी लचर है और स्वयं लीस्टर के पत्र में लीस्टर का जालसाज़ होना इतना साफ़ ज़ाहिर है कि इन पत्रों की सच्चाई पर विश्वास करना या उन्हें युद्ध के कारणों में कोई स्थान देना सर्वथा असम्भव है।

माधोजी सींधिया और मूदाजी भोंसले दोनों ने ऐसे संकट के समय, जब कि अंगरेज़ कम्पनी के पैर भारत से उखड़ते हुए नज़र आते थे, इन विदेशियों की सहायता की थी; आज उन दोनों के वंशजों और उत्तराधिकारियों को अपने पूर्वजों की अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पड़ा।

मार्च सन् १८०४ में इस दूसरे मराठा युद्ध की न्याय्यता और

अन्याय्यता का प्रश्न इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने पेश हुआ। सर फ़िलिप फ्रैन्सिस ने अपनी वक्तृता में मार्किस वेलसली और उसके साथियों के छल कपट, बसई की सन्धि की अन्याय्यता, मराठा नरेशों की आद्योपान्त निर्दोषिता, फ्रान्सीसियों के भय की निर्मूलता और युद्ध के छेड़ने में कम्पनी की गर्हणीय स्वार्थपरायणता को बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ साबित किया। भारत के साथ अंगरेज़ों के सम्पर्क को दर्शाते हुए सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने कहा—

पार्लिमेण्ट में दूसरे मराठा युद्ध का प्रश्न

"भारत के साथ हमारा सम्बन्ध कैसे शुरू हुआ, इसकी बाबत मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि शुरू में हमारा सम्बन्ध केवल तिजारत का था, किन्तु देशी नरेशों ने कभी हम पर सन्देह नहीं किया, बल्कि हर तरह हमारे साथ अनुग्रह का व्यवहार किया। उन्होंने न केवल तिजारत करने और उससे ख़ूब फ़ायदा उठाने के लिए हमें हर तरह की सुविधा प्रदान की, बल्कि यहाँ तक कि ऐसी ऐसी रिआयतें और माफ़ियाँ हमें दे दीं जो उनकी अधिकांश प्रजा को भी प्राप्त न थीं। व्यापार की दृष्टि से, विदेशी क़ौमों के साथ अपनी तिजारत को बढ़ने का मौक़ा देना देशी नरेशों के लिए बुद्धिमत्ता थी, किन्तु जब कि उनकी तिजारती आँख खुली हुई थी, उनकी राजनैतिक आँख बन्द थी। उन्होंने उन असूलों पर काम नहीं किया, जिन असूलों पर कि चीन वालों ने काम किया और जिनके कारण कि यूरोपियन क़ौमें चीन पर अपनी सत्ता जमाने में सफल न हो सकीं।"*

सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने यह भी दिखलाया कि किस प्रकार

अंगरेज़ शासक भारतीय नरेशों के और ख़ास कर उस समय सींधिया के चरित्र पर बिल्कुल झूठे दोष लगा कर उसे बदनाम करते थे और किस प्रकार के छलों द्वारा उन नरेशों की स्वाधीनता हरते थे। फ़्रैन्सिस ने ज़ोर देकर कहा—

"पहले हमने तिजारत शुरू की, तिजारत से कोठियाँ हुईं, कोठियों से क़िलेबन्दी, क़िलेबन्दी से सेनाएँ, सेनाओं से देश विजय, और विजयों से हमारी आजकल की हालत।"

इस वक्तृता के बाद सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस का प्रस्ताव केवल यह था कि—'भारत में इलाक़े विजय करने और अपना राज्य बढ़ाने की योजनाएँ करना अंगरेज़ क़ौम की इच्छा के विरुद्ध है।'

अंगरेज़ क़ौम के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ज़बरदस्त बहुमत से इस प्रस्ताव को नामंज़ूर किया।

---

* "With regard to the origin of our connection with India, it was hardly necessary for him to remind the house, that it was originally purely commercial, but it was marked on the part of the native princes with every appearance of good understanding, and even kindness They not only afforded us every facility for carrying on an advantageous trade, but actually conferred on us immunities and exemptions which many of their own subjects did not enjoy It was, in a mercantile point of view, wise in the native princes to encourage trade with foreign nations But while their commercial eye was open, their political eye was closed They did not act on those principles which had so effectually excluded European nations from the dominion of China

" he said, with great emphasis, we first had commerce, commerce produced factories, factories produced garrisons, garrisons produced armies, armies produced conquests, and conquest had brought us into our present situation."—Sir Philip Francis, in the House of Commons 14th March, 1804, *Hansard's Reports*

तेईसवाँ अध्याय

साज़िशों का जाल

मराठा नरेशों की परिस्थिति

जिस समय से अंगरेज़ों ने मराठों के साथ दोबारा युद्ध छेड़ने का निश्चय किया, उस समय से ही वेल्सली और उसके साथियों के सामने सबसे मुख्य कार्य गुप्त षड्यन्त्रों द्वारा मराठों के बल को तोड़ना था।

पेशवा अपनी राजधानी के ही अन्दर अंगरेज़ी सेना का क़ैदी था और जब तक सींधिया या कोई दूसरा नरेश बाहर से सेना लेकर पूना न पहुँचता, तब तक पेशवा के लिए अंगरेज़ों के विरुद्ध हाथ पाँव हिला सकना असम्भव था। महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले दोनों के साथ युद्ध अनिवार्य नज़र आता

था। जसवन्तराव होलकर और सींधिया के बीच उस समय मेल की कोशिशें हो रही थीं। जसवन्तराव पूना से उत्तर की ओर अपने राज्य में गया हुआ था। उसके पास एक ज़बरदस्त, सन्नद्ध और विजयी सेना थी। इसलिए अंगरेज़ों को इस समय सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि कहीं जसवन्तराव होलकर सींधिया और भोंसले के साथ न मिल जाय।

जसवन्तराव को सींधिया से फोड़ने के प्रयत्न

इसीलिए जसवन्तराव के पूना से लौटते हुए अंगरेज़ों ने उसे पेशवा और निज़ाम दोनों के इलाक़ों में लूट मार करने का खुला मौक़ा दिया। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि पूना की लूट के समय करनल क्लोज़ जसवन्तराव के साथ था और औरंगाबाद की लूट में अंगरेज़ों का साफ़ हाथ था। इस बीच जब कि अंगरेज़ सींधिया और भोंसले दोनों को बराबर तंग करते रहे, जसवन्तराव को वे बराबर खुश रखने के प्रयत्न करते रहे। अंगरेज़ों की ही मदद और उकसाने से पूना से लौटने के बाद जसवन्तराव तुकाजी होलकर के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी काशीराव होलकर को इन्दौर की गद्दी से उतार कर स्वयं होलकर राज्य का स्वामी बन गया। मार्किस वेल्सली के अनेक पत्र अत्यन्त खुशामद से भरे हुए उन दिनों महाराजा जसवन्तराव होलकर के पास पहुँचे। १६ जुलाई सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने क़ादिर नवाज़ खाँ नामक अपने एक गुप्त दूत को एक पत्र देकर जसवन्तराव के पास भेजा और लिखा कि क़ादिर नवाज़ खाँ 'मेरा पक्का विश्वस्त आदमी है' और

'शेष सब बातें आप से ज़बानी कहेगा।' इस क़ादिर नवाज़ ख़ाँ की मार्फ़त अंगरेज़ों ने जसवन्तराव से बड़े बड़े झूठे वादे किए। अदूरदर्शी जसवन्तराव फिर अंगरेज़ों की इन चालों में आ गया। जसवन्तराव और सींधिया में मेल न हो सका। युद्ध के अन्त में जब सींधिया और भोंसले दोनों के साथ अंगरेज़ों की सुलह हो गई और जसवन्तराव को पता चला कि मेरे साथ अंगरेज़ों के सब वादे बिलकुल झूठे थे तब मजबूर होकर जसवन्तराव को स्वयं अंगरेज़ों से लड़ना पड़ा, किन्तु उस समय जब कि मराठों की सत्ता को काफ़ी हानि पहुँच चुकी थी।

अंगरेज़ों की अमीर ख़ाँ के साथ साज़िश

किन्तु जसवन्तराव पर भी अंगरेज़ों को विश्वास न था। केवल उसे बहकाए रखना ही उन्होंने अपने लिए काफ़ी नहीं समझा, जसवन्तराव की सेना के सरदारों को भी उन्होंने जसवन्तराव के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ कर रखना आवश्यक समझा। जसवन्तराव के साथ नागपुर से एक सरदार अमीर ख़ाँ आया था, जिसके अधीन पच्चीस हज़ार सवार थे और जिस पर होलकर को सब से अधिक भरोसा था। निज़ाम के आदमियों की मार्फ़त अंगरेज़ों ने अमीर ख़ाँ को अपनी ओर फोड़ा। २८ अप्रैल को अर्थात् बाजीराव के पूना पहुँचने से पहले, जबकि जसवन्तराव अभी पूना ही में मौजूद था, जनरल वेलसली ने जनरल स्टुअर्ट को लिखा:—

"होलकर के सरदार अमीर ख़ाँ का, जिसके अधीन होलकर की सेना का सब से बड़ा दल है, निज़ाम दरबार के साथ निज़ाम की नौकरी करने के लिए

पत्र व्यवहार हो रहा है। इसलिए २ मई को पूना में हमारी शक्ति पहले से अधिक बढ़ी हुई होगी, और हमारे वहाँ सेना ले जाने का एक बड़ा उद्देश पूरा हो जायगा। यदि अमीर ख़ाँ के विद्रोह के कारण होलकर कमज़ोर न भी हो सका तो भी कम से कम अमीर ख़ाँ पर से होलकर का विश्वास कम अवश्य हो जायगा।*"

करनल स्टीवेन्सन द्वारा इस सम्बन्ध में अंगरेज़ों और निज़ाम दरबार से बातचीत हो रही थी। दबाव पड़ने पर निज़ाम ने अमीर ख़ाँ को ३००० सवारों सहित अपने यहाँ नौकर रखना स्वीकार कर लिया। किन्तु अमीर ख़ाँ के सवारों की संख्या बहुत अधिक थी। ३ मई सन् १८०३ को जनरल वेलसली ने हैदराबाद के रेज़िडेण्ट मेजर कर्कपैट्रिक को लिखा कि—"× × × मैं यह सिफ़ारिश किए बिना नहीं रह सकता कि अमीर ख़ाँ के साथ चाहे कितने भी सवार हों, निज़ाम को उन्हें ज़रूर अपने यहाँ नौकर रख लेना चाहिए। × × ×"* इसी पत्र के इससे ऊपर के

---

* "Meer Khan (Amir Khan), Holkar's Sirdar, in command of his largest detachment, still keeps open his negotiation with the Nizam to enter His Highness' service, on the 2nd of May, therefore, we shall be in greater strength than ever at Poona, and have attained one great object of our expedition, and, If Holkar should not be weakened by the defection of Meer Khan, at least his confidence in that chief must be shaken"—Major General Wellesley's letter to Lieut General Stuart dated 28th April, 1803

* " when I am considering the means of defending His Highness' long line of frontier from the plunder of a light body of horse, I can not refrain from recommending that, whatever may be Meer Khan's numbers, His Highness should take them into pay."—General Wellesley's letter to Major Kirkpatric, Resident at Hyderabad, dated 3rd May, 1803

वाक्य में जनरल वेलसली ने यह साफ़ धमकी भी दी कि यदि निज़ाम ने स्वीकार न किया तो मुमकिन है कि होलकर के उत्तर भारत की ओर लौटते समय निज़ाम का सरहदी इलाक़ा लुट जाय, औरङ्गाबाद और उसके आस पास के इलाक़े लुटने का हाल ऊपर आ चुका है। इसके बाद किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि औरङ्गाबाद के लुटने में अंगरेज़ों का हाथ था। यहाँ तक कि लूट के बाद जब निज़ाम ने अंगरेज़ों से शिकायत की और चाहा कि औरङ्गाबाद की लूट का माल होलकर से निज़ाम को वापस दिला दिया जाय तो वेलसली ने साफ़ साफ़ होलकर का पक्ष लिया। किन्तु इस अवसर पर जनरल वेलसली के पत्रों से मालूम होता है कि करनल स्टीवेन्सन ने निज़ाम के वज़ीर राजा महीपत राम से यह वादा तक कर लिया कि अमीर ख़ाँ जब होलकर को छोड़ कर आ जाय तो उसकी सेना का आधा ख़र्च निज़ाम दे और आधा कम्पनी दे। बाद में काम निकल जाने पर अंगरेज़ इस वादे से साफ़ मुकर गए; और उलटा राजा महीपत राम पर झूठ का इलज़ाम लगाने लगे। ये सब पत्र वेलसली के पत्रों में मौजूद हैं और इस स्थान पर उनसे लम्बे उद्धरण देना व्यर्थ है। अन्त में जो कुछ कारण रहा हो, अमीर ख़ाँ निज़ाम के यहाँ नौकर नहीं रक्खा गया। फिर भी इस पत्र व्यवहार के कारण अमीर ख़ाँ भीतर ही भीतर होलकर से फटा रहा। इसमें भी सन्देह नहीं कि होलकर की नौकरी करते हुए भी अमीर ख़ाँ को अंगरेज़ों से गुप्त धन मिलता था और यदि होलकर सींधिया या भोंसले का साथ दे बैठता तो

डर था कि ऐन मौके पर अमीर ख़ाँ उसे दग़ा देता। इस समय से ही धनक्रीत अमीर ख़ाँ ने अंगरेज़ों का इतना पक्का साथ दिया कि इन सेवाओं के बदले में सन् १८१८ में उसे टौंक का नवाब बना दिया गया। टौंक के वर्तमान नवाब अमीर ख़ाँ के ही वंशज हैं।

सींधिया के विरुद्ध अन्य षड्यन्त्र

जसवन्तराव होलकर को इस प्रकार निकम्मा कर देने के अतिरिक्त दौलतराव सींधिया के राज के अन्दर भी दौलतराव के विरुद्ध अंगरेज़ों की गुप्त साज़िशें लगभग पाँच वर्ष से जारी थीं। २८ जून सन् १८०३ को मार्किस वेलसली ने जनरल लेक को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसके ऊपर "अत्यन्त गुप्त और गूढ़"* ये शब्द लिखे हुए हैं और जिसमें इस तरह की साज़िशों के लिए लेक को विस्तृत हिदायतें दी गई हैं। वास्तव में इस तरह की साज़िशों पर ही भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता की बुनियादें रक्खी गई हैं। जनरल लेक को इस काम में मदद देने के लिए ग्रीम मरसर नामक एक अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ उसका सहायक नियुक्त करके भेजा गया। २२ जुलाई सन् १८०३ को गवरनर जनरल की ओर से उसके सेक्रेटरी एडमॉन्सटन ने ग्रीम मरसर को एक "अत्यन्त गुप्त" पत्र लिखा, जिसमें मरसर को महाराजा सींधिया के मुख्य मुख्य कर्मचारियों, सरदारों और सामन्तों के साथ साज़िशें करके उन्हें अपनी ओर फोड़ने की हिदायत की गई। मरसर को आज्ञा दी गई कि तुम उन लोगों से यह वादा कर लो कि :—

* "Most Secret and Confidential"

"यदि आप लोग अपनी अपनी शक्ति के अनुसार हिन्दोस्तान के उस भाग से दौलतराव सींधिया की सेना को निकालने में, और यदि भविष्य मे सींधिया या कोई दूसरी बाहरी शक्ति उन प्रान्तों में अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न करे तो उन प्रयत्नों को निष्फल कर देने में, उत्साह और तत्परता के साथ अंगरेज़ सरकार की मदद करेंगे, तो आपकी पैतृक जागीरों पर आपका बे रोक टोक क़ब्ज़ा रहने दिया जायगा। इत्यादि।"*

इस कठिन कार्य को पूरा करने के लिए कई योग्य अफ़सर मरसर के अधीन नियुक्त किए गए और इलाहाबाद, कानपुर तथा इटावा के कलेक्टरों को इस बात की हिदायत की गई कि मरसर को अपने गुप्तचरों के ख़र्च के लिए जितने भी रुपयों की ज़रूरत हो और जितना रुपया मरसर माँगे, तुरन्त बिना पूछे भेज दें और उसे गवरनर जनरल के नाम लिख लें।

२७ जुलाई सन् १८०३ को मार्किस वेलसली ने जनरल लेक के नाम एक अत्यन्त लम्बा और महत्वपूर्ण 'गुप्त' पत्र लिखा, जिसमें ब्यौरेवार भारत के उन नरेशों और सरदारों के नाम दिए, जिन्हें लोभ और रिशवतें देकर सींधिया के विरुद्ध फोड़ने की गवरनर-

* " . . . . . . the undisturbed possession of their hereditary tenures on the condition of their zealous and ready co-operation with the British Government, to the extent of their respective means, in expelling the troops of Daulat Rao Scindhia from that quarter of Hindostan, and preventing any future attempts on the part of that chieftain, or of any other foreign power, to establish an authority in those provinces ;"—Letter dated 22nd July 1803 from Mr Edmonstone, Secretary to Government, addressed to Mr G Mercer, Marked 'Most Secret'

जनरल ने लेक को हिदायत की। हमें स्मरण रखना चाहिए कि उस समय तक अंगरेज़ों और सींधिया में ज़ाहिरा सम्बन्ध मित्रता का था और मित्रता की ही बातचीत बराबर जारी थी।

सम्राट शाहआलम को सींधिया से फोड़ना

दौलतराव सींधिया के विरुद्ध जिन भारतीय नरेशों के साथ मार्किस वेल्सली ने गुप्त साज़िशें शुरू कीं, उनमें सबसे ऊपर नाम दिल्ली के मुग़ल सम्राट शाहआलम का था। अपने २७ जुलाई के उस पत्र में, जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, मार्किस वेल्सली ने युद्ध के उद्देशों में से एक यह बताया था कि "दिल्ली सम्राट की नाम मात्र की सत्ता को अपने हाथों में ले लिया जायगा।" किन्तु इस पत्र के साथ ही गवरनर जनरल ने जनरल लेक के पास सम्राट शाहआलम के नाम एक दूसरा पत्र भेजा, जिसमें उसने लिखा—

"सम्राट को पूरी तरह मालूम है कि ब्रिटिश सरकार के दिल में सम्राट और सम्राट के कुल की ओर सदैव किस तरह का मान और भक्ति रही है।

"जिस समय से सम्राट ने दुर्भाग्यवश अपनी रक्षा का कार्य मराठों की सत्ता को सौंप दिया है, तब से अब तक सम्राट और सम्राट के उच्च कुल को जो जो हानि पहुँची है और जो जो अपमान सहने पड़े हैं, उन सब से माननीय कम्पनी को और भारत की ब्रिटिश सरकार को सदा दुख होता रहा है, और मुझे इस बात का गहरा रंज है कि अभी तक समय की परिस्थिति ने इस बात का मौक़ा नहीं दिया कि अंगरेज़ बीच में पड़कर अन्याय,



माधो जी सींधिया

[चित्रशाला प्रेस, पूना की कृपा द्वारा]

अमानुषिकता और लूट खसोट के इस कष्टकर बन्धन से सफलता पूर्वक सम्राट की रक्षा कर सकें। × × ×"

हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्वयं वारन हेस्टिंग्स ने धोखा देकर मुग़ल सम्राट को माधोजी सींधिया के हवाले किया था और उस समय से अब तक सम्राट ने अपने साथ महाराजा सींधिया के सलूक की किसी से कोई शिकायत न की थी। सम्राट शाहआलम सानी की एक फ़ारसी कविता आज दिन तक प्रसिद्ध है, जिसमें सम्राट ने अपने अनेक दुखों का रोना रोते हुए दिल्ली के अनेक मुसलमान वज़ीरों और अमीरों के विश्वासघात की शिकायत की है। इसी कविता में सम्राट ने एक स्थान पर लिखा है—

"माधोजी सींधिया फ़र्ज़न्द जिगर बन्देमन,
हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितमगारिए मा।"

अर्थात्—"माधोजी सींधिया, जो मेरे जिगर का टुकड़ा और मेरा बेटा है, मेरे दुखों को दूर करने में लगा हुआ है।"

इससे मालूम होता है कि दिल्ली सम्राट सींधिया कुल के व्यवहार से कितना सन्तुष्ट था। किन्तु मार्किस वेल्सली का सारा पत्र ही साफ़ छल और झूठ से भरा हुआ है।

इस पत्र के सम्बन्ध में मार्किस वेल्सली ने लेक को लिखा—

"मुनासिब यह होगा कि सम्राट के नाम का मेरा पत्र जितने छिपाकर और सावधानी से हो सकता है, उतने छिपाकर और सावधानी से भेजा जाय। × × × सय्यद रज़ाख़ाँ बहुत दिनों से सम्राट के दरबार में रहता है और दौलतराव सींधिया के यहाँ जो रेज़िडेण्ट रहता है उसके एजण्ट के तौर

पर काम करता है। मैं समझता हूँ, इस मौक़े पर उसका पूरा एतबार किया जा सकता है। × × × पत्र के साथ सय्यद रज़ाख़ाँ को आप इस तरह की हिदायतें कर दें जिस तरह की कि इस मौक़े के लिए आपको उचित मालूम हों। × × × उस एजण्ट को हिदायत कर दें कि देहली में जिस कारवाई का भी उसे पता चले, उसकी ठीक ठीक और ऐन समय पर वह आपको इत्तला भेजता रहे। × × ×"

सय्यद रज़ाख़ाँ की मार्फ़त अनेक झूठे वादे इस समय अंगरेज़ों ने शाहआलम से कर लिए। भोले शाहआलम से वादा किया गया कि जो सत्ता मराठों ने उसके हाथों से छीनी थी वह अंगरेज़ उसे फिर से दिलवा देंगे और वह फिर एक बार भारतीय साम्राज्य का क्रियात्मक अधिराज बना दिया जायगा। जिस प्रकार कि कुछ वर्ष पहले मार्किस वेल्सली ने टीपू सुलतान के विरुद्ध मैसूर के प्राचीन राजकुल के साथ साज़िश की थी, उसी प्रकार अब उसने महाराजा सींधिया के विरुद्ध दिल्ली सम्राट के साथ साज़िश की। थोड़े दिनों बाद गवरनर जनरल की आज्ञा से २ दिसम्बर सन् १८०३ को जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से इन सब बातों का एक प्रतिज्ञा पत्र—"तहरीरी इक़रारनामा"—लिखकर सम्राट शाहआलम की सेवा में पेश कर दिया।

सम्राट शाहआलम से छल

सम्राट शाहआलम झूठी आशाओं के सहारे दौलतराव सींधिया और मराठों से फटा रहा। मार्किस वेल्सली का काम निकल गया। किन्तु मैसूर के पुराने राजकुल और सम्राट शाहआलम के भाग्यों में

अन्तर यह रहा कि जब कि मैसूर के राजकुल को टीपू के साथ विश्वासघात करने के बदले में अपने पैतृक राज की थोड़ी सी फाँक किसी शर्त पर मिल गई, दिल्ली सम्राट को दौलतराव सींधिया के साथ विश्वासघात करने के बदले में अंगरेज़ों की ओर से भी केवल विश्वासघात ही प्राप्त हुआ। यह वही शाहआलम दूसरा था जिसने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार कम्पनी को प्रदान किए थे। कुछ वर्ष बाद जब इस "तहरीरी इक़रारनामे" की शर्तों को पूरा कराने के लिए शाहआलम के उत्तराधिकारी सम्राट अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को अपना वकील बना कर और 'इक़रारनामा' देकर इङ्गलिस्तान भेजा तो वहाँ के शासकों ने उत्तर दिया कि—"इक़रारनामा कम्पनी के काग़ज़ों में कहीं नहीं मिलता।"* उस समय तक भारत के मुग़ल सम्राट की प्रायः समस्त भूमि और उसके सदियों के अधिकार अंगरेज़ कम्पनी के हाथों मे पहुँच चुके थे। इस विचित्र उत्तर को सुनकर पार्लिमेण्ट के सदस्य मलीवन रोज़ ने उठ कर कहा—

"× × × क्या यह शाहआलम का क़सूर है कि 'इक़रारनामा' कम्पनी के काग़ज़ों में नहीं मिलता? × × × इस मामले में मुग़ल सम्राट के साथ गहरा विश्वासघात किया गया है। × × ×"†

---

* "The Court would be surprised to hear that the document called an *Ikrarnama* was nowhere to be found on the records of the Court, or in those of the Supreme Government of India, . "—Speech of the Chairman of Directors at the East India House, 18th December, 1848

† "Was it the fault of Shah Alam that this document was not upon

सींधिया के सामन्तों के साथ साज़िशें

२८ जुलाई सन् १८०३ को एक 'सरकारी और गुप्त' पत्र में मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को मेरठ के निकट सरधने की प्रसिद्ध ज़ेबुन्निसा बेगम को अपनी ओर फोड़ने की हिदायत की। ज़ेबुन्निसा बेगम जो बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध है सींधिया की एक सामन्त थी। उसने सरधने के आस पास एक ख़ासी जागीर बना ली थी। मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को लिखा—

"× × × बेगम की जागीर ऐसे मौक़े पर है कि अच्छा यह होगा कि अंगरेज़ सरकार की ओर से बेगम के साथ जो कुछ वादे और प्रतिज्ञाएँ की जायँ उनमे ऐसी शर्तें डाल दी जायँ जिनसे उसकी जागिर भर के अन्दर कम्पनी के क़ायदे क़ानून आसानी से जारी किए जा सकें। मेरी प्रार्थना है कि बेगम के साथ पत्र व्यवहार करने में आप इस लक्ष्य की ओर ध्यान रखिएगा × × ×

"× × × बेगम से कहा जाय कि दौलतराव सींधिया की सेना में इस समय बेगम की जो चार पलटनें है, उन्हें वह वापस बुला ले और दोआब के ज़मीदारों और सरदारों पर जितना कुछ उसका प्रभाव है, उससे उन पर ज़ोर दे कि वे सब अपने आपको अंगरेज़ सरकार के अधीन कर दें और अंगरेज़ी सेना को हर तरह मदद देने में अपनी शक्ति लगा दें।"*

---

record . . . . . In my judgment, a gross breach of faith has been committed in this case of the Mogul, ... —Sullivan, at the East India House, 18th December, 1848

* " . . . . . the local situation of the Begam's *Jageer* renders it desirable that in any engagement concluded with her on the part of the

इस प्रकार अंगरेज़ों ने बेगम समरू की मार्फ़त सींधिया के उत्तर की ओर सामन्तों और ज़मींदारों को अपनी ओर मिलाने के लिए एक विस्तृत जाल फैलाया, जिसके फन्दों को सुलझा सकना इस समय असम्भव है।

३० जुलाई सन् १८०३ को मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को एक और 'गुप्त' पत्र लिखा, जिसमें यह हिदायत की कि—"दौलतराव सींधिया के जिन सामन्तों, मुख्य कर्मचारियों अथवा अन्य प्रजा" के नाम अभी तक मैंने आपको लिखे हैं, उनके अलावा और जो जो सींधिया के विरुद्ध भड़काए जा सकें, उन्हें भड़काया जाय। "न्याय और लाभ दोनों इसी में हैं कि हम सींधिया की प्रजा और उसके कर्मचारियों के असन्तोष और विद्रोह से जितना लाभ उठा सकें उठाएँ।"* जनरल लेक को अधिकार दिया गया

British Government, such *conditions* should be inserted as *may facilitate* the introduction of the British regulations into the *Jageer* and I request that Your Excellency's negotiations with the Begum *may* be directed to the *accomplishment* of this object

" . . . she should be required to recall her battalions now serving in the army of Daulat Rao *Scindhia and* to employ whatever influence she may possess over the *Zemindars* and Chieftains in the *Doab*, to *induce* them to place themselves *under* the authority of the British *Government* and to employ their resources in assisting the *operations* of the British arms"—*Marquess* Wellesley's letter to Lieut-*General* Lake dated 28th July, 1803 *marked* 'Official and Secret'

* " . . . the *tributaries, principal* officers, or other subjects *of* Doulat Rao Scindhia *exclusively* of those described in my *General* instructions to Your Excellency and in my instructions to Mr. Mercer, may be *inclined to place* themselves under the *protection of* the Company, . . .

कि आप इन लोगों को अपनी ओर मिलाने के लिए जिस जिस तरह के वादे उनसे करना उचित समझें, कर दें। गवरनर जनरल ने लिखा कि—"मेरा अन्तिम इरादा यह है कि जमना और गङ्गा और कुमायूं के पहाड़ों के बीच के देश में अंगरेज़ सरकार का क़ानून जारी कर दिया जाय।"* इस पत्र में ही गवरनर जनरल ने लेक को यह भी लिखा कि सहारनपुर के पास की गूजर क़ौम को, जो उस समय सींधिया की प्रजा थी, "निहायत कामयाब तरीक़ों से ख़ुश करके राज़ी किया जाय कि वे दोआब के अन्दर सींधिया की ताक़त को उलटने में अंगरेज़ सरकार के साथ मिल जायँ।"† इत्यादि।

अभी तक युद्ध का एलान न हुआ था और अंगरेज़ और मराठा नरेश कहने के लिए एक दूसरे के मित्र समझे जाते थे।

---

it both just and expedient, that we should avail ourselves *as much as* possible, of the discontent and disaffection of his *subjects or* officers, and I accordingly desire, . you will *be pleased to decide* on the degree and nature of the encouragement, *proper to* be given

"I also authorize Your Excellency to give to all tributaries or others *renouncing* their allegiance to Scindhia, and acting *sincerely* in our favour, the *most* positive assurances of effectual *protection* in the name of the Company . . . .

* ". . . it is my *ultimate* intention to extend the regulations of the British Government through out the whole of the country, bounded by the rivers Ganges and Jumna, and by the mountains of Kumaon A part of this territory is possessed by Goojers, in the *vicinity* of Saharanpore

† "Your Excellency's prudence will dictate the expediency of employing the *most* efficacious measures for the purpose of conciliating the Goojers,

उत्तर पच्छिम में पञ्जाब तक सींधिया का राज्य था। पञ्जाब में उस समय सिक्खों की कई नई रियासतें पैदा हो रही थीं और लाहौर में महाराजा रणजीत सिंह का सूर्य उदय हो रहा था। रणजीतसिंह हैदरअली और शिवाजी के समान अशिक्षित, वीर और युद्ध विद्या में अत्यन्त निपुण था, किन्तु उसमें न शिवाजी जैसी दूरदर्शिता अथवा राजनीतिज्ञता थी और न हैदरअली जैसा प्रचण्ड साहस और देश प्रेम। मार्किस वेल्सली को डर था कि कहीं सिक्खों की शक्ति इस युद्ध में मराठों के साथ न मिल जाय; और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वीर सिक्ख यदि उस समय मराठों का साथ दे जाते तो १६ वीं शताब्दी के ऐन शुरू में ही अंगरेज़ कम्पनी के पाँव भारत से उखड़ गए होते। वेल्सली ने कोशिश की कि सिक्ख यदि इस समय अंगरेज़ों का साथ न दें तो कम से कम तटस्थ रहें। २ अगस्त सन् १८०३ को मार्किस वेल्सली ने एक गुप्त और सरकारी पत्र में जनरल लेक को लिखा :—

दौलतराव के विरुद्ध सिक्ख सरदारों के साथ साज़िश

"जिन मुख्य मुख्य सिक्ख सरदारों के प्रभाव और प्रयत्नों से हम सबसे अधिक फ़ायदा उठा सकते हैं, वे पटियाले का राजा और वे सब छोटे छोटे सरदार हैं जिनके इलाके पटियाला और जमना के बीच में हैं। तथापि मैं

---

and of inducing them to unite with the British Government for the overthrow of Scindhia's power in the *Doab*, "—Marquess Wellesley's 'Secret' letter to General Lake, dated 30th July, 1803

समझता हूँ कि लाहौर का राजा रणजीतसिंह सिक्खों में सब से प्रधान गिना जाता है और सब सिक्ख सरदारों के ऊपर उसका ख़ासा प्रभाव है।

× × ×

"सींधिया दरबार के रेज़िडेण्ट के एजेण्ट ने जिन सिक्ख सरदारों के साथ पहले (सन् १८०० में) पत्र व्यवहार किया था, उनके नाम पत्र मैं आपके पास भेजता हूँ ताकि आप जिस समय और जिस तरह अत्यन्त उचित समझें, ये पत्र उनके पास भिजवा दें।

× × ×

"चूंकि जिस युद्ध का हम इरादा कर रहे हैं उसके मैदानों से लाहौर बहुत दूर है, इसलिए राजा रणजीतसिंह से केवल इस सहायता की आशा की जा सकती है कि वह दूसरे सिक्ख सरदारों पर अपना प्रभाव डाल कर उन्हें अंगरेज़ सरकार के पक्ष में कर दे।"

पञ्जाब का कुछ भाग उस समय दौलतराव सींधिया के अधीन था और वहाँ के सिक्ख सरदार दौलतराव को ख़िराज देते थे। इसलिए इस पत्र में आगे चलकर गवरनर जनरल ने लिखा :—

"इनमें से जो सरदार मराठों के अधीन हैं और उन्हें ख़िराज देते हैं, उनसे शायद यह वादा करके कि अंगरेज़ सरकार आपकी रक्षा करेगी और भविष्य में आपका ख़िराज बिलकुल माफ़ कर दिया जायगा, उन्हें मराठों से फोड़ा जा सके।

× × ×

"यदि उन सरदारों से सहायता मिलना असम्भव प्रतीत हो तो कम से कम उन्हें तटस्थ रख सकना भी बड़े महत्व की बात होगी।

"सिक्ख सरदारों के साथ पत्र व्यवहार करने में मुनासिब होगा कि आप उन्हें यह भी सुझा दें कि यदि उन्होंने अंगरेज़ सरकार का किसी तरह से विरोध किया तो आइन्दा उन्हें कितना ख़तरा है, और इतनी बलवान सरकार के साथ सम्बन्ध रखने में उन्हें क्या क्या लाभ हो सकते हैं।"

पत्र के अन्त में गवरनर जनरल ने जनरल लेक को हिदायत की कि—"सिक्ख सरदारों के साथ पत्र व्यवहार करने में आप इस पत्र व्यवहार को गुप्त रखने का विचार रक्खें और पूरी सावधानी से काम लें।"*

सत्रवीं सदी के अन्त और अठारवीं सदी के प्रारम्भ में सिक्खों की ताक़त बिलकुल शुरू हो रही थी। उनका राजनैतिक महत्व और साम्राज्य सङ्गठन अभी बहुत कम सामने दिखाई देता था।

---

* "The chiefs from whose influence or exertions the greatest benefit is to be derived, are the Raja of Patiala, and those petty chieftains who occupy the territory between Patiala and the Jumna I understand however, that Raja Ranjit Singh, the Raja of Lahore, is considered to be the principal among the chiefs of the tribe of Sikhs, and to possess considerable influence over the whole body of the Sikh chiefs

* * * *

"I transmit to Your Excellency, for the purpose of being forwarded, at such time and in such manner as may appear to Your Excellency to be most proper letters to those among the Sikh chiefs with whom the agent of the Resident with Doulat Rao Scindhia communicated (in the year 1800)

* * * *

"Adverting to the great distance of Lahore from the scene of intended operations the only support to be expected from Raja Ranjit Singh, is the exertion of his influence with the other Sikh chieftains, to induce them to favour the cause of the British Government

* * * *

सन् १८०१ में एक स्वतन्त्र अंगरेज आततायी जॉर्ज टॉमस कुछ रुहेला पठान सवारों की सेना जमा करके प्रायः सिक्खों के इलाक़ों में लूट मार किया करता था। जब कि मार्किस वेल्सली भारत के अन्य नरेशों को सबसीडीयरी सन्धियों के जाल में फँसाने की पूरी कोशिश कर रहा था, उसी समय सिक्खों को उसने जान बूझ कर ख़ासा आज़ाद छोड़ रक्खा था। इसी में उस समय अंगरेज़ों का हित था। मार्किस वेल्सली की चाल ठीक और सफल साबित हुई। मराठों के साथ इस दूसरे युद्ध के समय सिक्ख सरदारों और राजाओं ने अंगरेज़ों का यथेष्ट साथ दिया, और बहुत दर्जे तक उस सङ्कट में मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ देने,

---

"Such of those chieftains as are Subject to the control and exactions of the Maratha Power, may perhaps be detached from the interests of that nation by promises of protection from the British Government, and of exemption from the payment of tribute in future

* * * *

"If it should appear impracticable to obtain the co-operation of those chieftains, it would still be an object of importance to secure their neutrality

"In your communications to the Sikh chieftains it may be proper that Your Excellency should suggest to their consideration the danger to which they will hereafter be exposed by any opposition to the interests of the British Government, and the advantages which they may derive from a connection with so powerful a state

* * * *

" . . require the observance of secrecy and caution in Your Excellency's communications with those chieftains "—'Secret and Official' letter of Marquess Wellesley to General Lake, dated 2nd August, 1803

के कारण ही सिक्खों और खास कर महाराजा रणजीतसिंह की सत्ता ने बाद में इतनी अधिक उन्नति की।

रुहेला नवाब के विरुद्ध योजना

रामपुर का पदच्युत रुहेला नवाब गुलाम मोहम्मद खाँ इस समय सींधिया के पक्ष में था। इसलिए २२ अगस्त सन् १८०३ को गवरनर जनरल ने जनरल लेक को एक गुप्त पत्र लिखा कि बम्बू खाँ को बढ़ाकर उसकी मदद से गुलाम मोहम्मद खाँ को गिरफ्तार करने की कोशिश की जाय और लिखा :—

"यदि आपकी यह राय हो कि × × × नक़द रुपए मिलने की आशा से बम्बू खाँ इस काम में अधिक जोश के साथ प्रयत्न करेगा तो आपको अधिकार है कि जितनी बड़ी रक़म का भी आप उचित समझें, वादा कर लें और उससे कहला भेजें।"*

मालूम नहीं कि इस बम्बू खाँ ने अंगरेज़ों की क्या क्या सेवाएँ कीं और अन्त में उसे क्या इनाम मिला।

भरतपुर के राजा को लोभ

भरतपुर का राजा रणजीतसिंह भी सींधिया के ख़ास सामन्तों में से था। मार्किस वेलसली के नाम जनरल लेक के १३ अगस्त सन् १८०४ के एक पत्र में लिखा है कि अंगरेज़ों ने भरतपुर के राजा से यह वादा

---

* " . . . If your Excellency should be o opinion that the offer of a pecuniary reward is calculated to stimulate the exertions of Bamboo Khan . . . Your Excellency is at liberty to convey to him the offer of such a reward to any extent which Your Excellency may deem proper." Marquess Wellesley's 'Secret' letter dated 22nd August, 1803 to General Lake

किया कि यदि आप सींधिया के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद देंगे तो हमेशा के लिए आपका ख़िराज माफ़ कर दिया जायगा और चार लाख सालाना का एक नया इलाका आपको दिया जायगा। इस नए इलाके के लिए अंगरेज़ों ने राजा रणजीतसिंह को सनद भी लिख कर दे दी।

किन्तु इन सब साज़िशों के बाद भी दौलतराव सींधिया की विशाल सेना को जीत सकना मार्किस वेल्सली के लिए आसान काम न था। इन सब के अतिरिक्त वेल्सली ने सींधिया की सेना के अन्दर विश्वास घातक पैदा किए।

सींधिया की सेना में विश्वास घातक यूरोपियन अफ़सर

माधोजी सींधिया ने वारन् हेस्टिंग्स के कहने में आकर कुछ यूरोपियन अफ़सरों को, जिनमें से अधिकतर फ़ान्सीसी थे, अपनी सेना में उच्च पदों पर नियुक्त कर रक्खा था। अपने राज और विशेषकर अपनी सेना के अन्दर यूरोपनिवासियों को नौकर रखने से बढ़ कर घातक भूल कभी भी किसी भारतीय नरेश ने नहीं की। माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी को अब अपने पितामह की ग़लती का फल भोगना पड़ा।

सींधिया की सेना का एक मुख्य सेनापति कप्तान पैरों, एक फ़ान्सीसी था, जिसके अधीन ख़ास ख़ास पदों पर और भी कई यूरोपनिवासी थे। ये सब लोग केवल धन के उपासक थे। मार्किस वेल्सली ने एक एलान प्रकाशित किया जिसमें उसने दौलतराव सींधिया के सब यूरोपियन मुलाज़िमों को अपने मालिक

के साथ [illegible] करने के बदले में बड़ी बड़ी रक़में इनाम में देने का वादा किया। मार्किस वेल्सली को इस काम में यथेष्ट सफलता हुई। इन यूरोपियन मुलाज़िमों की कुसमय की विश्वासघातकता ने दौलतराव सींधिया को सब से अधिक धक्का पहुँचाया।

मराठों के विरुद्ध मार्किस वेल्सली की और उसके साथियों की साज़िशों की यह समस्त कहानी केवल अंगरेज़ों ही की तहरीरों के अनुसार है। किन्तु मराठों के पक्ष का लिखा हुआ कोई वृत्तान्त इस समय हमारे सामने नहीं है, जिसके कारण इस घृणित कूट जाल के पूरे और विस्तृत रूप पर काल ने अब सदा के लिए परदा डाल दिया है।



चौबीसवाँ अध्याय

साम्राज्य विस्तार

अंगरेज़ों का सैन्य जाल

छै ओर से छै बड़ी बड़ी सेनाएँ महाराजा दौलतराव सींधिया और राजा राघोजी भोंसले के इलाक़ों पर हमला करने के लिए तैयार की गईं। सब से नीचे दक्षिण में जहाँ पर कि मैसूर की सरहद पेशवा और निज़ाम की सरहदों से मिलती थी, एक विशाल सेना जनरल स्टुअर्ट के अधीन, जिसमें मैसूर की सबसीडीयरी सेना भी शामिल थी। उससे कुछ ऊपर पूना के पास एक दूसरी विशाल सेना गवरनर जनरल के छोटे भाई जनरल वेल्सली के अधीन, जिसमें पेशवा की नई सबसीडीयरी सेना मुख्य थी। तीसरी सेना पूना से उत्तर पूरब के कोने में औरङ्गाबाद के निकट करनल स्टीवेन्सन के अधीन, जिसमें निज़ाम की ज़बरदस्त सबसीडीयरी सेना मुख्य थी

चौथी इन सब से बड़ी सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन, जिसमें अवध की सबसीडीयरी सेना शामिल थी। पाँचवीं सेना राजा राघोजी भोंसले के कटक प्रान्त की सरहद पर गञ्जम नामक स्थान में करनल कैम्पबेल के अधीन, जिसमें बङ्गाल की सेना शामिल थी। और छठवीं सेना गुजरात में करनल मरे के अधीन, जिसमें गायकवाड़ की सबसीडीयरी सेना शामिल थी। इनमें से केवल गञ्जम की सेना को छोड़कर शेष पाँचों सेनाएँ महाराजा सींधिया के विशाल राज की सरहद पर इधर से उधर तक फैली हुई थीं। इसके अतिरिक्त इन विशाल सेनाओं के सम्बन्ध में दो बातें और ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि अफ़सरों को छोड़ कर शेष सेनाओं भर में बहुत थोड़ा भाग विदेशी सिपाहियों का और अधिकांश भाग भारतीय सिपाहियों का था। दूसरे यह कि लगभग यह समस्त विशाल सैन्य दल विविध भारतीय नरेशों की नौकरी में था और इन भारतीय नरेशों ही के ख़ज़ानों से उसका सारा ख़र्च दिया जाता था।

चाँदी की गोलियों से अहमदनगर विजय

पूना और औरङ्गाबाद के बीच में अहमदनगर में सींधिया का एक अत्यन्त मज़बूत क़िला था। यह क़िला इतना मज़बूत था और इस ढङ्ग से बना हुआ था कि मानों वह अनन्त समय तक मुहासरा बरदाश्त कर सकता था। अंगरेज़ जानते थे कि अहमदनगर और वहाँ के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लेने का प्रभाव सींधिया की दक्खिनी प्रजा पर बहुत ज़बरदस्त पड़ेगा। छै अगस्त

को गवरनर जनरल ने युद्ध का एलान किया, किन्तु उससे पहले ही जनरल वेल्सली अपनी सेना सहित अहमदनगर की ओर रवाना हो चुका था। उधर गवरनर जनरल इससे भी पहले से सींधिया के उन कर्मचारियों के साथ गुप्त पत्र व्यवहार कर रहा था, जोकि अहमदनगर के क़िले और नगर की रक्षा के लिए नियुक्त थे। ७ अगस्त को जनरल वेल्सली की सेना अहमदनगर के निकट पहुँच गई। पेशवा की सबसीडीयरी सेना उसके साथ थी ही। उसी दिन वेल्सली की ओर से एक एलान नगर में प्रकाशित किया गया, जिसके शुरू ही में यह साफ़ झूठ लिखा था—

"चूँकि दौलतराव सींधिया और बरार के राजा ने अंगरेज़ सरकार और राव पण्डित प्रधान (अर्थात् पेशवा) और नवाब निज़ामअली तीनों को युद्ध की धमकी दी है × × × इत्यादि।"

इस एलान में आगे चलकर वेल्सली ने नगरनिवासियों और आमिलदारों की ओर अपनी मित्रता दर्शाते हुए कम्पनी और पेशवा दोनों के नाम पर उन्हें आज्ञा दी कि आप लोग नगर पेशवा की सेना (?) के सुपुर्द कर दें। दूसरी ओर से अभी तक महाराजा सींधिया की कोई विशेष सूचना अथवा आज्ञा अहमदनगर के आमिलदारों के पास न पहुँची थी। नगरनिवासियों पर वेल्सली के इस एलान का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। प्रजा ने अंगरेज़ों को अपना शत्रु नहीं, वरन् मित्र समझा। ८ अगस्त को वेल्सली अहमदनगर पहुँचा, नगर तुरन्त अंगरेज़ों के हाथों में आगया। किन्तु अहमद नगर के क़िले पर इतनी आसानी से अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा न हो

सका। वेल्सली ने क़िलेदार को कहला भेजा कि क़िला अंगरेज़ों के हवाले कर दो। क़िलेदार ने कुछ सङ्कोच दिखलाया। क़िले पर गोलेबारी करने की आवश्यकता हुई। सर जेम्स कैम्पबेल ने "अहमदनगर गैज़ेटीयर" पृष्ठ ६९५ पर लिखा है—

"जब नगर पर क़ब्ज़ा करने के बाद ९ अगस्त को जनरल वेल्सली ने क़िले का चक्कर लगाया तो मालूम हुआ कि चारों ओर के पुश्तों (ढालू ज़मीन) ने क़िले की दीवार को इतनी पूरी तरह बचा रक्खा था कि गोलाबारी करने के लिए कोई जगह नज़र न आती थी। तब भिङ्गार के देशमुख रघुराव बाबा को चार हज़ार रुपए रिशवत दी गई और उसने पूरब की ओर से हमला करने का एक स्थान अंगरेज़ों को बता दिया।"*

न जाने कितने रघुराव बाबाओं को इस प्रकार रिशवतें दी गई होंगी! दो दिन तक नाम मात्र को कुछ लड़ाई हुई। अन्त में ११ अगस्त को क़िलेदार ने क़िला अंगरेज़ों के लिए ख़ाली कर दिया। लिखा है—"इस शर्त पर कि क़िलेदार और उसकी सेना को सही सलामत बाहर निकल जाने दिया जाय और उसकी निजी जायदाद उसके क़ब्ज़े में रहने दी जाय।" जनरल वेल्सली लिखता है कि जब अंगरेज़ क़िले में घुसे "तब क़िला निहायत अच्छी हालत में था।" स्पष्ट है कि अहमदनगर के क़िले की दीवारें

*"When after capturing the town General Wellesley reconnoitred the fort on the 9th August the complete protection which the glacis afforded to the wall made it difficult to fix on a spot for bombardment. Raghu Rao Baba, the *Deshmukh* of Bhingar, received a bribe of four hundred pounds (Rs. 4,000) and advised an attack on the East face."—"*Ahmednagar Gazetteer*," edited by Sir James Campbell, page 695

चाँदी अथवा सोने की गोलियों से तोड़ी गईं, लोहे की गोलियों से नहीं।

१२ अगस्त को वेलसली ने उसी तरह का एक दूसरा एलान प्रकाशित किया जिसमें "कम्पनी और पेशवा की ओर से" कप्तान ग्रैहम को अहमदनगर और उसके पास के सब इलाके का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया। वेलसली स्वयं ग्रैहम की सहायता के लिए कुछ दिन अहमदनगर में रह कर १८ अगस्त को अपनी सेना सहित औरङ्गाबाद की ओर बढ़ा।

पेशवा से गोल माल वादा

अहमदनगर के इलाके के ऊपर वेलसली ने "कम्पनी और पेशवा के नाम पर क़ब्ज़ा किया। पेशवा ही मराठा साम्राज्य का प्रधान और सींधिया राज का न्याय अधिराज था। न्याय्य और क़ायदे के अनुसार यह इलाक़ा तुरन्त पेशवा के सुपुर्द हो जाना चाहिए था और पेशवा ही की इच्छा के अनुसार उसका प्रबन्ध होना चाहिए था। पेशवा भीतर से अंगरेज़ों की इस सारी कारवाई से असन्तुष्ट था, किन्तु लाचार था। इसलिए अहमदनगर पर क़ब्ज़ा करते ही वेलसली को एक कठिनाई का सामना करना पड़ा। एक ओर वह इस इलाके पर अंगरेज़ों का पूरा अधिकार चाहता था और दूसरी ओर किसी तरह झूठे सच्चे वादों से पेशवा को भी सन्तुष्ट रखना ज़रूरी था। १२ अगस्त को वेलसली ने पूना के रेज़िडेण्ट करनल क्लोज़ को लिखा—

"मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि अहमदनगर के विषय में पेशवा

के चित्त में कोई शङ्का पैदा होने न पाए। × × × मैं चाहता हूँ कि आप इस विषय में पेशवा बाजीराव से बातचीत करके उसे समझावे कि यह स्थान हमारे लिए कितना ज़रूरी है। × × × आप पेशवा को यह भी विश्वास दिला दें कि लगान का ठीक ठीक हिसाब रक्खा जायगा और पेशवा का हिस्सा पेशवा को दिया जायगा।"*

इसके बाद एक ही दिन के अन्दर वेल्सली ने और रुख़ बदला और १४ अगस्त सन् १८०३ को करनल क्लोज़ को लिखा—

"कल आपको पत्र लिखने के बाद मुझे यह ख़याल आया कि यह अधिक अच्छा होगा कि हम अहमदनगर का आधा लगान देने का पेशवा से वादा न करें अथवा इसकी आशा अभी उसे न दिलाएँ, बल्कि आम तौर पर उससे यह कह दें कि इस इलाक़े का लगान युद्ध का ख़र्च पूरा करने के काम में लाया जायगा और हिसाब पेशवा के पास भेज दिया जायगा। किन्तु एक बड़ा काम यह है कि जिस तरह भी हो सके पेशवा को इस बात के लिए रज़ामन्द कर लिया जाय कि इलाक़े पर क़ब्ज़ा हमारा ही रहे, क्योंकि पूना के साथ हमारा सम्बन्ध रहने के लिए यह स्थान अत्यन्त आवश्यक है; और यदि पेशवा इस बात के लिए रज़ामन्द हो सके तो उसे

---

* "I am very anxious that the Peshwa should feel no jealousy about this place (Ahmadnagar) I wish that you would speak to Raghunath Rao (*i e*, the Peshwa Baji Rao son of Raghunath Rao) upon this subject, point out to him how necessary the place is for us, . you may also assure him that a faithful account shall be kept of the revenues, and credit given to the Peshwa for his portion of them"—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 13th August, 1803

आधा लगान देने या न देने को मैं इतने अधिक महत्व की बात नहीं समझता।

"मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषय पर हर पहलू से सोच लें। × × × जब तक आपका जवाब न आएगा मैं आपको इस विषय में खुला पत्र न लिखूंगा।"*

वास्तव में वेल्सली पेशवा को धोखा दे रहा था, वह निश्चय कर चुका था कि पेशवा को एक कौड़ी भी अहमदनगर की मालगुज़ारी में से न दी जायगी। किन्तु उसे इस बात का डर था कि कहीं पेशवा मौक़ा पाकर पूना से न निकल जाय अथवा अंगरेज़ों के साथ युद्ध का एलान न कर दे और दक्खिन के जागीरदार अंगरेज़ों के विरुद्ध पेशवा की मदद के लिए खड़े न हो जायँ, क्योंकि इन जागीरदारों को भी अंगरेज़ अनेक बार धोखा दे चुके थे। इसी लिए पेशवा को ख़ुश रखना ज़रूरी था। मैसूर की सरहद पर जनरल स्टुअर्ट के अधीन जो सेना रक्खी गई थी,

* "Since writing to you yesterday, it has occured to me that it would be better not to hold out to the Peshwa any promise or prospect of having half the revenue of Ahmadnagar, but to tell him generally that the revenues shall be applied to pay the expenses of the war, and that the accounts of them shall be communicated to him One great object, however, is to reconcile his mind to our keeping possession of the country, which is absolutely necessary for our communications with Poona, and provided that is effected, I think it immaterial whether he has half the revenues or not

* * *

"I beg you to turn this subject over in your mind, I will delay to write you a public letter upon it till I shall receive your answer"—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 14th August, 1803

उसका उद्देश भी यह था कि "दक्खिन के मराठा जागीरदारों पर दबदबा क़ायम रक्खा जाय।"*

१७ अगस्त को जनरल वेल्सली ने करनल क्लोज़ को लिखा :—

"यदि पेशवा बाजीराव इस गोल मोल वादे से सन्तुष्ट हो जाय कि जो इलाका हमने जीता है उसका उपयोग दोनों मित्र सरकारों के फ़ायदे के लिए किया जायगा, तो बहुत ही सुविधा रहेगी × × × ।

"किन्तु मैं इस बात को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझता हूँ कि जहाँ तक हो सके पेशवा के चित्त को सन्तुष्ट रखना ज़रूरी है, ताकि अंगरेज़ों के साथ जो सन्धि उसने की है उस पर वह कायम रहे और अपने इरादे में बिलकुल डोवाडोल होने न पाए, नहीं तो डर है कि दक्खिन के जागीरदार कम्पनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ देंगे।"†

पेशवा के मन्त्रियों को रिशवतें

पेशवा के इरादों की ख़बर रखने के लिए और इस काम के लिए कि पेशवा पूना से बाहर न निकलने पाए, अंगरेज़ों ने पेशवा के मन्त्रियों को ख़ूब रिशवतें दीं। २४ अगस्त को जनरल वेल्सली ने मेजर शा को लिखा :—

* "Overawing the Southern Maratha Jagirdars" G Stuart's Despatch to the Governor-General, 8th August, 1803

† "If the Peshwa Baji Rao should be satisfied with a general assurance that the conquered territory is to be applied to the benefit of the allies, it will be most convenient,

"But I consider it to be an object of the utmost importance that the Peshwa's mind should be satisfied as far as possible, in order that there may appear no wavering in his intention to adhere to the alliance on which the

"मैं नही समझता कि पेशवा पूना से भागने की कोशिश करेगा; अथवा यदि पेशवा चाहे भी तो वह बिना उसके मन्त्रियों को ख़बर हुए भाग सकता है। आपने करनल क्लोज़ के नाम मेरे पत्रों से देखा होगा कि मैंने क्लोज़ पर ज़ोर दिया है कि सब बातों की ठीक ठीक ख़बर रखने के लिए मन्त्रियों को धन दिया जाय।

"जब तक युद्ध ख़तम न हो जाय हम पूना की गवरमेण्ट को ठीक करने की तदबीर नहीं कर सकते। वहाँ की गवरमेण्ट की हालत ख़राब अवश्य है, फिर भी उसे अभी ऐसी ही रहने देना होगा। यदि हम इस समय उसे बदलने की कोशिश करेंगे, तो हमें अपने पीछे की ओर भी लड़ाई लड़ना पड़ जायगा जिससे हमारा सर्वनाश हो जायगा।"*

करनल क्लोज़ के नाम के जिन पत्रों का ऊपर ज़िक्र किया गया है वे वेल्सली के छपे हुए पत्रों में कहीं नहीं मिलते, जिससे ज़ाहिर है कि मराठों की सत्ता का सर्वनाश करने के लिए अंगरेज़ों ने जो जो काररवाइयाँ कीं उनमें से अनेक पर अब सदा के लिए परदा

southern *Jagirdars* might found acts of hostility against the Company —General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 17th August, 1803

* "I have no idea that the Peshwa will attempt to fly from Poona, or that if he should be so inclined he could carry his plan into execution without the knowledge of his ministers You will have observed from my letters to Colonel Close, that I have urged him to pay the ministers, in order to have accurate information of what passes"

"We can not contrive to settle the Government at Poona till the conclusion of the War Bad as the situation of the Government is, it must be allowed to continue If we were to attempt to alter it now, we should have a contest in our rear, which would be ruinous"—General Wellesley's letter to Major Shawe, dated 24th August, 1803

पड़ चुका है। सम्भव है कि बे-छपे पत्रों में कहीं कुछ और भेद खुल सके। यह भी ज़ाहिर है कि अंगरेज़ जिस प्रकार सींधिया और भोंसले के नाश के प्रयत्न कर रहे थे उसी तरह अपने 'मित्र' और 'साथी' पेशवा बाजीराव के नाश का भी पूरा इरादा कर चुके थे, और उसके साथ इस समय हर तरह के छल से काम ले रहे थे। पेशवा के मन्त्रियों को रिशवतें देने के विषय में जनरल वेलसली ने २८ सितम्बर को करनल क्लोज़ के नाम एक और पत्र में लिखा :—

"लार्ड वेल्सली (गवरनर जनरल) ने पेशवा के मन्त्रियों को बड़ी बडी रक़में देने का निश्चय कर लिया है। किन्तु × × ×

"पेशवा का कोई मन्त्री है ही नहीं। पेशवा अकेला है, और अकेला क्या चीज़ है! इसलिए मेरी राय मे हमें उन लोगों को रुपए देने चाहिएं जो पेशवा के मन्त्री समझे जाते हैं और मन्त्री कहलाते हैं, इसलिए नहीं कि सन्धि के उद्देशों के अनुसार वहाँ के शासन का काम चलाया जाय, जिस उद्देश से कि हम हैदराबाद में रुपए ख़र्च करते हैं, बल्कि इसलिए कि पेशवा की गुप्त सलाहों की सब ख़बरें हमें मिलती रहें, ताकि जब ज़रूरत हो हम पेशवा को समय पर रोक सकें।"*

* "Lord Wellesley has taken up the question of paying the Peshwa's ministers upon a great scale

* * *

"The Peshwa has no ministers He is everything himself and everything is little In my opinion, therefore, we aught to pay those who are supposed to be and are called his ministers, *not to keep the machine of Government in motion, in consistence with the objects of the alliance as we do at Hyderabad*, but to have intelligence of what passes in the Peshwa's Secret

निस्सन्देह भारतीय नरेशों के मन्त्रियों को रिशवतें देकर उनसे अपने स्वामियों के साथ विश्वासघात कराना उन दिनों अंगरेज़ कम्पनी की एक सामान्य नीति थी। हैदराबाद और पूना दोनों दरबारों की इस समय यही हालत थी।

पेशवा को अहमद नगर देने का प्रश्न

युद्ध के समाप्त होते ही अहमदनगर के विषय में ११ नवम्बर सन् १८०३ को जनरल वेलसली ने गवरनर जनरल को साफ़ लिख दिया कि जो इलाक़ा हमने जीता है, उसका कोई भाग पेशवा को न दिया जाय, "अहमदनगर का क़िला अंगरेज़ सरकार ही के क़ब्ज़े में रहे।" और 'सूरत अट्टवेसी' जो पेशवा ही का इलाक़ा था, पेशवा को लौटा दिया जाय, इस शर्त पर "कि पेशवा बसई की सन्धि में कुछ और परिवर्तन करना और नई शर्तें जोड़ना स्वीकार कर ले।"*

दौलतराव की तैयारी

अब हम फिर जनरल वेलसली और उसकी सेना की ओर आते हैं। १८ अगस्त को जनरल वेलसली ने अहमदनगर छोड़ा और करनल स्टीवेन्सन की सेना के साथ मिलने के उद्देश से २४ अगस्त को

councils in order that we may check him in time when it may be necessary "—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 28th September, 1803

* " before this territory (Surat Attavesy) should be ceded to His Highness the Peshwa, he ought to be required to consent to the improvements of the defensive alliance "—letter from General Wellesley to the Governor-General, dated 11th November, 1803

गोदावरी पार की। उधर सींधिया और बरार के राजा ने भी अहमदनगर के पतन का समाचार सुनते ही जितनी शीघ्रता से हो सका, थोड़ी बहुत तैयारी करके निज़ाम के इलाके की ओर चढ़ाई की। दौलतराव सींधिया की आयु उस समय केवल २३ वर्ष की थी, फिर भी जिस अपूर्व योग्यता के साथ इस थोड़े से समय में उसने अपने रहे सहे अनुयाइयों को जमा करके अंगरेज़ों के मुकाबले की तैयारी की उस योग्यता की उसके शत्रुओं ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

भारतीयों में राष्ट्रीयता की कमी

जनरल वेल्सली के एक पत्र में लिखा है कि वेलसली ने जगह जगह अपने गुप्तचर नियुक्त कर रक्खे थे जो उसे मराठा सेनाओं की स्थिति, कूच इत्यादि की सूचना देते रहते थे। ये गुप्तचर सींधिया और भोंसले ही की प्रजा थे और उन्हीं की मदद से सींधिया की सेना के अनेक लोगों को वेलसली ने अपनी ओर मिला रक्खा था। अंगरेज़ों का इस सरलता के साथ अनेक भारतीयों को अपने देश और राजा के विरुद्ध विदेशियों की ओर मिला सकना प्रकट करता है कि भारतवासियों में उस समय भी देश और राष्ट्रीयता के भावों की भयङ्कर न्यूनता थी। इन गुप्तचरों के कारण वेल्सली के लिए अपनी सुविधा के अनुसार युद्ध का स्थान और समय नियत करना आसान होगया।

२३ सितम्बर सन् १८०३ को निज़ाम की उत्तरी सरहद पर

बरार की सरहद से मिले हुए असाई नामक ग्राम में मराठों और कम्पनी की सेनाओं के बीच एक प्रसिद्ध संग्राम हुआ, जो भारत के 'निर्णायक' संग्रामों में गिना जाता है और जिसका निस्सन्देह इस देश के अन्दर ब्रिटिश सत्ता के विस्तार पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

असाई का संग्राम

दौलतराव सींधिया के साथ उस समय लगभग पचास हज़ार पैदल, बहुत से सवार और एक ज़बरदस्त तोपख़ाना था। दौलतराव इस भ्रम में कि अंगरेज़ों की मुख्य सेना हैदराबाद में है, अपने सवारों सहित तेज़ी के साथ हैदराबाद की ओर बढ़ा चला गया। उसकी पैदल और तोपख़ाने की सेना कुछ पीछे रह गई। कहते हैं कि उसी समय दशहरे का त्योहार पड़ा। दशहरा मनाने के लिए इस पीछे वाली सेना ने असाई में कुछ देर कर दी। यहाँ तक कि आस पास चारे की कमी हो गई। ठीक २३ तारीख़ को तोपख़ाने के तमाम बैल खोल कर चरने के लिए दूर भेज दिए गए।

वेलसली को इन सब बातों का पता था अथवा ये सब बातें पहले से तय थीं। क्योंकि सींधिया की सवार सेना के अफ़सर मराठे थे, किन्तु पैदल और तोपख़ाने की सेना में अनेक अफ़सर यूरोपियन थे, जिन्हें अंगरेज़ पहले ही से लोभ देकर अपनी ओर मिला चुके थे। इन्हीं यूरोपियनों द्वारा उस सेना के अनेक हिन्दोस्तानी अफ़सरों को भी अंगरेज़ों ने अपनी ओर कर लिया था। इन विश्वासघातकों में से कुछ लोग शुरू ही में सींधिया को छोड़ कर अंगरेज़ों की ओर चले गए थे, किन्तु कुछ ऐन मौक़े पर काम

आने के लिए सींधिया की फ़ौज के साथ रह गए थे। निस्सन्देह असाई के संग्राम की सम्पूर्ण परिस्थिति को रचने में अंगरेज़ों को इन लोगों से बहुत बड़ी मदद मिली होगी।

जनरल वेल्सली के अनुसार उस दिन केवल ८,००० पैदल, १,६०० सवार और १७ तोपें वेलसली के अधीन थीं और क़रीब ५०,००० पैदल और १२८ तोपें सींधिया की ओर थीं। किन्तु जनरल वेल्सली के २६ अक्तूबर के एक पत्र में लिखा है कि मराठों की सेना में कम से कम एक ब्रिगेड चार पलटनों की बेगम समरू की थी और एक ब्रिगेड उतनी ही बड़ी दूपों नामक एक यूरोपियन के अधीन थी। बेगम समरू के साथ अंगरेज़ों की साज़िश का ज़िक्र पिछले अध्याय में आ चुका है। १८ जुलाई को जनरल लेक ने गवरनर जनरल को लिखा था—

"बेगम समरू के हमारे साथ मिल जाने से हमें कई अत्यन्त आवश्यक लाभ हो सकते हैं।

× × ×

"उसकी चार पलटने इस समय सींधिया के पास हैं। × × × इस बात की तरकीबें की जा सकती हैं कि वे चारों पलटनें जनरल वेल्सली से जा मिलें।"*

---

* "The most essential advantages may be derived from an union with Begum Sumroo,

* * * *

"Four of her battalions are now with Scindhia, *means might be contrived to enable those battalions to join General Wellesley*."—General Lake's Memorandum to the Governor-General dated 18th July, 1803

इसके उत्तर में गवरनर जनरल ने लिखा—

"यह सलाह निहायत मुनासिब है और फ़ौरन करनल स्कॉट को हुक्म भेज दिया जायगा, मिस्टर मरसर के नाम जो हिदायतें गई हैं उनमें भी यह बात लिख दी गई है।"*

दूपों के विषय में गवरनर जनरल के नाम जनरल वेल्सली के २४ अक्तूबर के एक पत्र में लिखा है—

रिशवतों का बाज़ार

"सींधिया की सेना के १६ अफ़सर और सारजण्ट आपके २९ अगस्त के एलान के अनुसार आकर करनल स्टीवेन्सन के साथ मिल गए हैं। उनके नामों की सूची और हर एक को जो जो तनख़ाह मिलनी चाहिए, सब लिख कर मैं बाद में भेजूँगा।"†

इन १६ अफ़सरों में से एक दूपों भी था। स्पष्ट है कि बेगम समरू की चारों पलटनों ने और दूपों की चारों पलटनों ने असाई के निर्णायक मैदान में सींधिया की अनुपस्थिति में सींधिया के साथ विश्वासघात किया।

कप्तान ग्रॉण्ट डफ़ ने अपने 'मराठों के इतिहास" में लिखा है—

"असाई में सींधिया की अधिकतर पलटनों को एक नुक़सान यह था

* "This suggestion is extremely proper, and orders will be immediately sent to Colonel Scot, Mr Mercer's instructions include this point"—Governor-General's reply to General Lake's Memorandum

† "Sixteen officers and sergeants belonging to the Campoos (i e, Scindhia's camp) have joined Colonel Stevenson under Your Excellency's proclamation of the 29th August I will here after send a list of their names, and an account of the pay each is to receive"—General Wellesley's letter to the Governor-General, dated 24th October 1803

कि उनके यूरोपियन अफ़सरों में से अंगरेज़ अफसर शत्रु की ओर चले गए थे। × × ×"*

ग्रॉण्ट डफ़ लिखता है कि गवरनर जनरल के जिस एलान पर इन लोगों ने अपने मालिक सींधिया के साथ विश्वासघात किया वह अंगरेज़ों के अलावा यूरोपियन अफ़सरों और यहाँ तक कि सींधिया के हिन्दोस्तानी अफ़सरों के नाम भी जारी किया गया था। ऊपर लिखा जा चुका है कि इन लोगों में से कुछ युद्ध छिड़ते ही अंगरेज़ों की ओर आगए और शेष ठीक मौक़े पर काम देने के लिए दौलतराव की सेना में बने रहे।

रहा सींधिया का ज़बरदस्त तोपख़ाना, सो उसकी अधिकांश तोपें बैलों के न होने के कारण मोरचे पर लाई भी न जा सकीं।

इस पर भी यदि दौलतराव सींधिया २३ सितम्बर को स्वयं असाई के मैदान में मौजूद होता तो सम्भव है कि भारत का उसके बाद का इतिहास किसी दूसरे ही ढङ्ग से लिखा जाता। सींधिया की अनुपस्थिति में भी उसके कुछ नमक हलाल सैनिकों ने बड़ी वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। अंगरेज़ों ही के अनुसार अंगरेज़ों के हताहतों की संख्या ५७५ गोरे और १,४५६ हिन्दोस्तानी थी और उनके २६ आदमी लापता रहे। सींधिया के हताहतों की संख्या अंगरेज़ों के अनुसार १२०० थी।

---

* "Most of Scindhia's battalions (at Assye) laboured under disadvantages by the cessation of the British part of their European officers,
—*History of the Marathas* by Grant Duff page 574

अङ्गरेज़ों की विजय

सींधिया के तोपख़ाने के क़रीब क़रीब समस्त अफ़सर यूरोपियन थे। इन लोगों ने सींधिया की भारी तोपें मय गोले बारूद और सामान के ज्यों की त्यों अंगरेज़ों के हवाले कर दीं। पैदल सेना में से भी कम से कम आठ पूरी पलटनें पूर्वोक्त बयान के अनुसार शत्रु के साथ मिल गई थीं। शेष सेना भी विश्वासघातकों से छलनी छलनी थी। ऐसी सूरत में बाक़ी की पैदल सेना बिना सरदार और बिना सामान कब तक शत्रु का मुक़ाबला कर सकती। परिणाम यह हुआ कि शेष पैदल सेना में से अधिकांश मैदान छोड़ कर पीछे हट गई, और असाई का मैदान अंगरेज़ों के हाथ रहा।

नाना फ़ड़नवीस की सलाह के विरुद्ध वारन् हेस्टिंग्स के कहने में आकर यूरोपियनों को अपने यहाँ नौकर रखने में माधोजी सींधिया ने जो जबरदस्त भूल की थी उसका दण्ड आज दौलतराव सींधिया को भोगना पड़ा।

सींधिया की तोपों और उनके साथ के सामान की जनरल वेलसली ने बड़े ज़ोरों के साथ प्रशंसा की है।

फिर भी सींधिया की पैदल सेना की संख्या पर असाई के संग्राम का बहुत कम असर पड़ा। लड़ाई के अगले दिन २४ सितम्बर सन् १८०३ को जनरल वेलसली ने करनल स्टीवेन्सन को आज्ञा दी कि तुम परास्त मराठा सेना का पीछा करो। किन्तु इतिहास लेखक मिल लिखता है—

"इस हार से शत्रु की व्यवस्था इतनी कम टूटने पाई थी, अर्थात् वे

इतने कम तितर बितर हुए थे कि करनल स्टीवेन्सन के पीछा करने से उन्हे ज़रा भी डर न था।"*

करनल स्टीवेन्सन सींधिया की इस सेना से डरता था। इस लिए वह उसके पीछा करने का साहस न कर सका।

सुलह की कोशिश

असाई के संग्राम में अपने कुछ लोगों के विश्वासघात और अपना तोपख़ाना शत्रुओं के हाथों में चले जाने के समाचार सुन दौलतराव को बड़ा दुःख हुआ।

दौलतराव के साथ इस समय पेशवा बाजीराव का एक अत्यन्त विश्वस्त दूत बालाजी कुञ्जर था, जिसने अनेक बार बड़ी वफ़ादारी और त्याग के साथ अपने स्वामी और देश दोनों की सेवा की थी, जिसे अंगरेज़ों ने कई बार धन इत्यादि का लोभ दिया, किन्तु जिसे वे किसी प्रकार भी अपनी ओर न फोड़ सके। बालाजी कुञ्जर बसईं की सन्धि पर बातचीत करने के लिए और यदि हो सके तो दौलतराव सींधिया को पूना ले जाने के लिए पेशवा की ओर से सींधिया के दरबार में भेजा गया था और सींधिया तथा अंगरेज़ों के बीच युद्ध छिड़ जाने पर भी इस समय तक बराबर सींधिया के साथ मौजूद था। असाई के संग्राम के एक सप्ताह के अन्दर बालाजी कुञ्जर ने सींधिया की सलाह से और सींधिया की ओर से जनरल वेलसली को एक लम्बा पत्र लिखा।

* "The enemy had been so little broken or dispersed by their defeat that they had little to dread, from the pursuit of Colonel Stevenson"—Mill, vol vi, page 358

इसमें उसने वेल्सली से प्रार्थना की कि इस अकारण युद्ध को बन्द करके सुलह की शर्तें तय कर ली जायँ।

दुर्भाग्यवश बालाजी कुञ्जर का यह महत्वपूर्ण पत्र वेल्सली के छपे हुए पत्र व्यवहार में कहीं नहीं है। ५ अक्तूबर सन् १८०३ को वेल्सली ने इस पत्र के उत्तर में बालाजी को जो पत्र लिखा उससे मालूम होता है कि बालाजी ने अपने पत्र में निम्न लिखित बातें दर्शाई थीं। यह कि दौलतराव सींधिया का इरादा अंगरेज़ों के या किसी के साथ भी लड़ने का न था; दौलतराव ने अन्त समय तक शान्ति और समझौते द्वारा सब बातें तय कर लेने की पूरी कोशिश की, किन्तु अंगरेज़ सदा गोल मोल बात करते रहे। उन्होंने एक बार भी अपनी माँगों और शिकायतों को साफ़ साफ़ नहीं बताया, यहाँ तक कि युद्ध की कोई बाज़ाब्ता अन्तिम सूचना भी सींधिया को नहीं दी गई और सींधिया के इलाक़े पर हमला कर दिया गया। इन सब बातों के अलावा बालाजी ने अपने पत्र में महाराजा सींधिया की ओर कॉलिन्स के अनुचित व्यवहार को भी पूरी तरह दर्शाया, और अन्त में प्रार्थना की कि वृथा रक्तपात को बन्द करके सुलह की बातचीत की जाय।

बरहानपुर पर क़ब्ज़ा

किन्तु जनरल वेल्सली उस समय अपनी विजय के नशे में था। उसे अभी तक अपनी कूटनीति से बहुत कुछ आशा थी। दूपों और उसके साथ के १५ और यूरोपियन विश्वासघातक अभी तक सींधिया की विशाल पैदल सेना के साथ थे। इस सेना में से कुछ

आदमी अब उत्तर की ओर सींधिया के बरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों की रक्षा के लिए पहुँच गए। वेल्सली को विश्वास था कि दूपों और उसके साथियों की सहायता से अंगरेज़ आसानी से उन दोनों किलों पर क़ब्ज़ा कर लेंगे। वेल्सली का विश्वास पक्का था, इसीलिए उसने बालाजी के पत्र की ओर उस समय कोई ध्यान न दिया। वेल्सली ने जब देखा कि स्टीवेन्सन को मराठा सेना का पीछा और मुक़ाबला करने में सफलता न हो सकी, तो यह कार्य उसने अपने ऊपर लिया और स्टीवेन्सन को उत्तर की ओर बढ़ कर बरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों पर क़ब्ज़ा करने और बरहानपुर के अत्यन्त धन सम्पन्न नगर को लूटने की आज्ञा दी।

महाराजा सींधिया और बरार के राजा की सेनाएँ असाई की लड़ाई के बाद निज़ाम के इलाक़े से हट कर पहले ख़ानदेश की ओर बढ़ती हुई मालूम हुईं और फिर तापती नदी पार करके पच्छिम और फिर दक्खिन की ओर जाती नज़र आईं।

स्टीवेन्सन बरहानपुर की ओर बढ़ा। १५ अक्तूबर को स्टीवेन्सन ने बड़ी आसानी से बरहानपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया और नगर को ख़ूब लूटा।

सींधिया के यूरोपियन नौकरों की नमकहरामी

इसके बाद १७ को वह असीरगढ़ की ओर बढ़ा। सींधिया की वह सेना जो दूपों के अधीन बरहानपुर और असीरगढ़ की रक्षा के लिए नियत थी, बजाय स्टीवेन्सन का सामना करने या असीरगढ़ की ओर जाने के, रास्ता छोड़ कर नरबदा की ओर

चली गई। १६ को स्टीवेन्सन ने असीरगढ़ पर हमला किया और २१ अक्तूबर को असीरगढ़ का क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आगया। इसके बाद ही दूपों और उसके १५ यूरोपियन साथी अपना काम पूरा करके सींधिया को छोड़, स्टीवेन्सन की ओर चले आए। जनरल वेल्सली के पत्रों से साबित है कि बरहानपुर और असीरगढ़ दोनों स्थानों पर सींधिया के इन नमकहराम यूरोपियन नौकरों ने ही अपने सहधर्मियों का काम इतना सरल कर दिया।

सींधिया और भौंसले की सेनाओं की अलहदगी

दक्खिन में अभी तक सींधिया और भौंसले की सेनाएँ, जिनमे अधिकतर सवार थे, एक साथ थीं। इस सवार सेना में अंगरेज़ों की भेदनीति भी अधिक चलने न पाई थी। इसलिए वेल्सली अथवा स्टीवेन्सन किसी को भी इस संयुक्त मराठा सेना का सामना करने का साहस न हो सका। वेल्सली बराबर इस सेना के दाएँ बाएँ चक्कर लगाता रहा, किन्तु लड़ने से बचता रहा। उधर मराठा सेना ने भी न जाने किस निर्बलता या संकोच के कारण वेल्सली की सेना पर स्वयं हमला न किया। वेल्सली ने अपने पत्रों में साफ़ लिखा है कि यदि संयुक्त मराठा सेना उस समय कहीं अंगरेज़ी सेना पर हमला कर देती तो अंगरेज़ी सेना के लिए बचना असम्भव था। अंगरेज़ इस समय चाह रहे थे कि किसी तरह भौंसले और सींधिया की सेनाएँ अलग अलग हो जायँ। जिस तरह हुआ हो, इसी समय सींधिया और भौंसले की सेनाएँ अलग अलग हो गईं। वेल्सली ने अब स्टीवेन्सन को सींधिया के पीछे भेजा

और स्वयं बरार के राजा के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। किन्तु मराठा सेना के दो टुकड़े हो जाने पर भी और वेल्सली के कई दिन तक पूरी कोशिश करने पर भी स्टीवेन्सन अथवा वेलस्ली दोनों में से किसी को मराठा नरेशों के मुक़ाबले का ज़रा सा भी साहस न हो सका।

वेल्सली ने इस समय यह सोचा कि गुजरात पहुँच कर सींधिया के गुजरात के इलाक़े पर हमला किया जाय और बरार के उत्तर में गाविलगढ़ के क़िले पर चढ़ाई की जाय। किन्तु वेल्सली को डर था कि कहीं सींधिया और भोंसले दोनों एक पच्छिम और दूसरा पूरब की ओर बढ़कर मेरी इन दोनों योजनाओं को असफल न कर दें। सम्भव है कि सींधिया और भोंसले को भी इसका ख़याल हो और उन दोनों के अलग अलग होने का यही उद्देश रहा हो।

जो हो, वेल्सली ने फिर छल से काम लेने का निश्चय किया। उसने सुलह की बातचीत शुरू करके सींधिया और भोंसले दोनों को धोखे में रखने का इरादा किया। सींधिया की ओर से बालाजी कुंजर का पत्र आ ही चुका था। बरार का राजा भी अमृतराव द्वारा सुलह की कोशिश कर रहा था। वेल्सली ने अब रुख़ बदला और ३० अक्तूबर सन् १८०३ को बालाजी कुञ्जर के नाम नीचे लिखा पत्र भेजा :—

सुलह की बातचीत

"आपका पत्र मिला × × × और करनल स्टीवेन्सन ने मेरे पास एक

फ़ारसी का पत्र भेजा है जिसमें आपने उसे इत्तला दी है कि आप मोहम्मद मीर ख़ाँ को मेरे पास सुलह की बातचीत के लिए भेजने वाले हैं। मैं मोहम्मद मीर ख़ाँ से मिल कर बहुत ख़ुश हूँगा। मोहम्मद मीर ख़ाँ की पदवी के अनुरूप उचित ढङ्ग से मैं उनका स्वागत करूँगा और जो कुछ उन्हें कहना होगा उस पर पूरा ध्यान दूँगा।"*

साथ ही इसी तरह का एक पत्र उसने मोहम्मद मीर ख़ाँ के पास भेजा जिसमें लिखा :—

"× × × मैं आपसे मिल कर बड़ा ख़ुश हूँगा और आपकी पदवी और चरित्र के अनुरूप आदर सत्कार के साथ आपका स्वागत करूँगा और जो कुछ आपको कहना होगा, उस पर पूरा पूरा ध्यान दूँगा।"†

अस्थायी सुलहनामा

किसी कारणवश मोहम्मद मीर ख़ाँ के बजाय, समय पर जसवन्तराव घोरपड़े सींधिया की ओर से सुलह की बातचीत के लिए भेजा गया। २३ नवम्बर सन् १८०३ को अंगरेज़ों और दौलतराव सींधिया के बीच युद्ध स्थगित कर देने के लिए एक अस्थायी

---

* 'I have received your letter and Colonel Stevenson has transmitted to me a Persian letter, in which you have informed him that Mohammed Mir Khan was about to be sent on a mission to me I shall be happy to see Mir Khan I will receive him in a manner suitable to his rank, and I will pay every attention to what he may have to communicate —General Wellesley's letter to Balaji Kunjer, dated 30th October, 1803

† " I shall be happy to see you, and will receive you with the honours due to your rank and character, and I shall pay every attention to what you may have to communicate "—General Wellesley's letter to Mohammed Mir Khan

सुलहनामा लिखा गया, ताकि इसके बाद स्थायी सुलह की शर्तें तय की जा सकें। इस अस्थायी सुलहनामे में लिखा गया कि दक्खिन में, गुजरात में तथा प्रत्येक अन्य स्थान पर युद्ध तुरन्त बन्द कर दिया जाय। वेलसली और सींधिया के वकीलों के इस अस्थायी सुलहनामे पर हस्ताक्षर हो गए। सुलहनामे की अन्तिम धारा यह थी :—

"इस सुलहनामे पर महाराजा दौलतराव सींधिया के हस्ताक्षर होने चाहिएँ, और उनके हस्ताक्षर होकर आज से दस दिन के अन्दर मेजर जनरल वेलसली के पास आ जाने चाहिएँ।

अंगरेज़ों की असली मंशा

दौलतराव सींधिया के वकीलों ने ज़ोर दिया कि सुलहनामे में सींधिया और भोंसले दोनों मराठा नरेशों का नाम होना चाहिए और दोनों के साथ अंगरेज़ों का युद्ध बन्द हो जाना चाहिए। किन्तु वेलसली ने यह बहाना लेकर कि भोंसले की ओर से कोई पृथक वकील नहीं आया, भोंसले का नाम सुलहनामे मे देने से इनकार किया। भोंसले का नाम इस अस्थायी सुलहनामे में न रखने का असली कारण जनरल वेलसली ने गवरनर जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी मेजर शॉ के नाम अपने २३ नवम्बर सन् १८०३ के पत्र में इस प्रकार बयान किया :—

"बरार के राजा की सेनाएं इसमें शामिल नहीं की गईं, और इसी से इन दोनों नरेशों मे फूट पड जायगी। यदि सींधिया के ऊपर कोई एतबार

भोंसले को अभी तक था भी तो अब वह सब ख़त्म हो जायगा और ख़ुद बख़ुद इन दोनों मराठा नरेशों की मित्रता टूट जायगी।"*

सींधिया और भोंसले में फूट डालने के प्रयत्न

जनरल वेल्सली बल्कि दोनों वेल्सली भाई पाश्चात्य कूटनीति के बड़े पक्के खिलाड़ी थे। इसी पत्र में आगे चल कर जनरल वेल्सली ने लिखा :—

"मैं गवरनर जनरल को सूचित कर चुका हूँ कि दौलतराव सींधिया को और अधिक नुक़सान पहुँचा सकना मेरी शक्ति से बाहर है। × × ×

"मैदान में सींधिया की सारी सेना सवारों की है। इस सेना पर हम किसी तरह का असर डालने की कभी कोई आशा नहीं कर सकते जब तक कि बहुत दिनों तक और बहुत दूर तक उसका पीछा न करते रहें। यदि हम ऐसा करें तो हमारी सेनाएँ, जो इस समय भी रसद मिलने के स्थानों से दूर हो गई हैं और भी अधिक दूर हो जायँगी और बरार के राजा के विरुद्ध फिर हम कुछ न कर सकेंगे। × × ×"†

---

* "The Raja of Berar's troops are not included in it, and consequently there becomes a division of interest between these two chiefs All confidence in Scindhia if it ever existed, must be at an end, and the confederacy is, *Ipso facto*, dissolved "—General Wellesley's letter to Major Shawe, Private Secretary to the Governor-General, dated 23rd November, 1803

† "I have already apprized the Governor-General that it was not in my power to do anything more against Doulat Rao Scindhia

"Scindhia has with him in the field an army of horse only. It is impossible to expect to make any impression upon this army, unless by following it for a great length of time and distance, to do this would remove our troops still farther than they are already from all the sources of supply,

इस अस्थायी सुलह द्वारा वेल्सली सींधिया को धोखा देकर, अपनी तैयारी करके उस पर अचानक हमला करना चाहता था।

२८ नवम्बर को वेल्सली ने करनल क्लोज़ को लिखा :—

"लड़ाई बन्द करने को मैं इसलिए राज़ी हो गया क्योंकि जैसा मैं २४ अक्तूबर को गवरनर जनरल को लिख चुका हूँ, मैं सींधिया को और हानि पहुँचाने में असमर्थ हूँ; क्योंकि सींधिया की सवार सेना को नुकसान पहुँचा सकना मेरे लिए असम्भव है; और क्योंकि गुजरात के लिए तथा गाविलगढ़ के क़िले के लिए मैं जो कुछ योजनाएं कर रहा हूँ, उनमें सींधिया मुझे नुकसान पहुँचा सकता है। बापू जी सींधिया को उसने गुजरात की ओर भेज भी दिया है; और मेरा राजनैतिक लक्ष्य यह है कि बरार के राजा और सींधिया में फूट डलवा दूं और इस प्रकार वास्तव में मराठा मण्डल को तोड़ दूँ।"*

उसी दिन वेल्सली ने जो पत्र गवरनर जनरल को लिखा, उसके नीचे लिखे वाक्य वेल्सली के इरादे को और भी स्पष्ट कर देते हैं—

वेल्सली का नैतिक आदर्श

"यदि लड़ाई बन्द कर देने के इस अवसर से

---

and would prevent the operations against the Raja of Berar "— General Wellesley's letter to Ma or Shawe quoted above

* "I have agreed to the cessation of hostilities on the ground of my incapability to do Scindhia further injury, as stated in my dispatch to the Governor-General on the 24th of October on that of it being impossible to injure his army of horse on that of the injury he may do me in the operations against Gawilgurh and in Gujrat, to which quarter he has sent Bapuj Scindhia, and on the political ground of dividing his interests from thos of the Raja of Berar, and thereby in fact, dissolving the Confederacy "— General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 24th November, 1803

लाभ उठा कर हम सन्धि की बात चीत में देर लगा दे तो आप देख सकते हैं कि जब मैं चाहूँ तब इस अस्थायी सुलह का अन्त कर देना मेरे हाथों में है, और यदि जिस दिन यह सुलहनामा हस्ताक्षर होकर मेरे पास आ जाय उसके अगले ही दिन मुझे इस सुलह का अन्त कर देना पड़े, तो भी कम से कम मुझे हर ओर अपनी काररवाइयों के लिए काफ़ी समय मिल जायगा और दोनों शत्रुओं को एक दूसरे से बिलकुल फाड़ देने में मैं सफल हो चुका हूँगा।"*

वास्तव में पाश्चात्य राजनीति में ईमानदारी के लिए कोई स्थान नहीं। शीघ्र ही जनरल वेल्सली का छल प्रकट हो गया।

अरगाँव पर हमला

२३ तारीख़ को सुलहनामा लिखा गया। १० दिन सुलहनामे पर महाराजा दौलतराव के दस्तख़त होकर लौटने के लिए नियत कर दिए गए। उधर दो दिन के अन्दर ही स्टीवेन्सन बरहानपुर की ओर से लौट कर वेल्सली से आ मिला, और २९ नवम्बर को यानी सुलहनामा लिखे जाने के केवल छै दिन के अन्दर वेल्सली ने विश्वासघात करके अचानक सींधिया के अरगाँव के क़िले पर हमला कर दिया। सींधिया के उन वकीलों ने, जो सुलह के लिए

---

* 'If advantage should be taken of the cessation of hostilities to delay the negotiations for peace, Your Excellency will observe that *I have the power of putting an end to it when I please, and that, supposing I am obliged to put an end to it, on the day after I shall receive its ratification, I shall at least have gained so much time every where for my operations and shall have succeeded in dividing the enemy entirely*"—General Wellesley's letter to the Governor-General, dated 24th November, 1803

वेलसली के पास आए हुए थे और अभी तक वेलसली के साथ मौजूद थे, ख़बर पाकर बहुत कुछ कहा सुना और वेलसली को सुलहनामे की याद दिलाई, किन्तु सब व्यर्थ। जनरल वेलसली ने अपने सरकारी पत्रों में इस विश्वासघात के लिए दो कारण बतलाए हैं। एक यह कि अभी तक सींधिया ने सुलहनामे पर हस्ताक्षर करके न भेजे थे। किन्तु सींधिया के वकीलों के हस्ताक्षर सुलहनामे पर हो चुके थे और सुलहनामे के जाने और सींधिया के हस्ताक्षर होकर लौटने के लिए सुलहनामे ही के अन्दर साफ़ दस दिन नियत कर दिए गए थे। दूसरा कारण वेलसली ने यह बताया है कि सुलहनामे की शर्तों में से एक यह भी थी कि दोनों सेनाओं में कम से कम २० कोस का फ़ासला रहे, जिसे सींधिया की ओर से पूरा नहीं किया गया। तमाशा यह था कि एक तो स्वयं दौलतराव को इसके प्रबन्ध के लिए अभी समय न मिल पाया था और दूसरे वेलसली के पत्रों से साबित है कि इन छै दिनों के अन्दर जितना जितना सींधिया की सेना पीछे हटती गई उतना उतना ही अंगरेज़ी सेना जान बूझ कर आगे बढ़ती गई। सारांश यह कि वेलसली के दोनों बहाने झूठे थे।

अरगाँव की विजय

वेलसली का अपने इस छल से जो मतलब था वह पूरा हो गया। सींधिया की सेना समय पर पहुँच भी न पाई और अरगाँव का क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। अरगाँव की विजय की ख़बर पाते ही गवरनर जनरल ने प्रसन्न होकर जनरल वेलसली को लिखा :—

" × × × यद्यपि सुलह करने के मामले में मैं आप से बिलकुल सहमत था, मैं उसे बड़ी होशियारी की बात समझता था, किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि आपकी सुलह की अपेक्षा आपकी विजय को मैं अधिक पसन्द करता हूँ।"*

इसके बाद गवरनर जनरल ने लिखा कि—"मुझे अभी तक पता नहीं चला कि लड़ाई का कारण क्या हुआ। क्या सींधिया ने अपनी ओर से सुलह तोड़ दी? या × × × सुलह के शुरू होने से पहले ही अकस्मात् कहीं पर दोनों फ़ौजें भिड़ गईं? या सींधिया और बरार के राजा फिर दग़ा करके एक दूसरे से मिल गए? किन्तु कहीं पर भी और किसी तरह से भी क्यों न हुआ हो, इन देशी राजाओं से लड़ने में सदा ही फ़ायदा है।"*

गाविलगढ़ विजय

अरगाँव के बाद उसी तरह के छल से वेलसली ने बरार के राज में गाविलगढ़ के क़िले पर हमला किया और तीन दिन की लड़ाई के बाद १४ दिसम्बर सन् १८०३ को गाविलगढ़ का क़िला भी अंगरेज़ों के हाथों में आ

---

* " Although I entirely approved of your armistice and thought it a most judicious measure, I confess that I prefer your victory to your armistice,

"I have not yet discovered whether the battle was occasioned by a rupture of the truce on the part of Scindhia, or by an accidental encounter of the armies before the truce had commenced, or by a treacherous junction between Scindhia and the Raja of Berar But, *Qua cunque via*, a battle is a profit with the Native Powers"—*Governor-General's letter to General Wellesley, dated 23rd December, 1803*

गया। गाविलगढ़ के वीर क़िलेदार ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात न कर लड़ते हुए अपने प्राण दिए।

दक्खिन में अब वेल्सली के लिए अधिक काम करने को न रहा। इसके बाद अंगरेज़ों की दृष्टि सींधिया के गुजरात के इलाक़े पर थी।

गुजरात पर हमले का इरादा

गुजरात के उपजाऊ प्रान्त को सम्राट अकबर ने मुग़ल साम्राज्य में शामिल किया था। दो शताब्दी तक यह प्रान्त मुग़ल साम्राज्य का एक अङ्ग रहा। उसके बाद निज़ामुलमुल्क ने मराठों को भड़का कर और मदद देकर उनसे गुजरात पर हमला करवाया और उस प्रान्त के एक भाग पर गायकवाड़ कुल का राज क़ायम हुआ। अंगरेज़ों ने गायकवाड़ को मराठा मण्डल से फोड़ कर अपनी ओर किया और माधोजी सींधिया को मराठा मण्डल के साथ विश्वासघात करने के इनाम में भड़ोच का क़िला और उसके आस पास ग्यारह लाख रुपए सालाना का इलाक़ा गायकवाड़ से दिलवा दिया। अब फिर गवरनर जनरल वेल्सली ने माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सींधिया से यह इलाक़ा छीन कर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का इरादा किया।

भील राजाओं को लोभ

९ जुलाई सन् १८०३ को यानी सींधिया के साथ युद्ध का एलान होने से २८ दिन पहले गवरनर जनरल ने बम्बई के गवरनर को लिख दिया था—"भड़ोच के क़िले पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दीजिए।" सींधिया के गुजराती इलाक़े में अधिकांश आबादी

भीलों की थी, जिनके अपने कई छोटे छोटे राजा थे। ये सब राजा सींधिया को ख़िराज देते थे। कम्पनी की सेना को भड़ोच के क़िले पर हमला करने के लिए इन राजाओं के पहाड़ी इलाक़ों में से निकलना पड़ता। २ अगस्त सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने बम्बई के गवरनर को लिखा कि—"यदि ये भील राजा हमारे विरुद्ध खड़े हो गए तो जितनी सेना कम्पनी की ओर से भेजी जा सकती है, वह इनमें से एक राजा को वश में करने के लिए भी काफ़ी नहीं हो सकती। इसलिए इन समस्त भील राजाओं को अपनी ओर मिलाया जाय। उन्हें इस बात का लोभ दिया जाय कि तुम्हारा ख़िराज सदा के लिए माफ़ कर दिया जायगा।"* सूरत के कुछ अंगरेज़ों की मार्फ़त इन भील राजाओं को अपनी ओर किया गया।

गायकवाड़ की सबसीडीयरी सेना

इसके बाद ६ अगस्त सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने गायकवाड़ की सबसीडीयरी सेना को आज्ञा दी कि वह फ़ौरन भड़ोच के क़िले पर हमला कर दे। महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ बड़ोदा की गद्दी पर था। उसमें और महाराजा दौलतराव सींधिया में "गहरी मित्रता" थी। सबसीडीयरी सेना का सारा ख़र्च

---

* " . . . you will urge the gentleman at Surat to keep on terms with the Bheels . . . The number of troops I have above detailed . . . *they will not be sufficient for the subjection even of one of their Rajas*, . . . it would be better to give up all claims of tribute . . ."
—General Wellesley's letter to the Governor of Bombay, dated 2nd August, 1803.

गायकवाड़ देता था और सन्धि के अनुसार यह सेना गायकवाड़ ही की सेवा और सहायता के लिए नियुक्त थी। इसलिए महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ ने इस बात पर सख़्त एतराज़ किया कि यह सेना दौलतराव सींधिया के राज पर हमला करने के लिए भेजी जाय और गायकवाड़ की राजधानी बड़ोदा से सींधिया के राज पर हमला किया जाय। किन्तु सेना कम्पनी की आज्ञा के अधीन थी। जनरल वेल्सली ने अपने २२ अगस्त के एक पत्र में साफ़ लिख दिया कि—"कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि का मतलब ही यह है कि कम्पनी जहाँ चाहे अपने शत्रुओं के विरुद्ध इस सेना का उपयोग कर सकती है।" सन्धि की शर्तों में यह बात कहीं न थी,* फिर भी महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ की बात नहीं सुनी गई।

वफ़ादार अरब सेना

करनल वुडिङ्गटन के अधीन गायकवाड़ की इस सेना ने, जिसमें एक कम्पनी तोपख़ाने की और दो पलटनें हिन्दोस्तानी पैदलों की थीं, २१ अगस्त को बड़ोदा से कूच किया। २३ को यह सेना भड़ोच के क़िले से दो कोस के अन्दर पहुँच गई। दौलतराव सींधिया अभी तक उस क़िले की रक्षा का कोई ख़ास प्रबन्ध न कर पाया था। २५ अगस्त से मुहासरा शुरू हुआ और २९ को क़िला अंगरेज़ों

---

* "Although it is not immediately specified . . . . . . the Gaikwad should also assist the Company with his forces against the enemies of the British Government"—General Wellesley's letter to Bombay Government dated 22nd August, 1803

के हाथों में आगया। उसी दिन करनल वुडिङ्गटन ने जनरल वेल्सली को सूचना दी कि क़िले के अन्दर की "अरब सेना ने बहुत ज़ोरों के साथ मुक़ाबला किया।" अरब सैनिक उन दिनों प्रायः समस्त भारतीय नरेशों के यहाँ रहते थे और सदा बड़ी वफ़ादारी और जाँनिसारी के साथ अपने स्वामी की सेवा करते थे। अगले दिन वुडिङ्गटन ने फिर लिखा—

"इञ्जीनियर ने ११ बजे सुबह को मुझ से आकर कहा कि क़िले में जाने के लिए काफ़ी रास्ता बन गया है, मैंने प्रवेश करने का इरादा कर लिया; किन्तु मैं तीन बजे शाम तक रुका रहा × × × क्योंकि मैं समझता था कि बहुत करके उस समय ही शत्रु अचेत और असावधान होंगे।"

आस पास के सींधिया के सारे इलाक़े पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। यह समस्त विजय गायकवाड़ के ख़र्च पर और उसी की सेना द्वारा की गई, किन्तु जो इलाक़ा इस सेना ने जीता उसका गायकवाड़ से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा गया।

भड़ोच के अतिरिक्त गुजरात में सींधिया का एक और क़िला पवनगढ़ था। चम्पानेर का सारा ज़िला इस क़िले के अधीन था। भड़ोच के बाद करनल वुडिङ्गटन ने पवनगढ़ की राह ली। १७ सितम्बर की शाम तक यह क़िला भी अंगरेज़ों के हाथों में आगया। इस

पवनगढ़ विजय

क़िले के विषय में वुडिङ्गटन ने अपने एक पत्र में लिखा कि—"यदि इस क़िले के अन्दर की सेना 'बाला क़िले' यानी पहाड़ की चोटी पर के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लेती, तो मैं समझता हूँ, हम उस क़िले

को कदापि न तोड़ सकते।"* वुडिङ्गटन के इसी पत्र में यह भी लिखा है कि इस क़िले की सेना सींधिया की वफ़ादार साबित नहीं हुई और क़िले के दरवाज़े खोलने में सोने की चाबी ने अंगरेज़ों को ख़ासी मदद दी।

गुजरात में अब दौलतराव सींधिया का कोई इलाक़ा न रहा अथवा जितना इलाक़ा अंगरेज़ों ने माधोजी सींधिया को उसकी देशघातकता के इनाम में दिया था, वह सब अब दौलतराव सींधिया से सदा के लिए छिन गया।

उड़ीसा का अधिकांश भाग उस समय मराठों के अधीन था। नागपुर के भोंसले राजाओं का उस भाग पर आधिपत्य था। प्रान्त के अनेक स्थानीय राजा भोंसले को ख़िराज दिया करते थे। कम्पनी की बालेश्वर की कोठी मराठों ही के इलाक़े में थी और उस कोठी के अंगरेज़ मराठों की प्रजा थे। जिस समय मुग़ल सम्राट ने उड़ीसा प्रान्त की दीवानी कम्पनी को प्रदान की थी, उस समय केवल उत्तर की ओर के उस थोड़े से भाग की दीवानी कम्पनी को दी गई थी, जो मुर्शिदाबाद

उड़ीसा प्रान्त

---

* ' the garrison offered to capitulate To these terms I agreed, they however tacked other stipulations to the capitulation, *viz*, that I should agree to pay them the arrears due from Scindhia, they agreed to the original terms

"Could they have obtained possession of the upper fort or *Bala Kalla*, at the top of the mountain, I am inclined to think it utterly impregnable —Colonel Woodington's letter to Colonel Murray dated 21st September 1803

के सूबेदार के अधीन था, शेष समस्त उड़ीसा पर दीवानी और फ़ौजदारी दोनों के सम्पूर्ण अधिकार मराठों के हाथों में थे। किन्तु मराठों की सत्ता उस समय इतनी ज़बरदस्त थी और अंगरेज़ों का बल अभी इतना कम था कि उड़ीसा में रहने वाले अंगरेज़ मराठों की आज्ञाकारी और नम्र प्रजा की तरह उस प्रान्त में व्यापार करते रहे। लिखा है कि सन् १७६७ में जब मराठों ने कम्पनी से 'चौथ' की पिछली बकाया तलब की तो कम्पनी के डाइरेक्टर पिछली बकाया के १२ लाख रुपए देने के लिए राज़ी हो गए और साथ ही यह भी चाहा कि मराठे समस्त उड़ीसा प्रान्त की दीवानी का अधिकार कम्पनी को दे दें; किन्तु पत्र व्यवहार होने पर मराठों ने इस दूसरी बात को स्वीकार न किया। मालूम होता है कि उस समय से ही उड़ीसा में मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों की साज़िशें शुरू हो गईं। उड़ीसा में मराठों के अत्याचारों की अनेक झूठी कथाएँ भी उसी समय से गढ़ गढ़ कर फैलाई जाने लगीं।

कनरल कैम्पबेल को आदेश

३ अगस्त सन् १८०३ को मार्किस वेलस्ली ने कनरल कैम्पबेल को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें उसे कटक प्रान्त पर चढ़ाई करने और वहाँ पर राजा राघोजी भोसले की सामान्य प्रजा, जगन्नाथपुरी के पण्डों और प्रान्त तथा आस पास के सरदारों, ज़मींदारों और सामन्तों को राजा राघोजी भोसले के विरुद्ध भड़काने और उनके साथ तरह तरह से साज़िशें करने की विस्तृत हिदायतें दी गईं। ये विस्तृत हिदायतें वेलस्ली की कूटनीति को बड़ी सुन्दरता से

चित्रित करती हैं; किन्तु इन्हे यहाँ पर उद्धृत करना व्यर्थ है। करनल कैम्पबेल ने गञ्जम में अपनी फ़ौज जमा की। जिस तरह का एलान मैसूर की राजधानी में प्रवेश करते समय मैसूर की प्रजा के नाम जनरल हैरिस ने प्रकाशित किया था, उसी तरह का एलान अब उड़ीसा की प्रजा के नाम प्रकाशित किया गया। सरकारी पत्रों में लिखा है कि "जगन्नाथ के पण्डों के धार्मिक भावों, उनके पूजा पाठ और उनकी धार्मिक प्रतिष्ठा" की ओर विशेष आदर दिखलाया गया, और आस पास के सामन्तों, ज़मींदारों इत्यादि में से किसी को लोभ देकर और किसी को डरा कर जिस तरह हुआ अपनी ओर मिलाया गया।

इन कूट प्रयत्नों का और उड़ीसा की भारतीय प्रजा में राजनैतिक भावों के अभाव का परिणाम यह हुआ कि इतिहास लेखक जे० बीम्स के शब्दों मे जिस समय अंगरेज़ :—

"सामने दिखाई दिए, मराठों को अपनी लड़ाइयाँ अकेले लड़नी पड़ीं, लोगों ने उनकी बिलकुल मदद नहीं की।"

यही लेखक लिखता है कि यदि उड़िया लोग मराठों की मदद करते तो—"पहाड़ियों और समुद्रतट के योधा राजा हमें बड़ी आपत्तियों मे डाल सकते थे।"*

---

* " when the English appeared on the scene, the Maratha were left to fight their own battles, quite unsupported by the people Had they done so, the turbulent Rajas ot the hills and the sea coast migh have given us a great deal of trouble "—Mr J Beams, in his 'Not on the History of Orrissa,' published in the *Journal of the Asiatic Society o Bengal* for 1883

जगन्नाथपुरी पर क़ब्ज़ा

किन्तु एक तो कूटनीति में मराठे अंगरेज़ों का मुक़ाबला न कर सकते थे, दूसरे इस युद्ध के लिए अंगरेज़ों की तैयारी वर्षों पहले से हो रही थी और मराठों की कोई तैयारी न थी। करनल कैम्पबेल के नाम गवरनर जनरल के जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र किया गया है, वह तक युद्ध के एलान से तीन दिन पहले का लिखा हुआ था। नतीजा यह हुआ कि उड़ीसा में अंगरेज़ों को क़रीब क़रीब कुछ भी लड़ाई लड़नी नहीं पड़ी। गञ्जम की सेना ने बिना रक्तपात १४ सितम्बर को मानिकपत्तन पर और १८ को जगन्नाथपुरी पर क़ब्ज़ा कर लिया।

बालेश्वर पर क़ब्ज़ा

उत्तर की ओर कप्तान मॉरगन के अधीन एक दूसरी सेना ने कलकत्ते से जल के रास्ते आकर बालेश्वर पर चढ़ाई की। बालेश्वर के क़िले की मराठा सेना ने अंगरेज़ों का मुक़ाबला किया, किन्तु बालेश्वर की पुरानी बस्ती के ज़मींदार प्रह्लाद नायक ने मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी और २१ सितम्बर सन् १८०३ को बालेश्वर अंगरेज़ों के हाथों में आगया। बाज़ारों में मुनादी करवा दी गई कि प्रान्त पर अंगरेज़ कम्पनी का क़ब्ज़ा होगया।

बाराबट्टी पर क़ब्ज़ा

गञ्जम वाली सेना जगन्नाथपुरी पर क़ब्ज़ा करने के बाद करनल हारकोर्ट के अधीन कटक की ओर बढ़ी। कटक का क़िला जिसे बाराबट्टी भी कहते थे, बहुत मज़बूत था। क़िले के चारों ओर ३५ फ़ुट

से लेकर १३५ .फ़ुट तक चौड़ी खाई थी, जिसमें २० .फ़ुट गहरा पानी था। क़िले में जाने के लिए केवल एक तंग पुल था। करनल हारकोर्ट २४ सितम्बर को पुरी से चल कर १० अक्तूबर को कटक पहुँचा। कटक का नगर बिना किसी मुक़ाबले के फ़ौरन अंगरेज़ों के हाथों में आगया। चार दिन के बाद १४ अक्तूबर को बाराबट्टी का मज़बूत क़िला भी अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में आगया। इस क़िले की संरक्षक सेना में से भी कुछ ने अपने स्वामी राघोजी भोंसले के साथ दग़ा की।

मयूरभञ्ज की रानी

इसके कुछ समय बाद उत्तर और दक्खिन की अंगरेज़ी सेनाएं दोनों आपस में मिल गईं। बालेश्वर और कटक के बीच में मयूरभञ्ज और नीलगिरि नाम की दो रियासतें थीं। मयूरभञ्ज की रानी और नीलगिरि के राजा के साथ अंगरेज़ों की साज़िशें पहले से जारी थीं। जे० वील्स लिखता है कि एक अलग सैन्यदल ख़ास इस काम के लिए पहले से भेजा गया कि वह :—

"मयूरभञ्ज और नीलगिरि पहाड़ियों का भूगोल सीख ले, ख़ासकर इन पहाड़ों में आने जाने के रास्ते जान ले और दोनों रियासतों के राजाओं से पत्र व्यवहार शुरू कर दे। इन दोनों राजाओं की सब काररवाइयों का पता रखने के लिए उनकी रियासतों में गुप्तचर भेजे गए और यदि उनके कोई वकील या प्रतिनिधि कटक आना चाहे तो उन्हें पासपोर्ट देने की आज्ञा दी गई।"*

---

* ". . . to learn the geography of the Moharbhanj and Nilgiri Hills especially the passe and to open communications with the Rajas of thos

मयूरभञ्ज की रानी पहले अंगरेज़ों के साथ मिलने के विरुद्ध थी और लड़ने के लिए तैयार हो गई। हारकोर्ट ने उसे पहले कई ख़ुशामद के पत्र लिखे। इस पर भी वह राज़ी न हुई। तब रानी के दत्तक पुत्र युवराज के साथ गुप्त पत्र व्यवहार करके, युवराज को रानी से फोड़ा गया। इस प्रकार करनल हारकोर्ट ने रानी को ज्यों त्यों कर राज़ी कर लिया और मयूरभञ्ज की रियासत का कुछ भाग भी कम्पनी के अधीन कर लिया।

होते होते १२ जनवरी सन् १८०४ को सम्बलपुर पर अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा किया और उड़ीसा का वह सारा भाग जो मराठा साम्राज्य मे शामिल था अंगरेज़ कम्पनी के शासन मे आ गया।

उड़ीसा मे अंगरेज़ी शासन

मराठों के शासन में उड़ीसा की प्रजा अत्यन्त ख़ुशहाल थी। जे० बीम्स लिखता है कि चावल उस समय उस प्रान्त में १५ गण्डे का एक सेर यानी एक रुपए का सत्तर सेर (पौने दो मन) बिकता था। प्रान्त भर मे कोई यह जानता ही न था कि दुष्काल किसे कहते हैं। इसी लिए, जे० बीम्स लिखता है कि, जिस समय अपना राज जमाने के लिए अंगरेज़ी सेना ने उड़ीसा प्रान्त में प्रवेश किया :—

"वहाँ के लोगों ने यह अच्छी तरह जानते हुए कि हम उस देश से अपरिचित थे, सब ने आपस मे एका कर लिया और किसी ने हमें किसी

two states Spies were sent into Moharbhanj and Nilgiri to keep a watch on the chiefs, and passports were to be granted to their vakils or representatives, should they desire to visit Cuttack"—J Beams in the above Notes

तरह की भी सहायता न दी, किसी ने हमारा खुले मुक़ाबला करने का साहस तो न किया, किन्तु वे सब के सब जड़वत् अलग बैठे रहे। उन्होंने अपने काग़ज़ात छिपा दिए और किसी तरह की सूचना हमें न दी। उन्होंने हर जगह किश्तियों, बैल और गाड़ियाँ हमारे रास्ते से हटा कर दूर भेज दीं। जिन ज़मींदारों को हमने यह हुकुम दिया कि आप लोग कटक आकर अपनी अपनी जायदादों के मामले में सब तय कर लें, वे नहीं आए और जब उनके घरों पर उन्हें तलाश किया गया तो नहीं मिले। कहा गया कि कहीं बाहर यात्रा को गए हैं, यह कोई नहीं बताता था कि कहाँ गए हैं। किन्तु यदि अनजाने भी अंगरेज़ अफ़सरों से कोई ग़लती हो जाती थी, तो इसी जड़ निर्जीव जन समूह में एकाएक जान आ जाती थी, और ज़ोरों के साथ बार बार शिकायतें होने लगती थीं।"*

उड़ीसा में दुष्काल

निस्सन्देह उड़ीसा की प्रजा अपने मराठा और अन्य देशी शासकों की जगह पर विदेशी कम्पनी के शासन में आना पसन्द न करती थी। शीघ्र ही साबित हो गया कि उनकी आशङ्काएँ बिलकुल सच्ची थीं। जे० बीम्स लिखता है कि—अंगरेज़ों के पहुँचते ही प्रान्त भर

* "Well aware of our ignorance of the country they all with one accord abstained from helping us in any way, no open resistance was ventured upon, but all stolidly sat aloof—papers were hidden, information with held, boats, bullocks and carts sent out of the way, the Zemindars who were ordered to go into Cuttack to settle for their estates did not go, and on searching for them at their homes could not be found, were reported as absent, on a journey, no one knew where But if from ignorance the English officers committed any mistake, then life suddenly returned to the dull inert mass, and complaints were loud and incessant"—J Beams in the above Notes

में अन्न की भारी कमी पड़ने लगी। करीब करीब हर पाँचवें साल भयङ्कर दुष्काल पड़ने लगा और सदा दुष्काल का डर रहने लगा। प्रान्त पर कब्ज़ा करने के अगले ही साल कप्तान मॉरगन ने भारत के अन्य प्रान्तों से पुरी जाने वाले यात्रियों को सावधान कर दिया कि कटक प्रान्त में चावल की कमी है, इसलिए यात्री अपने अपने प्रान्तों से भोजन की सामग्री साथ लेकर आवें।†

बुन्देल खण्ड पर कब्ज़ा

बुन्देलखण्ड का प्रदेश अंगरेज़ों को और भी अधिक सुगमता से मिल गया। यह प्रदेश पेशवा के अधीन था। यहाँ का राजा शमशेर बहादुर पेशवा को ख़िराज देता था। बसई की सन्धि में पूना के दक्खिन का कुछ इलाक़ा और कुछ सूरत के पास का इलाक़ा पेशवा ने कम्पनी के नाम कर दिया था। अब पेशवा पर ज़ोर देकर उन दोनों छोटे छोटे इलाक़ों के बदले में बुन्देलखण्ड का समृद्ध प्रान्त अंगरेज़ों ने पेशवा से माँग लिया।

किन्तु राजा शमशेर बहादुर ने अंगरेज़ों की अधीनता में रहना स्वीकार न किया। इसलिए करनल पॉवेल के अधीन एक सेना इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड भेजी गई। ६ सितम्बर सन् १८०३ को

---

† "Cuttack now begins to be noticeable as it is *at frequent intervals throughout the early years of British rule as a place in constant want of supplies and always on the verge of famine*. On first December, 1803, an urgent call is made for fifteen thousand maunds of rice from Balasore. Again on first June, 1804, Captain Morgan is ordered to warn all pilgrims of the great scarcity of rice and cowries at Cuttack and to endeavour to induce them to supply themselves with provisions before entering the province."—J. Beams, in the Notes above quoted.

इस सेना ने जमना पार कर बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया। राजा शमशेर बहादुर अपनी सेना लेकर मुकाबले के लिए बढ़ा। लिखा है कि १६ सितम्बर को गोसाईं हिम्मत बहादुर अपनी विशाल सेना सहित अपने स्वामी से विश्वासघात कर अंगरेज़ों से आ मिला। १३ अक्तूबर को केन नदी के पास अंगरेज़ों और हिम्मत बहादुर की संयुक्त सेनाओं का राजा शमशेर बहादुर की सेना के साथ एक संग्राम हुआ। अन्त में हार खाकर शमशेर बहादुर को बेतवा पार कर अपना राज छोड़ भाग जाना पड़ा।

१६ दिसम्बर सन् १८०३ को बसई की सन्धि में आवश्यक परिवर्तन करके उस पर पेशवा बाजीराव के दस्तख़त करा लिए गए। इन शर्तों के अनुसार बुन्देलखण्ड का प्रान्त बाज़ाब्ता अंगरेज़ कम्पनी के शासन में आ गया।

कोयल पर कब्ज़ा

अलीगढ़, देहली, आगरा और इनके आस पास के इलाक़े पर उन दिनों मुग़ल सम्राट का आधिपत्य केवल नाम मात्र रह गया था। इस इलाक़े का क्रियात्मक शासन सींधिया कुल के हाथों में था, और वहाँ की रक्षा के लिए माधोजी सींधिया ने दी बॉइन नामक एक फ़्रान्सीसी को नियुक्त कर दिया था। दी बॉइन के बाद एक दूसरा फ़्रान्सीसी कप्तान पैरों सींधिया के इस इलाक़े की सेनाओं का सेनापति नियुक्त हुआ। यह एक अत्यन्त मनोरञ्जक बात है कि सींधिया पर एक ख़ास दोष यह मढ़ा जाता था कि उसने अपने यहाँ कप्तान पैरों के अधीन एक फ़्रान्सीसी सेना नियुक्त कर रक्खी थी, इन दोनों

फ़ान्सीसियों में से दी बॉइन वारन् हेस्टिंग्स का एक खास आदमी था और वारन् हेस्टिंग्स ही की सिफ़ारिश पर माधोजी सींधिया ने उसे अपने यहाँ नौकर रक्खा था, और इसी युद्ध में साबित हो गया कि दी बॉइन का उत्तराधिकारी कप्तान पैरों भी अंगरेज़ों से मिला हुआ था और अंगरेज़ कम्पनी के हिसाब में उसके नाम से एक भारी रक़म तक जमा थी।*

७ अगस्त सन् १८०३ को जनरल लेक इस सब इलाक़े को विजय करने के लिए कानपुर से सेना सहित रवाना हुआ। २८ अगस्त को वह सींधिया की सरहद पर पहुँचा। २९ को उसने बड़ी आसानी से सींधिया के सरहदी क़िले कोयल को विजय कर लिया। उसी दिन जनरल लेक ने मार्किस वेल्सली के नाम एक 'प्राइवेट' पत्र में इस सरल विजय का कारण यह बताया कि—"कप्तान पैरों के कुछ साथी, विशेष कर जाट और सिक्ख अंगरेज़ों के पहुँचने से पहले ही क़िला छोड़ कर चले गए × × × और मराठा सेना के छै यूरोपियन अफ़सर सींधिया की नौकरी छोड़ कर अंगरेज़ी सेना की ओर आ मिले।"†

कोयल पर क़ब्ज़ा करने के बाद जनरल लेक ने अलीगढ़ पर

---

* "Pioneer" 4th September, 1903

† ". . . Some of his (M. Perron's) confederates left him the moment they heard of our approach, particularly the Jauts, and a few Sikhs . Six officers of Perron's second brigade are just come in, having resigned the service "—General Lake's "Private" letter to Marquess Wellesley, dated 29th August, 1803

चढ़ाई करने का इरादा किया। कोयल से उसने १ सितम्बर सन् १८०३ को मार्क्विस वेलसली के नाम एक और "प्राइवेट" पत्र लिखा, जिसमें ये वाक्य आते हैं—

अलीगढ़ का संग्राम

"मैं अभी तक इस जगह से नहीं हिला, और न अभी अलीगढ़ का क़िला मेरे हाथों में आया है; मेरा लक्ष्य यह है कि रिशवत दे कर उस क़िले के अन्दर की सेना को क़िले से बाहर निकाल लूँ और मुझे विश्वास है, मैं इसमें सफल हूँगा। × × × यह किला अत्यन्त ही मज़बूत है, और यदि इसका विधिवत् मुहासरा किया गया तो कम से कम एक महीना लग जायगा। × × × इसलिए यदि थोड़ा सा धन ख़र्च करके मैं अपने क़ीमती आदमियों की जानें बचा सकूँ, तो आप मुझे अपराधी या फ़ज़ूलख़र्च न समझेंगे।"*

फिर भी अलीगढ़ के क़िले की हिन्दोस्तानी सेना नमक हलाल साबित हुई। ४ सितम्बर को लेक ने गवरनर जनरल को फिर लिखा :—

"जैसा मैंने आपको पहली तारीख़ के पत्र में लिखा था, उसके मुताबिक़ मैंने हर तरह से समझा कर प्रयत्न किया कि ये लोग क़िला छोड़ दें, और

* "I have not yet moved from hence, nor am I in possession of the fort of Allygurh, *my object is to get the troops out of the fort by bribery, which I flatter myself will be done* . . . The place is extremely strong, and if regularly besieged, will take a month at least . . . Therefore, if by a little money, I can save the lives of these valuable men, Your Lordship will not think I have acted wrong, or been too lavish of cash."—General Lake's letter to Maequess Wellesley, marked 'Private" dated Coel, September 1st 1803

उन्हें एक बहुत बड़ी रक़म धन की देने का वादा किया, किन्तु वे मुक़ाबला करने का दृढ निश्चय किए बैठे थे, और उन्होंने बहुत जम कर और मैं कहूँगा, अत्यन्त वीरता के साथ हमारा मुक़ाबला किया।"*

फिर भी क़िले के कुछ हिन्दोस्तानी और अधिकांश यूरोपियन अफ़सरों और सिपाहियों पर लेक का जादू चल गया। ४ सितम्बर को सवेरे जनरल लेक ने क़िले पर हमला किया। सींधिया के उन यूरोपियन अफ़सरों में, जो शत्रु से आ मिले, एक अंगरेज़ लूकन था। लूकन ही ने क़िले के गुप्त रास्ते का अंगरेज़ों को भेद दिया। जनरल लेक ने अपने पत्र में गवरनर जनरल से सिफ़ारिश की है कि "लूकन को ख़ूब इनाम दिया जाय। क्योंकि वह सींधिया की नौकरी छोड़कर इसलिए चला आया था ताकि उससे अपने देश के विरुद्ध कोई काम न हो जाय।" और क्योंकि अलीगढ़ के क़िले को जीतने में "हमें उनकी सेवाओं से असीम लाभ हुआ है।"†

---

* "As I told Your Lordship in my letter of the 1st instt I had tried every method to prevail upon these people to give up the fort, and offered a very large sum of money, but they were determined to hold out, which they did most obstinately, and I may say most gallantly."—General Lake to the Governor-General, dated 4th September, 1803

† "I feel I shall be wanting in justice to the merits of Mr Lucan an officer, a native of Great Britain, who lately quitted the service of Scindhia, to avoid serving against his country, were I not to recommend him to Your Lordship's particular attention He gallantly undertook to . . point out the road through the fort, . . received infinite benefit from his service, . . it will afford me great satisfaction, if his services are rewarded by Government"—General Lake's letter to Marquess Wellesley, dated 4th September, 1803, from Aligarh

लूकन और उस जैसे अन्य अनेक विश्वासघातकों की सहायता से ४ सितम्बर को ही अलीगढ़ का "अत्यन्त मज़बूत" क़िला अंगरेजों के हाथों में आ गया। फिर भी कहा जाता है कि लेक की सेना के बहुत से आदमी अलीगढ़ की लड़ाई में काम आए।

अलीगढ़ विजय

इस मामले में सींधिया की सेना के फ्रान्सीसी सेनापति पैराँ की नीयत भी सन्दिग्ध मालूम होती है। जनरल लेक के कानपुर से चलते समय पैराँ अपनी सेना के साथ अलीगढ़ में मौजूद था। लिखा है कि पैराँ के पास एक बड़ी सेना थी और हिन्दोस्तान भर में अलीगढ़ का क़िला सर्वथा अजेय और अलंघ्य प्रसिद्ध था। स्वयं जनरल लेक ने मार्किस वेल्सली को अपनी विजय का समाचार देते हुए लिखा कि—"इस क़िले की असाधारण मज़बूती को देखते हुए मेरी राय में, अंगरेज़ों की वीरता इससे अधिक ज़ोरों में कभी न चमकी होगी।"

पैराँ ने एक बार अपनी सेनाएँ जमा करके क़िले की रक्षा का इरादा ज़ाहिर किया। उसके बाद जनरल लेक के पहुँचने से पहले क़िले को अपने एक फ्रान्सीसी मातहत पैद्राँ के ऊपर छोड़ कर पैराँ एकाएक हाथरस चला गया। इतिहास लेखक मिल ने यह कह कर पैराँ के चरित्र की प्रशंसा की है कि—"यदि वह अंगरेज़ों के साथ सौदा करके अपना युद्ध का भारी सामान अंगरेज़ों के हवाले कर देता तो उसे अंगरेज़ों से एक बहुत बड़ी रक़म मिल जाती, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया।"

पैराँ का चरित्र

दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि स्वयं सींधिया का विश्वास पैरों पर से हट गया था और इसी समय के निकट पैरों की जगह सींधिया ने एक दूसरा सेनापति नियुक्त करके भेज दिया था। यह भी लिखा है कि पैरों के अधिकांश अंगरेज़ और फ़्रांसीसी मातहत अफ़सर अंगरेज़ों से मिल गए थे। मार्किस वेल्सली के पत्र में लिखा है :—

"मों० पैरों ने यह भी कहा कि अपने अधीन यूरोपियन अफ़सरों की विश्वासघातकता और कृतघ्नता से मुझे विश्वास होगया कि अब अंगरेज़ी सेना का मुक़ाबला करना व्यर्थ है।"*

ये सब बातें केवल सन्देह जनक हैं। किन्तु अलीगढ़ की विजय की शताब्दी के अवसर पर ४ सितम्बर सन् १९०३ को "पायोनियर" के एक लेखक ने लिखा :—

"बयान किया जाता है कि पैरों ने एक बहुत बड़ी 'रक़म अपनी बचत से' ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारबार में लगा रक्खी थी।"†

निस्सन्देह यह 'बचत की रक़म' उसे अंगरेज़ों ही से मिली थी। इसके बाद कोई सन्देह नहीं रह जाता कि कमान पैरों भी कम्पनी का धनक्रीत था।

---

* "M Perron also observed that the treachery and ingratitude of his European officers convinced him that further resistance to the British arms was useless"

† "It is asserted that he had 'Savings' to a considerable amount invested in the funds of the East India Company"—"Pioneer", 4th September, 1903

अलीगढ़ के पतन के बाद पैराँ ने सींधिया की नौकरी छोड़ दी।

जनरल लेक के लिए अब सींधिया के शेष उत्तरी इलाक़े पर क़ब्ज़ा करना और भी सरल हो गया। गवरनर जनरल ने लेक को लिखा कि आप अलीगढ़ के बाद सींधिया की राजधानी ग्वालियर पर हमला करे। ग्वालियर में सींधिया के नायब अम्बाजी के साथ लेक का गुप्त पत्र व्यवहार जारी था, किन्तु अम्बाजी अभी तक सींधिया के साथ विश्वासघात के लिए राज़ी न हुआ था। इसलिए लेक को ग्वालियर की ओर बढ़ने की हिम्मत न हो सकी। उधर दिल्ली में सम्राट शाह आलम के साथ गवरनर जनरल का पत्र व्यवहार जारी था। २६ अगस्त को कोयल में जनरल लेक को मुग़ल सम्राट की ओर से एक पत्र मिला। तुरन्त जनरल लेक ने अलीगढ़ लेने के बाद दिल्ली की ओर बढ़ने का निश्चय कर लिया। मार्ग में कौड़ा का क़िला था। ८ सितम्बर को जनरल लेक ने कौड़ा के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। उसी दिन कौड़ा से जनरल लेक ने गवरनर जनरल को एक 'प्राइवेट' पत्र में लिखा—

लेक के गुप्त उपाय

"हम लोग आज सुबह यहां पहुंचे और हमें एक बहुत मज़बूत छोटा सा क़िला मिला। यदि अलीगढ़ के पतन के अगले ही दिन यहां की सेना स्वयं क़िला छोड़ कर न चली गई होती तो हमें देर लगती और मुसीबत होती।

"मैं सोचता हूं कि जब आप सुनेंगे कि किस 'गुप्त उपाय' से यह सब काम किया जा रहा है तो आप बहुत प्रसन्न होंगे। सेना के इतिहास में यह

बिलकुल एक नई तरह का काम है, और अभी तक इसमें ख़ूब आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। मैं समझता हूँ, तीन और पड़ाव में हम दिल्ली के बहुत नज़दीक पहुँच जायंगे।"*

चाँदी और सोने की गोलियाँ

निस्सन्देह संसार के सैनिक इतिहास में जनरल लेक की ये सब विजय "बिलकुल एक नई ही तरह की" विजय थी। सींधिया के आदमियों के ऊपर इस युद्ध भर में लोहे की गोलियों के स्थान पर जनरल लेक ख़ूब जी खोल कर चाँदी और सोने की गोलियाँ चला रहा था, और सींधिया के विदेशी नौकरों की दग़ा और भारत वासियों में राष्ट्रीय भाव के शोकजनक अभाव के कारण लेक को "ख़ूब आश्चर्यजनक सफलता" प्राप्त हो रही थी। यही लेक का "गुप्त उपाय" था।

लुई बौरगुइन

देहली में लुई बौरगुइन नामक एक फ़्रान्सीसी के मातहत सींधिया की एक ज़बरदस्त सेना रहती थी, जिसके साथ एक बहुत बड़ा तोपख़ाना था। मालूम होता है, इस लुई बौरगुइन ने सींधिया के साथ विश्वासघात

---

* "We arrived here (Kaunga) this morning, and found a very strong little fort, which would have caused delay and trouble had not the troops evacuated it the day after the fall of Aligarh,

'*I think when you hear the SECRET manner in which things have been conducted you will be much pleased, it is quite a new work in the army, and has succeeded hitherto wonderfully well* I think to be very near Delhi in three more marches' —General Lake's letter, marked 'Private', dated September 8th, 1803, to the Governor-General

नहीं किया। ११ सितम्बर सन् १८०३ को जमना के इस पार लुई बौरगुइन की सेना और जनरल लेक की सेना में एक घमासान संग्राम हुआ। लेक के अनेक अफ़सर और सिपाही इस संग्राम मे काम आए। किन्तु स्वयं सम्राट शाह आलम के आदमियों के द्वारा लुई बौरगुइन की सेना के भीतर भी लेक की चाँदी की गोलियाँ चल चुकी थीं। विजय अन्त में जनरल लेक की ओर रही और सींधिया की ज़बरदस्त तोपें अंगरेज़ों के हाथ आईं।

१२ सितम्बर को लेक ने गवरनर जनरल के नाम एक विस्तृत पत्र लिखा कि किन किन कारणों से मैं ग्वालियर का इरादा छोड़ कर दिल्ली की ओर बढ़ आया।

दिल्ली का क्रियात्मक प्रभुत्व

दिल्ली में १६ सितम्बर सन् १८०३ को विजयी लेक ने सम्राट शाह आलम से भेंट की। एक पिछले अध्याय में दिया जा चुका है कि किस तरह के झूठे वादों में फँस कर भोले और अभागे मुगल सम्राट ने अपने देशवासी सींधिया के विरुद्ध विदेशियों का साथ दिया। बहुत सम्भव है कि बिना शाहआलम की सहायता और सहानुभूति के दिल्ली विजय करना अंगरेज़ों के लिए इतना सरल न होता। शाहआलम को शुरू से अंगरेज़ों पर थोड़ा बहुत सन्देह भी अवश्य था। एक बार उसने कहा था कि—"ऐसा न हो कि मुल्क पर कब्ज़ा कर लेने के बाद अंगरेज़ मुझे भूल जायँ।" सम्राट के दरबार के अन्दर भी अंगरेज़ों के छिपे हुए हित साधक

मौजूद थे. उन्हीं के समझाने बुझाने पर शाहआलम ने अंगरेज़ों का साथ दिया। अन्त में शाहआलम का डर सच्चा निकला।

१६ सितम्बर सन् १८०३ ही को जनरल लेक ने दिल्ली का सारा शासन प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। कहने के लिए इसके बाद भी कम्पनी के अफ़सर और अंगरेज़ शासक दिल्ली के सम्राट को हिन्दोस्तान का सम्राट मानते रहे, और कम्पनी सरकार का उसे अधिराज स्वीकार करते रहे, किन्तु वास्तव में इस समय से ही इन उपाधियों में सिवाय उपचार के और कुछ बाकी न रह गया। लेक ने दिल्ली की आमदनी में से बारह लाख रुपए सालाना सम्राट के खर्च के लिए नियत कर दिये और भारत का सम्राट एक प्रकार से विदेशी कम्पनी का पेन्शनर रह गया।

सम्राट के साथ जनरल लेक के इस सलूक को बयान करते हुए इतिहास लेखक मेजर आर्चर लिखता है—

"इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट हम अंगरेज़ों को सब से कम पसन्द करता है, क्योंकि उसकी सल्तनत हमारे चंगुल से निकल कर फिर कभी भी उसके हाथों में नहीं जा सकती; × × × अंगरेज़ों ने बहुत दिनों से सम्राट के अधिकार को नहीं माना, किन्तु जब तक उन्हें इससे फ़ायदा रहा वे कपट नीति द्वारा सम्राट की ओर ऊपर से आदर दिखलाते रहे, और जब उन्हें सम्राट के नाम की सहायता की भी ज़रूरत न रही तो उन्होंने × × × अपनी समस्त कृतज्ञता को एक पेन्शन के अन्दर बन्द कर दिया। × × × सम्राट से उसके राजत्व के लक्षण अलग कर दिए गए, सल्तनत की वार्षिक आय उससे छीन कर विदेशियों के काम में लाई गई, सिवाय अपने ख़ास

कुटुम्ब के और हर तरफ से उसके अधिकार परिमित कर दिए गए, सारांश यह कि सिवाय हिन्दोस्तान के बादशाह की उपाधि के और सब स्वत्व, सत्ता और अधिकार सम्राट से छीन लिए गए, और यह सब बारह लाख सालाना की शानदार (?) पेन्शन के बदले में।"*

करनल ऑक्टरलोनी

जनरल लेक ने करनल ऑक्टरलोनी को दिल्ली में कम्पनी का रेजिडेण्ट और वहाँ की सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त किया, और उसके मातहत एक पलटन और चार कम्पनियाँ देशी पैदल और एक पलटन मेवातियों की दिल्ली की रक्षा के लिए छोड़ दीं। इस ऑक्टरलोनी की एक विशेषता यह थी कि वह दिल्ली में मुसलमानी ढङ्ग से रहता था, मुसलमानी पोशाक पहनता था, अनेक मुसलमान तवायफ़ें रक्खे हुए था, और दिल्ली भर की तवायफ़ों और महल के खोजों के ज़रिए शहर और दरबार की सब ख़बरें रखता था। सींधिया के उन यूरोपियन अफ़सरों में से अनेक जो अंगरेज़ों से

* "That he likes us (the English) the least, there is no doubt for from our gripe his Kingdom can never be wrested to return again into his own keeping His authority they (the British) have long since refused but it was stealthey duplicity, honouring him as long as it was found convenient and, when no longer requiring the aid of the King's name, they summed up their acknowledgement within the compass of a pension . The King has been shorn of his beams of royalty, his revenues have been seized and converted to the use of strangers, his authority every where abrogated but in his own immediate family in short, he has lost all the rights, powers, and privileges, every thing but the name of King, and King, too, of Hindostan, for the munificent exchange of twelve lacs annually!"—*Tours in Upper India*, By Major Archer, vol 1, p 126, 27

मिल गए थे, अब फिर दिल्ली की नई संरक्षक सेना के विविध पदों पर नियुक्त कर दिए गए।

आगरे के क़िले पर क़ब्ज़ा

२४ सितम्बर को जनरल लेक ने देहली से आगरे की ओर कूच किया। आगरे पहुँच कर कई दिन तक अव्यवस्थित लड़ाई होती रही। क़िले के अन्दर से सींधिया की सेना ने पहले शत्रु का मुक़ाबला किया, फिर जनरल लेक के "गुप्त उपाय" के प्रताप से सींधिया के क़रीब ढाई हज़ार सिपाही आगरे के क़िले से निकल कर लेक की सेना में आ मिले। १७ अक्तूबर की शाम को क़िले की बाक़ी सेना ने इस शर्त पर कि उनकी जान और उनके माल की रक्षा की जायगी, क़िला अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया।

लसवाड़ी का संग्राम

उत्तर में जनरल लेक के लिए अब केवल एक और लड़ाई लड़ना बाक़ी था। आगरे और ग्वालियर के बीच में इस समय एक और सन्नद्ध मराठा सेना थी, जिसमें कुछ दक्खिन से आई हुई थी और कुछ देहली की परास्त सेना शामिल थी। इस सेना के पास अनेक भारी तोपें भी थीं। पता चला कि यह सेना आगरे की ओर बढ़ रही है। २७ अक्तूबर को लेक इस सेना के मुक़ाबले के लिए आगरे से निकला। १ नवम्बर सन् १८०३ को आगरे के पास लसवाड़ी नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। सींधिया के इन वफ़ादार सैनिकों ने वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। २ नवम्बर को लेक ने एक 'गुप्त' पत्र में मार्क्विस वेलसली को लिखा :—

"ये लोग शैतानों की तरह लड़े, बल्कि कहना चाहिये वीरों की तरह लड़े, और यदि हमने ऐसे ढङ्ग से हमला करने का प्रबन्ध न किया होता जैसा कि हमें ज़बरदस्त से ज़बरदस्त सेना के लिए, जो कि हमारे मुक़ाबले में आ सकती थी, करना चाहिए था, तो मुझे पूरा विश्वास है कि जो स्थिति शत्रु की थी, उससे हम हार जाते।"

किन्तु यहाँ पर भी लेक के न हारने का कारण उसके "हमले का कोई ढङ्ग" विशेष न था। इसी पत्र में और आगे चल कर लेक साफ़ लिखता है :—

"यदि फ़ान्सीसी अफ़सर उनके नेता बने रहते तो मुझे डर है कि परिणाम अत्यन्त ही सन्दिग्ध होता। अपने जीवन भर में मैं इतनी बड़ी या इससे मिलती जुलती आपत्ति में कभी नहीं पड़ा। और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि फिर कभी ऐसी हालत में न पड़ूं।"*

ऐन उस समय जब कि जनरल लेक को पराजय अपने सामने खड़ी दिखाई दे रही थी, मराठा सेना के नेता अंगरेज़ों की ओर आ मिले। जनरल लेक को फिर से आशा बँधी और अन्त में

---

* "These fellows fought like Devils, or rather heroes, and had we not made a disposition for attack in a style that we should have done against the most formidable army we could have been opposed to, I verily believe, from the position they had taken, we might have failed

" If they had been commanded by French officers, the event would have been, I fear, extremely doubtful I never was inso severe a business in my life or any thing like it, and pray to God I never may be in such a situation again "—General Lake's letter marked "Secret" dated 2nd November, 1803, to the Marquess Wellesley

यद्यपि लेक के अनेक अफ़सर और अधिकांश सिपाही लसवाड़ी के मैदान में काम आए, फिर भी विजय जनरल लेक ही की ओर रही। लेक के २८ अक्तूबर के एक पत्र से साबित है कि कई दिन पहले से लेक ने अपने "शुभ उपाय" इस सेना में शुरू कर दिए थे मराठा सेना की तोपें भी अंगरेज़ों के हाथ आईं। लसवाड़ी की लड़ाई भी भारत की निर्णायक लड़ाइयों में गिनी जाती है, क्योंकि लसवाड़ी की सेना उत्तरी भारत में मराठों की अन्तिम सेना थी। मराठों की जो तोपें इन अनेक संग्रामों में अंगरेज़ों के हाथ आईं, उनके विषय में अनेक अंगरेज़ अफ़सर मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि वे अंगरेज़ों की उस समय की तोपों से हर बात में बढ़िया और कहीं अधिक उपयोगी थीं।

ग्वालियर विजय की योजना

दौलतराव सींधिया की सत्ता को समाप्त करने के लिए अब केवल दो बातें बाक़ी थीं। एक राजधानी ग्वालियर पर क़ब्ज़ा करना और दूसरे सींधिया और उसके साथ की सवार सेना को परास्त करना।

ग्वालियर की रक्षा अम्बाजी के सुपुर्द थी। अम्बाजी को सींधिया से फोड़ने के प्रयत्न जारी थे। लसवाड़ी की विजय के बाद जनरल लेक ने मार्किस वेलसली को लिखा :—

"मैं बड़ा खुश हूँ कि सिवाय ग्वालियर के आपकी और सब इच्छाएँ मैंने पूरी कर दी हैं। मुझे विश्वास है कि ग्वालियर हमें अम्बाजी के साथ

सन्धि करके मिल जायगा। इन सेनाओं के हार जाने के कारण अम्बाजी फ़ौरन सन्धि के लिए राज़ी हो जायगा।"*

अगले दिन लेक ने गवरनर जनरल को लसवाड़ी ही से फिर एक पत्र लिखा—

जयपुर नरेश को भय प्रदर्शन

"ज्योंही मैं अपने घायलों को यहाँ से हटा सका, मैं उस सन्दिग्ध चरित्र के मनुष्य अम्बाजी की ओर कूच करूँगा। किन्तु पहले मैं धीरे धीरे बढ़ूँगा, क्योंकि जयपुर के राजा के ऊपर मैं यह असर डालना चाहता हूं कि यदि वह शीघ्र राज़ी न हो गया तो मैं जयपुर की ओर बढ़ने वाला हूँ। मेरा उद्देश केवल यह है कि वह डर कर जल्दी से फ़ैसला कर डाले। इस समय मालूम होता है वह बहुत सन्दिग्ध खेल खेल रहा है।" †

निस्सन्देह जनरल लेक का "उद्देश केवल डर दिखाना" था। उसे अभी तक जयपुर अथवा ग्वालियर दोनों में से किसी पर भी हमला करने की हिम्मत न थी। राजपूताने के राजाओं के साथ बहुत दिनों से साज़िशें जारी थीं। किन्तु बिना अम्बाजी के फूटे

---

* "I feel happy in having accomplished all your wishes, except Gwalior, which I trust we shall get possession of by treaty with Ambajee, the fall of these brigades will bring him to terms immediately "—Lake's Letter to Marquess Wellesley 2nd November, 1803

† "I shall as soon as I can move my wounded men, begin my march towards that doubtful character, Ambajee, but I shall in the first instance proceed but slowly, as I wish to impress the Raja of Jeypore with an idea that, if he does not come to terms shortly, I may pay him a visit All I mean by this is to alarm him into some decisive measure, he seems at present to be playing a very suspicious game "—Lake's letter to Governor General, marked "Private,' dated November 3rd, 1803

था महाराजा जयपुर की सहायता मिले न वह ग्वालियर पर हमला करने का साहस कर सकता था और न उस हालत में जयपुर पर हमला करने का ही उसे साहस हो सकता था। जनरल लेक ने या उसके साथियों ने हिन्दोस्तान में कोई लड़ाई अपने सैन्यबल और वीरता के सहारे नहीं जीती और न अभी तक अंगरेज़ों की साज़िशों का जादू ही अम्बाजी पर चल पाया था।

किन्तु मालूम होता है कि महाराजा जयपुर लेक की चालों में आ गया। १४ नवम्बर को एक "अत्यन्त गुप्त और प्राइवेट" पत्र में लेक ने गवरनर जनरल को लिखा—

"लसवाड़ी की विजय से जयपुर के राजा और उसके समस्त बदमाश और दग़ाबाज़ सलाहकारों को अक़्ल आ गई है, अब वे लोग मेरे कैम्प की ओर आ रहे हैं।"*

इन सुन्दर (!) शब्दों मे जनरल लेक ने भारतीय देशघातकों की क़द्र की। फिर भी जो कुछ हुआ हो, इसके बाद भी लेक को ग्वालियर पर हमला करने की हिम्मत न हो सकी।

दोनों पक्षों में संधि की उत्सुकता

उधर दक्खिन में जनरल वेलसली अपने भाई गवरनर जनरल को साफ लिख चुका था कि दौलतराव सींधिया को और अधिक हानि पहुँचाने अथवा उसकी सवार सेना से लड़ने की मुझमें अब हिम्मत

* "It (the victory at Laswari) has brought the Raja of Jeypore and all his wicked and traitorous advisers to reason they are now upon their march to my camp"—"Private and most secret" Letter from Lake to Governor-General 14th November, 1803.

नहीं है। मार्किस वेल्सली महाराजा दौलतराव सींधिया और राजा राघोजी भौंसले दोनों का पूरा सर्वनाश करना चाहता था। किन्तु यह इस समय असम्भव दिखाई दिया। अंगरेज़ों का ख़र्च भी ख़ासकर रिशवतों में वेहद हो चुका था। दोनों पक्ष थक गए थे, और दोनों इस समय सन्धि के लिए उत्सुक थे।

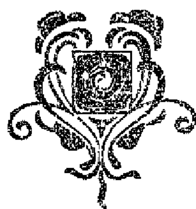
सींधिया और भौंसले के साथ सन्धि

पत्र व्यवहार शुरू हुआ और दिसम्बर सन् १८०३ में बरार के राजा राघोजी भौंसले और ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सींधिया दोनों के साथ अंगरेज़ों की सन्धि हो गई, जिसमें दोनों के वे अत्यन्त उपजाऊ प्रान्त, जो अंगरेज़ जीत चुके थे, कम्पनी के राज में मिला लिए गए।

जसवन्तराव होलकर को अंगरेज़ अभी तक अपनी ओर मिलाए हुए थे। असहाय दौलतराव को सबसे अधिक डर उसके पुराने शत्रु जसवन्तराव होलकर का दिलाया गया। लाचार होकर फ़रवरी सन् १८०४ में दौलतराव सींधिया ने बरहानपुर में कम्पनी के साथ उसी तरह की सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार कर ली, जिस तरह की सन्धि पेशवा के स्वीकार करने के विरुद्ध उसने कुछ समय पहले इतने प्रबल प्रयत्न किए थे। कम्पनी की सेना अब सींधिया के ख़र्च पर सींधिया के राज में, किन्तु कम्पनी के अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन रहने लगी।

कम्पनी का भारतीय साम्राज्य जितना इस युद्ध से बढ़ा उतना

शायद किसी भी दूसरे युद्ध से नहीं बढ़ा । वास्तव में यदि देखा जाय तो मार्किस वेलसली को अब तक अपनी आशा से कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई । किन्तु यह सब दूसरे मराठा युद्ध का केवल पूर्वार्द्ध था । इस युद्ध के उत्तरार्द्ध का वर्णन आगे के अध्यायों में किया जायगा । उसी वर्ष भारत में अपूर्व सूखा पड़ा, जिसके बाद चारों ओर भयंकर अकाल ही अकाल दिखाई देने लगा ।



पच्चीसवाँ अध्याय

जसवन्तराव होलकर

अंगरेज़ों के वादों का मूल्य

जसवन्तराव होलकर आरम्भ में अपनी अदूरदर्शिता के कारण पेशवा और अन्य मराठा नरेशों के विरुद्ध अंगरेज़ों के हाथों में खेलता रहा। जिस समय अंगरेज़ सींधिया और भौंसले के साथ युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उस समय वे जसवन्तराव की खुशामद में लगे हुए थे। जुलाई सन् १८०३ में जनरल वेलसली ने क़ादिर नवाज़ ख़ाँ को एक गुप्त पत्र सहित जसवन्तराव के पास भेजा और क़ादिर नवाज़ ख़ाँ द्वारा जसवन्तराव से यह वादा किया कि यदि आप अंगरेज़ों के विरुद्ध महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भौंसले को सहायता न देंगे तो अंगरेज़ अमुक अमुक इलाके सींधिया से

लेकर आपके हवाले कर देंगे और सदा आपके सहायक रहेंगे। इसके बाद जनरल वेल्सली ने गवरनर जनरल के कहने से जसवन्तराव को कई पत्र लिखे, जिनमें उसने जसवन्तराव से वादा किया कि युद्ध समाप्त होने के बाद गंगा और जमना के बीच के बारह ज़िले, दक्खिन के कुछ ज़िले और बुन्देलखण्ड और उत्तरी भारत का कुछ और इलाक़ा, जो पहले होलकर राज में रह चुका था, सब आपको दे दिया जायगा। दोनों वेल्सली भाइयों ने अपने छपे हुए पत्रों में इन पत्रों का लिखना स्वीकार किया है। इन झूठे वादों से अंगरेज़ों का अभिप्राय उस समय केवल यह था कि जसवन्तराव अंगरेज़ों के विरुद्ध सींधिया और भोंसले की सहायता न करे। जनरल वेल्सली और जनरल लेक ने अपने पत्रों में यह भी स्वीकार किया है कि यदि जसवन्तराव होलकर सींधिया की मदद के लिए पहुँच जाता, तो वेल्सली के लिए असाई और अरगाँव के मैदान जीत सकना या लेक के लिए आगरा और लसवाड़ी में विजय प्राप्त कर सकना बिल्कुल असम्भव होता।

जसवन्तराव के साथ सलूक

किन्तु सींधिया और भोंसले दोनों पर विजय प्राप्त करते ही अंगरेज़ों ने एकाएक जसवन्तराव की ओर अपना रुख़ बदल दिया। वास्तव में इस युद्ध के समाप्त होने से पहले ही अंगरेज़ों ने जसवन्तराव को भी कुचलने का इरादा कर लिया था। १२ दिसम्बर सन् १८०३ को जनरल वेल्सली ने मार्किस वेल्सली के प्राइवेट सेक्रेटरी मेजर शॉ को एक पत्र में लिखा—

"जब तक हम होलकर पर हमला न करेंगे और पेशवा के सब इलाक़े पेशवा से न छीन लेंगे, तब तक हम इन देशों से मराठों को क़तई बाहर निकाल देने में सफल न होंगे, चाहे सींधिया हमें अपने अधिकार दे भी क्यों न दे !"*

यह पत्र उस समय का है, जब कि अंगरेज़ जसवन्तराव की ओर ऊपर से गहरी मित्रता दिखा रहे थे।

मार्किस वेल्सली के पत्रों से स्पष्ट है कि वह भी होलकर का नाश करने के लिए शुरू से उत्सुक था। किन्तु जब तक सींधिया के साथ सन्धि की लिखा पढ़ी न हो जाय, तब तक होलकर को छेड़ना ठीक न था।

लेक और वेल्सली में पत्र व्यवहार

जसवन्तराव होलकर ने भी इस झूठी आशा में कि सींधिया के साथ युद्ध समाप्त होने के बाद अंगरेज़ मेरे साथ अपने वादों को पूरा करेंगे, उनके साथ मित्रता क़ायम रक्खी और सींधिया और भोंसले की आपत्तियों में उन दोनों को किसी तरह की सहायता न दी। सींधिया और भोंसले के साथ युद्ध समाप्त होते ही जसवन्तराव ने जनरल वेल्सली के पत्रों की नक़लें जनरल लेक के पास भेजीं और वेल्सली के वादों की पूर्ति चाही। लेक ने जसवन्तराव होलकर का

---

* . . . . . unless we make war upon Holkar, and deprive the Peshwa of his territories, we shall not succeed in 'driving the Marhatas entirely from these countries, although Scindhia should cede his rights"—Camp before Gauregarh, 12th December, 1803, General Wellesley's letter to Major Shawe

पत्र और उसके साथ की सब नक़लें गवरनर जनरल के पास भेज दी और उनके साथ अपने २८ दिसम्बर के "प्राइवेट" पत्र में गवरनर जनरल को लिखा—

"इस पत्र के साथ आपको होलकर का एक पत्र मिलेगा; और मैं यह जान कर प्रसन्न हूँ कि होलकर हमारे साथ मित्रता क़ायम रखना चाहता है। × × ×

"मैं जल्दी में लिख रहा हूँ, × × × होलकर के विषय मे मैं आपकी राय और आपका आदेश जानना चाहता हूँ।"

जनरल लेक को अपने "गुप्त उपाय" पर पूरा विश्वास था, सींधिया के विरुद्ध उन्हें परख चुका था और अब वह होलकर से युद्ध छेड़ने के लिए लालायित था।

मार्क्विस वेलस्ली ने जनरल लेक के उत्तर में १७ जनवरी सन् १८०४ को एक "गुप्त" पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये हैं—

"आपके १६, २८ और २६ दिसम्बर सन् १८०३ के पत्र पहुँचे। × × ×

"जिन पत्रों की नक़लें जसवन्तराव होलकर ने आपके पास भेजी हैं वे मेजर जनरल वेलसली ने अवश्य अपने नाम से ही होलकर के पास भेजे होंगे। मैंने जसवन्तराव होलकर को कोई पत्र नहीं लिखा, किन्तु मैंने अपनी २६ जून की हिदायतों में मेजर जनरल वेलसली को यह अधिकार दिया था कि आप जसवन्तराव के साथ मित्रता का पत्र व्यवहार शुरू करें।

× × ×

"अब यह उचित है कि जसवन्तराव होलकर की ओर हम अपना व्यवहार निश्चित कर ले।

"माननीय मेजर जनरल वेलसली का स्थान जसवन्तराव होलकर के खेमे से इतनी अधिक दूर है कि वहाँ से पत्र व्यवहार करना कठिन होगा; और चूँकि इस काम के लिए आपकी जगह अधिक सुविधा की होगी, इस लिए मेरा विचार है कि आप तुरन्त जसवन्तराव होलकर के साथ पत्र व्यवहार शुरु कर दें।"

इतना ही नहीं, वरन् जिस जसवन्तराव ने अंगरेज़ों का इतना उपकार किया था और जिसे नागपुर की नज़र क़ैद से निकाल कर अंगरेज़ों ही ने पेशवा और सींधिया दोनों से लड़ा कर होलकर कुल की गद्दी तक पहुँचाया था, और जिसे सींधिया से फाड़े रखने के लिए हाल ही में उन्होंने नए इलाक़े देने का वादा किया था, उस जसवन्तराव के विषय में अब इस पत्र में मार्किस वेलसली ने लिखा—

"होलकर कुल के राज के ऊपर खण्डेराव के नाम पर जसवन्तराव होलकर ने जो अपना अधिकार जमा रक्खा है, वह साफ़ तौर पर तुकाजी होलकर के न्याय्य उत्तराधिकारी काशीराव होलकर के अधिकारों का बलात् अपहरण है। इसलिए न्याय के सिद्धान्तों का विचार रखते हुए अंगरेज़ सरकार और जसवन्तराव होलकर के बीच कोई ऐसा समझौता नहीं हो सकता, जिसका मतलब यह हो जाय कि हम काशीराव होलकर को उसके पैतृक राज से वञ्चित रखने पर सहमत हैं।"

और आगे चल कर—

"अंगरेज़ सरकार को इस बात का न्याय्य अधिकार है कि पेशवा से इजाज़त लेकर और पेशवा की ओर से, समझौते द्वारा या बल प्रयोग द्वारा

इस तरह की काररवाई करे, जिससे जसवन्तराव होलकर का बल कम हो और काशीराव होलकर को अपने अधिकार फिर से प्राप्त हो जायँ। × × × सम्भव है कि पेशवा इस समय जसवन्तराव की सत्ता को कम करने या काशीराव को फिर से उसका पैतृक राज दिलवाने के लिए उत्सुक न हो। किन्तु यह आशा की जा सकती है कि काशीराव को फिर से गद्दी पर बैठाने और जसवन्तराव को दण्ड देने की इस योजना पर पेशवा को सुगमता से राज़ी किया जा सकेगा। × × ×

"जसवन्तराव होलकर की पराक्रमशीलता, उसके युद्ध कौशल और उसकी महत्वाकांक्षाओं को देखते हुए हिन्दोस्तान में पूरी तरह शान्ति क़ायम करने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसकी शक्ति को कमज़ोर कर दिया जाय।"

अंगरेज़ों को उस समय भारत में अपना साम्राज्य मज़बूत करना था; इसी लिये वे भारत के अन्दर और विशेषकर मराठा साम्राज्य के अन्दर किसी भी वीर और पराक्रमी नरेश को न रहने दे सकते थे।

जसवन्तराव को और भुलावा

दूसरी ओर मार्किस वेल्सली इतनी जल्दी जसवन्तराव से लड़ने के लिए भी तैयार न था। वह जसवन्तराव को अभी कुछ समय और धोखे में रखना चाहता था। इसी पत्र में उसने आगे चल कर लिखा—

"यदि हम इसी समय काशीराव होलकर को उसकी पैतृक गद्दी पर फिर से बैठाने का प्रयत्न करेंगे तो हमें बहुत अधिक कठिनाई और आपत्ति का सामना करना पड़ेगा। किन्तु यदि हम अभी उतने देश के ऊपर जितने पर

के जसवन्तराव होलकर का इस समय राज है, उसका राज बना रहने दें तो हमें इतनी कठिनाई या आपत्ति नहीं है। और यदि इस समय हम जसवन्तराव होलकर के साथ प्रेम का व्यवहार बनाए रक्खेंगे तो इसका भी यह मतलब नहीं है कि हम आइन्दा भी कभी काशीराव होलकर को उसकी पैतृक गद्दी पर फिर से न बैठा सकेंगे। × × ×"

"फिर भी यह आवश्यक है कि जसवन्तराव होलकर की ओर हम अपना व्यवहार इस ढङ्ग का रक्खें कि जिससे हमें यह मानना न पड़ जाय अथवा हमें इसकी स्वीकृति देनी न पड़ जाय कि जसवन्तराव राज का न्याय्य अधिकारी है × × ×।"

और आगे चल कर गवरनर जनरल ने इस छल से भरे हुए पत्र में जनरल लेक को आदेश किया कि अभी "आप जसवन्तराव होलकर के साथ मित्रता कायम रक्खें और सुलह सफ़ाई का पत्र-व्यवहार जारी रक्खें," साथ ही यह भी आदेश दिया कि आप "युद्ध के लिए जिस तरह आवश्यक समझें तैयारी भी करते रहें।"*

---

* "I have the honour to acknowledge the receipt of Your Excellency's despatches under date the 19th, 28th and 29th December, 1803. . .

"*The letters of which Jaswant Rao Holkar has transmitted copies to Your Excellency must have been forwarded to Holkar by Major-General Wellesley in his own name.* I have not addressed any letter to Jaswant Rao Holkar, but Major-General Wellesley was authorized by my instructions of the 26th June, to open an amicable negotiation with that chieftain

"It is now expedient to decide the course to be pursued with respect to Jaswant Rao Holkar.

भारतीय प्रजा में अंगरेज़ों की अप्रियता

एक और कठिनाई इस समय कम्पनी के सामने यह थी कि सींधिया और भोंसले के साथ युद्ध के दिनों में कम्पनी के अफ़सरों ने विविध भारतीय नरेशों के साथ पद पद पर अपने वादों का उल्लङ्घन किया था, जगह जगह प्रजा पर अत्याचार किए थे, और विशेष कर उन इलाकों में जो कम्पनी के अधीन आ गए थे, वे भीषण अत्याचार शुरू कर दिए थे, जिनमें से कुछ का ज़िक्र इसी अध्याय में आगे चल कर किया जायगा; इन सब बातों के कारण देश भर में चारों ओर उस समय प्रजा उनसे असन्तुष्ट थी,

---

"The great distance of the Honourable Major-General Wellesley's position from the camp of Jaswant Rao Holkar, must render the intercourse difficult from that quarter, and as Your Excellency's situation is more likely to be convenient for that purpose, it is my intention that Your Excellency should immediately open a negotiation with Jaswant Rao Holkar

. .

"The authority exercised by Jaswant Rao Holkar, in the name of Khande Rao, over the possessions of Holkar family, is manifestly a usurpation of the rights of Kashi Rao Holkar, the legitimate heir and successor of Tukoje Holkar Consistently therefore with the principles of justice, no arrangement can be proposed between the British Government and Jaswant Rao Holkar, involving a sanction of the exclusion of Kashi Rao Holkar from his hereditary dominions

"Under the sanction of His Highness the Peshwa's authority, the British Government would be justified in adopting measure for the limitation of Jaswant Rao Holkar's power, and for the restoration of Kashi Rao Holkar's rights, either by force or compromise, . . The Peshwa may not now be anxious for the reduction of Holkar's power, or for the restoration of Kashi Rao Holkar to his hereditary rights But it may be expected that His Highness would readily concur in a proposition for the restoration of Kashi Rao, and for the punishment of Jaswant Rao Holkar, .

और उनके अनेक शत्रु पैदा हो गए थे। भावी युद्ध में उन्हें यह आशा न हो सकती थी कि भारतीय प्रजा और उनके नेता उसी तरह उनकी मदद करेंगे, जिस तरह उन्होंने पिछले युद्ध में की थी। इसके विपरीत उन्हें डर था कि नए युद्ध में कहीं ये समस्त शक्तियाँ हमारे विरुद्ध न मिल जायँ।

युद्ध से सम्भावनाएं

दौलतराव सींधिया का नायब अम्बाजी भी अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करने को राज़ी न हुआ था। जसवन्तराव के समान वह भी उस समय अंगरेज़ों की आखों में खटक रहा था। ८ फ़रवरी सन् १८०४ को जनरल लेक ने मार्क्विस वेलस्ली को लिखा—

"The enterprising spirit, military character, and ambitious views of Jaswant Rao Holkar render the reduction of his power a desirable object with reference to the complete establishment of tranquility in India.

.

"An immediate attempt, therefore, to restore Kashi Rao Holkar to his hereditary rights, would involve more positive and certain difficulty and danger than could be justly apprehended from the continuance of Jaswant Rao Holkar in the possession of the territories actually under his authority A pacific conduct towards Jaswant Rao Holkar in the present moment, will not preclude the future restoration of Kashi Rao Holkar to the possession of his hereditary rights

"*It will be necessary, however, to regulate our proceedings with respect to Jaswant Rao Holkar in such a manner as to avoid any acknowledgement and confirmation of the legitimacy of his dominion, or that of Khande Rao Holkar*

". . . leave Jaswant Rao Holkar in the exercise of his present authority, Your Excellency is authorised to enter into a negotiation with Jaswant Rao Holkar, . if peace with Scindhia should

"यदि हो सका तो मैं अम्बाजी के साथ लड़ने से बचने का प्रयत्न करूँगा। क्योंकि मुझे यह मालूम होता है कि यदि हम अम्बाजी और होलकर के साथ लड़ाई आरम्भ कर दें और यदि होलकर हमारे साथ लड़ने का फ़ैसला कर ले, तो सम्भव है कि और बहुत सी शक्तियों के साथ भी हमें लड़ना पड़ जाय, और एक बहुत लम्बे और शायद सर्वव्यापी युद्ध में हमें प्रवेश करना पड़े इससे निस्सन्देह हमें जहाँ तक हो सके बचना चाहिए; साथ ही मुझे बड़ा डर है कि जब तक अम्बाजी और होलकर को मिटा न दिया जायगा, तब तक स्थायी शान्ति की आशा नहीं की जा सकती।"*

होलकर की दूरदर्शिता

इसी समय जसवन्तराव होलकर को पता चला कि जनरल लेक उसकी सेना के तीन यूरोपियन अफ़सरों के साथ, जिनके नाम कप्तान विकर्स, कप्तान टॉड और कप्तान रॉयन थे, गुप्त साज़िश कर रहा था। इतिहास लेखक ग्रॉण्ट डफ़ ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५८६

---

be obtained　　　the army under Your Excellency's command should speedily be formed in such a manner　. .

" .　　Jaswant Rao Holkar,　. .　will anxiously solicit the countenance and favour of our Government "—Marquess Wellesley's letter to General Lake, marked 'Secret,' dated 17th January, 1804

* "I shall endeavour to avoid hostilities with Ambajee, if possible, as it appears to me if we commence a war with him and Holkar, should he choose to be inimical to us, it might bring on a war with many other powers, and lead us into a very long and perhaps a general war, which of course shall if possible be avoided, at the same time *I much fear till Ambajee and Holkar are annihilated that permanent peace can not be expected*" —General Lake to Marquess Wellesley, dated 4th February, 1804

पर साफ़ लिखा है कि ये तीनों अंगरेज़ अपने स्वामी को छोड़ कर अंगरेज़ों की ओर चले जाना चाहते थे। जसवन्तराव को इस विषय में अंगरेज़ों और सींधिया के युद्ध से काफ़ी सबक़ मिल चुका था। उसने तुरन्त इन तीनों विश्वासघातकों को सैनिक नियम के अनुसार मौत की सज़ा दी। लेक समझ गया कि जसवन्तराव के साथ उसके गुप्त उपायों का चल सकना इतना सुगम न था, जितना सींधिया के साथ।

जसवन्तराव की मांगें

जसवन्तराव होलकर की अंगरेज़ों से इस समय केवल यह माँग थी कि जनरल वेल्सली ने मुझसे जो वादे किए थे, उन्हें पूरा किया जाय। जनवरी सन् १८०४ के अन्त में सींधिया और अंगरेज़ों के बीच सुलह हो चुकने के बाद जसवन्तराव ने एक पत्र जनरल वेल्सली को लिखा, जिसमें उसने दक्खिन के कुछ ज़िले अंगरेज़ों से माँगे। इसके पाँच या छै सप्ताह बाद जनरल लेक की इच्छा के अनुसार जसवन्तराव ने अपने वकील जनरल लेक के पास भेजे। १८ मार्च सन् १८०४ को इन वकीलों ने जसवन्तराव की निम्नलिखित माँगें जनरल लेक के सामने पेश कीं—

१—होलकर को अपने पूर्वजों के रिवाज के अनुसार 'चौथ' जमा करने की इजाज़त होनी चाहिए।

२—होलकर राज के पुराने इलाक़े जैसे इटावा, इत्यादि, गङ्गा और जमना के बीच के १२ ज़िले और एक ज़िला बुन्देलखण्ड का होलकर को मिल जाने चाहिएँ।

३—हरियाना का इलाक़ा जो पहले होलकर कुल के राज में था, फिर उसे मिल जाना चाहिए।

४—जो प्रदेश इस समय होलकर के राज में है उसकी भविष्य के लिए ज़िम्मेदारी होनी चाहिए, और जिस तरह की सन्धि अंगरेज़ों ने सींधिया के साथ की है उसी तरह की होलकर के साथ होनी चाहिए।

जो इलाक़े होलकर ने अंगरेज़ों से माँगे, उनमें से बहुत से ऐसे थे जो पहले होलकर राज में शामिल रह चुके थे और मराठों की आपसी लड़ाइयों या मराठों और अंगरेज़ों की लड़ाइयों में होलकर कुल से छिन गए थे। इनके अतिरिक्त ये समस्त इलाक़े वे थे जिन्हें वेल्सली ने होलकर को देने का वादा कर रक्खा था। इस बात से भी गवरनर जनरल या उसके भाई दोनों में से किसी को इनकार न था कि जिन पत्रों में ये वादे दर्ज थे वे जनरल वेल्सली ही के लिखे हुए थे।

किन्तु अंगरेज़ जसवन्तराव से अपना काम निकाल चुके थे। समस्त मराठा मण्डल में अब वही एक पराक्रमी और बलवान नरेश रह गया था, जिसे कुचलना बाक़ी था। जनरल लेक होलकर से युद्ध छेड़ने के लिए उत्सुक था। अपनी कुछ सेना सहित लेक फ़रवरी सन् १८०४ में होलकर की उत्तरी सीमा की ओर बढ़ा। आने जाने का उस ओर केवल एक ही मार्ग था। लेक ने इस मार्ग को अपनी सेना से रोक लिया। उसके बाद अप्रैल के शुरू में लेक ने तीन पलटन पैदल जयपुर की ओर रवाना कर दीं, जिनका

जसवन्तराव से युद्ध का निश्चय

उद्देश जयपुर के राजा पर दबदबा जमाकर उसे होलकर के विरुद्ध अपनी ओर करना था। जसवन्तराव समझ गया कि अंगरेज़ धोखे से मुझ पर हमला करना चाहते हैं। जो अनेक "प्राइवेट" पत्र इस समय लेक ने गवरनर जनरल को लिखे हैं, उनमें अंगरेज़ों के पुराने मित्र और हितसाधक जसवन्तराव के लिए "शैतान" (Devil), "डाकू" (Robber) जैसे शब्द उपयोग किए गए हैं, और जसवन्तराव की माँगों को "धृष्टता" (Insulting) बतलाया गया है। कहा जाता है कि इसी समय जसवन्तराव होलकर के कुछ पत्र जनरल लेक के हाथों में पड़े, जिनमें जसवन्तराव भारत के कुछ हिन्दू और मुसलमान नरेशों को अंगरेज़ों के ख़िलाफ़ अपने साथ मिलाने के लिए साज़िश कर रहा था।

जसवन्तराव अंगरेज़ों के बदले हुए रुख़ को इस समय आँखों से देख रहा था। वह देख रहा था कि अंगरेज़ ऊपर से उससे मित्रता की बातें कर रहे थे, साथ ही अपने वादों को टाल रहे थे, उसकी सेना के अफ़सरों को अपनी ओर फोड़ रहे थे और उसकी सरहद पर फ़ौजें जमा कर रहे थे। वह अब इस बात को समझने लगा था कि केवल स्वार्थ की दृष्टि से भी यदि उसने अपने जीवन में कोई सबसे बड़ी भूल की थी तो वह यह कि उसने इन विदेशियों के वादों और उनकी मित्रता पर विश्वास किया। ऐसी सूरत में उसका भारत के अन्य हिन्दू और मुसलमान नरेशों की सहानुभूति अपनी ओर करने का प्रयत्न करना कोई विचित्र बात न थी। फिर

भी यह एक विचित्र बात अवश्य है कि ब्रिटिश भारत के इतिहास में जब कभी भी अंगरेज़ों के चित्त में किसी भारतीय नरेश के साथ युद्ध करने की इच्छा उत्पन्न हुई है तब तब ही इस प्रकार के पत्र कहीं न कहीं से उनके हाथ आगए हैं। कई सूरतों में इस तरह के पत्र पूरी तरह जाली साबित भी हो चुके हैं। जनरल लेक के आयरलैण्ड और भारत के शेष चरित्र को देखते हुए जसवन्तराव होलकर के इन पत्रों या उनके उत्तरों का जाली होना कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। अधिक सम्भावना यही है कि यह समस्त पत्र व्यवहार जाली था।

जो हो ४ अप्रैल सन् १८०४ को लेक ने यह पत्र व्यवहार गवरनर जनरल के पास भेजा और उसके साथ ही गवरनर जनरल को यह सूचना दी कि मैं उत्तर की ओर ख़ास मोर्चों पर सेनाएँ जमा करने वाला हूँ। वास्तव में यह एक प्रकार से होलकर के साथ युद्ध की प्रस्तावना थी।

जसवन्तराव का पत्र

जसवन्तराव होलकर ने कोशिश की कि किसी तरह शान्ति द्वारा सब मामले का निबटारा हो जाय। उसकी माँगों में कोई भी बात न्याय के विरुद्ध न थी। वह अंगरेज़ों से केवल उनके वादों की पूर्ति चाहता था। २७ मार्च सन् १८०४ को उसने जनरल लेक को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने जनरल लेक का ध्यान फिर जनरल वेल्सली के वादों की ओर दिलाया। उन वादों की पूर्ति चाही और लिखा—

"× × × निस्सन्देह मित्रता का सम्बन्ध पत्रों के आने जाने अथवा

एक दूसरे की ओर रिवाजी आदर सत्कार दिखलाने पर निर्भर नहीं है। उचित यह है कि परिणाम को अच्छी तरह सोच समझ कर आप पहले मुझे यह सूचना दीजिये कि आप सब झगड़ों को तय करने, प्रजा की सुख शान्ति में बाधा न पड़ने देने और मित्रता क़ायम रखने के लिए किन किन उपायों की तजवीज़ करते हैं, ताकि उसके बाद मैं आपके पास एक ऐसा विश्वस्त आदमी भेज सकूं जिसे दोनों पक्ष वाले मञ्जूर कर लें; आपके प्रेम पर हर तरह विचार करते हुए, कम्पनी या उसके मित्रों की ओर मेरे दिल में किसी तरह की शत्रुता के विचार नहीं है; हमारी इस मित्रता को बढ़ाने के लिए आप भी प्रेम पत्र भेजने की मुझ पर कृपा करते रहिए।"

लेक का उत्तर

जसवन्तराव का पत्र अत्यन्त विनम्र और उचित था, फिर भी जनरल लेक ने इसके उत्तर में ४ अप्रैल सन् १८०४ को होलकर को लिखा—

"× × × आपकी माँगें बे बुनियाद हैं, और आपको यह मालूम होना चाहिए कि अंगरेज़ सरकार ने हिन्दोस्तान या दक्खिन की किसी भी रियासत के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्ध में इस तरह की माँगें आज तक कभी मञ्जूर नहीं कीं और इस तरह की माँगें सुनना भी अंगरेज़ सरकार की ताक़त और शान के ख़िलाफ़ है।"

इसका साफ़ अर्थ यह था कि सिवाय युद्ध के और कोई उपाय इन मामलों को तय करने का न था।

युद्ध की योजना

उधर जनरल लेक के ४ अप्रैल के पत्र के उत्तर में मार्किस वेल्सली ने १६ अप्रैल को एक "गुप्त" पत्र द्वारा जनरल लेक को सूचना दी—

"× × × मैं निश्चय कर चुका हूँ कि जितनी जल्दी हो सके, जसवन्त-राव होलकर के साथ युद्ध शुरू कर दिया जाय।"

उसी दिन मार्किस वेलसली ने जनरल वेलसली को लिखा कि आप दक्खिन की ओर से होलकर के चान्दोर के इलाक़े पर हमला कर दें, और एक पत्र सींधिया दरबार के रेज़िडेण्ट को लिखा कि आप सींधिया को इस बात के लिए तैयार करें कि सींधिया अंगरेज़ों के साथ मिल कर अपनी सेना होलकर के राज पर हमला करने के लिए भेजे।

स्मरण रखना चाहिए कि अभी तक अंगरेज़ों की ओर से युद्ध का कोई बाज़ाब्ता एलान न हुआ था और न जसवन्तराव को कोई सूचना दी गई थी।

जनरल लेक को पूरा विश्वास था कि जिस सरलता से मैं सींधिया को परास्त कर सका उससे अधिक आसानी से अब होलकर का नाश कर सकूँगा। जनरल लेक की आशा के दो मुख्य आधार थे। एक अपने "गुप्त उपायों" से होलकर के आदमियों को अपनी ओर फोड़ सकना और दूसरे दक्खिन से जनरल वेलसली का हमला, किन्तु दुर्भाग्यवश इस अवसर पर दोनों बातों में लेक को धोखा हुआ। जब से जसवन्तराव ने अपनी सेना के तीन विश्वास-घातक यूरोपियन अफ़सरों को मरवा डाला था, तब से उसकी सेना में और विश्वासघातक पैदा कर सकना जनरल लेक के लिए असम्भव हो गया था। दूसरे जनरल वेलसली की ओर से भी लेक की आशा पूरी न हो सकी।

जनरल वेलसली की असफलता के कई कारण थे, जिनमें मुख्य यह था कि अंगरेज़ों के दुर्व्यवहारों के कारण वेलसली को इस बार भारतीय प्रजा से रसद इत्यादि की सहायता की आशा न थी। वेलसली की कठिनाइयों को बयान करते हुए मिल लिखता है—

"× × × किन्तु ऐसे देश से सेना का लाना और ले जाना जिसमें रसद और चारा बिलकुल न मिल सकता था, जनरल वेलसली को इतना ख़तरनाक मालूम हुआ कि उसने लिख दिया कि (होलकर के दक्खिनी इलाके) चान्दोर पर हमला करना वर्षा शुरू होने से पहले मेरे लिए क़रीब क़रीब असम्भव है।"*

जनरल वेलसली ने, जो इस बात को अच्छी तरह जानता था कि पिछले संग्रामों में उसके अत्याचारों और प्रतिज्ञाभङ्ग का भारतवासियों पर कितना बुरा असर पड़ा है, १७ मार्च सन् १८०४ को जनरल स्टूअर्ट को लिखा—

"दक्खिन से हिन्दोस्तान की सेना ले जाना ठीक न होगा। यदि हमारी सेनाएँ चान्दोर से उत्तर मे चली गईं तो पेशवा और दक्खिन के सूबेदार (निज़ाम) दोनों के इलाक़ों मे पचास होलकर खड़े हो जायँगे; नर्बदा और तापती के बीच की पहाड़ियों से निकल सकना हमारे लिए अत्यन्त दुष्कर हो जायगा × × ×।"

२० अप्रैल सन् १८०४ को जनरल वेलसली ने मेजर मैलकम को लिखा—

"× × × मैं दक्खिन से सेना हटाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

---

* Mill, vol. vi, p. 401

जनरल वेल्सली ने जनरल लेक पर ज़ोर देना शुरू किया कि पहले आप उत्तर से जसवन्तराव पर हमला करें, किन्तु ठीक यही कठिनाई, जो दक्खिन में वेल्सली को थी, उत्तर में लेक को भी थी।

सींधिया के साथ सन्धि का उल्लंघन

जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध अंगरेज़ इस समय सबसे अधिक दौलतराव सींधिया और उसकी भवभीडीयरी सेना की सहायता पर निर्भर थे। जसवन्तराव और दौलतराव में अंगरेज़ों ही के सबब शुरू से अनबन और एक दूसरे पर अविश्वास चला आता था। अंगरेज़ों ने इस अविश्वास को बनाए रखने और उससे लाभ उठाने का सदा भरसक प्रयत्न किया। किन्तु इस समय उनके सामने एक भारी कठिनाई यह थी कि दौलतराव सींधिया भी उनसे सर्वथा सन्तुष्ट न था। इस असन्तोष का मुख्य कारण यह था कि जो सन्धि हाल में कम्पनी और दौलतराव के बीच हो चुकी थी, अंगरेज़ पद पद पर उसका उल्लंघन कर रहे थे। सबसे पहली बात यह कि उस सन्धि के अनुसार ग्वालियर का क़िला और गोहद का इलाक़ा दौलतराव को मिलना चाहिए था। किन्तु मार्किस वेल्सली के इस इलाक़े पर बहुत पहले से दाँत थे। उसने खुली सीनाज़ोरी द्वारा इस इलाक़े को कम्पनी के अधिकार में रखना चाहा। जनरल वेल्सली ने जनवरी सन् १८०४ से अप्रैल सन् १८०४ तक के कई पत्रों में कम्पनी के इस विश्वासघात को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। मेजर मैलकम के नाम १७ मार्च के एक पत्र में जनरल वेल्सली ने लिखा—

"इस विषय पर यदि न्याय के साथ विचार किया जाय तो जिस सन्धि को तोड़ दिया जाय वह ऐसी ही है जैसे कभी की ही नहीं गई। इस मामले में यदि पूर्वोक्त सिद्धान्त का उपयोग किया जाय तो मालूम होगा कि ये इलाक़े सन्धि से पहले सींधिया ही के क़ब्ज़े में थे, सींधिया ने इस सन्धि द्वारा या किसी भी दूसरे पत्र या समझौते द्वारा ये इलाक़े हमारे नाम नहीं केए, इसलिए ये इलाके सींधिया ही को मिलने चाहिएँ।

"राजनैतिक दृष्टि से × × × पिछले युद्ध में और सुलह की बातचीत करने में मैं अनेक कठिनाइयों को केवल इसलिए पार सका, क्योंकि लोगों को अंगरेज़ों के वादों पर एतबार था।"*

वास्तव में गोहद का राजा शुरू में सींधिया का सामन्त था। अंगरेज़ अब इस राजा को सींधिया से फोड़ कर अपनी ओर रखना चाहते थे। इसलिए गवरनर जनरल ने सन्धि की शर्तों की ज़रा भी परवा न कर जनरल लेक को लिख कर ज़बरदस्ती गोहद का इलाक़ा और ग्वालियर का क़िला, गोहद के राजा के नाम पर

---

* "The fair way of considering this question is that a treaty broken is in the same state as one never made, and when that principle is applied to this case, it will be found that Scindhia, to whom the possessions belonged, before the treaty was made, and by whom they have not been ceded by the treaty of peace, or by any other instrument ought to have them

"In respect to the policy of the question, What brought me through many difficulties in the war and the negotiations for peace? The British good faith, and nothing else —General Wellesley to Major Malcolm, 17th March, 1804

कम्पनी के अधीन कर लिया। इस पर १३ अप्रैल को जनरल वेलसली ने मैलकम को लिखा :—

"मुझे इस सारे मामले में हद से ज़्यादा घृणा हो गई है; × × × उस समय सन्धि से सब खुश थे, अब मालूम होता है सब पर लालच का भूत सवार हो गया है × × ×।"*

जनरल वेलसली के विरोध का केवल एक कारण था : उसे डर था कि ऐसा करने से आइन्दा किसी भी भारतीय नरेश और विशेषकर सींधिया को कभी भी अंगरेज़ों के वादों पर विश्वास न होगा।

सींधिया के दरबार में रिशवतें

जनरल वेलसली को अपनी आइन्दा की कठिनाई का ख़याल था; किन्तु मार्किस वेलसली इस बात के सहारे फूल रहा था कि उसने सींधिया के दरबार और सेना के अनेक लोगों को रिशवतें दे देकर अपनी ओर मिला रक्खा था। स्वयं जनरल वेलसली ने २६ फ़रवरी सन् १८०४ को गवरनर जनरल को सूचना दी :—

"× × × सींधिया के दरबार के ऊपर हमारा क़ाबू इतना अधिक हो गया है कि यदि कभी सींधिया कम्पनी के साथ लड़ाई करेगा, तो उसके आधे सरदार और उसकी आधी सेना हमारी ओर आ जायगी।"†

---

* "I am disgusted beyond measure with the whole concern, . All parties were delighted with the peace, but the demon of ambition appears now to have pervaded all, '—General Wellesley to Major Malcolm, 13th April, 1804

† " we have got such a hold in his Durbar that if ever he goes to war with the Company, one half of his chiefs and of his army will be on our side"—General Wellesley to Major Shawe (Private Secretary to the Governor General), dated 26th February, 1804

दौलतराव सींधिया भी अपनी असहाय स्थिति को थोड़ा बहुत समझता था; फिर भी वह बराबर ग्वालियर के किले और गोहद के इलाक़े दोनों के विषय में अपने न्याय्य अधिकार पर ज़ोर देता रहा।

इसके अतिरिक्त सींधिया को अंगरेज़ों के विरुद्ध इस समय एक और जबरदस्त शिकायत थी। अहमदनगर का किला पिछली सन्धि के अनुसार अंगरेज़ों को मिल गया था। किन्तु अहमदनगर से मिले हुए कुमारकुण्डा, जामगाँव इत्यादि सींधिया के कई परगने थे। सन्धि में यह तय हो गया था कि इन परगनों में सींधिया को नियत संख्या से अधिक सेना रखने की इजाज़त न होगी; किन्तु यदि उन परगनों के लोग या वहाँ का कोई ज़मींदार सींधिया के विरुद्ध उपद्रव करेगा या यदि सींधिया को वहाँ की मालगुजारी वसूल करने में किसी तरह की कठिनाई होगी तो सींधिया के तहसीलदार अहमदनगर किले के अंगरेज़ किलेदार से इस बात की शिकायत करेंगे और अंगरेज़ी सेना फ़ौरन मौक़े पर पहुँच कर उपद्रवों को शान्त करेगी और मालगुज़ारी वसूल करने में सींधिया के आदमियों को मदद देगी। किन्तु इसके विपरीत सन्धि के होते ही आस पास के भीलों और अन्य लोगों ने—अंगरेज़ अफ़सरों के उकसाने पर—महाराजा सींधिया के इन परगनों पर धावे मारना, और लूट मार करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में सींधिया का वह इलाक़ा वीरान दिखाई देने लगा, यहाँ तक कि

अहमदनगर का इलाक़ा

दूर दूर तक आबादी और खेती का निशान तक न मिलता था। सींधिया के तहसीलदारों ने बार बार अंगरेज अफ़सरों का ध्यान इस ओर दिलाया और सन्धि की शर्तों के अनुसार उनसे मदद चाही, किन्तु किसी ने उनकी प्रार्थनाओं पर ध्यान न दिया। मजबूर होकर महाराजा दौलतराव ने स्वयं अपनी सेना इन उपद्रवों को शान्त करने के लिए भेजनी चाही, किन्तु अंगरेज़ों ने सन्धि की शर्त सामने लाकर एतराज़ किया। दौलतराव दोनों तरह से लाचार हो गया। उसने बार बार इन बातों की सूचना गवरनर जनरल और जनरल लेक दोनों को दी। किन्तु दोनों ही लगातार इस विषय में टालमटोल करते रहे।

सींधिया को भुलावा

इस स्थिति में होलकर के विरुद्ध सींधिया से सहायता ले लेना इतना आसान न था। मार्किस वेल्सली ने अब दौलतराव सींधिया को धोखा देने और होलकर के विरुद्ध उससे सहायता प्राप्त करने का एक और उपाय निकाला।

उसने आगामी युद्ध के विषय में बड़े ज़ोर के साथ अंगरेज़ों की निस्स्वार्थता और परोपकारिता का एलान किया और लिखा कि:—

"होलकर की शक्ति को परास्त कर देने के बाद मेरा इरादा यह नहीं है कि होलकर कुल का कोई भी इलाक़ा कम्पनी के क़ब्ज़े में किया जाय। चान्दोर और उसके मातहत और आस पास का इलाक़ा सम्भवतः पेशवा को दे दिया जायगा; गोदावरी के दक्खिन के होलकर के दूसरे इलाक़े दक्खिन के सूबेदार (निज़ाम) को दिए जायँगे, और होलकर के बाक़ी सब इलाक़े

सींधिया को दे दिए जायँगे, बशर्ते कि सींधिया जसवन्तराव होलकर को परास्त करने में मदद दे।"*

इतिहास लेखक मिल ने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया है कि मार्किस वेल्सली का यह प्रस्ताव केवल एक छल था, जिसका उद्देश यह था कि जसवन्तराव के विरुद्ध सींधिया अंगरेज़ों को मदद दे। कुछ ही दिन पहले मार्किस वेल्सली ने अपने इस नए युद्ध का उद्देश "काशीराव होलकर का पैतृक राज राज्यापहारी जसवन्तराव होलकर से वापस लेकर काशीराव को दिलवा देना" बतलाया था; किन्तु अब इस नए बटवारे में काशीराव का कहीं नाम भी नहीं लिया गया।

जसवन्तराव के साथ युद्ध का प्रारम्भ

खुशी से अथवा लाचारी से या लोभ में आकर अंगरेज़ों के कहने पर सींधिया ने अपनी सेना जसवन्तराव होलकर के मालवा प्रदेश पर हमला करने के लिए भेज दी। बापूराव सींधिया और जीन बैप्टिस्ट फ़िलोसे इस सेना के सेनापति थे। फ़िलोसे की सेना ने होलकर के आष्टा, सिहोरे, भिलसा इत्यादि

---

* " . . . it is not his intention, in the event of the reduction of Holkar's power, to take any share of the possessions of the Holkar family for the company Chandore, and its dependencies and vicinity, will probably be given to the Peshwa, and the other possessions of Holkar situated to the south-ward of the Godavari to the Subhedar of the Deccan, and the remainder of the possessions of Holkar will accrue to Scindhia provided he shall exert himself in the reduction of Jaswant Rao Holkar"—Governor General's instructions to the British Resident with Scindhia, dated 16th April 1804, (Mill, vol vi chapter xiii)

कुछ स्थानों पर क़ब्ज़ा भी कर लिया। होलकर से युद्ध शुरू हो गया।

करनल मरे उस समय गुजरात में था। जनरल वेल्सली ने करनल मरे को लिखा कि आप अपनी ओर गायकवाड़ की सेना सहित गुजरात की ओर से होलकर की राजधानी इन्दौर पर हमला करिये।

अंगरेज़ी सेना की असफलता

जनरल वेल्सली स्वयं चान्दोर का मोहासरा करने के लिए बम्बई से बढ़ा, किन्तु मार्ग की कठिनाइयों के कारण उसे फिर पीछे लौट आना पड़ा।

गुजरात की सेना को भी होलकर के विरुद्ध कोई सफलता न हुई। लेक अपनी पुरानी आदत के अनुसार होलकर की सेना के अन्दर गुप्त साज़िशों की कोशिश में लगा हुआ था। होलकर के पिण्डारी सरदार अमीर ख़ाँ का ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है। इस बार जनरल वेल्सली ने २ मार्च सन् १८०४ को पूना से मेजर मैलकम को लिखा :—

"मरसर अमीर ख़ाँ को अपनी ओर मिला रहा है; और यदि उसने अमीर ख़ाँ को होलकर से तोड़ लिया तो होलकर का ख़ात्मा हो जायगा।"*

किन्तु जसवन्तराव की शुरू की एक अहतियात के कारण एक अमीर ख़ाँ को छोड़कर जसवन्तराव के विरुद्ध इस तरह की

* "Mercer is in treaty with Meerkhan, and if he should draw him of from Holkar, there is an end of the latter."—General Wellesley's letter to Major Malcolm, dated 2nd March, 1803

साज़िशों में अंगरेज़ों को और अधिक सफलता न हो सकी। अमीर ख़ाँ भी एक दर्जे तक सन्दिग्ध खेल ही खेलता रहा। इस लिए एक ओर करनल मरे और जनरल वेल्सली दोनों की असफलता और दूसरी ओर जनरल लेक के "गुप्त उपायों" का न चल सकना इन सब बातों से जनरल लेक का दिल बिलकुल टूट गया। १२ मई को एक "प्राइवेट" पत्र में उसने गवरनर जनरल को सलाह दी कि होलकर के साथ युद्ध बन्द कर देना चाहिए। इस पर २५ मई सन् १८०४ को विवश होकर गवरनर जनरल ने जनरल लेक, जनरल वेल्सली और मद्रास तथा बम्बई के गवरनरों सब को लिख दिया कि जसवन्तराव होलकर के साथ युद्ध बन्द कर दिया जाय और तुरन्त समस्त सेनाएँ युद्धक्षेत्र से वापिस बुला ली जायँ।

३० मई को गवरनर जनरल ने जनरल वेल्सली को दक्खिन से कलकत्ते बुला लिया और दक्खिन की सेनाओं का सेनापतित्व उसकी जगह करनल वैलेस को सौंप दिया।

किन्तु इससे कुछ ही पहले लेक ने एक अत्यन्त गर्व पूर्ण पत्र में जसवन्तराव को लिख दिया था कि अंगरेज़ सरकार और उसके साथी आपकी "शक्ति नष्ट करने का निश्चय कर चुके हैं।"

बुन्देलखण्ड में अंगरेज़ों की हार

इसके बाद जसवन्तराव के लिए चुप बैठना असम्भव था। उसने अपनी सेना को अंगरेज़ी सेना पर हमला करने की आज्ञा दे दी। अंगरेज़ों की एक सेना उस समय करनल फ़ॉसेट के अधीन बुन्देलखण्ड में मौजूद थी। २१ मई की रात को होलकर के क़रीब

पाँच हज़ार पिण्डारी सवारों ने इस सेना पर हमला किया। करनल फ़ॉसेट लिखता है कि अंगरेज़ों को अपने गुप्तचरों द्वारा इस हमले का पहले से पता लग गया था, और मुक़ाबले के लिए अंगरेज़ी सेना कूच नामक स्थान के निकट तैयार कर ली गई थी। फिर भी अंगरेज़ी सेना ने बड़ी बुरी तरह हार खाई और होलकर के पिण्डारी सवार अंगरेज़ों की अनेक तोपें, बन्दूकें, गोला बारूद, गाड़ियाँ इत्यादि उठा कर ले गए और कम्पनी के एक एक अंगरेज़ और देशी अफ़सर और सिपाही को मैदान में काट कर ख़त्म कर गए।*

निस्सन्देह जान और माल की हानि के अतिरिक्त यह हार अंगरेज़ों के लिए बड़ी ज़िल्लत की हार थी। लेक ने इसके विषय में २८ मई को गवनर जनरल के नाम एक अत्यन्त दुखभरा पत्र लिखा, और करनल फ़ॉसेट को, जो मैदान से कुछ ही दूर चार पलटन देशी सिपाही और ४५० गोरे सिपाहियों सहित मौजूद था, किन्तु सम्भवतः पिण्डारियों के मुक़ाबले का साहस न कर सका, इस कर्त्तव्य विमुखता के लिए बरख़ास्त कर दिया।

२५ मई को गवरनर जनरल ने लेक को युद्ध बन्द कर देने के लिए लिखा। उस पत्र को पाने से पहले ही २८ मई को लेक ने गवनर जनरल को इस दुर्घटना की सूचना दी। अंगरेज़ों के लिए अब अपनी इस ज़िल्लत को धोना आवश्यक हो गया।

* " . . . the detachment in the village, consisting of two companies of Sepoys, fifty European artillery, fifty gun luscurs with two 12 pounders two howitzers, one 6 pounder, and twelve tumbrils, were entirely taken by the enemy, and the men and officers all cut to pieces . . . . "(Wellesley's Despatches, iv, 72-73)

८ जून सन् १८०४ को गवरनर जनरल ने लेक को उत्तर दिया—

" × × × इस घटना से अंगरेज़ी सेना की ज़िल्लत हुई है और अंगरेज़ सरकार के हित ख़तरे में पड़ गए हैं।

"इस अपूर्व दुर्घटना से जो जो बुरे परिणाम पैदा हो सकते है उनके विस्तार का अनुमान कर सकना कठिन है × × ×।

"बुन्देलखण्ड की इस स्थिति के कारण मैं आपको अपनी इस राय की सूचना देना आवश्यक समझता हूँ कि जो प्रबन्ध मैंने अपने २५ मई सन् १८०४ के पत्र में लिखे थे, वे अब मुलतवी कर दिए जायं, और जसवन्तराव होलकर और उसके साथ के लुटेरे सरदारों को परास्त करने के लिए जिस तरह सम्भव हो सके, प्रयत्न और परिश्रम किया जाय × × ×।"*

जसवन्तराव पर हमले का वृहत आयोजन

जसवन्तराव होलकर के साथ अंगरेज़ों का युद्ध अब फिर गम्भीरता के साथ शुरू हो गया। तीन ओर से तीन सेनाएँ होलकर पर हमला करने के लिए तैयार की गईं। सब से मुख्य एक विशाल सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन, दूसरी सेना

---

* " the honour of the British arms has been disgraced, and the interests of the British Government hazarded, .

" It is difficult to calculate the extent of the evil consequences which may result from this unparalleled accident

" In consequence of the state of affairs in Bundelkhand, it appears to be necessary to apprize Your Excellency of my opinion that the arrangements stated in my instructions of the 25th May, 1804, must be postponed and every possible effort and exertion must be made to reduce Jaswant Rao Holkar and the predatory chiefs connected with him, ' —Governor General's letter to General Lake, dated 8th June, 1804.

दक्खिन में करनल वैलेस के अधीन, और तीसरी गुजरात में करनल मरे के अधीन।

जसवन्तराव होलकर के साथ अंगरेज़ों का जिस प्रकार अब युद्ध हुआ उसके मुकाबले में मालूम होता है कि दौलतराव सींधिया और राघोजी भोंसले के साथ उनका युद्ध केवल बच्चों का खेल था। पिछले युद्ध में सींधिया के अहमदनगर, अलीगढ़ और कोएल जैसे सुदृढ़ किले केवल रिशवतों द्वारा बिना रक्तपात अंगरेज़ों ने अपने अधीन कर लिए थे। किन्तु जसवन्तराव होलकर ने शुरू ही में दूरदर्शिता के साथ अपनी सेना के तीन विश्वासघातक यूरोपियन अफ़सरों को मरवा कर उस सेना के अन्दर अंगरेज़ों के इन "गुप्त उपायों" का चल सकना असम्भव कर दिया था।

अंगरेज़ों का टोंक विजय

सब से पहला काम होलकर के विरुद्ध जनरल लेक ने यह किया कि एक सेना करनल डॉन के अधीन भेज कर १६ मई सन् १८०४ को टोंक रामपुरा का क़िला अपने अधीन कर लिया। बहुत सम्भव है कि इस क़िले की सरल विजय में विश्वासघातक अमीर ख़ाँ की मदद रही हो, क्योंकि बाद में यही टोंक की रियासत अंगरेज़ों ने अमीर ख़ाँ और उसके वंशजों को प्रदान कर दी।

होलकर पर दुतरफ़ा हमला

बुन्देलखण्ड में अंगरेज़ों की अपमान जनक पराजय के बाद गवरनर जनरल की आज्ञानुसार जनरल लेक ने पाँच पलटन देशी सिपाहियों की, क़रीब तीन हज़ार सवार और काफ़ी तोपख़ाना जनरल

मॉनसन के अधीन जसवन्तराव होलकर के राज पर हमला करने के लिए भेजा। लेक की योजना यह थी कि पश्चिम में गुजरात की ओर से करनल मरे फिर होलकर के इलाके उज्जैन पर आक्रमण करे और उत्तर की ओर से जनरल मॉनसन होलकर राज में प्रवेश करे, और इसके बाद ये दोनों सेनाएँ मिलकर जसवन्तराव की शक्ति का ख़ात्मा कर दें। गायकवाड़ की सबसीडियरी सेना मरे के साथ और सींधिया की सबसीडियरी सेना मॉनसन के साथ थी।

मार्क्विस वेल्सली ने होलकर के विरुद्ध सींधिया की सबसीडियरी सेना के अतिरिक्त महाराजा दौलतराव से और अधिक सेना की सहायता माँगी। सींधिया की शिकायतों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है इसके अतिरिक्त सींधिया को एक बहुत बड़ी कठिनाई धन की थी। पिछले युद्ध से उसकी आर्थिक अवस्था गिरी हुई थी। उसने नई सेना की तैयारी के लिए अंगरेज़ों से धन की सहायता माँगी, किन्तु अंगरेज़ों ने इनकार कर दिया। सींधिया ने यहाँ तक प्रार्थना की कि यह सहायता मुझे क़र्ज़ के तौर पर दी जाय। पिछली सन्धि के अनुसार सींधिया ने धौलपुर बारी इत्यादि के परगने बतौर ज़मानत कम्पनी को दे दिए थे और यह तय हो गया था कि इन परगनों की मालगुज़ारी में से साढ़े बीस लाख रुपए सालाना कम्पनी महाराजा सींधिया को दिया करेगी। दौलतराव सींधिया ने अब यह कहा कि जो रक़म फ़ौज के ख़र्च के लिए अंगरेज़ इस समय मुझे क़र्ज़ दें वह आइन्दा इस साढ़े बीस लाख सालाना में से काट ली जाय।

सींधिया की प्रार्थना बिलकुल उचित थी, किन्तु मार्किस वेल्सली और रेज़िडेण्ट वेब ने इसे भी स्वीकार न किया। इतने पर भी दौलतराव सींधिया या तो अपनी उस समय की स्थिति से विवश था, या जसवन्तराव के विरुद्ध उसके हृदय में काफ़ी द्वेष था, या वह मार्किस वेल्सली के नए वादों के लोभ में आ गया। जिस तरह हो, उसने बापूजी सींधिया और सदाशिवराव के अधीन छै या सात पलटन पैदल और दस हज़ार सवार जमा करके ठीक समय पर जनरल मॉनसन की सहायता के लिए भेज दिए। सींधिया को पूरी आशा थी कि जब यह सेना मॉनसन की सेना के साथ मिल जायगी तो अंगरेज़ उसके खर्च, रसद इत्यादि का समस्त प्रबन्ध कर देंगे। किन्तु जनरल लेक या जनरल मॉनसन ने सींधिया की इस सेना की आवश्यकताओं की ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। बापूजी सींधिया जब किसी तरह अपनी सेना की रसद का प्रबन्ध न कर सका तो विवश होकर उसने अपनी सेना का एक भाग, कुछ सवार और कुछ पैदल, सदाशिवराव के अधीन रसद की तलाश में दूसरी ओर रवाना कर दिया, और स्वयं अपनी शेष सेना सहित जनरल मॉनसन की सहायता के लिए उसके साथ रहा।

मॉनसन की सेना

पहली जुलाई सन् १८०४ को जनरल मॉनसन ने अपनी इस विशाल सेना सहित मुकन्दरा के पहाड़ी दर्रे से होकर होलकर के इलाके में प्रवेश किया। २ जुलाई को इस सेना ने हिङ्गलासगढ़ के क़िले

पर क़ब्ज़ा किया। इसके बाद यह सेना चम्बल नदी की ओर बढ़ी। ७ जुलाई को जब यह सेना मुकन्दरा से क़रीब पचास मील आगे बढ़ आई थी, जनरल मॉनसन को सूचना मिली कि जसवन्तराव होलकर अपनी सेना सहित चम्बल पार कर इस ओर बढ़ा चला आ रहा है।

मरे की विवशता

इसी बीच करनल मरे ने गुजरात की ओर से दूसरी बार उज्जैन पर चढ़ाई की। इस बार फिर मार्ग में उसे रसद की सख़्त कठिनाई हो गई। यहाँ तक कि मरे की सेना के पास केवल दो दिन का सामान बाकी रह गया। विवश होकर पहली जुलाई सन् १८०४ को मरे दूसरी बार अपनी सेना सहित गुजरात की ओर लौट गया।

मॉनसन के अनुभव

जनरल मॉनसन को जब मरे के लौट जाने और जसवन्तराव के बढ़ने का समाचार मिला, तो वह भी स्वयं आगे बढ़ने का साहस न कर सका। मॉनसन ने देख लिया कि जिस प्रदेश से होकर वह निकल रहा था वहाँ की प्रायः समस्त प्रजा अंगरेज़ों से असन्तुष्ट और जसवन्तराव के पक्ष में थी।

जसवन्तराव और मॉनसन का आमना सामना

८ जुलाई को सवेरे जनरल मॉनसन और होलकर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। मॉनसन ने लेफ्टिनेण्ट ल्यूकन को आज्ञा दी कि तुम सवारों सहित होलकर के मुकाबले के लिए आगे रहो। बापूजी सींधिया को मॉनसन ने कहला भेजा कि आप

अपने सवारों सहित ल्यूकन की सहायता के लिए उसके साथ रहिए। मॉनसन स्वयं पैदल पलटनों के साथ पीछे की ओर रहा। बापूजी सींधिया के सवारों ने ल्यूकन के सवारों के साथ आगे बढ़ कर होलकर की सेना का मुक़ाबला किया। कहते हैं कि ल्यूकन की ओर के कुछ भारतीय सवार इस लड़ाई में अंगरेज़ों का साथ छोड़ कर होलकर की ओर जा मिले।

अंगरेज़ों की पराजय

थोड़ी देर के संग्राम के बाद होलकर की सेना ने ल्यूकन के शेष समस्त सवारों को उसी मैदान में खेत कर दिया और ल्यूकन को क़ैद कर लिया। यह वही ल्यूकन था जो दौलतराव सींधिया की नौकरी में रह चुका था और जिसने सींधिया के साथ विश्वासघात करके अलीगढ़ का मज़बूत क़िला अंगरेज़ों के हवाले कर दिया था। इसके बाद कोटा पहुँच कर ल्यूकन होलकर ही की क़ैद में पेचिश से मर गया। बापूजी सींधिया को भी इस संग्राम में भारी हानि सहनी पड़ी। उसके सात सौ सवार मर गए या घायल होकर बेकार हो गए और उसका बहुत सा सामान होलकर के सिपाहियों ने छीन लिया। बापूजी स्वयं अपने शेष थके माँदे सवारों सहित पीछे हट कर मॉनसन से जा मिला।

मॉनसन का भागना

मॉनसन के पास इस समय पर्याप्त पैदल सेना थी। फिर भी होलकर के बढ़ते ही आगे बढ़ कर होलकर से मोरचा लेने के स्थान पर मॉनसन ने घबरा कर अब पीछे की ओर भागना शुरू किया और

६ जुलाई के दोपहर को होलकर राज की सरहद पर पहुँच कर दम लिया। मैदान सर्वथा होलकर के हाथों में रहा।

इतनी विशाल अंगरेज़ी सेना की इस लज्जाजनक पराजय का मुख्य कारण निस्सन्देह यह था कि जनरल लेक के "गुप्त उपाय" जसवन्तराव होलकर की सेना में न चल पाए थे।

जसवन्तराव होलकर मॉनसन का बराबर पीछा करता रहा।

जसवन्तराव की दूसरी विजय

११ जुलाई को उसने सरहद पर पहुँच कर मॉनसन और उसकी बाक़ी सेना पर फिर हमला किया। दूसरी बार मैदान गरम हुआ, जिसके अन्त में अपने असंख्य मुर्दों और घायलों को मैदान में छोड़ कर रातोरात जनरल मॉनसन को कोटा राज की ओर भाग जाना पड़ा। १२ जुलाई को मॉनसन कोटा पहुँचा।

कोटा के राजा ज़ालिमसिंह से मॉनसन को सहायता की आशा थी, किन्तु उसने भी साफ़ इनकार कर दिया।

अंगरेज़ी सेना की भगदड़

उसी दिन मॉनसन ने बूँदी की रियासत से होकर चम्बल नदी को पार कर रामपुरा पहुँचने का इरादा किया। ज़ोर की बारिश के कारण चम्बल को पार करना अत्यन्त कठिन हो गया था। इसलिए १४ जुलाई को आस पास के ग्रामों से रसद जमा करने के लिए मॉनसन को चम्बल के इस पार ठहरना पड़ा। इतिहास लेखक ग्रॉण्ट डफ़ ने मॉनसन की सेना की इस भगदड़ और उसके कष्टों को विस्तार के साथ बयान किया है। १५ जुलाई को मॉनसन की तोपें इतनी बुरी तरह कीचड़

में फँस गईं कि उन्हें निकालना असम्भव हो गया। उधर पास के ग्रामों में रसद का पता न था। जीवित रहने के लिए आगे बढ़ना आवश्यक था। मजबूर होकर मॉनसन ने अपने साथ के गोले बारूद को वहीं आग लगा दी, और तोपों को यथासम्भव बेकार करके बूँदी के राजा के हवाले छोड़ दिया। लिखा है कि यद्यपि बूँदी का राजा तोपों के निकालने में अंगरेज़ों को मदद न दे सका, फिर भी उसका व्यवहार उनके साथ मित्रता का था।

बापूजी सींधिया का आत्म समर्पण

किन्तु चम्बल नदी के ऊपर ही बापूजी सींधिया ने मॉनसन का साथ छोड़ दिया। कारण यह था कि मॉनसन का व्यवहार इस सारे समय में बापूजी सींधिया के साथ अत्यन्त रूखा रहा। बापूजी सींधिया को सदा शत्रु के सामने करके मॉनसन स्वयं पीछे रहता था। बापूजी की काफ़ी हानि भी हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त बापूजी की सेना को भारी आर्थिक कष्ट था, उनकी तनख्वाहें चढ़ी हुई थीं और बापूजी के अनेक बार कहने पर भी मॉनसन ने उन्हें धन या रसद की सहायता देने से इनकार किया। इस सबसे बढ़कर मॉनसन के चम्बल पार करने के समय बापूजी की सेना अभी इस ओर ही थी, नदी चढ़ी हुई थी, बापूजी ने मॉनसन से प्रार्थना की कि आप पार पहुँच कर किश्तियों को वापिस कर दें, ताकि हम लोग पार जा सकें। किन्तु मॉनसन ने न जाने किस विचार से किश्तियों को वापस तक न किया। सम्भवतः मॉनसन के चित्त में बापूजी सींधिया की ओर से शुरू से अविश्वास था।

बापूजी के लिए नदी को पैदल पार कर सकना असम्भव था। मजबूर होकर वह अपनी सेना सहित कोटा के निकट लौट आया। इतने में होलकर की सेना ने पीछे से आकर कोटा को घेर लिया। बापूजी अब अच्छी तरह समझ गया कि होलकर के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ देना सींधिया और उसके देश किसी के लिए भी हितकर नहीं हो सकता। बापूजी और उसकी सेना की जान इस समय होलकर के हाथों में थी। लाचार होकर राजा ज़ालिमसिंह के समझाने पर और स्वयं अपने सिपाहियों के ज़ोर देने पर बापूजी सींधिया अपनी सेना सहित अब होलकर के साथ मिल गया।

मॉनसन और उसकी सेना की दुर्गति

मॉनसन १७ जुलाई को चम्बेली नदी पर पहुँचा। यह नदी भी ख़ूब चढ़ी हुई थी। मॉनसन ने सबसे पहले अपने तोपख़ाने को हाथियों पर पार किया। उसके बाद धीरे धीरे कुछ को हाथियों पर, कुछ को लकड़ियों के बेड़ों पर, और कुछ को कहीं से रास्ता निकाल कर पैदल, इस प्रकार उसने दस दिन के अन्दर समस्त सेना सहित चम्बेली को पार किया। होलकर के कुछ सवार बराबर कोटा से बढ़ कर मॉनसन की सेना को दिक़ करते रहे। इस भगदड़ में मॉनसन के सैकड़ों सिपाही शत्रु के हाथों मारे गए, सैकड़ों बीमारियों से मरे और सैकड़ों ही नदी में डूब गए या कीचड़ में फँस कर रह गए। ग्रॉण्ट डफ़ लिखता है कि अन्त में तो अनेक हिन्दोस्तानी सिपाहियों की स्त्रियाँ और उनके बच्चे चम्बेली के इस पार रह गए, और आस पास की पहाड़ियों से भीलों ने

आकर उन असहाय स्त्रियों और बच्चों को क़त्ल कर डाला। उनके पति और सेना के अफ़सर दूसरे किनारे से खड़े उनकी पुकारें सुनते रहे और सब देखते रहे, किन्तु कुछ न कर सके।

निस्सन्देह यदि जसवन्तराव अपनी मुख्य सेना सहित इस स्थान पर पहुँच जाता तो चम्बेली नदी के ऊपर ही मॉनसन और उसकी सेना को निर्मूल कर सकता था। किन्तु सम्भवतः लगातार वर्षा के कारण वह समय पर न पहुँच पाया; और २६ जुलाई को मॉनसन अपनी रही सही थकी हुई सेना और कुछ सामान लेकर रामपुरा पहुँच गया।

जनरल लेक के २१ जुलाई के एक पत्र में लिखा है कि जसवन्तराव की सेना और मॉनसन की सेना की संख्या में अधिक अन्तर न था। उसी पत्र में यह भी लिखा है कि जनरल लेक अभी तक बराबर जसवन्तराव के आदमियों को अपनी ओर मिलाने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। गवरनर जनरल और जनरल लेक दोनों मॉनसन की इस अपमान जनक पराजय का हाल सुन कर बेहद घबरा गए।

२८ जुलाई को गवरनर जनरल ने जनरल लेक के नाम "एक अत्यन्त गूढ़ और गुप्त" पत्र में लिखा—

मॉनसन की पराजय पर गवरनर जनरल

"अभी (साढ़े चार बजे शाम को) आपका २० जुलाई का एक पत्र कप्तान आर्मस्ट्राङ्ग के नाम मिला, उससे मालूम होता है कि करनल मॉनसन

की सेना होलकर के सामने पीछे हटती चली जा रही है और मुकन्दरा दर्रे को छोड़ कर चली आई है।"

"यह स्थिति बहुत ही दुखदायी है। बिना ज़ोरदार प्रयत्न किए हमारी इज़्ज़त किसी तरह फिर से क़ायम नहीं हो सकती। मुझे डर है कि जितनी हानि हमारी हो चुकी है, अब हम कितनी भी कोशिश क्यों न करें, उसे पूरा करने का समय निकल चुका।"

इसके बाद गवरनर जनरल ने जनरल लेक को सलाह दी—

"जो पत्र आज मिले हैं उनसे मालूम होता है कि जब तक फिर आप स्वयं सेना सहित जाकर होलकर पर ज़ोरों से हमला न करेंगे, सफलता की कोई आशा नहीं रही × × ×"।*

१७ अगस्त को वेलसली ने लेक को लिखा—

"पिछला पत्र लिखने के बाद मालूम हुआ है कि करनल मॉनसन की सेना अपनी तोपें, सामान इत्यादि सब खोकर, बड़ी मुसीबत की हालत में मालवा प्रदेश को बिलकुल छोड़ कर चली आई।"†

---

* "By a letter just received (half past 4 o'clock p m) from Lieut Colonel Lake to Captain Armstrong, dated 20th July it appears that Colonel Monson's detachment was retreating before Holkar and had quitted the Mucundra Pass

"This is a most painful state of affairs Nothing can retrieve our character but the most vigorous effort I fear that all our exertions will now be too late to recover all we have lost

"The despatches received today seem to leave no hope of success unless the Commander-in-Chief can again take the field in person, and attack Holkar with vigour . "—Governor General's ' Most Secret and Confidential" "Notes" to General Lake dated 28th July, 1804

† "Since the date of my last notes, it appears that Colonel Monson's

इसी पत्र में गवरनर जनरल ने लेक को आज्ञा दी कि होलकर की सेना के सब लोगों को आमतौर पर और "पठानों और मुसलमानों" को ख़ास तौर पर लोभ देकर अपनी ओर मिलाया जाय।

२६ जुलाई को मॉनसन रामपुरा पहुँचा। जनरल लेक ने समाचार पाते ही आगरे से दो पलटन देशी सिपाहियों की, कुछ सवार, छै तोपें और बहुत सा रसद का सामान मॉनसन के पास भेजा और उसे रामपुरा से निकल कर होलकर पर हमला करने को लिखा। किन्तु २२ अगस्त सन् १८०४ तक मॉनसन को रामपुरा से बाहर निकलने का साहस न हो सका, और २२ अगस्त को रामपुरा से निकलने पर भी होलकर पर हमला करने के स्थान पर उसने फिर कुशलगढ़ की ओर भागना शुरू किया। इसका कारण यह था कि कुशलगढ़ में सदाशिव भाऊ भास्कर के अधीन सींधिया की छै पलटन और २१ तोपें मौजूद थीं, जो शुरू में बापू जी सींधिया के साथ से अलग हो गई थीं, मॉनसन को आशा थी कि यह सेना होलकर के विरुद्ध मेरा साथ देगी और कुशलगढ़ ही में अपनी सेना के लिए मुझे काफ़ी रसद भी मिल सकेगी।

मॉनसन को लेक की मदद

उधर जसवन्तराव ने अभी तक मॉनसन का पीछा न छोड़ा

---

detachment has retired altogether from Malwah with loss of guns, camp equ page, etc and in great distress '—Marquess Wellesley's Private ' letter to General Lake, dated 17th August, 1804

था। मॉनसन के रामपुरा से निकलते ही २३ अगस्त की शाम को बनास नदी के किनारे होलकर अपनी सवार सेना सहित फिर एक बार मॉनसन से चार मील की दूरी पर आ पहुँचा। २४ अगस्त को सवेरे मॉनसन के दाहिने हाथ पर एक बड़े गाँव में होलकर ने डेरे डाले। मॉनसन ने अब अपनी कुछ सेना को सामान के साथ बनास के पार कर दिया और शेष सेना लेकर एक बार हिम्मत करके होलकर की सेना पर हमला किया। शुरू में एक लमहे के लिए मॉनसन का पल्ला कुछ भारी मालूम होता था, किन्तु अन्त में यहाँ पर भी होलकर की सेना ने इस पार की अंगरेज़ी सेना को क़रीब क़रीब ख़त्म कर दिया। होलकर के कुछ सवार नदी पार करके मॉनसन के सामान के पीछे लपके। लाचार होकर मॉनसन को अपने सब सामान, मुर्दों, ज़ख्मियों, यहाँ तक कि थके माँदे लोगों को भी पीछे छोड़ कर जान बचा बनास पार कर कुशलगढ़ की ओर भागना पड़ा। २५ अगस्त की रात को मॉनसन कुशलगढ़ पहुँच गया।

मॉनसन की फिर पराजय

कुशलगढ़ जयपुर के राज में था। सदाशिव भाऊ भास्कर के अधीन सींधिया की सेना यहाँ पर मौजूद थी। मॉनसन को पूरी आशा थी कि यह सेना अंगरेज़ों का साथ देगी। मार्किस वेलसली के पत्रों से पता चलता है कि वह भी इस बात के लिए हर तरह ज़ोर लगा रहा था। किन्तु सींधिया और उसके आदमियों के दिलों में

मॉनसन का आगरे की ओर भागना

अंगरेज़ों के इस समय तक के व्यवहार को देखते हुए काफ़ी घृणा उत्पन्न हो चुकी थी। सदाशिव भाऊ भास्कर और उसकी सेना ने मॉनसन को किसी तरह की सहायता न दी। मजबूर कुशलगढ़ को भी अपने लिए कुशल का स्थान न पा, २६ अगस्त की रात को मॉनसन वहाँ से आगरे की ओर भागा। मार्ग में होलकर के कुछ सवारों के साथ मॉनसन की कई छोटी छोटी लड़ाइयाँ हुई, जिनमें बहुत कुछ हानि सहते हुए भागते भागते अन्त में ३१ अगस्त सन् १८०४ को अपने रहे सहे आदमियों सहित मॉनसन आगरे पहुँच गया।

मॉनसन की पराजय पर लेक का पत्र

मुकन्दरा दर्रे से लेकर आगरे तक की इस भगदड़ और लगातार हारों में अंगरेज़ कम्पनी का केवल जानों का जो नुकसान हुआ उसे जनरल लेक ने गवरनर जनरल के नाम २ सितम्बर के एक "प्राइवेट" पत्र में इस प्रकार वर्णन किया है—

"इस लज्जाजनक और घातक घटना के विषय में इस समय मैं और कुछ न कहूँगा, क्योंकि अनेक कारणों से मेरा चित्त इतना उद्विग्न है कि मैं इस दुर्घटना की हानियों और उसके कारणों को बयान नहीं कर सकता। इससे अधिक सुन्दर सेना ने कभी कूच न किया होगा, और मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि यदि लैफ़्टिनेण्ट ऐण्डरसन का बयान ठीक है, तो मेरी सेना का सर्वश्रेष्ठ भाग अर्थात् पाँच पूरी पलटनें और छै कम्पनियाँ बिलकुल मिट गईं और केवल परमात्मा ही जानता है कि अब उनकी जगह किस प्रकार पूरी हो सकेगी, साथ ही (अफसरों में) मुझे आज सेना के कुछ

सबसे अच्छे और सबसे अधिक होनहार नौजवानों की मृत्यु पर शोक मनाना पड़ रहा है ।"*

भारत के अन्दर अंगरेज़ी सेना की इतनी भारी ज़िल्लत की दूसरी मिसाल ढूंढ़ने के लिए हमें पहले मराठा युद्ध की ओर जाना पड़ता है। इसका मुख्य कारण केवल एक था—होलकर के विरुद्ध भारतवासियों का अंगरेज़ों के साथ सहयोग न करना। भारत के अन्दर अंगरेज़ों ने जितनी भी लड़ाइयाँ विजय कीं, सब प्रायः एक ही उपाय से कीं। वही "उपाय" सींधिया और भोंसले के विरुद्ध जनरल लेक और उसके साथियों का एक मात्र अमोघ अस्त्र था। किन्तु होलकर के विरुद्ध अभी तक यह अस्त्र न चल सका था। वीरता या युद्ध कौशल में उस समय के अंगरेज़ भारतवासियों के सामने किसी तरह तुलना में न ठहर सकते थे।

अंगरेज़ों की ज़िल्लत

अंगरेज़ों का अपयश इस समय समस्त भारत में फैल गया। जसवन्तराव होलकर के नाम से अंगरेज़ वैसे ही चौंकने लगे जैसे कुछ समय पहले हैदरअली अथवा टीपू के नामों से चौंका करते

* "I will not at present say anything more upon this disgraceful and disastrous event as my feelings are for many reasons too much agitated to enter into the misfortunes and causes of it A finer detachment never marched, and sorry I am to say that if this account of Lieutenant Anderson is correct, I have lost five battalions and six companies, the flower of the army, and how they are to be replaced at this day, God only knows I have to lament also the loss of some of the finest young men and most promising in the army

थे। गवरनर जनरल और जनरल लेक दोनों इसके बाद अपने पत्रों में जसवन्तराव का नाम लिखने के स्थान पर उसे "लुटेरा" (The Plunderer),"राक्षस" (The Monster),"हत्यारा" (The Murderer) इत्यादि सुन्दर शब्दों में बयान करने लगे। जनरल वेल्सली को जब कलकत्ते में इस दुर्घटना का समाचार मिला तो उसने एक पत्र में लिखा—"मैं इस घटना के राजनैतिक परिणामों को सोच कर काँप उठता हूँ।"* ११ सितम्बर सन् १८०४ को मार्किस वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा—

"हमें अब पिछला रोना रोने के बजाय, आगे के इलाज की कुछ कोशिश करनी चाहिए, और आपके होते हुए मुझे सफलता में कोई सन्देह नहीं। किन्तु मुख्य बात समय है। जितनी देर तक कि इस लुटेरे को जीवित रहने दिया जायगा, हर घण्टे में कुछ न कुछ नई आपत्ति हम पर अवश्य आएगी; यदि हम होलकर की मुख्य सेना पर फ़ौरन हमला करके निश्चित सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, तो हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि सारे भारतीय नरेश हमारा साथ छोड़ देंगे और स्वयं हमारे इलाक़े के अन्दर उपद्रव खड़े हो जायँगे × × × मैं आप से बिलकुल सहमत हूँ कि हमारा सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि हम मैदान में होलकर की पैदल सेना को परास्त कर उसकी तोपें छीन लें × × × यदि हमने होलकर को हरा दिया तो फ़ौरन तमाम आपत्ति और भय जाता रहेगा। × × ×

. . .

---

* "I tremble at the political consequences of that event."—General Wellesley referring to the retreat of General Monson



जसवन्तराव होलकर

वासुदेव जी सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा]



"साथ ही आप अपने मददगारों को पक्का रखने और पिछले साल के एलानों को दोहरा कर अथवा दूसरे लोभ देकर होलकर की सेना के आदमियों को अपनी ओर मिलाने के लिए हर तरह प्रयत्न करें।"*

होलकर के विरुद्ध नई साज़िशें

जसवन्तराव के विरुद्ध उसके आदमियों और अन्य नरेशों को अपनी ओर मिलाने के लिए अब जी तोड़ कोशिशें की जाने लगीं। इन कोशिशों से जसवन्तराव की सेना में अंगरेज़ों को कहाँ तक सफलता प्राप्त हो रही थी, इसका कुछ अनुमान गवरनर जनरल के नाम लेक के २२ सितम्बर सन् १८०४ के पत्र से लग सकता है। इस पत्र में लेक ने लिखा :—

"होलकर की सेनाओं की अजीब हालत है, उनमें से कुछ फिर हमारी ओर चले आने के लिए कह रहे हैं। यदि वे आएँगे तो उन्हें ले लिया जायगा।

---

* "We must endeavour rather to retrieve than to blame what is past and under your auspices I entertain no doubt of success Time, however, is the main consideration Every hour that shall be left to this plunderer will be marked by some calamity; we must expect a general defection of the allies, and even confusion in our own territories, unless we attack Holkar's main force immediately with decisive success . . . I perfectly agree with you that the first object must be the defeat of Holkar's infantry in the field and to take his guns; . . . Holkar defeated, all alarm and danger will instantly vanish;

"You will also take every step for confirming our allies and for encouraging desertion from Holkar by renewing the proclamations of last year, or by other encouragements —Governor General's letter to General Lake, 11th September, 1804

किन्तु जो कुछ वे कहते हैं उस पर मुझे बहुत कम विश्वास है; फिर भी उनमें किसी तरह का भी असन्तोष होना अपना असर रखता है और हमारे काम आ सकता है, इसलिए उन्हें भड़का कर उनमें असन्तोष पैदा किया जायगा।"

भरतपुर का राजा

रहा भारतीय नरेशों को अपनी ओर तोड़ सकना, उनमें सींधिया के अतिरिक्त अन्य नरेशों का भी विश्वास अंगरेज़ों के ऊपर से उठ गया था। अपने अनुचित व्यवहारों के कारण जिनका ज़िक्र आगे चलकर किया जायगा, अंगरेज़ों को बरार के राजा पर भी विश्वास न हो सकता था। भरतपुर का राजा महाराजा सींधिया का सामन्त था। फिर भी सन् १८०३ में अंगरेज़ों ने महाराजा सींधिया और राजा राघोजी भोंसले के विरुद्ध भरतपुर के राजा रणजीतसिंह के साथ इस शर्त पर सन्धि कर ली थी कि जो सालाना ख़िराज तुम सींधिया को दिया करते थे, वह आइन्दा के लिए बिलकुल माफ़ कर दिया जायगा। इसी सन्धि के कारण राजा रणजीतसिंह अंगरेज़ों के विरुद्ध सींधिया और भोंसले को सहायता देने से भी रुका रहा। इस बार फिर गवरनर जनरल ने होलकर के विरुद्ध भरतपुर के राजा से सहायता प्राप्त करने की कोशिश की। २२ अगस्त सन् १८०४ को मार्किस वेलसली ने जनरल लेक को लिखा :—

"× × × मैं इस पत्र द्वारा आपको अधिकार देता हूँ और हिदायत करता हूँ कि आप अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में भरतपुर के राजा को विश्वास दिला दीजिये कि अंगरेज़ सरकार इस बात का निश्चय कर चुकी है कि भरतपुर के साथ मौजूदा सन्धि की सब शर्तों को ठीक ठीक और समय पर पूरा करे।

आप राजा को यह भी बता दीजिये कि अंगरेज़ सरकार के ऊपर जो ये आक्षेप लगाए जा रहे हैं कि वह भरतपुर के आन्तरिक शासन में किसी तरह का दख़ल देकर अथवा राजा के इलाकों, उसके क़िलों, या सेनाओं को कम्पनी की दीवानी या फ़ौजदारी अदालतों के अधीन करने की किसी तरह की कोशिश करके उस सन्धि को तोड़ने का विचार कर रही है, या राजा के दीवानी या फ़ौजदारी शासन में किसी तरह से भी अपना अधिकार बीच में लाना चाहती है, या अन्य किसी तरह से भी मौजूदा सन्धि की शर्तों से फिरना चाहती है, ये सब आक्षेप झूठे हैं और बदमाशों के फैलाए हुए हैं।"

भरतपुर के राजकीय मामलों में दस्तनदाज़ी

किन्तु इस बार राजा भरतपुर को भुलावा दे सकना दुष्कर था एक तो ऊपर के पत्र से ही साबित है कि अंगरेज़ों के इरादों के सम्बन्ध में राजा भरतपुर के चित्त में कुछ काफ़ी गहरे सन्देह पैदा हो गए थे, और इतिहास लेखक मिल के बयान से मालूम होता है कि ये सन्देह सर्वथा निर्मूल भी न थे। मिल लिखता है कि मथुरा के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने नमक के व्यापारियों के कई व्यापार सम्बन्धी मामले ज़बरदस्ती भरतपुर की प्रजा के विरुद्ध तय कर डाले, जिनसे प्रजा को हानि और राजा को दुख और हैरानी हुई। मिल यह भी लिखता है कि यह ख़बर उन दिनों फैली हुई थी कि अंगरेज़ सरकार भरतपुर के राज के अन्दर कम्पनी की अदालतें क़ायम करना चाहती है। राजा तक यह ख़बर भी पहुँच चुकी थी।* निस्सन्देह भरतपुर का राजा इस समय समझ रहा था कि

* Mill, vol, vi, p 420

अंगरेज़ ऊपर से मुझे बहका कर होलकर के विरुद्ध मुझसे मदद लेना चाहते हैं और भीतर ही भीतर मेरे राज और मेरी प्रजा पर पूरी तरह अपना अधिकार जमा लेने की तरकीबें कर रहे हैं।

इस सब के अतिरिक्त भरतपुर के आस पास गङ्गा और जमुना के बीच दोआब का जो इलाक़ा पिछले युद्ध में अंगरेज़ों ने महाराजा सींधिया से छीन कर अपने शासन में कर लिया था, उस समस्त इलाके में केवल एक ही वर्ष के ब्रिटिश शासन के कारण इस समय त्राहि त्राहि मची हुई थी।

दोआब में कम्पनी के अत्याचार

गवरनर जनरल ने यह सारा इलाक़ा जनरल लेक के अधीन कर दिया था और वहाँ का 'बन्दोबस्त' लेक को सौंप दिया था। लेक ने जिस तरह से भी हो सकता था, दोआब की प्रजा और वहाँ के ज़मींदारों को सता सता कर उनसे धन वसूल करना शुरू किया। भूमि का लगान इतना बढ़ा दिया गया कि जिसे देख कर प्रान्त के बूढ़े से बूढ़े निवासी भी चकित रह गए। मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दुर्बल सम्राटों के निर्बल शासन में भी प्रजा से कभी इतना अधिक लगान न लिया गया था। इससे पूर्व के असभ्य आक्रमक भी देश के लोगों के साधारण निर्वाह के लिए जितना सामान छोड़ जाते थे, नए अंगरेज़ी बन्दोबस्त के बाद उनके पास उससे कहीं कम बच सकता था।

इसके अतिरिक्त दोआब के अंगरेज़ अफ़सरों ने लेक की आज्ञानुसार दोआब की भारतीय प्रजा पर और भी तरह तरह के

अत्याचार शुरू कर दिए। इनमें मुख्य बात जिसने एकदम दोआब की प्रजा के दिलों को अंगरेज़ों की ओर से फेर दिया, वह नए अंगरेज़ी इलाके के अन्दर गोवध का शुरू हो जाना था।

मुग़ल सम्राट और गोरक्षा

सम्राट बाबर ने, जो अपनी भारतीय प्रजा का सच्चा हित चिन्तक था और समस्त हिन्दू, मुसलमानों और अन्य धर्मावलम्बियों को समान दृष्टि से देखता था, अपने साम्राज्य में गाय का वध बन्द कर दिया था। हुमायूँ, अकबर और उनके महान उत्तराधिकारियों ने अपने अधिक विशाल साम्राज्यों में इस आज्ञा का पालन कड़ाई के साथ जारी रक्खा। अन्त के दिनों के अदूरदर्शी मुग़ल सम्राटों ने भी गोवध के सम्बन्ध में इस उदार और हितकर नीति को नहीं बदला। इतिहास लेखक विलसन के अनुसार क़रीब ३०० वर्ष से हिन्दोस्तान में किसी मनुष्य का पेट भरने के लिए एक भी गाय या बैल की हत्या न हुई थी।

तीर्थस्थान मथुरा में गोहत्या

लेकिन अब मथुरा जैसे पवित्र तीर्थस्थान के अन्दर अंगरेज़ सिपाहियों का पेट भरने के लिए गउएँ कटने लगीं। मथुरा और दोआब के बाशिन्दों में इससे अपने नए विदेशी शासकों के विरुद्ध घृणा और असन्तोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इतिहास लेखक मिल लिखता है कि भरतपुर का राजा अपने पास के इलाके में इस प्रकार गोहत्या की ख़बरें सुनकर और भी दुखित हुआ। दोआब की प्रजा ने भरतपुर के हिन्दू जाट राजा को अपना नेता और रक्षक

नियुक्त किया। स्वभावतः इन सब लोगों की हार्दिक सहानुभूति इस समय होलकर के साथ थी और दोआब को अंगरेज़ों के पंजे से छुड़ाने के लिए दोआब की प्रजा, भरतपुर दरबार और जसवन्तराव होलकर, तीनों के बीच पत्र व्यवहार होने लगा।

जनरल लेक इस बात को जानता था, उसके अनेक पत्रों से प्रकट है कि वह होलकर को मिटाने के साथ साथ इस समय भरतपुर की स्वाधीन रियासत को भी मिटा देने के लिए उत्सुक था। मुख्यकर इसलिए ताकि दोआब की भारतीय प्रजा को अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध कोई सच्चा नेता और होलकर को दोआब में कोई मददगार न मिल सके।

भरतपुर के प्रतिनीति

जसवन्तराव होलकर अपने राज से कम्पनी की आक्रमक सेना को निकाल कर बाहर कर चुका था। अंगरेज़ों को इस बात का भय था कि कहीं वह उत्तर की ओर बढ़कर कम्पनी के इलाके दोआब पर हमला न करे। अपने भारतीय इलाकों की रक्षा करने और जसवन्तराव को फँसाने के लिए बड़ी बड़ी तैयारियाँ की गईं। गवरनर जनरल ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम २८ मार्च सन् १८०५ को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने इन तैयारियों को विस्तार के साथ बयान किया है। दिल्ली, आगरा और मथुरा में सेनाएँ बढ़ाई गईं और इन स्थानों तक पहुँचने के मार्गों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया। इसके अतिरिक्त पाँच सेनाएँ पाँच ओर से

होलकर के विरुद्ध विराट सैन्य आयोजन

होलकर को घेरने के लिए नियुक्त की गईं। सब से ऊपर एक विशाल सेना जनरल लेक के अधीन, दूसरी सेना दिल्ली और आगरे के बीच की पहाड़ियों के निकट, तीसरी सेना बुन्देलखण्ड में, चौथी सींधिया की सबसीडीयरी सेना उज्जैन में, और पाँचवीं सेना करनल मरे के अधीन गुजरात की सरहद पर।

इस समस्त सैन्य प्रबन्ध का स्पष्ट उद्देश यह था कि इनसे निकल कर होलकर उत्तर की ओर अंगरेज़ी इलाके पर हमला न कर सके। मार्किस वेल्सली को अपने इस प्रबन्ध की सफलता पर पूरा विश्वास था, उसने २४ मार्च सन् १८०५ को डाइरेक्टरों को लिखा :—

"यह बात बिलकुल नामुमकिन मालूम होती थी कि होलकर इन सब सेनाओं के हमले से बच कर निकल सके।"

मार्किस वेल्सली को अपने इस प्रबन्ध में युद्ध के जल्दी समाप्त होने की भी आशा थी।

किन्तु गवरनर जनरल और उसके साथियों की सब आशाएँ झूठी साबित हुईं। जसवन्तराव ने इस समय पूरी तरह साबित कर दिया कि वीरता या युद्ध कौशल दोनों में से किसी बात में भी जनरल लेक या जनरल मॉनसन कोई उसे न पा सकता था।

होलकर का मथुरा पर क़ब्ज़ा

जनरल मॉनसन के आगरे की ओर भागते ही जसवन्तराव होलकर ने आगे बढ़कर अंगरेज़ों की पाँच पाँच सेनाओं से बचकर और अपनी सरहद को पार कर कम्पनी के इलाके मथुरा पर हमला किया

अंगरेज़ों ने एक बहुत बड़ी सेना मथुरा की रक्षा के लिए नियुक्त कर रक्खी थी। किन्तु इस सेना को हार खाकर मथुरा से भाग जाना पड़ा, और विजयी जसवन्तराव होलकर ने मथुरा पर क़ब्ज़ा कर लिया। वेल्सली के सब प्रयत्न निष्फल गए। मथुरा से आगे बढ़ कर तुरन्त दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लेना उस समय जसवन्तराव के लिए कुछ भी कठिन न था। यह भी सम्भव है कि एक बार दिल्ली पर क़ब्ज़ा करके जसवन्तराव के पक्ष को आश्चर्यजनक बल प्राप्त हो जाता। किन्तु शायद जसवन्तराव की आकांक्षा उस समय इससे अधिक न थी। इसके अतिरिक्त मथुरा पहुँच कर उसे कई नई कठिनाइयों ने आ घेरा।

करनल मरे का मालवा विजय

जसवन्तराव जब उत्तर की ओर बढ़ रहा था, उसी समय करनल मरे जसवन्तराव के मालवा के इलाक़े पर और करनल वैलेस उसके दक्खिन के इलाक़ों पर हमला कर रहे थे। ऊपर आ चुका है कि करनल मरे ने रसद की कमी के कारण पहली जुलाई को गुजरात की ओर लौटना शुरू कर दिया था। किन्तु फिर होलकर के उत्तर की ओर बढ़ जाने की ख़बर पाते ही मरे ने तीसरी बार लौट कर होलकर के आदमियों के साथ साज़िशें करना शुरू किया।

डाइरेक्टरों के नाम गवरनर जनरल के २९ मार्च सन् १८०५ के पत्र में लिखा है कि करनल मरे ने गवरनर जनरल से बाज़ाब्ता दरियाफ़्त किया कि किस हद तक होलकर के नौकरों और दूसरे अनुयाइयों को लोभ दिया जाय, और कहाँ तक उनसे वादे कर

लिए जायँ, इत्यादि ।* इस बार करनल मरे को इतनी सफलता प्राप्त हुई कि ५ जुलाई सन् १८०४ को करनल मरे फिर उज्जैन की ओर बढ़ा। बिना किसी विरोध के ८ जुलाई को वह उज्जैन पहुँच गया और धीरे धीरे उज्जैन से बैठ कर उसने "बिना किसी तरह की लड़ाई के"† आस पास के समस्त इलाक़े और होलकर की राजधानी इन्दौर तक पर एक बार क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह इस अद्भुत कार्य में जसवन्तराव की अनुपस्थिति से करनल मरे को बहुत बड़ी सहायता मिली।

वैलेस को दक्खिन में सफलता

उधर दक्खिन में जनरल वेलसली के चले जाने के बाद कम्पनी की सेनाओं का नेतृत्व करनल वैलेस को मिला। २२ अगस्त को करनल वैलेस पूना से चला। १८ सितम्बर तक उसकी सेना ने गोदावरी को पार किया। २७ और ३० सितम्बर को और अधिक सेना वैलेस से आकर मिल गई। अक्तूबर के शुरू में पेशवा की निजी सेना भी वैलेस से आ मिली। उसी महीने में वैलेस ने चान्दौर पर और तापती नदी के दक्खिन में होलकर के अन्य कई क़िलों पर क़ब्ज़ा

---

* "Colonel Murray having submitted to the Governor General several questions relative to the extent to which he might be permitted to encourage desertion among the adherents of Jaswant Rao Holkar, and to offer to them employment in the service o the allies, . . the Governor General in Council deemed it to be advisable to furnish Colonel Murray with instructions. . . . "—Despatch of the Governor General in Council to the Secret Committee, dated 24th March, 1805

† "Without any resistance "—Above despatch

कर लिया। निस्सन्देह जिन उपायों ने मरे को सफलता प्रदान की उन्हीं से वैलेस्ली ने भी पूरी तरह काम लिया।

मथुरा पहुँचते पहुँचते जसवन्तराव को अपने मालवा और दक्खिन के इलाक़ों के इस प्रकार छिन जाने का समाचार मिला। उसने दुख के साथ अनुभव किया कि अन्त में उसके आदमी भी अनन्त काल तक अंगरेज़ों के "गुप्त उपायों" के लिए अभेद्य न रह सके। मथुरा में बैठ कर अब वह अपने इन इलाक़ों को फिर से विजय करने के उपाय सोचने लगा।

दोनों दलों की योजनाएं

जसवन्तराव ने महाराजा सींधिया, बरार के राजा और भरतपुर के राजा को अपनी ओर करना चाहा। उधर जसवन्तराव के देर तक मथुरा में ठहर जाने से अंगरेज़ों को मौक़ा मिल गया। उन्होंने एक ओर उसके राज में उसके विरुद्ध तरह तरह की झूठी ख़बरें फैलानी शुरू कर दीं, और दूसरी ओर दिल्ली को ठीक कर लिया, और साथ ही जनरल लेक ने होलकर पर हमला करने की तैयारियाँ कर लीं।

दिल्ली में होलकर की असफलता

३ सितम्बर को जनरल लेक ने कानपुर से कूच किया। २२ सितम्बर को वह आगरे पहुँचा, और सिकन्दरे में अपनी सेना जमा करके पहली अक्तूबर को मथुरा की ओर रवाना हुआ। जिस समय जनरल लेक मथुरा की ओर बढ़ रहा था उसी समय जसवन्तराव होलकर दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने और दिल्ली सम्राट को अपने पक्ष

में करने के उद्देश से सेना सहित दिल्ली की ओर बढ़ा। किन्तु इस बीच अंगरेज़ों ने दिल्ली की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। करनल ऑक्टरलोनी दिल्ली की सेनाओं का सेनापति था। अभी तक अंगरेज़ों ने सम्राट के साथ प्रतिज्ञाओं को पूरा न किया था और न सम्राट और सम्राट के कुल के खर्च का उचित प्रबन्ध किया था, फिर भी ऑक्टरलोनी ने झूठे वादों और आशाओं के सहारे सम्राट शाहआलम को अपनी ओर कर रक्खा था। परिणाम यह हुआ कि सम्राट ने भी अपना सारा प्रभाव मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष में लगा दिया और जसवन्तराव को दिल्ली में सफलता न मिल सकी।

सहारनपुर में होलकर की असफलता

ऐसी स्थिति में जसवन्तराव को जब मालूम हुआ कि जनरल लेक मथुरा से मेरा पीछा कर रहा है, तो वह १५ अक्तूबर को दिल्ली छोड़ कर सहारनपुर की ओर चल दिया। इसके दो दिन बाद लेक दिल्ली पहुँचा। सहारनपुर के इलाके में जसवन्तराव को सिख सरदार दोलचासिंह, नवाब बम्बू खाँ और बेगम समरू इत्यादि से सहायता की आशा थी। किन्तु अधिक चतुर अंगरेज़ों के सामने वहाँ पर भी उसकी आशा पूरी न हो सकी।

विजय के साधन

भारत के अन्दर अपनी सत्ता के क़ायम करने में अंगरेज़ों को सिखों से सदा सहायता मिलती रही है। इससे पूर्व दौलतराव सींधिया के विरुद्ध भी सिखों ने अंगरेज़ों की मदद की थी। इस अवसर पर

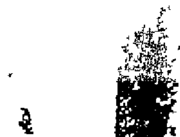
बरेली में ए० सीटन नामक गवरनर जनरल का एक एजएट रहा करता था। इस एजएट द्वारा गवरनर जनरल ने सरदार दोलचासिंह के साथ गुप्त पत्र व्यवहार किया। १० सितम्बर सन् १८०४ को मार्किवस वेल्सली ने जनरल लेक को एक "सरकारी और गुप्त" पत्र में लिखा —

"जमना के उतर जाने के बाद सम्भव है × × × हम दोलचासिंह की सहायता का कार्यसाधक उपयोग कर सकें। इस लिए मैं उचित समझता हूँ कि आपको यह अधिकार दे दूँ कि यदि आप उचित समझें तो इस युद्ध में दोलचासिंह को धन की सहायता दे दें × × × "*

निस्सन्देह धन खर्च करके अंगरेज़ों ने सिखों को होलकर के विरुद्ध अपनी ओर कर लिया। बम्बू खाँ बेगम समरू इत्यादि के साथ अंगरेज़ों की साज़िशों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। परिणाम यह हुआ कि सहारनपुर के पास के इलाक़े में भी जसवन्तराव का किसी ने साथ न दिया, और अन्त में जसवन्तराव को भरतपुर की ओर लौट आना पड़ा।

इसके बाद भरतपुर के ऐतिहासिक मोहासरे और अंगरेज़ों और होलकर के शेष संग्रामों का वर्णन अगले अध्यायों में किया जायगा।

* "It is possible that the services of this chieftain may eventually be employed with effect when the river Jumna shall become fordable, I deem it advisable, therefore, to authorize Your Excellency, if you should think proper, to subsidize Dolcha Singh, during the war "—Marquess Wellesley's "Official and Secret" letter to General Lake dated 10th September, 1804





राजा रणजीत सिंह, भरतपुर

[पण्डित गोकुल चन्द दीक्षित, सम्पादक 'स्टेट गज़ट' भरतपुर, की कृपा द्वारा]

छब्बीसवाँ अध्याय

भरतपुर का मोहासरा

जसवन्तराव होलकर के दिल्ली से चले जाने के बाद उसका पीछा करने के लिए तीन बड़ी सेनाएँ अलग अलग दिल्ली से रवाना हुईं। एक करनल बर्न के अधीन, दूसरी जनरल लेक के अधीन, और तीसरी मेजर जनरल फ्रेज़र के अधीन। करनल बर्न की सेना २६ अक्तूबर सन् १८०४ को दिल्ली से चली। करनल बर्न और जसवन्तराव होलकर की सेनाएँ कई बार एक दूसरे के क़रीब आईं। किन्तु करनल बर्न को हमला करने का साहस न हो सका। जसवन्तराव उस समय उत्तरी भारत की दूसरी राजशक्तियों को अंगरेज़ों के विरुद्ध मिला लेने के फ़िक्र में था। वह सहारनपुर से लौट कर भरतपुर की ओर

दिल्ली से भरतपुर

जा रहा था। उसने अपनी सेना के दो हिस्से किए। पैदल सेना और तोपख़ाने को उसने आगे बढ़ा दिया और स्वयं अपने सवारों सहित पीछे रहा। ३१ अक्तूबर को जनरल लेक तीन रेजिमेण्ट गोरे सवारों की, तीन देशी सवारों की और बहुत सा तोपख़ाना लेकर होलकर और उसके सवारों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली से निकला। उधर मेजर जनरल फ्रेज़र को उसने बहुत सी पैदल सेना, दो रेजिमेण्ट देशी सवारों की और तोपख़ाना देकर होलकर की पैदल सेना और तोपख़ाने का पीछा करने के लिए रवाना किया।

होलकर का पीछा

लेक को पता चला कि होलकर अपने सवारों सहित इस समय शामली में है। जसवन्तराव जितनी जल्दी हो सके, भरतपुर पहुँचना चाहता था, और लेक उसे मार्ग में रोक कर उससे लड़ना चाहता था। जसवन्तराव की ख़बर पाते ही लेक शामली की ओर बढ़ा। ३ नवम्बर को लेक शामली पहुँचा; किन्तु होलकर उनसे पहले ही भरतपुर की ओर रवाना हो चुका था।

लेक होलकर का पीछा करता रहा। १७ नवम्बर को लेक फ़र्रुख़ाबाद में होलकर की सेना के पास आ पहुँचा। किन्तु फिर भी उसे होलकर पर हमला करने का साहस न हो सका, और जसवन्तराव निर्विघ्न अपनी सवार सेना सहित भरतपुर राज के अन्दर डीग के क़िले में दाख़िल हो गया। लेक की इस असफलता के विषय में गवरनर जनरल ने लेक को हिम्मत दिलाते हुए लिखा—

"दुर्भाग्य की बात है कि होलकर आप से बच कर निकल गया,

इस बात को आप उतने ही ज़ोर के साथ अनुभव करते हैं जितना कि होलकर को गिरफ़्तार कर लेना या उसका नाश कर देना बहुत ज़रूरी है। जब तक उसका नाश न कर दिया जायगा या वह क़ैद न कर लिया जायगा तब तक हमें शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए मैं आप पर इस बात के लिए भरोसा करता हूँ कि जहाँ तक भी वह जाय, आप उसका पीछा करने से किसी कारण भी न हटें।"*

डीग के बाहर का संग्राम

मेजर जनरल फ़्रेज़र को अपने काम में जनरल लेक की अपेक्षा अधिक सफलता मिली। ५ नवम्बर को जनरल फ़्रेज़र सेना लेकर दिल्ली से निकला। होलकर की पैदल सेना और तोपख़ाना उस समय डीग के पास पहुँच चुके थे, किन्तु होलकर स्वयं डीग से बहुत दूर था। जनरल फ़्रेज़र १२ नवम्बर को डीग के निकट पहुँचा। १३ को जसवन्तराव होलकर के पहुँचने से पहले डीग के क़िले से बाहर दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाई हुई। अंगरेज़ों के बयान के अनुसार उनके ६४३ आदमी मैदान में खेत रहे, जिनमें २२ अंगरेज़ अफ़सर थे। जनरल फ़्रेज़र भी इसी लड़ाई में काम आया। होलकर के हताहतों की संख्या २००० बताई जाती है। होलकर की शेष सेना ने पीछे हट कर डीग के दुर्ग में पनाह ली, जहाँ चन्द रोज़

---

* "It is unfortunate that Holkar's person should have escaped you, you are equally impressed with me by the absolute necessity of seizing or destroying him. Until his person be either destroyed or imprisoned, we shall have no rest. I therefore rely on you to permit no circumstance to divert you from pursuing him to the utmost extremity."

बाद होलकर स्वयं अपने सवारों सहित उनसे आ मिला। कहा जाता है इस संग्राम में होलकर की ८७ तोपें अंगरेज़ों के हाथ लगीं।

विजय पर जलसे

इस विजय पर गवरनर जनरल और जनरल लेक दोनों ने ख़ूब जलसे किए और समस्त भारत में उसका एलान किया। १६ नवम्बर को स्वयं अपनी प्रशंसा करते हुए जनरल लेक ने गवरनर जनरल को लिखा—

"मेरे कूच की तेज़ी देख कर सारे हिन्दोस्तानी इतने चकित रह गए कि जिसकी कल्पना भी नहीं हो सकती × × ×"।*

कहा जाता है कि २१ अक्तूबर से १७ नवम्बर तक जनरल लेक के कूच की रफ़्तार २३ मील रोज़ाना थी। रेल और तार उस समय तक संसार में कहीं न थे। होलकर के आदमियों और विशेष कर पठानों के साथ लेक के "गुप्त प्रयत्न" बराबर जारी थे।

जसवन्तराव होलकर अपनी समस्त सेना सहित भरतपुर पहुँचना चाहता था। किन्तु मार्ग में उसे और उसकी सेना को डीग के क़िले में आश्रय लेना पड़ा। डीग का क़िला भी भरतपुर के राज में था।

भरतपुर के राजा के साथ अंगरेज़ों का पत्र-व्यवहार हो रहा था। मालूम नहीं, भरतपुर के राजा का विचार इससे पहले अंगरेज़ों से लड़ने का था या नहीं। किन्तु इसी समय एक ऐसी घटना हुई

---

* "The rapidity of my march has astonished all the natives beyond imagination, '—General Lake to Governor General, 19th November, 1804

जिससे विवश होकर भरतपुर के राजा रणजीतसिंह को अंगरेज़ों के विरुद्ध होलकर का साथ देना पड़ा।

मार्किस वेल्सली ने भरतपुर की प्रजा के कुछ प्रतिष्ठित लोगों पर यह दोष लगा कर, कि वे होलकर के साथ गुप्त पत्र व्यवहार कर रहे थे, लेक को यह आज्ञा दी कि भरतपुर राज से उन लोगों को ज़बरदस्ती गिरफ़्तार करके अंगरेज़ी इलाके में लाकर अंगरेज़ी अदालत के सामने उनका कोर्ट मार्शल किया जाय। भरतपुर एक स्वाधीन रियासत थी। किन्तु राजा रणजीतसिंह से न इस मामले में राय ली गई, न दरबार से किसी तरह की तहक़ीक़ात कराई गई और न भरतपुर की प्रजा को गिरफ़्तार करने या सज़ा देने के लिए राजा की इजाज़त तक की आवश्यकता समझी गई। पहले राजा को यह आज्ञा दी गई कि जिन जिन को लेक कहे उन्हें फ़ौरन गिरफ़्तार करके अंगरेज़ों के हवाले कर दो। इसके बाद गवरनर जनरल ने लेक को अधिकार दे दिया कि आप बिना राजा से पूछे उसकी प्रजा के इन लोगों को ज़बरदस्ती गिरफ़्तार करके अंगरेज़ी इलाके में ले आएँ और उन्हें गोली से उड़वा दें।

भरतपुर में अंगरेज़ों की धांधली

कोई नरेश, जिसे अपनी आन का ख़याल हो, इस तरह की धृष्टता और ज़बरदस्ती सहन नहीं कर सकता। जनरल लेक के इस समय के एक एक पत्र से साबित है कि वह भरतपुर राज का अन्त कर देने के लिए लालायित था और इसे एक अत्यन्त सरल कार्य समझे हुए था। राजा रणजीतसिंह के पास अब जसवन्तराव

होलकर को अंगरेज़ों के विरुद्ध मदद देने के सिवा और कोई चारा न था। इसके अतिरिक्त निर्वासित होलकर ने भरतपुर के राज में शरण ली थी। न्याय और साधारण शिष्टता भी राजा रणजीतसिंह से यही चाहती थी कि वह अपने शरणागत अतिथि की सहायता करे। लेक भरतपुर के राजा को परास्त करना कितना सरल समझता था, यह उसके नीचे लिखे शब्दों से ज़ाहिर है। २७ नवम्बर सन् १८०४ को उसने गवरनर जनरल के एक पत्र के उत्तर में लिखा—

"× × × मैं अब फ़ौरन राजा रणजीतसिंह और उसके क़िलों पर हमला करके उन्हें अपने अधीन किए बिना नहीं रह सकता।"*

अंगरेज़ों ने डीग के क़िले का मोहासरा करने का निश्चय किया।

डीग के क़िले पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

८ दिसम्बर सन् १८०४ को जनरल लेक अपनी सेना लेकर डीग पहुँचा। १० दिसम्बर को क़िले की दीवारें तोड़ने के लिए आगरे से गोला, बारूद और तोपें आईं। १३ को गोलाबारी शुरू हुई। दस दिन के प्रयत्न के बाद २३ दिसम्बर को एक ओर की दीवार का कुछ भाग टूट पाया। इसी बीच क़िले के भीतर की समस्त सेना, जो वास्तव में भरतपुर ही जाना चाहती थी, क़िले से निकल कर सुरक्षित भरतपुर पहुँच गई। २३ की आधी रात को टूटे हुए हिस्से

* " . . . it will not be in my power to avoid attacking and reducing him and his forts without delay."—General Lake to Marquess Wellesley, dated 27th November, 1804

से अंगरेज़ी सेना ने खाली क़िले में प्रवेश किया। इस हमले में अंगरेज़ों के २२७ आदमी काम आए। २४ तारीख़ को डीग का नगर और निर्जन क़िला दोनों अंगरेज़ों के हाथों में आ गए।

डीग की विजय का समाचार सुनकर गवर्नर जनरल का हौसला बढ़ गया। २० दिसम्बर १८०४ को उसने एक "गुप्त और सरकारी" पत्र में जनरल लेक को लिखा—

"किन्तु अब भरतपुर के राजा के बल और उसके सब वसीलों को पूरी तरह वश में कर लेना अनिवार्य और आवश्यक हो गया है, इसलिए मैं आपको आदेश और अधिकार देता हूँ कि इस हितकर उद्देश को पूरा करने और भरतपुर राज के समस्त क़िलों, इलाक़ों और प्रान्तों को जिस तरह आप सब से अधिक उपयुक्त समझें, उस तरह अंगरेज़ी राज में मिला लेने के लिए आप शीघ्र प्रबन्ध करें।"*

डीग पर क़ब्ज़ा करते ही अंगरेज़ों ने आस पास के इलाक़े पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। कहा जाता है कि केवल भरतपुर का नगर राजा रणजीतसिंह के क़ब्ज़े में बाक़ी रह गया था। अंगरेज़ों ने

* "The entire reduction of the power and *resources* of the Raja of Bharatpur, however, is now become indispensably necessary, and I accordingly authorize and direct Your Excellency to adopt immediate arrangements for the attainment of that desirable object, and for the annexation to the British power, in such manner as Your Excellency may deem *most* consistent with the public interests, of all the forts, territories, and possessions belonging to the Raja of Bharatpur."—Governor General's letter to General Lake, dated 20th December, 1804, marked "Secret and Official."

अब राजा रणजीतसिंह से यह कहा कि आप होलकर को हमारे हवाले कर दें। किन्तु रणजीतसिंह के स्वाभिमान ने इसकी इजाज़त न दी। २६ दिसम्बर को डीग से चल कर ३ जनवरी सन् १८०५ को जनरल लेक भरतपुर आ पहुँचा और भरतपुर का मोहासरा शुरू हो गया।

भरतपुर का मोहासरा

भरतपुर का नगर उस समय आठ मील लम्बा था। चारों ओर बहुत मोटी, ऊँची गारे की दीवार थी, जिसके बाहर पानी से भरी हुई चौड़ी गहरी खाई थी। नगर के पूर्वी कोने पर भरतपुर का क़िला था। शहर फ़सील के ऊपर तोपें चढ़ी हुई थीं। रणजीतसिंह की समस्त सेना, होलकर की पैदल सेना व नगर और आस पास की बहुत सी प्रजा इस फ़सील के भीतर थी। होलकर की सवार सेना अंगरेज़ों को पीछे से दिक़ करने और उनकी रसद इत्यादि रोकने के लिए कुछ दूर नगर से बाहर रही।

अंगरेज़ी सेना की पहली पराजय

७ जनवरी सन् १८०५ को कम्पनी की सेना ने भरतपुर के ऊपर गोले बरसाने और फ़सील को तोड़ने के प्रयत्न शुरू किए। ६ जनवरी को एक ओर से दीवार का कुछ हिस्सा टूटा मालूम हुआ। अंगरेज़ी सेना ने ज्यों त्यों खाई को पार कर उस ओर से नगर में घुसना चाहा। किन्तु नगर के भीतर की भारतीय सेना ने इस वीरता के साथ मुक़ाबला किया कि बार बार प्रयत्न करने



भरतपुर का ऐतिहासिक दुर्ग

[पंडित रामनारायन जी मिश्र सम्पादक 'भूगोल', इलाहाबाद, की कृपा द्वारा]



पर भी अनेक जानें खोकर अंगरेज़ी सेना को विवश पीछे लौट आना पड़ा।*

इस प्रकार भरतपुर पर क़ब्ज़ा करने का पहला प्रयत्न निष्फल गया।

१२ दिन तक फिर गोलाबारी होती रही। इसके बाद दूसरी बार २१ जनवरी सन् १८०५ को अंगरेज़ी सेना ने नगर में प्रवेश करने का और अधिक जोरों के साथ प्रयत्न किया; किन्तु इस बार भी सफलता न मिल सकी। इस दूसरे प्रयत्न की असफलता के विषय में जनरल लेक ने मार्किस वेलसली को लिखा—

फिर असफलता

"× × × मुझे यह लिखते हुए दुःख होता है कि खाई इतनी अधिक चौड़ी और गहरी निकली कि उसे पार करने की जितनी कोशिशें की गईं सब बेकार साबित हुईं, और हमारी सेना को बिना अपना उद्देश पूरा किए अपनी खन्दकों में लौट आना पड़ा।

"हमारी सेना ने सदा की भाँति दृढ़ता से काम किया, किन्तु इतनी देर तक, इतने ज़ोरों से और इतने ठीक निशाने के साथ उनके ऊपर गोले बरसते रहे कि मुझे डर है, हमारा नुक़सान बहुत अधिक हुआ है।"†

निस्सन्देह भरतपुर के क़िले और फ़सील के ऊपर की वे तोपें,

* " . . . and the column after making several attempts, with heavy loss, was obliged to retire . . . —General Lake to Marquess Wellesley, 10th January.

† " . . . I am sorry to add that the ditch was found so broad and deep, that every attempt to pass it proved unsuccessful, and the party was obliged to return to the trenches, without effecting their object

जिनकी भयङ्कर आग ने दो बार शत्रु के मुंह मोड़ दिए, इस समय योग्य और विश्वासपात्र भारतीय वीरों के हाथों में थीं।

अंगरेज़ी सेना का तीसरा प्रयत्न

इन दोनों बार के प्रयत्नों में अंगरेज़ों की ओर जान और माल दोनों का इतना अधिक नुकसान हो चुका था कि अब लेक को बिना बाहर से मदद आए तीसरी बार हमला करने की हिम्मत न हो सकी। क़रीब एक मास तक अंगरेज़ी सेना ख़ाली पड़ी रही। इस बीच करनल मरे होलकर के मध्यभारत के इलाक़ों पर कम्पनी की ओर से क़ब्ज़ा करके गुजरात लौट गया। करनल मरे के अधीन गुजरात की जितनी सेना थी वह सब अब मेजर जनरल जोन्स के अधीन १२ फ़रवरी सन् १८०५ को जनरल लेक की सहायता के लिए भरतपुर आ पहुँची। आगरे और अन्य स्थानों से नया सामान नई और अधिक भारी तोपें मँगाई गईं। फ़रवरी के शुरू में ऐसे मौक़े देखकर कि जहाँ पर फ़सील कम चौड़ी मालूम होती थी, अंगरेज़ी सेना ने फिर गोलेबारी शुरू की। अन्त में एक नई ओर से रास्ता बना कर २० फ़रवरी सन् १८०५ को कम्पनी की सेना ने तीसरी बार भरतपुर के अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न किया।

लेकिन जिस रास्ते से कम्पनी की सेना ने भीतर घुसना चाहा,

"The troops behaved with their usual steadiness, but I fear, from the heavy fire they were unavoidably exposed to, for a considerable time, that our loss has been severe."

तीसरी बार अंगरेज़ों की असफलता

उसी रास्ते से भीतर की भारतीय सेना ने बाहर निकल कर कम्पनी की सेना पर हमला कर दिया। कम्पनी के अनेक अंगरेज़ अफ़सर और असंख्य देशी और विदेशी सिपाही वहाँ पर भारतीय गोलियों का शिकार हो गए। यहाँ तक कि भीतर की सेना ने अंगरेज़ों की आगे की खन्दकों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। अंगरेज़ों की ओर सब से आगे गोरी पलटनें थीं। जनरल लेक ने इन लोगों को आज्ञा दी कि तुम आगे बढ़ कर शत्रु को नगर के अन्दर वापस ढकेल दो। उनके अफ़सरों ने उन्हें ख़ूब समझाया और हिम्मत दिलाई, किन्तु इन गोरे सिपाहियों के दिलों में इतना डर बैठ गया था और भरतपुर की सेना की ओर से गोलियों की बौछार इतनी भयङ्कर थी कि इन लोगों ने आगे बढ़ने से साफ़ इनकार कर दिया। उस सङ्कट के समय जनरल लेक ने अपने हिन्दोस्तानी पैदलों की दो रैजिमेण्टों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। ये लोग वीरता के साथ आगे बढ़े।* भरतपुर के अन्दर प्रवेश कर सकने की दृष्टि से अंगरेज़ों का यह तीसरी बार का प्रयत्न भी सर्वथा निष्फल गया। किन्तु कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने वीरता के साथ बढ़ कर लड़ते लड़ते भरतपुर की सेना को नगर के अन्दर वापस चले जाने पर

* "The Europeans, however of His Majesty's 75th and 76th, who were at the head of the column, refused to advance . . . The entreaties and expostulations of their officers failing to produce any effect, two regiments of Native Infantry, the 12th and 15th were summoned to the front, and gallantly advanced to the Storm."—Mill vol vi, p 426

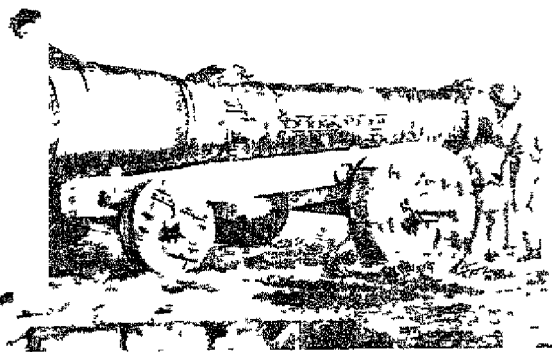
मजबूर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उस ऐन सङ्कट के समय, जब कि गोरी सेना के अनुशासन और शूरता दोनों का अन्त हो चुका था, यदि कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाही अपनी जान पर खेल कर आगे न बढ़ते तो भरतपुर की विजयी सेना उसी दिन भरतपुर के मैदान में अंगरेज़ी सेना को समाप्त करके लेक और उसके सहजातियों की समस्त आशाओं पर पानी फेर देती।

असफलता के कारण

भरतपुर की सेना के विरुद्ध जनरल लेक के इन तीन बार के प्रयत्नों के निष्फल जाने का मुख्य कारण निस्सन्देह यह था कि भरतपुर की फ़सील के अन्दर राजा रणजीतसिंह या जसवन्तराव होलकर दोनों में से किसी की सेना में इस समय कोई भी विश्वास घातक न था। इसी प्रकार भरतपुर की वीर भारतीय सेना यदि २० फ़रवरी सन् १८०५ को बाहर की अंगरेज़ी सेना का ख़ात्मा न कर सकी तो इसका भी एकमात्र कारण यह था कि कम्पनी के उन धनक्रीत भारतीय सिपाहियों में, जिन्होंने ऐन मौक़े पर अपने देश वासियों के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया, 'देशीयता' या 'राष्ट्रीयता' के भाव का सर्वथा अभाव था।

वेल्सली की घबराहट

जनरल लेक के इस तीसरे प्रयत्न की असफलता का समाचार सुनकर मार्किस वेल्सली घबरा गया। ५ मार्च सन् १८०५ को उसने जनरल लेक को एक लम्बा पत्र लिखा। इसमें युद्ध को शीघ्र समाप्त करने के विस्तृत उपाय सुझाते हुए मार्किस वेल्सली ने लिखा—



भरतपुर की एक पीतल की तोप

नवरी १८२६, को अंगरेज़ों के हाथ आई। लम्बाई १९ फु

मुंह का ६ फ़ुट, पीछे का ९ फ़ुट ९ इञ्च; दल ८$\frac{1}{4}$ इञ्च।

Narrative of the Siege and Capture of Bharatpur

y J. N. Creighton, published 1830 London

"क्या यह उचित न होगा कि जिस समय आप भरतपुर के मोहासरे की तैयारी कर रहे हों या उस मोहासरे में लगे हुए हों, इसी समय रणजीतसिंह को होलकर से तोड़ने की भी कोशिश की जाय ? यद्यपि भरतपुर विजय नहीं हुआ, फिर भी × × × यदि रणजीतसिंह ने होलकर का साथ छोड़ दिया तो होलकर को कोई आशा न रहेगी।"*

आगे चल कर गवरनर जनरल ने लेक को लिखा कि राजा रणजीतसिंह से कह दिया जाय कि यदि आप "होलकर का साथ बिलकुल छोड़ देंगे तो × × × आपका राज आपको फिर से वापस दे दिया जायगा।"†

रणजीतसिंह को प्रलोभन

इसी भरतपुर के राजा के सम्बन्ध में केवल ढाई महीने पहले गवरनर जनरल ने लेक को लिखा था कि "भरतपुर के राजा के सब क़िले इलाक़े और प्रान्त अंगरेज़ी राज में मिला लिए जायँ।" जनरल लेक भी उस समय भरतपुर हड़पने के लिए लालायित था। किन्तु पिछले दो मास के अन्दर स्थिति काफ़ी पलटा खा चुकी थी। लेक को रणजीतसिंह के बल और पराक्रम का अब काफ़ी पता लग चुका था। उसने गवरनर जनरल के उत्तर में लिखा :—

* "While the Commander-in-Chief is preparing for the siege of Bharatpur, or actually engaged in it, might it not be advisable to endeavour to detach Ranjit Singh from Holkar? Although Bharatpur has not fallen, Holkar would be hopeless if abandoned by Ranjit Singh."

† ". . . and renounce Holkar altogether in which case he will be restored to his possessions."

"रणजीतसिंह को होलकर से तोड़ने के लिए हर तरह की कोशिश की जा रही है और की जायगी। × × × यदि रणजीतसिंह ने साथ छोड़ दिया तो फिर होलकर और उसके अनुयाइयों के लिए कोई आशा न रहेगी।"*

और आगे चल कर जनरल लेक ने लिखा :—

"रणजीतसिंह के साथ इस समय मेरा पत्र व्यवहार जारी है और मुझे आशा है कि इस पत्र व्यवहार से एक ऐसा समझौता कर लिया जायगा जो अंगरेज़ सरकार के लिए पूरा लाभदायक होगा और जिससे भविष्य में फिर कभी रणजीतसिंह और जसवन्तराव होलकर में मेल न हो पाएगा।"†

जनरल लेक को अपने "गुप्त उपायों" पर अभी तक बहुत विश्वास था। भरतपुर के बाहर अंगरेज़ी सेना की स्थिति इस समय वास्तव में बेहद नाज़ुक थी। नगर के भीतर की भारतीय सेना के हौसले बढ़े हुए थे। जनरल लेक और उसकी सेना की हिम्मतें बिलकुल टूट चुकी थीं। उनके पास रसद की भी कमी थी। भरतपुर विजय होने की लेक को अब अणुमात्र भी आशा न रही थी और न भरतपुर से लौट कर पीछे मुड़ने में ही अंगरेज़ों को अपनी सलामती नज़र आती थी।

---

* "Every endeavour is making, and will be made to detach Ranjit Singh, from Holkar . . . Holkar and his followers would have little hope if abandoned by Ranjit Singh"—General Lake to Governor-General

† "A correspondence is now going on between me and Ranjit Singh, which I am in hopes, will lead to an accommodation sufficiently favourable to the British Government and prevent any future union of interests between that chief and Jaswant Rao Holkar."

ऊपर लिखा जा चुका है कि होलकर की सवार सेना इस समय भरतपुर से बाहर थी। यह सेना होलकर के प्रसिद्ध सरदार अमीर ख़ाँ के अधीन थी। इस बाहर की सेना ने अँगरेज़ी सेना को ख़ूब दिक़ कर रक्खा था और उनके पास रसद का पहुँच सकना क़रीब क़रीब असम्भव कर दिया था। यदि कहीं अमीर ख़ाँ एक बार हिम्मत करके पीछे से अंगरेज़ी सेना पर हमला कर देता तो सामने से फ़सील पर की गोलाबारी और पीछे से अमीर ख़ाँ का हमला, इन दोनों के बीच में आकर रही सही अंगरेज़ी सेना वहीं चकनाचूर हो गई होती। किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से अमीर ख़ाँ शुरू से वफ़ादारी या ईमानदारी के मुक़ाबले में धन की अधिक क़द्र करता था। ५ मार्च को गवरनर जनरल ने लेक को लिखा :—

अमीर ख़ाँ और उसके आदमियों को रिशवतें

"मिस्टर सीटन और जनरल स्मिथ को इस बात का अधिकार दे देना चाहिए कि अमीर ख़ाँ के जो अनुयायी उसे छोड़ कर आने को तैयार हों उन सब से वे ज़मींदारियाँ देने का वादा कर लें। यदि अमीर ख़ाँ होलकर को छोड़ कर अंगरेज़ सरकार की ओर आ जाय × × × तो उससे भी जागीर का वादा कर लिया जाय।"*

* "Mr. Seton and General Smith should be authorized to offer a settlement of land to such of Amir Khan's followers as would quit him Even Amir Khan himself might be offered a *Jagheer*, if he will quit Holkar's cause, submit to the British Government and come into General Smith's camp ."—Governor-General to General Lake, 5th March

यानी अमीर ख़ाँ के साथ अंगरेज़ों की साज़िशें इस समय दोरुख़ी थीं। एक अमीर ख़ाँ के आदमियों को लोभ देकर अमीर ख़ाँ से तोड़ने की कोशिश और दूसरे अमीर ख़ाँ को लालच देकर होलकर से तोड़ने की कोशिश। जनरल लेक ने गवरनर जनरल को जवाब में लिखा :—

"निस्सन्देह अमीर ख़ाँ के अनुयाइयों को ज़मींदारियों का लालच देना चाहिए।

"अमीर ख़ाँ की माँगें बहुत अधिक हैं। वह तैंतीस लाख रुपए शुरू में और फिर उसके बाद इतनी बड़ी जागीर माँगता है जिससे दस हज़ार सवारों का गुज़ारा चल सके। यही उसकी माँग रुहेलखण्ड में थी और अब चूँकि उसकी पलटनें और तोपें सींधिया से जा मिली हैं, मुझे बहुत सन्देह है कि अब वह अपनी माँग को कम करे।"*

अमीर ख़ाँ का विश्वासघात

अमीर ख़ाँ के साथ सौदा हो गया। जनरल स्मिथ जिसकी मार्फ़त सौदा तय हुआ अमीर ख़ाँ को परास्त करने के लिए सवारों सहित कम्पनी की ओर से भेजा गया। अफ़ज़लगढ़ में अमीर ख़ाँ की सेना और जनरल स्मिथ की सेना में एक दिखावटी संग्राम हुआ।

---

* "A settlement in lands should certainly be offered to Amir Khan's followers

"Amir Khan is most exorbitant in his demands He asks thirty-three lacs of rupees in the first instance and a *Jagheer* for 10,000 horse This was his proposal in Rohilkhund, and I doubt much if he would now be more moderate, as his battalions and guns have joined Scindhia"—General Lake to Governor-General

अमीर ख़ाँ ने धन और जागीर के लोभ में अपने मालिक जसवन्त-राव होलकर के सवारों को शत्रु के भालों और गोलियों के हवाले कर दिया। विजय जनरल स्मिथ की ओर रही। अफ़ज़लगढ़ से चल कर नमकहराम अमीर ख़ाँ २० मार्च सन् १८०५ को फिर भरत-पुर में होलकर से आ मिला, और विजयी स्मिथ २३ मार्च को बाहर जनरल लेक से आकर मिल गया। जनरल लेक का एक बहुत बड़ा भय इस प्रकार दूर हो गया।

सींधिया के लिए अवसर

फिर भी यदि दौलतराव सींधिया उस समय बाहर से आकर जनरल लेक की सेना पर हमला कर देता तो भी जनरल लेक की सेना भरतपुर के मैदान में दोनों ओर से शत्रुओं के बीच में पिस कर समाप्त हो गई होती। दौलतराव सींधिया को इससे अच्छा अवसर न मिल सकता था। यदि वह अपनी शेष सेना सहित इस समय होलकर को मदद को पहुँच जाता, तो अपने समस्त खोए हुए राज और अधिकारों को फिर से प्राप्त कर सकता था। भारत के अन्दर मृत प्राय मराठा साम्राज्य को फिर से जीवित कर सकता था, और विदेशियों की साम्राज्य आकांक्षाओं को उस समय भी ख़ाक में मिला सकता था। जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा दोनों को दौलतराव सींधिया के पहुँचने की पूरी आशा थी। स्वयं दौलतराव इस बात को समझता था और भरतपुर पहुँचने के लिए उत्सुक था। किन्तु यह बात जानने योग्य है कि किन चतुर उपायों से अंगरेज़ों ने दौलतराव सींधिया को होलकर की मदद के लिए

मौक़े पर पहुँचने से रोके रक्खा। इस बात को जानने के लिए हमें अब कुछ पीछे हट कर इस युद्ध के शुरू के दिनों की ओर दृष्टि डालनी होगी।

सींधिया की अनिश्चितता

दौलतराव और जसवन्तराव में अंगरेज़ों ही के कारण शुरू से एक दूसरे पर अविश्वास चला आता था। इस अविश्वास को और अधिक भड़का कर और उसमें लाभ उठाकर अंगरेज़ स्वयं दौलतराव सींधिया से जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध सहायता चाहते थे। इसी लिए जसवन्तराव के साथ युद्ध शुरू करने से पहले ही गवरनर जनरल ने दौलतराव से वादा कर लिया था कि विजय के बाद होलकर के राज का एक बहुत बड़ा भाग आपको दे दिया जायगा। शुरू में दौलतराव ने इस वादे पर एतबार करके अंगरेज़ों की मदद भी की, किन्तु शीघ्र ही दौलतराव को अंगरेज़ों के इन सब वादों की असलीयत का पता चल गया। अंगरेज़ों के उस समय तक के व्यवहार के विरुद्ध दौलतराव को अनेक शिकायतें थीं, जिनमें से कुछ का इससे पूर्व ज़िक्र किया जा चुका है। १८ अक्तूबर सन् १८०४ को दौलतराव सींधिया ने मार्किस वेल्सली के नाम एक अत्यन्त स्पष्ट और महत्वपूर्ण पत्र लिखा। उस पत्र का सार इस प्रकार है—

सींधिया का पत्र

अंगरेज़ों ने मेरी ओर मित्रता दर्शा कर मुझसे होलकर के विरुद्ध सहायता चाही, किन्तु मेरी सलाहों और प्रार्थनाओं की ओर रेज़िडेण्ट वेब ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, यहाँ तक कि स्वयं मेरी ओर वेब का व्यवहार अत्यन्त

अनुचित और असभ्य रहा। गोहद और ग्वालियर के मामले में अंगरेज़ों ने हाल की सन्धि का साफ़ उल्लङ्घन किया, मेरे कुमारकुण्डा और जामगाँव इत्यादि इलाक़ों में अंगरेज़ों ने अनेक तरह के उपद्रव खड़े करवा दिए और फिर सन्धि की शर्तों के अनुसार उन्होंने न मुझे अंगरेज़ी सेना की सहायता दी और न अपनी प्रजा की रक्षा के लिए मुझे स्वयं उन इलाक़ों तक सेना ले जाने दी। बापूजी सींधिया के साथ जनरल मॉनसन का व्यवहार आद्योपान्त लज्जाजनक रहा; यद्यपि अंगरेज़ मुझे अपना मित्र कहते थे और यद्यपि पिछली सन्धि के अनुसार मेरे इलाक़े की रक्षा करना अंगरेज़ों का वैसा ही कर्त्तव्य था जैसा अपने इलाक़े की रक्षा करना, फिर भी जिस समय करनल मरे अपनी सेना सहित उज्जैन में मौजूद था, ठीक उसी समय जसवन्तराव होलकर दो महीने तक माण्डेश्वर के क़िले का मोहासरा करता रहा और आस पास के समस्त इलाक़े में लूट मार मचाता रहा, किन्तु करनल मरे ने उसकी ज़रा भी परवा न की; उसी समय होलकर के सरदार अमीर ख़ाँ ने जो अंगरेज़ों से मिला हुआ था, भिलसा के क़िले को घेर लिया। भिलसा नगर और आस पास के तमाम इलाक़े को लूटा और क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, किन्तु अंगरेज़ों ने या करनल मरे ने ज़रा भी परवा न की और न मेरी ज़रा भी सहायता की। पिछले युद्ध के बाद से अब तक सन्धि के साफ़ विरुद्ध मेरे अमुक अमुक इलाक़े पर अंगरेज़ों ने स्वयं क़ब्ज़ा कर रक्खा है, अमुक अमुक इलाक़े दूसरों को दे रक्खे हैं, और अमुक अमुक इलाक़ा उजाड़ कर

वीरान कर दिया है, जिसके कारण मुझे भारी आर्थिक और अन्य हानियाँ सहनी पड़ रही हैं, इत्यादि । अन्त में दौलतराव सींधिया ने गवरनर जनरल को सूचना दी :—

"अब मैं दृढ़ निश्चय कर चुका हूँ कि अपनी पुरानी सेनाएँ जमा करके और नई सेनाएँ भरती करके एक बहुत बड़ी सेना तैयार करूँ और फिर शत्रु को दण्ड देने के लिए निकलूँ ; क्योंकि मैं इस बात को देख कर कैसे संतुष्ट रह सकता हूँ कि जिस इलाक़े को विजय करने में करोड़ों रुपए ख़र्च हुए हैं और बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं और जो इलाक़ा एक दीर्घकाल से मेरे अधिकार मे रहा है वह अब दूसरे के हाथों मे चला जाय । शत्रु के हाथों से अपने इलाक़े को छीन लेना कोई अधिक कठिन कार्य नहीं है । केवल अपने मित्रों की सफ़ाई और दिली हमदर्दी की ज़रूरत है और किसी तरह की मदद की ज़रूरत नहीं ।"

निस्सन्देह सींधिया की सारी शिकायतें सच्ची थीं, और पत्र के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट है कि उसी समय वह लाचार होकर अंगरेज़ों और उनके मददगारों से लड़ने और अपने इलाक़े वापस लेने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुका था ।

इस बीच रेज़िडेण्ट वेब की मृत्यु हो गई । जेनकिन्स उसकी जगह रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर सींधिया दरबार मे भेजा गया । जेनकिन्स का व्यवहार भी महाराजा दौलतराव के साथ उतना ही ख़राब रहा जितना कि वेब का रह चुका था । यहाँ तक कि विवश होकर दौलतराव सींधिया ने जेनकिन्स को अपने यहाँ क़ैद कर लिया ।

अंगरेज़ों को अब सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि कहीं दौलतराव सींधिया जसवन्तराव की मदद के लिए भरतपुर न पहुँच जाय। सींधिया के आदमियों के साथ साज़िशें शुरू की गईं। सींधिया की सेना के अधिकांश यूरोपियन अफ़सर गत युद्ध के समय अंगरेज़ों से मिल गए थे। फिर भी सींधिया के दुर्भाग्य और उसकी अदूरदर्शिता के कारण एक ईसाई अफ़सर जीन बेप्टिस्टे फ़िलॉसे, जिसका ज़िक्र ऊपर भी आ चुका है, अभी तक सींधिया की सेना में एक ऊंचे ओहदे पर नियुक्त था। जीन बेप्टिस्टे के अनेक सम्बन्धी भी सेना के अनेक पदों पर नौकर थे। जनरल लेक ने जीन बेप्टिस्टे के साथ और उसके द्वारा दूसरों के साथ साज़िशें शुरू कीं। मार्क्विस वेल्सली के नाम २२ सितम्बर सन् १८०४ को एक "प्राइवेट" पत्र में जनरल लेक ने आगरे से लिखा—

जीन बेप्टिस्टे के साथ अंगरेज़ों की साज़िश

"जीन बेप्टिस्टे × × × मेरे पास आ जाना चाहता है, किन्तु अपनी फ़ौज को देने के लिए डेढ़ लाख रुपए माँगता है। कहा जाता है कि आदमी अच्छा और ईमानदार है, और हाल में उसके पत्र व्यवहार से जो कुछ मैं देख पाया हूँ उससे ज़ाहिरा ऐसा ही मालूम होता है; किन्तु उसे रुपया देने से पहले मुझे उसके ईमानदार होने का अधिक विश्वास होना चाहिए; कम से कम इतना रुपया तो नहीं; यदि वह कोई ख़ास काम करके दिखाए तो फिर उसे रुपया देने का भी काफ़ी मौक़ा रहेगा।"*

* "Jean Baptiste is desirous of coming to me but requires a

जनरल लेक के अन्य पत्रों से साबित है कि जीन बेप्टिस्टे से अंगरेज़ों का सौदा हो गया और उसने 'ख़ास काम' करके भी दिखा दिया।

भरतपुर के मोहासरे के समय दौलतराव सींधिया अपनी सेना सहित बरहानपुर में मौजूद था। भरतपुर के मोहासरे की ख़बर पाते ही उसने सबसे पहले अपने पिण्डारी सवार भरतपुर की ओर रवाना कर दिए और फिर शेष सेना सहित स्वयं भरतपुर पहुँचने के लिए उत्तर की ओर बढ़ा। जसवन्तराव होलकर और राजा रणजीतसिंह दोनों को दौलतराव सींधिया की सहायता पर पूरा भरोसा था। इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि दौलतराव की सहायता वक़ पर पहुँच जाती, तो कम से कम मराठा मण्डल को दूसरे मराठा युद्ध के पूर्व की अपनी प्रतिभा फिर से प्राप्त हो जाती। किन्तु दुर्भाग्यवश एक तो सींधिया के वे अधिकांश पिण्डारी सवार, जो भरतपुर की ओर रवाना किए गए, पहले अमीर ख़ाँ की सेना में रह चुके थे और अमीर ख़ाँ के प्रभाव में थे; दूसरे सींधिया की सेना की बाग इस समय नमकहराम जीन बेप्टिस्टे फ़िलॉसे के हाथों में थी; तीसरे सींधिया के मुख्य सलाहकारों में इस समय एक मुन्शी कमलनयन था। सन् १८०३ में अंगरेज़ों और

---

lac and a half of rupees to pay his troops He is reported to be a good and fair man, and by what I have seen of him lately from his correspondence, has every appearance of being so; but I must be more convinced that he is so befor I give him money, at any rate not to that extent, if he does anything worth notice it will be time enough to pay him then"—General Lake's Private ' letter to Marquess Wellesley, dated Agra 22nd September, 1804

सींधिया के बीच जो सन्धि हुई थी उस पर सींधिया की ओर से मुन्शी कमलनयन के हस्ताक्षर हुए थे। जेम्स मिल के इतिहास से स्पष्ट पता चलता है कि मुन्शी कमलनयन अंगरेज़ों का धनक्रीत और उनका पक्का हितसाधक* था।

जीन बेप्टिस्टे का विश्वासघात

जीन बेप्टिस्टे ने सींधिया के साथ विश्वासघात करके उस सवार सेना को समय पर भरतपुर पहुँचने से रोके रक्खा, जिसे दौलतराव सींधिया ने आगे रवाना कर दिया था। बाद में जब भरतपुर के मोहासरे के बाद जसवन्तराव होलकर और दौलतराव सींधिया की भेंट हुई, तब दौलतराव को जीन बेप्टिस्टे के इस विश्वासघात का पता चला। इस पर दौलतराव ने जीन बेप्टिस्टे को क़ैद कर लिया; किन्तु उस समय तक जीन बेप्टिस्टे का विश्वासघात अपना काम कर चुका था।

अंगरेज़ों को जब पता लगा कि स्वयं दौलतराव सींधिया भरतपुर की ओर बढ़ा चला आ रहा है और चम्बल नदी के निकट आ पहुँचा है, तो उन्होंने तुरन्त मुन्शी कमलनयन की मारफ़त सींधिया को यह लोभ दिया कि यदि आप पीछे लौट कर होलकर के मालवा के कुछ ज़िलों पर क़ब्ज़ा कर लें तो वे सब ज़िले और बहुत सा नक़द धन कम्पनी की ओर से आपकी भेंट कर दिया जायगा। दौलतराव सींधिया ने होलकर के उन ज़िलों पर हमला

---

* Mill's *History of British India*, book vi chap viii

करना स्वीकार न किया, फिर भी मुन्शी कमलनयन की चालों और इन नरेशों के पुराने परस्पर अविश्वास ने इतना असर अवश्य किया कि दौलतराव सींधिया बजाय भरतपुर पहुँचने के आठ मील पीछे हट कर अपनी सेना सहित सब्बलगढ़ में ठहर गया। जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा दोनों ने पिछले युद्ध में सींधिया के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया था और इसमें सन्देह नहीं कि उस दुर्घटना की याद ने जौन बेप्टिस्टे और मुन्शी कमलनयन के कार्य को बहुत सुगम कर दिया।

राघोजी भौंसले के साथ अन्याय

दौलतराव सींधिया के अतिरिक्त राघोजी भौंसले के भी जसवन्तराव की मदद के लिए पहुँच जाने का अंगरेज़ों को डर था। अब हमें यह देखना होगा कि उन्होंने किस प्रकार राजा राघोजी भौंसले को जसवन्तराव होलकर की मदद कर सकने के अयोग्य बनाए रक्खा।

जिस तरह अंगरेज़ों ने सींधिया के साथ सन् १८०३ की सन्धि को तोड़ कर ग्वालियर और गोहद के इलाके उससे बलपूर्वक छीन लिए थे, उसी तरह बरार राज के कई उपजाऊ प्रान्त उन्होंने सन्धि के विरुद्ध अपने क़ब्ज़े में कर लिए और राजा राघोजी भौंसले से उसकी स्वीकृति पर ज़बरदस्ती दस्तख़त कराने चाहे। राजा राघोजी ने इस अन्याय का विरोध किया। २४ मार्च सन् १८०५ को गवरनर जनरल ने डाइरेक्टरों के नाम बरार के इन प्रान्तों के विषय में लिखा :—

"राजा की उन हितकर शर्तों को नामन्ज़ूर करने से और राजा और उसके मन्त्रियों के बयानों के आम तर्ज़ से यह स्पष्ट है कि हमने जो प्रान्त राजा से ले लिए हैं, उसे वह अभी तक अपने साथ अन्याय और ब्रिटिश सरकार की ओर से विश्वासघात समझता है।"*

यानी बरार का राजा अभी तक इस अन्याय को अन्याय कह रहा था और इस अन्याय के सामने उसने गर्दन न झुकाई थी। इसके अलावा नागपुर के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन ने इस समय राजा राघोजी के साथ अत्यन्त अनादर का व्यवहार शुरू कर दिया। निस्सन्देह उस समय के भारतीय नरेशों के दरबारों में रेज़िडेण्टों का अच्छा या बुरा व्यवहार कम्पनी की भारतीय नीति का एक निश्चित अङ्ग होता था।

अंगरेज़ों को अब इस बात का डर था कि इस समस्त व्यवहार के बाद कहीं बरार का राजा अपनी रही सही ताक़त से जसवन्त-राव होलकर का साथ न दे जाय और अपने पैतृक सूबे अंगरेज़ों के हाथों से छुड़ाने की कोशिश न कर बैठे। मथुरा से बैठे हुए जसवन्त-राव ने राजा राघोजी भोंसले को अपनी ओर करने का प्रयत्न भी किया था। इसलिए मार्किस वेलसली ने बरार के राज को ही हिन्दोस्तान के मानचित्र से मिटा देने का सङ्कल्प कर लिया।

* "It manifestly appeared not merely by the Raja's rejection of those Beneficial articles but by the general tenor of his declarations and those of his ministers, that the Raja still considered the alienation of the provinces in question to be an act of injustice and a violation of faith on the part of the British Government"

गवरनर जनरल के जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र किया गया है उसमें लिखा है :—

"गवरनर जनरल ने नागपुर के रेज़िडेण्ट के नाम यह आदेश भेज देना उचित समझा कि नागपुर के राजा को कारवाई के विषय में अंगरेज़ सरकार को जो कुछ ख़बर मिली है उसकी सूचना उचित अवसर पाकर बिलकुल खुले तरीक़े पर राजा को दे दो और यह कह दो कि गवरनर जनरल आवश्यक समझता है कि बिना आप (राजा) की ओर से किसी जवाब का इन्तज़ार किए आपके आक्रमण को रोकने और आपको इस विश्वासघात का दण्ड देने के उद्देश से तैयारियाँ शुरू कर दे; × × × गवरनर जनरल ने यह निश्चय कर लिया कि जिस रियासत में ईमानदारी के प्रत्येक असूल की इतनी कमी है उसके विरुद्ध कम्पनी की समस्त शक्ति और सामर्थ्य से काम लिया जाय, और जब तक कि राजा पूरी तरह से परास्त न हो जाय, तब तक रुका न जाय।"*

जनरल लेक और मार्किस वेल्सली दोनों के अनेक पत्रों से प्रकट है कि जनरल मॉनसन की पराजयों के बाद ही उन्होंने यह निश्चय

---

* "The Governor-General deemed it expedient to issue instructions to the Resident at Nagpore, directing him to take a proper opportunity of apprizing the Raja of Berar in the most public manner of the information which the British Goverment had received with regard to his proceeding that the Governor General had deemed it necessary, without awaiting any explanation, to make prepartory arrangements for the eventual purpose of repelling aggression and punishing treachery on the part of the Raja, . The Governor General resolved to call forth the whole power and resources of the Company against a state so devoid of every principle of good faith, and not to desist, until the Government of the Raja should have been effectually reduced"

कर लिया था कि भारतवासियों के दिलों पर ब्रिटिश सत्ता का दबदबा फिर से कायम करने के लिए भरतपुर के राजा रणजीतसिंह और नागपुर के राजा राघोजी भोंसले दोनों को कोई न कोई बहाना निकाल कर हरा दिया जाय और उनके राज को भारत के मानचित्र से मिटा दिया जाय। इसलिए 'विश्वासघात' किस ओर था और 'ईमानदारी के प्रत्येक असूल की इतनी कमी' अंगरेज़ों की ओर थी या राजा राघोजी भोंसले की ओर—यह बात इतिहास से स्पष्ट है।

बरार के राजा पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुम होलकर की मदद करना चाहते हो। किन्तु राजा को इस इलज़ाम के विषय में कोई शब्द कहने या पत्र का जवाब देने तक का मौक़ा नहीं दिया गया। इसके विपरीत राजा राघोजी को धोखे में रखने के लिए गवरनर जनरल ने आगे चल कर लिखा है :—

"किन्तु रेज़िडेण्ट को हिदायत की गई कि तुम ये सब बातें उस समय तक राजा से न कहना जिस समय तक कि तुम्हें होलकर के साथ जनरल लेक की पहली लड़ाइयों का परिणाम मालूम न हो जाय, सिवाय इसके कि कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाय जिसके कारण इन बातों का फ़ौरन कह देना ही तुम्हें उपयोगी और आवश्यक जान पड़े।

"साथ ही रेज़िडेण्ट को यह भी आदेश दिया गया कि तुम राजा को विश्वास दिला दो कि जब तक आप स्वयं पिछली सन्धि की शर्तों पर क़ायम रहेंगे, तब तक अंगरेज़ सरकार आपके साथ अत्यन्त मित्रता का व्यवहार जारी रक्खेगी × × ×।"*

* "The Resident, however, was directed to suspend these representa-

जनरल वेलस्ली को हिदायत

अक्तूबर सन् १८०४ के शुरू में गवरनर जनरल ने अपने भाई जनरल वेलस्ली को फिर कलकत्ते से दक्खिन वापस भेजा और यह हिदायत की कि तुम उचित अवसर देख कर नागपुर पर आक्रमण कर देना। नागपुर में वेलस्ली की काररवाइयों का ज़िक्र किसी अगले अध्याय में किया जायगा, यहाँ पर केवल यह दिखाना आवश्यक था कि किस प्रकार अंगरेज़ों ने सींधिया और भोंसले दोनों को जसवन्तराव होलकर और राजा रणजीतसिंह की सहायता के लिए पहुँचने से रोके रक्खा।

भरतपुर के साथ सन्धि

उधर मार्किस वेलस्ली युद्ध समाप्त करने के लिए अधीर हो रहा था। ९ मार्च सन् १८०५ को उसने जनरल लेक को लिखा—

"× × × मैं हद से ज़्यादा इच्छुक हूँ कि जिन शर्तों पर भी हो सके, युद्ध को शीघ्र समाप्त किया जाय। × × × मेरी आप से प्रार्थना है कि जब तक मोहासरे को जारी रखने के लिए आपके पास पूरा पूरा और काफ़ी सामान न हो, आप फिर से मोहासरा शुरू करने की कोशिश न करें; जब तक सफलता में ज़रा सा भी सन्देह है तब तक आप हमला

---

tions until he should have learned the result of the Commander-in-Chief's first operations against Holkar unless circumstances should render an immediate statement of them useful and necessary

"The Resident was at the same time instructed to assure the Raja of the most amicable disposition of the British Government towards him while he should continue to abide by his engagements under the late peace etc etc "

करने का प्रयत्न न करें। मुझे डर है कि हमने इस जगह को और इस शत्रु को इतना तुच्छ समझ लिया था कि हमने दोनों को अजेय बना दिया।"*

जनरल लेक ने बार बार राजा रणजीतसिंह से सुलह की प्रार्थना की। रणजीतसिंह ने बार बार लेक की शर्तों को अस्वीकार किया। पत्र व्यवहार बराबर जारी रहा। अन्त में जब राजा रणजीतसिंह ने देखा कि अमीर ख़ाँ ने होलकर के साथ विश्वासघात किया, और दौलतराव सींधिया भी अपने नमकहराम सलाहकारों की चालों में आकर जसवन्तराव होलकर की मदद के लिए भरतपुर न पहुँच सका, तो विवश होकर उसने जनरल लेक की सुलह की प्रार्थना की ओर ध्यान देना शुरू किया। फिर भी लेक के ज़ोर देने पर भी राजा रणजीतसिंह ने जसवन्तराव होलकर को अंगरेज़ों के हवाले करना किसी तरह स्वीकार न किया। अंगरेज़ों ने मजबूर होकर भरतपुर का मोहासरा बन्द कर दिया। राजा ने सब से पहले मार्च सन् १८०५ के अन्त में होलकर और उसकी शेष सेना को खुले सब्बलगढ़ की ओर रवाना कर दिया। उसके बाद अप्रैल के शुरू में अंगरेज़ों और भरतपुर के राजा में सन्धि हो गई। सींधिया की सवार सेना भरतपुर पहुँची, किन्तु इस सुलह हो जाने के बाद डीग का क़िला और भरतपुर का वह समस्त इलाक़ा, जिस पर

* ". . I feel too strong a desire for the early termination of the war, even on any terms I request Your Lordship not to attempt to renew the siege without full and ample means for its prosecution, not to attempt any assault while the least doubt exists of success I fear that we have despised the place and enemy so much as to render both formidable" — Marquess Wellesley to General Lake 9th March, 1805

हाल में अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया था, ज्यों का त्यों राजा भरतपुर को लौटा दिया गया, यानी राजा रणजीतसिंह को इस युद्ध से किसी तरह की हानि नहीं उठानी पड़ी। जसवन्तराव होलकर कहीं और जाकर फिर एक बार अंगरेज़ों के साथ अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया।

भरतपुर का महत्व

भरतपुर की सेना की वीरता और वहाँ के क़िले की अभेद्यता उस समय समस्त भारत में प्रसिद्ध हो गई। इतिहास लेखक थॉर्नटन लिखता है कि "जिस समय सन् १८०५ में अंगरेज़ भरतपुर के क़िले का मोहासरा कर रहे थे उस समय कम्पनी के कुछ हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने कहा था कि "हम लोगों को नगर के ऊपर पीताम्बर पहने, शङ्ख, चक्र, वंशी, पद्म धारण किए श्रीकृष्ण दिखाई दे रहे हैं।"*

निस्सन्देह भरतपुर की दीवारों ने अंगरेज़ों के गर्व को चूर कर दिया और भारतवासियों के दिलों से कुछ समय के लिए उनके जादू के असर को दूर कर दिया।

* "In 1805, during the first siege, some of the native soldiers in the British service declared that *they distinctly* saw the town defended by that divinity, dressed in yellow garments, and armed with his peculiar weapons, the bow, mace, conch and pipe "—Thornton in his *Gazetteer of India*



सत्ताईसवाँ अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का अन्त

सींधिया और होलकर की भेंट

भरतपुर का मोहासरा हटा लिया गया। राजा रणजीतसिंह के साथ अंगरेज़ों की सन्धि हो गई। किन्तु महाराजा जसवन्तराव होलकर अभी तक परास्त न हुआ था और न दौलतराव सींधिया की शिकायतों का ही निबटारा हुआ था।

जसवन्तराव होलकर भरतपुर से चल कर सब्बलगढ़ में सींधिया से आ मिला। इन दो बलवान नरेशों के मिल जाने से अंगरेज़ और भी अधिक घबरा गए। कम्पनी की आर्थिक अवस्था इस समय गिरी हुई थी। मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को आज्ञा दी कि आप सींधिया का पीछा कीजिये। सींधिया और

होलकर दोनों सब्बलगढ़ में कोटा पहुँचे और कोटा से अजमेर गए। जनरल लेक ने २५ अप्रैल सन् १८०५ को मार्क्विस वेल्सली को लिखा कि—"मेरे लिए सींधिया का पीछा कर सकना असम्भव होगा।" अपनी इस असमर्थता के कारणों में उसने "गरमी की तेज़ी" और "पानी की कमी" के अतिरिक्त एक कारण यह भी लिखा—

"कोई ऐसा अधम कार्य नहीं जिसे ये लोग न कर सकते हों; उस अमानुषिक राक्षस होलकर को सब से अधिक आनन्द समस्त यूरोपियनों का बध करने मे आता है और जहाँ तक सुनने में आया है सेरजीराव घोटका के भाव भी हमारी ओर ठीक इसी प्रकार के हैं।"*

सेरजीराव घोटका सींधिया का एक विश्वस्त सेनापति और अनुयायी था। प्रतिष्ठित भारतीय नरेशों के लिए अपने सरकारी और प्राइवेट पत्रों में नीच से नीच अपशब्दों का उपयोग करना और भारतीय नरेशों के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाना उस समय के कम्पनी के बड़े से बड़े अंगरेज़ मुलाज़िमों के लिए एक सामान्य बात थी। जनरल लेक के आयरलैण्ड और भारत के असंख्य पाप कृत्यों से ज़ाहिर है कि "अधम कार्यों" के करने में प्रायः कोई भी मनुष्य जनरल लेक का मुक़ाबला न कर सकता था। वास्तव में जसवन्तराव होलकर और दौलतराव सींधिया दोनों वीर और ऊँचे दर्जे के सेनानी साबित हो चुके थे और जनरल लेक जिसका एक

* "There is no vile act these pople are not equal to, that inhuman monster Holkar's chief delight is in butchering all Europeans, and by all accounts Serjie Rao Ghautka's disposition towards us is precisely the same"

मात्र शस्त्र उसके "गुप्त उपाय" थे; उन दोनों का मुक़ाबला करने से काँपता था।

मार्क्विस वेल्सली भी काफ़ी परेशान था। उसने जनरल लेक के पत्र के उत्तर में १७ मई सन् १८०५ को लिखा कि जहाँ तक हो सके "दौलतराव सींधिया के साथ लड़ाई छेड़ने से बचा जाय" और "यदि सम्भव हो तो बिना और अधिक लड़े होलकर के साथ भी सब मामलों का फ़ैसला कर लिया जाय।"

वेल्सली की परेशानी

किन्तु मार्किस वेल्सली इस बात को भी अनुभव कर रहा था कि इतने दिनों प्रयत्न करने पर भी भरतपुर जैसे छोटे से राजा से हार जाना, होलकर को वश में न कर सकना और सींधिया के साथ भी इस प्रकार समझौता कर लेना, इस सब में अंगरेज़ों की काफ़ी ज़िल्लत हुई है। वेल्सली केवल मौसम की ख़राबी और धन की कमी से विवश था। सुलह की बातचीत से वह केवल सींधिया और होलकर दोनों को धोखे में रखना चाहता था। उसकी हार्दिक इच्छा यही थी कि जितनी जल्दी मौक़ा मिले सींधिया और होलकर दोनों को नष्ट कर दिया जाय। एक ओर उसने जनरल लेक को लिखा कि मराठा नरेशों के साथ सुलह की बातचीत की जाय और दूसरी ओर उसने अवध के नवाब वज़ीर से नया क़र्ज़ लेने का प्रबन्ध किया। जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र आया है, उसी पत्र में आगे चल कर वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा—

दोबारा युद्ध की मंशा

"× × × ज्यों ही कि मौसम इजाज़त दे त्यों ही फिर युद्ध शुरू करने के लिए फ़ौजें पूरी तरह तैयार रहनी चाहिएं। निस्सन्देह इन बातों का प्रबन्ध आप कर ही लेंगे कि रसद इत्यादि जमा कर ली जाय और आइन्दा मौसम के शुरू में ही किसी समय सींधिया का नाश कर सकने के लिए जो जो तैयारी ज़रूरी हो, वह सब पूरी कर ली जाय।

"× × × सम्भव है हमें अगस्त महीने के क़रीब ही या ज्यों ही कि वर्षा का ज़ोर घटे, सींधिया पर हमला करना पड़े या होलकर से युद्ध करना पड़े।"*

इसी पत्र में मार्किस वेल्सली ने लेक को आदेश दिया कि सींधिया और होलकर से लड़ने के लिए चार सेनाएँ चारों ओर तैयार रक्खी जायँ। एक गोहद के राजा के ख़र्च पर सबसीडीयरी सेना गोहद में, दूसरी सेना बुन्देलखण्ड में, तीसरी आगरा और मथुरा में और चौथी देहली और दोआब के उत्तरी भाग में। इसके बाद २५ जुलाई सन् १८०५ को मार्किस वेल्सली ने जनरल लेक को फिर लिखा—

"यदि हमने, जितनी जल्दी से जल्दी मुमकिन हो सकता है, फिर से

---

* " . . . The troops . . . shuld be *completely ready* to commence active operations as soon as the season will permit and arrangements will of course be adopted by Your Lordship *for* collecting supplies, etc, and *for* completing every other *preparation* which may be necessary to enable Your Lordship to destroy *Scindhia* at any early period of the ensuing season

" . . . the possible contingency of our being *compelled* to attack Scindhia, or to operate against Holkar, about *the month* of August, *or as* soon as the violence of the *rainy season may* have subsided "—*Marquess* Wellesley's Official and Secret Letter to General Lake, dated 17th *May 1805*

युद्ध शुरू न कर दिया तो हम पर एक बहुत बड़ी आपत्ति आए बिना नहीं रह सकती। × × ×

"× × × इन नरेशों की संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध हमें × × × हिन्दोस्तान और दक्खिन के हर भाग में युद्ध करना होगा।"*

ज़ाहिर है कि मार्किस वेल्सली इस बात का निश्चय कर चुका था कि परिणाम चाहे कुछ भी हो, अगस्त सन् १८०५ में सींधिया और होलकर दोनों के साथ फिर से युद्ध आरम्भ कर दिया जाय। किन्तु मार्किस वेल्सली की इच्छा पूरी न हो सकी। स्वयं वेल्सली को भारत छोड़ कर शीघ्र इंगलिस्तान लौट जाना पड़ा।

अंगरेज़ों की लगातार हारों का परिणाम

कारण यह था कि दो वर्ष से ऊपर के लगातार युद्धों और प्रायः साल भर की लगातार हारों के कारण इंगलिस्तान के शासकों और कम्पनी के डाइरेक्टरों में मार्किस वेल्सली और जनरल लेक दोनों के प्रति अप्रसन्नता बढ़ती जा रही थी। इस अप्रसन्नता का मुख्य कारण यह था कि मार्किस वेल्सली की युद्ध नीति के सबब कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस समय बहुत ख़राब हो गई थी। सींधिया और भोंसले के विरुद्ध संग्रामों में धन को पानी की तरह बहा कर, रिशवतें दे देकर, अंगरेज़ों ने विजय

* "Great danger must inevitably be produced by our abstaining from the prosecution of hostilities at the earliest practicable period of time,

. . . against the confederated forces . . . hostilities in every quarter of Hindustan and the Deccan."

प्राप्त की थी और होलकर और राजा भरतपुर के विरुद्ध उनका यह उपाय भी निष्फल जा रहा था। अंगरेज़ जाति एक व्यापारी जाति है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इंगलिस्तान के व्यापारियों की एक कम्पनी थी। यदि दूसरे देशों में अंगरेज़ी साम्राज्य का बढ़ना इन लोगों को प्रिय था तो केवल इसलिए क्योंकि उससे उन्हें आर्थिक लाभ की आशा थी इंगलिस्तान के लोगों ने भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य स्थापित करने में कभी एक पैसा भी इंगलिस्तान के कोष से लाकर ख़र्च नहीं किया। ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का संस्थापन केवल हिन्दोस्तानियों के पैसे से और अधिकतर हिन्दोस्तानियों ही के रक्त से हुआ है। अंगरेज़ क़ौम किसी भी दूसरी हानि को सहन कर सकती है, किन्तु धन की हानि उसके लिए सर्वथा असह्य है। यही कारण था कि इंगलिस्तान के शासक और कम्पनी के डाइरेक्टर दोनों इस समय मार्किस वेलसली को गवरनर जनरल के पद से अलग करके इंगलिस्तान वापस बुला लेने के लिए उत्सुक थे।

कम्पनी की आर्थिक स्थिति

कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस समय बहुत ख़राब थी। भारत में कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा था। लखनऊ, बनारस और अन्य कई स्थानों से मार्किस वेलसली ने कम्पनी के नाम पर बड़ी बड़ी रक़में क़र्ज़ ले रक्खी थीं जिनमें बीस लाख रुपए की एक रक़म लखनऊ के नवाब वज़ीर से क़र्ज़ ली गई थी। इस समय वेलसली ने फिर नवाब वज़ीर पर ज़ोर देकर उससे दस लाख रुपए और क़र्ज़

माँग रहा था ।* क़रीब पाँच लाख रुपए माहवार जनरल लेक की अपनी सेना की तनख़ाहों का ख़र्च था, और इसके अलावा जनरल लेक के "गुप्त उपायों" से भारतीय नरेशों के जो सिपाही अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करके कम्पनी की ओर आ गए थे, उनका ख़र्च क़रीब छै लाख रुपए माहवार का था; और जब कि भारतीय ब्रिटिश सरकार क़र्ज़ों में डूबी हुई थी, ये सब तनख़ाहें इस समय कई महीनों से चढ़ी हुई थीं ।†

इसके अतिरिक्त सम्राट शाहआलम को वश में रखने और दिल्ली पर क़ब्ज़ा रखने के लिए कम्पनी को दिल्ली में एक बड़ी सेना रखनी पड़ती थी, जिसके बदले में कम्पनी को एक पाई आमदनी के रूप में न मिलती थी ।‡

शोषण के नमूने

स्वयं इंगलिस्तान के अन्दर कम्पनी के ज़िम्मे क़र्ज़ा बढ़ता जा रहा था । पार्लिमेण्ट के अन्दर २५ फ़रवरी सन् १८०६ को मि० पॉल ने पार्लिमेण्ट के सदस्यों को यह सूचना दी :—

"सन् १७९३ के क़ानून के अनुसार, भारत के फ़ौजदारी और दीवानी

---

* Lord Cornwallis' letter to Lord Castlereagh, 1st August, 1805

† "Lake's army, the pay of which amounts to about five lacs per month, is above five months in arrears. An army of irregulars, composed chiefly of deserters from the enemy, which with approbation of Government, the General assembled by proclamation, and which costs about six lacs per month, is likewise somewhat in arrear."—Lord Cornwallis to Lord Castlereagh, August 9th, 1805

‡ Lord Cornwallis to Colonel Malcolm, 14th August, 1805

महकमों का पूरा ख़र्च अदा करने के बाद, क़ानून की यह आज्ञा है कि कम से कम दस लाख पौण्ड (क़रीब डेढ़ करोड़ रुपए) प्रतिवर्ष व्यापार में लगाए जायँ, और इंगलिस्तान की राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए हर साल भारत से इंगलिस्तान भेज दिए जाया करें। सन् १७९८ से अब तक कोई रक़म व्यापार में नहीं लगाई गई, और इस एक मामले में क़ानून के विरुद्ध इंगलिस्तान को ८० लाख पौण्ड से अधिक की हानि पहुँचाई जा चुकी है। इस हद तक हमारी व्यापारी जाति को हमारे उपनिवेशों से इतनी बड़ी रक़म से वञ्चित रक्खा गया है, जो क़ानून से निर्धारित और नियत थी।"*

वेल्सली की वापसी

इंगलिस्तान के शासकों की यह आज्ञा थी कि कम्पनी के भारतीय इलाक़ों की आमदनी में से बचाकर यहाँ की अंगरेज़ सरकार हर साल कम से कम दस लाख पौण्ड का माल मुफ़्त कम्पनी के हिस्सेदारों की जेबें भरने के लिए इंगलिस्तान भेज दिया करे। जेम्स मिल जैसे उदार अंगरेज़ ने लिखा है कि—"इंगलिस्तान को हिन्दोस्तान से तभी लाभ है जब कि हिन्दोस्तान की आमदनी में से बचाकर धन इंगलिस्तान भेजा

* "By the Act of 1793, after the payment of the military and civil establishment, the Act enjoins that a sum not less than one million of pounds sterling shall be applied for commercial purposes, and remitted to Great Britain, to form a part of its national wealth. Since 1798, no sum whatever has been applied to commercial purposes, and the law has been violated in this single instance to a sum exceeding 8 millions. To this extent, and to this amount has this commercial nation been deprived of such an import from our colonies, which the law ordered and enjoined."

जा सके ।"* किन्तु आए दिन के युद्धों के कारण ८ साल तक यह मुफ़्त का माल इंगलिस्तान न पहुँच सका । होलकर और भरतपुर के विरुद्ध संग्रामों में भी मार्किस वेल्सली को लगातार ज़िल्लत उठानी पड़ी थी । स्वभावतः इंगलिस्तान के लोग मार्किस वेल्सली से इस समय काफ़ी असन्तुष्ट थे । कम्पनी के जिन हिस्सेदारों की वार्षिक आमदनी में कमी पड़ गई थी, उन्होंने भी शोर मचाना शुरू किया । इंगलिस्तान के सब लोग उस समय, जिस तरह भी हो सके, युद्ध बन्द कर देने के लिए उत्सुक थे । अन्त में मार्किस वेल्सली की जगह लॉर्ड कॉर्नवालिस को दूसरी बार भारत का गवरनर जनरल नियुक्त करके भेजा गया । १८ जुलाई सन् १८०५ को कॉर्नवालिस मद्रास पहुँचा, २९ को कलकत्ते पहुँचा, और ३० जुलाई सन् १८०५ को उसने दूसरी बार गवरनर जनरल का पद ग्रहण किया ।

शुरू अगस्त में मार्किस वेल्सली अपने देश वापस चला गया । अपने समस्त शासन काल में उसने एक भी कार्य ऐसा नहीं किया जिसके लिए कोई भारतवासी उसे प्रेम या कृतज्ञता के साथ याद कर सके ।

फिर लॉर्ड कॉर्नवालिस

भारतीय नरेशों या भारतीय प्रजा के साथ लॉर्ड कॉर्नवालिस को मार्किस वेल्सली की अपेक्षा अधिक प्रेम न था, और न दोनों की साम्राज्य पिपासा में ही कोई अन्तर था । इसी दूसरे मराठा युद्ध के शुरू

---

* "If India affords a surplus revenue which can be sent to England thus far is India beneficial to England"—Mill, vol vi, p. 471

के दिनों में सींधिया और बरार के राजा के विरुद्ध जनरल लेक और जनरल वेल्सली की विजयों का समाचार सुन कर लॉर्ड कॉर्नवालिस ने इङ्गलिस्तान से बैठे हुए ३० अप्रैल सन् १८०४ को मार्किवस वेल्सली को लिखा था—

"अपने मित्रों जनरल लेक और जनरल वेल्सली की महत्वपूर्ण और गौरवान्वित विजयों से मुझे अत्यन्त सच्चा सन्तोष हुआ है × × ×।

"× × × मैं सच्चे जी से चाहता हूँ कि जिस तरह के योग्य नीतिज्ञों और चतुर सेनापतियों के सुपुर्द हाल में हमारे एशियाई साम्राज्य के संरक्षण का भार रहा है, उसी तरह के योग्य नीतिज्ञ पृथ्वी के हर भाग में मेरे देश के हितों को बढ़ावें और ऐसे ही चतुर सेनापति समस्त पृथ्वी पर मेरे देश की सेनाएँ लेकर जायँ।"*

सन्धि की उत्सुकता

किन्तु कम्पनी की आर्थिक कठिनाइयों, होलकर और सींधिया के विरुद्ध विजय की दुराशा, और भावी पराजयों से अंगरेज़ी राज के सर्वनाश के भय ने लॉर्ड कॉर्नवालिस को विवश कर दिया कि भारत पहुँचते ही सबसे पहले वह युद्ध बन्द करने का प्रयत्न करे। ८ अगस्त सन् १८०५ को कॉर्नवालिस कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रान्तों

* "The important and glorious achievements of my friends, General Lake and Wellesley, have afforded me the most sincere satisfaction

* * *

" I earnestly hope that, in every part of the globe, its (my country's interests will be promoted by as able statesmen, and its (my country's) armies conducted by as meritorious generals, as those who hav of late been entrusted with the preservation of our Asiatic Empire "

की ओर बढ़ा। १६ सितम्बर सन् १८०५ को उसने जनरल लेक के नाम इस सम्बन्ध में एक विस्तृत पत्र लिखा।

महाराजा दौलतराव सींधिया के साथ अंगरेज़ों के मुख्य झगड़े इस समय ये थे :—

(१) रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को दौलतराव ने अपने यहाँ क़ैद कर रक्खा था और अंगरेज़ उसकी रिहाई पर ज़ोर दे रहे थे।

(२) ग्वालियर और गोहद अभी तक अंगरेज़ों के हाथों में थे और सींधिया उन्हें वापस माँग रहा था।

(३) युद्ध के शुरू में धौलपुर, बारी और राजकेरी के ज़िले अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में आ गए थे और अंगरेज़ ही वहाँ की माल-गुज़ारी वसूल करते थे। पिछली सन्धि के अनुसार ये सब ज़िले सींधिया को वापस मिल जाने चाहिए थे, किन्तु अंगरेज़ों ने अभी तक उन्हें वापस न किया था।

(४) महाराजा जयपुर की ओर से क़रीब तीन लाख रुपया सालाना ख़िराज सींधिया को मिला करता था। यह ख़िराज अब ऊपर ही ऊपर अंगरेज़ वसूल कर रहे थे।

और कई छोटी छोटी बातें थीं जिनका हल करना इतना अधिक कठिन न था।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने १६ सितम्बर के पत्र में जनरल लेक को साफ़ साफ़ लिख दिया कि सींधिया से इन शर्तों पर मैं सुलह कर लेने को तैयार हूँ :—

(१) जेनकिन्स की रिहाई का सवाल ही न उठाया जाय।

(२) ग्वालियर और गोहद फ़ौरन सींधिया को वापस दे दिए जायँ।

(३) धौलपुर, बारी और राजकेरी के ज़िले सींधिया के हवाले कर दिए जायँ और पिछली सन्धि से अब तक की वहाँ की मालगुज़ारी का सींधिया को हिसाब दे दिया जाय।

(४) तीन लाख रुपए सालाना जयपुर का खिराज सींधिया को वापस कर दिया जाय इत्यादि। केवल इस शर्त पर कि सींधिया होलकर से अलग हो जाय और गोहद के राना के ख़र्च के लिये ढाई या तीन लाख रुपए वार्षिक का प्रबन्ध कर दे।

इसी पत्र में कॉर्नवालिस ने लेक को लिखा कि मैं जसवन्तराव होलकर के सारे इलाके जसवन्तराव को वापस देकर उसके साथ भी सुलह करने को तैयार हूँ।

कॉर्नवालिस की मृत्यु

निस्सन्देह ये सब शर्तें स्वीकार करना अंगरेज़ों के लिए काफ़ी दबना था, किन्तु लॉर्ड कॉर्नवालिस के पास उस समय और कोई चारा न था। फिर भी मराठों के साथ सुलह करने का यश कॉर्नवालिस को प्राप्त न हो सका। अभी पत्र-व्यवहार हो ही रहा था कि तीन महीने से कम गवरनर जनरल रहने के बाद अक्तूबर सन् १८०५ में अचानक ग़ाज़ीपुर में लॉर्ड कॉर्नवालिस की मृत्यु हो गई। ग़ाज़ीपुर में ही भारतवासियों के चन्दे से उसके मृत शरीर के ऊपर एक सुन्दर मक़बरा बनाया गया।

लूट का एक और उदाहरण

लॉर्ड कॉर्नवालिस के इस क्षणिक शासन काल की एक और छोटी सी घटना वर्णन करने योग्य है, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उस समय की राजनैतिक, व्यापारिक लूट का एक सुन्दर उदाहरण मिलता है :

कॉर्नवालिस के भारत आने के समय कम्पनी की सेनाओं की तनख़ाहें इतनी चढ़ी हुई थीं कि लॉर्ड कॉर्नवालिस को फ़ौजों में ग़दर हो जाने का भय था। इसके इलाज के लिए कॉर्नवालिस ने एक तो तुरन्त फ़ौजें कम कर दीं। दूसरे उस समय कम्पनी का कुछ रुपया माल की ख़रीदारी के लिए इङ्गलिस्तान से जहाज़ों में चीन जा रहा था। ये जहाज़ संयोगवश मद्रास में ठहरे। कॉर्नवालिस ने इस रक़म को जहाज़ों से लेकर भारतीय फ़ौज की तनख़ाहें देने में ख़र्च कर लिया। ६ अगस्त सन् १८०५ को कॉर्नवालिस ने कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा कि मेरे इस काम से कम्पनी को ज़रा भी हानि या असुविधा न होगी; क्योंकि आजकल क़रीब चालीस लाख रुपए सालाना का माल, जिसमें अधिकतर अफ़ीम और कपास होती है, मुल्क भारत से चीन जाता है और उसके बदले में चीन से चीन का माल लेकर इङ्गलिस्तान भेज दिया जाता है। चीन में इस माल की क़ीमत आजकल बढ़ती जा रही है; मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जो रक़म मैंने ली है, वह इसी भारतीय माल से चीन में अदा कर दी जायगी और इङ्गलिस्तान में जाने वाले माल में कोई कमी न होगी।

ज़ाहिर है कि इस चालीस लाख सालाना की लूट का उस डेढ़ करोड़ सालाना के मुल्क के माल से कोई सम्बन्ध न था, जिसका ऊपर ज़िक्र आ चुका है और जिसका इङ्गलिस्तान भेजा जाना क़ानूनन् ज़रूरी बताया गया था।

जिन भारतीय सरदारों ने पिछले संग्रामों में अपने देशवासियों के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी थी, उनमें से कुछ को कॉर्नवालिस ने दिल्ली के दक्खिन और पच्छिम के इलाकों में जागीरें देने की भी तजवीज़ की। किन्तु शायद इस काम को भी पूरा करने का उसे समय न मिल सका।

सर जार्ज बारलो

लॉर्ड कॉर्नवालिस की मृत्यु के बाद गवरनर जनरल की कौन्सिल का सीनियर मेम्बर जॉर्ज बारलो भारत का गवरनर जनरल नियुक्त हुआ। यह वही बारलो था, जिसके मार्किस वेल्सली के नाम १२ जुलाई सन् १८०६ के लम्बे निवेदन पत्र का ऊपर ज़िक्र आ चुका है, जिसमें बारलो ने मार्किस वेल्सली को सलाह दी थी—

"हिन्दोस्तान के अन्दर एक भी देशी रियासत इस तरह की बाक़ी नहीं रहने देनी चाहिए, जो ब्रिटिश सत्ता के सहारे क़ायम न हो, या जिसका समस्त राजनैतिक व्यवहार पूरी तरह से ब्रिटिश सत्ता के वश में न हो।"*

* " . . no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British power, or the political conduct of which is not under its absolute control."—Sir George Barlow's memorandum to Marquess Wellesley, dated 12th July, 1803

किन्तु इस समय देश की परिस्थिति और कम्पनी की आर्थिक कठिनाई से बारलो भी मजबूर था। होलकर और सींधिया दोनों इस समय अजमेर में थे। जनरल लेक में उनके मुक़ाबले का साहस न था। इस लिए बारलो को सबसे पहली चिन्ता यह हुई कि जिस तरह भी हो सके, सींधिया और होलकर को एक दूसरे से पृथक कर दिया जाय।

शुरू ही से सींधिया को जसवन्तराव होलकर पर पूरा विश्वास न था और जसवन्तराव का साथ देने के लिए उसमें जैसा चाहिए वैसा उत्साह भी न था। इस लिए लॉर्ड कॉर्नवालिस की सुलह की तजवीज़ों का सींधिया पर अच्छा असर पड़ा। अपनी ओर से वह युद्ध बन्द करने के लिए राज़ी हो गया।

सींधिया के साथ नयी सन्धि

मुन्शी कमलनयन का ज़िक्र पिछले अध्याय में किया जा चुका है जिस समय जसवन्तराव भरतपुर से चल कर सींधिया से आकर मिला, मुन्शी कमलनयन एकाएक अपने मालिक को छोड़ कर अंगरेज़ों के पास दिल्ली चला आया। मुन्शी कमलनयन की मार्फ़त ही जनरल लेक ने सींधिया के साथ फिर बातचीत शुरू की। सींधिया को होलकर से तोड़ने का कार्य फिर कमलनयन को सौंपा गया और अन्त में कमलनयन की मार्फ़त ही २३ नवम्बर सन् १८०५ को महाराजा दौलतराव सींधिया और अंगरेज़ों के बीच फिर से सन्धि हो गई।

इस नई सन्धि में सन् १८०३ वाली सन्धि की कई शर्तें बदल

दी गई : सबसीडीयरी सन्धि का जुआ सींधिया की गर्दन से हटा लिया गया, और गोहद का प्रान्त और ग्वालियर का क़िला सींधिया को वापस दे दिए गए। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा इत्यादि राजपूताने की रियासतों को अंगरेज़ों ने महाराजा सींधिया की सामन्त रियासत स्वीकार कर लिया और वादा किया कि अंगरेज़ इन रियासतों के साथ अथवा सींधिया के अन्य सामन्तों के साथ कभी किसी तरह की पृथक सन्धि न करेंगे। तापती और चम्बल के बीच में होलकर का जो इलाक़ा सींधिया ने जीत लिया था वह सींधिया का इलाक़ा मान लिया गया। दोआब में सींधिया के जिन ज़िलों पर अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर रक्खा था उनमें से कुछ सींधिया को वापस दे दिए गए और शेष के बदले में अंगरेज़ों ने चार लाख रुपए नक़द सालाना महाराजा सींधिया को देते रहने का वादा किया। चम्बल नदी महाराजा सींधिया के राज की सीमा स्वीकार कर ली गई। सींधिया ने रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को क़ैद से छोड़ दिया। निस्सन्देह सन् १८०३ की सन्धि से यह सन्धि महाराजा दौलतराव सींधिया के लिए कहीं अधिक सम्माननीय थी।

होलकर का सन्धि करने से इनकार

जसवन्तराव होलकर के साथ भी अंगरेज़ों ने उसका सारा इलाक़ा वापस देकर सुलह कर लेना चाहा। जसवन्तराव का अब कोई सहायक न था। अरसे से वह अपने देश से निर्वासित था। अपनी सेना को देने के लिए भी उसके पास धन की कमी थी।

सींधिया ने भी साथ छोड़ दिया था। फिर भी वीर जसवन्तराव का साहस न टूटा। मालूम होता है कि वह इसी दूसरे मराठा युद्ध के शुरू की अपनी ग़लतियों का पूर्ण प्रायश्चित्त करने का संकल्प कर चुका था। इस समय भी उसने अंगरेज़ों के साथ सुलह करने से इनकार कर दिया। वह अभी तक अन्य भारतीय या एशियाई नरेशों को अपनी ओर मिलाकर अंगरेज़ों को भारत से निकालने के स्वप्न देख रहा था। सितम्बर सन् १८०५ के शुरू में अपने रहे सहे वफ़ादार अनुयाइयों सहित अजमेर से निकल कर लाहौर के महाराजा रणजीतसिंह और अन्य सिक्ख राजाओं से मदद की आशा में, या अधिक आगे बढ़ कर काबुल के बादशाह से सहायता प्राप्त करने की आशा में, जसवन्तराव होलकर पञ्जाब की ओर बढ़ा।

जनरल लेक अपनी सेना सहित होलकर का पीछा करने के लिए निकला। किन्तु इस समय भी होलकर का विरोध करने का जनरल लेक को एकाएक साहस न होता था। कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल बराबर जनरल लेक पर ज़ोर दे रही थी कि जिस तरह और जितनी जल्दी हो सके, होलकर के साथ सुलह कर ली जाय। व्यास नदी के ऊपर लेक और होलकर की सेनाएँ एक दूसरे के क़रीब आ गईं अमीर ख़ाँ, जो इस सारे अरसे में जसवन्तराव के साथ था, अपने जीवन चरित्र में लिखता है :—

"जनरल लेक ने देख लिया कि यदि रणजीतसिंह और पटियाले के राजा और इस देश के दूसरे सरदार महाराजा होलकर के साथ मिल जायँगे तो एक नई आग भड़क उठेगी, जिसे बुझाना बड़ा मुशकिल होगा। इसलिए

उसने × × × एक ऐसे चतुर और कुशल मध्यस्थ को खोजना शुरू किया जिसे होलकर के ख़ेमे में भेजा जाय और जिसके ज़रिये सुलह की बातचीत छेड़ी जाय। × × ×"*

जसवन्तराव और महाराजा रणजीत सिंह

जनरल लेक का डर और जसवन्तराव होलकर की आशाएँ बेमाने न थीं। काबुल का बादशाह उस समय भारत पर हमला करने की धमकी अंगरेज़ों को दे चुका था और महाराजा रणजीतसिंह और पंजाब के अन्य कई राजा नाम के लिए काबुल के बादशाह के मातहत थे। किन्तु रणजीतसिंह और अन्य सिख राजाओं के साथ अंगरेज़ों की गुप्त साज़िशें पहले से जारी थीं। ऊपर के अध्यायों में दिखाया जा चुका है कि महाराजा रणजीतसिंह वीर किन्तु अदूरदर्शी था और इसी कारण सदा अंगरेज़ों के हाथों में खेलता रहा। बल्कि मराठों का पतन और सिखों का अंगरेज़ों को मदद देना, ये दो ही सिखों की राजनैतिक उन्नति के मुख्य कारण थे। इस समय अंगरेज़ सिखों पर दो बातों के लिए सब से अधिक ज़ोर दे रहे थे। एक यह कि आप काबुल नरेश के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दें और दूसरे यह कि मराठों को अंगरेज़ों के

* " the General (Lake) saw himself that, if Ranjit Singh with the Patiyala chief and other Sirdars of this country, were to make common cause with the Maharaj (Holkar) a new flame would be lighted up, which it would be difficult to extinguish He accordingly looked out for an intelligent skilful negotiator to be sent to Holkar's camp, and to be made the channel for an overture, "—Autobiography of Amir Khan p 286.

विरुद्ध किसी तरह की मदद न दें। अफ़गानिस्तान के अन्दर भी कम्पनी के एजण्ट सर जॉन मैलकम की कोशिशों से उस समय भाई भाई में लड़ाइयाँ हो रही थीं। फिर भी यदि रणजीतसिंह निर्वासित जसवन्तराव का साथ देने का साहस कर बैठता तो बहुत सम्भव है कि अंगरेज़ों का सितारा व्यास के जल में सदा के लिए निमग्न हो जाता। किन्तु रणजीतसिंह ने बजाय जसवन्तराव का साथ देने के उसे अंगरेज़ों के कहने के अनुसार यह सलाह दी कि आप अंगरेज़ों के साथ सुलह कर लें।

पञ्जाब में अभी तक यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि इस अवसर पर जसवन्तराव ने महाराजा रणजीतसिंह को लाञ्छना देते हुए कहा कि यदि अपने एक विपत्तिग्रस्त अतिथि और देशवासी की ओर आपका यही धर्मपालन है, तो स्मरण रहे मेरे कुल में राज क़ायम रह जायगा, किन्तु आपके कुल की सत्ता का शीघ्र अन्त हो जायगा। यदि यह किंवदन्ती सच है तो जसवन्तराव होलकर की भविष्यद्वाणी सच्ची साबित हुई।

जसवन्तराव से सन्धि

अन्त में एक विपक्षी राज से होकर आगे बढ़ना असम्भव देख, मजबूर होकर जसवन्तराव को सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। २४ दिसम्बर सन् १८०५ को लॉर्ड कॉर्नवालिस की निश्चित की हुई शर्तों पर अंगरेज़ों और जसवन्तराव होलकर के बीच सन्धि हो गई। ताप्ती और गोदावरी के दक्खिन का वह सारा इलाक़ा जिस पर अंगरेज़ों ने हाल में क़ब्ज़ा कर लिया था, जसवन्तराव होलकर को

वापस दे दिया गया और जसवन्तराव को अपने पूरे राज का अनन्य और स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लिया गया, अर्थात् इस युद्ध से होलकर की स्वाधीनता या उसके राज के क्षेत्रफल में तनिक भी अन्तर न आया।

दूसरे मराठा युद्ध का परिणाम

इस प्रकार ले देकर दूसरे मराठा युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध से मार्किस वेल्सली का वास्तविक उद्देश पूरा न हो सका, अर्थात् मराठों की सत्ता का सर्वथा अन्त न हो सका। सिवाय पेशवा के और कोई मराठा नरेश सबसीडीयरी सन्धि के जाल में भी न फँस सका। किन्तु मराठों की ताक़त को सदा के लिए एक बहुत बड़ा धक्का पहुँच गया; और पेशवा, सींधिया और बरार के राजा, इन तीनों नरेशों के कुछ अत्यन्त उपजाऊ इलाक़े उनसे सदा के लिए छीन लिए गए। कूटनीति और भेदनीति में अंगरेज़ों का पल्ला भारी रहा, किन्तु वीरता या युद्ध कौशल में वे मराठों और अन्य भारतीयों के मुक़ाबले में तुच्छ साबित हुए। यही दूसरे मराठा युद्ध का सार है।

दूसरे मराठा युद्ध में भाग लेने वाले धुरन्धर भारतीय नीतिज्ञ भारतीय स्वाधीनता के बढ़ते हुए क्षय और इस देश में अंगरेज़ी राज की नीवों के दिन प्रतिदिन अधिकाधिक मज़बूत होने को न रोक सके, जिसका एक मात्र कारण भारतीय नरेशों में एक दूसरे पर अविश्वास और भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों का शोकजनक अभाव था; फिर भी इस युद्ध के अन्त के दिनों में

जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा का व्यवहार अत्यन्त सराहनीय और भारत के भविष्य की दृष्टि से गौरवान्वित और हितकर रहा। युद्ध के शुरू में जसवन्तराव होलकर की भूलें अत्यन्त खेदकर थीं। यदि जसवन्तराव अंगरेज़ों के हाथों में खेल कर उनकी सहायता न करता तो अंगरेज़ कदापि सबसीडीयरी सन्धि का जुआ पेशवा के कन्धों पर न लाद सकते। उसके बाद भी यदि जसवन्तराव मराठा मण्डल के एक सदस्य की हैसियत से अपना कर्त्तव्य पूरा करता और अंगरेज़ों के बहकाए में आकर सींधिया और भौंसले की आपत्तियों की ओर से तटस्थ न हो बैठता तो अंगरेज़ असाई, अरगाँव और लसवाड़ी के मैदानों में सींधिया और बरार के राजा को कभी परास्त न कर पाते और न उनके इलाक़े छीन सकते। फिर भी इसके बाद में ज्योंही जसवन्तराव ने अनुभव किया कि अंगरेज़ मुझसे केवल अपना काम निकाल रहे थे और अन्दर ही अन्दर मेरी जड़ खोदने की तैयारियाँ कर रहे थे, तो उसे अपनी भूलों पर हार्दिक पश्चात्ताप हुआ। उस समय से ही उसने अंगरेज़ों के साथ जम कर युद्ध करने का सङ्कल्प कर लिया। और यदि असाई, अरगाँव और लसवाड़ी की विजयों के बाद जसवन्तराव अंगरेज़ों के मार्ग में न आया होता और लगातार एक वर्ष से ऊपर तक उन पर हार पर हार न लादता तो मार्किस वेलसली और उसके साथियों के हौसले दुगने हो गए होते राजपूताना और मध्यभारत की रियासतों को हड़पने के बहाने ढूंढ लेना कुछ कठिन था, सिखों की ताक़त उस समय इतने

अधिक महत्व की थी ही नहीं, आइरिश सेनापति जॉर्ज टॉमस मार्किस वेल्सली को लिख चुका था कि पञ्जाब को कितनी सरलता से विजय करके अंगरेज़ी राज में मिलाया जा सकता है। सारांश यह कि फिर दो चार वर्ष के अन्दर ही हिन्दोस्तान का सारा नक़शा अंगरेज़ी रङ्ग में रङ्ग लिया गया होता। अर्थात् यदि जसवन्तराव होलकर और भरतपुर का राजा दोनों वीरता के साथ अंगरेज़ों का मुक़ाबला न करते, तो इस समय के भारत की लगभग ७०० छोटी बड़ी देशी रियासतों में से शायद एक भी बाक़ी न बची होती।

इसके अतिरिक्त भारतीय प्रजा के साथ भी अंगरेज़ों का व्यवहार फिर दूसरे ही ढङ्ग का होता। सम्भव है कि जिस प्रकार अंगरेज़ों और अन्य यूरोपनिवासियों के दूसरे उपनिवेशों में देशी क़ौमों को मिटा देने के सफल प्रयत्न किए गए, उसी प्रकार भारत में भी किए जाते। किन्तु ये सब केवल अनुमान हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह समय राष्ट्र की क़िस्मत के एक ख़ास पलटा खाने का समय था, और जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा के साहस ने उस समय भारतवासियों के दिलों से अंगरेज़ों के जादू का असर बहुत दर्जे तक कम कर दिया और अंगरेज़ों के दिलों में भी भारतवासियों की एक ख़ास इज़्ज़त पैदा कर दी। निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा के नाम भारतीय वीरों की सर्वोच्च श्रेणी में सदा के लिए अङ्कित रहेंगे।

सर जॉर्ज बारलो के शासनकाल की केवल दो और घटनाएँ

उल्लेख करने योग्य हैं। एक राजपूताने की देशी रियासतों की ओर उसकी नीति, और दूसरी वेलोर का ग़दर।

राजपूताने के राजाओं ने मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों को सहायता दी थी। इस सहायता के बदले में मार्किस वेल्सली और जनरल लेक ने इन राजाओं के साथ सन्धियाँ करके उनसे वादा किया था कि यदि आप में से किसी पर कोई बाहर से आक्रमण करेगा तो अंगरेज़ आपकी सहायता करेंगे। किन्तु सर जॉर्ज बारलो ने गवरनर जनरल बनते ही इन सन्धियों को एक क़लम रद्द कर दिया, और इसके विपरीत इन राजपूत राजाओं को एक दूसरे से तोड़ने और लड़ाने की पूरी कोशिशें कीं। इस तोड़ फोड़ के विस्तार में पड़ने के स्थान पर हम केवल बारलो की इस कुत्सित नीति का सच्चा रूप दो प्रामाणिक अंगरेज़ लेखकों के सार शब्दों में दर्शा देना चाहते हैं। सर जॉन मैलकम लिखता है कि सर जॉर्ज बारलो की—

बारलो की भेदनीति

"नीति × × × खुले तौर पर अपने पड़ोसियों के आपसी झगड़ों और उनकी लड़ाइयों को अपनी कुशल का एक विशेष उपाय समझती है; और यदि इन आपसी लड़ाइयों को साफ़ भड़काती नहीं, तो कम से कम अलग अलग रियासतों के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्ध को इस तरह का रूप देती है कि जिससे उनमें इस तरह की आपसी लड़ाइयाँ पैदा हों और जारी रहें।"*

* " a policy, which declaredly looks to the disputes and wars

एक दूसरे विद्वान् अंगरेज़ लॉर्ड मेटकॉफ़ का कथन है—

"गवरनर जनरल सर जॉर्ज बारलो ने अपने कुछ पत्रों में साफ़ साफ़ लिखा है कि देशी राजाओं के आपसी झगड़े बारलो को अपने बल के बढ़ाने का एक विशेष उपाय नज़र आते हैं; और यदि मैं ग़लती नहीं करता तो गवरनर जनरल की कुछ तजवीज़ों का स्पष्ट परिणाम यह है और उनका लक्ष्य भी यही है कि उनके द्वारा इन रियासतों में आपसी झगड़े पैदा किए जायँ।"†

इन दो उद्धरणों के बाद इस मामले को अधिक विस्तार देना व्यर्थ है।

ईसाई मत प्रचार की उत्तेजना

वेलोर के ग़दर का एक मात्र कारण यह था कि उस समय के अंगरेज़ शासकों में भारतवासियों को ईसाई बनाने का बेहद उत्साह था। मार्किस वेल्सली ने भारत के अन्दर ईसाई मत के प्रचार में जो कुछ सहायता दी उसका वर्णन ऊपर किसी अध्याय में किया जा चुका है। शुरू से ही ईसाई मत को भारत में सबसे अच्छा क्षेत्र

---

of its neighbours, as one of the chief sources of its security, and which, if it does not directly excite such wars, shapes its political relations with inferior states in a manner *calculated to create and continue them.*"—*Political History of India* by Sir John Malcolm

† "The Governor-General in some of his despatches, distinctly says that he contemplates in the discord of the native powers, an additional source of strength, and, if I am not mistaken, some of his plans go directly and are designed to foment discord among those states.—The policy of Sir George Barlow, from Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalf*, p. 7.

मद्रास प्रान्त में मिला। इसलिए मद्रास प्रान्त में ही अभी तक ईसाइयों की संख्या सबसे अधिक है।

उस समय लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क मद्रास का गवरनर और सर जॉन क्रेडक वहाँ का कमाण्डर-इन-चीफ़ था। ये दोनों अंगरेज़ ईसाई मत के प्रचार में बड़े उत्साही थे।

लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क के इस सम्बन्ध के कारनामों में से एक यह भी था कि उसने ऐबे दूबॉय नामक एक फ़ान्सीसी ईसाई पादरी को ८,००० रुपए नक़द देकर भारतवासियों के धार्मिक और सामाजिक रस्मो रिवाज पर एक पुस्तक लिखवाई, जिसमें भारतवासियों को जी भर के गालियाँ दी गई हैं, जिसमें अनेक झूठ भरे हुए हैं और जिसका सरकार के ख़र्च पर इंगलिस्तान में ख़ूब प्रचार कराया गया। इस पुस्तक में यह साबित करने की कोशिश की गई है कि भारतवासी बिलकुल जंगली हैं और उनके उद्धार के लिए अंगरेज़ों का शासन आवश्यक है। इस फ़ान्सीसी पादरी के भारत से फ़ान्स लौटने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे एक विशेष आजीवन पेनशन प्रदान की।*

जिस "कपटी स्वेच्छाशासन" ने सुप्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान हरबर्ट स्पेन्सर के शब्दों में "देश की पराधीनता को क़ायम रखने और उसे विस्तार देने के लिए देशी सिपाहियों"† का ही उपयोग

* *Encyclopoedia Britannica* vol. VIII, p. 624, 11th edition.

† "Cunning despotism" which used "native soldiers to maintain and extend native subjection,"—*Herbert Spencer*

किया, उन्ही कपटी स्वेच्छाशासन के ज़रिये भारतवासियों को ईसाई बनाने का भी उद्योग किया गया। उस समय के ईसाई शासक ईसाई मत प्रचारकों को हर तरह की सुविधा और सहायता देते थे। पादरी लोग जहाँ कहीं जाना चाहते थे, अंगरेज़ सरकार से उन्हें पासपोर्ट मिल जाते थे। उनके नोटिस, प्रचार पत्रिकाएँ आदिक सब सरकारी छापेख़ानों में मुफ़्त छाप कर दी जाती थीं। क़िले के अन्दर भारतीय सिपाहियों में प्रचार करने की उन्हें ख़ास सुविधाएँ दी गई थीं। अपने काम के लिए उन्हें मुफ़्त बड़ी बड़ी ज़मीनें दे दी गई थीं। त्रिवानकुर जैसी देशी रियासतों में भी राजाओं और दीवानों के ऊपर ज़ोर देकर ईसाई मत प्रचार के लिए ख़ास सुविधाएँ करा दी जाती थीं। इत्यादि।* धीरे धीरे मद्रास प्रान्त की हिन्दोस्तानी सेना को आज्ञा दी गई कि कोई सिपाही परेड के समय या ड्यूटी पर या वरदी पहने हुए अपने माथे पर तिलक आदि धार्मिक चिह्न न लगाए, और न कानों में बालियाँ पहने, हिन्दू, मुसलमान सब सिपाहियों को हुकुम दिया गया कि अपनी डाढ़ियाँ मुँड़वा दें और सब लोग एक तरह की कटी हुई मूछ रक्खें, इत्यादि।†

---

* Revd Sydney Smith in the *Edinburgh Review* for 1807, on 'The Conversion of India'

† " not (to) mark his face to denote his caste, or wear earrings, when dressed in his uniform, and *it is further directed* that at all parades, and upon all duties, *every soldier of* the battalion shall be clean—shaved on the chin It is *directed also* that uniformity shall be preserved *in* regard to the quantity and shape of the hair upon the *upper lip*, as far as may be practicable "—*Instructions to the Madras Sepoys, 1806*

इस पर जुलाई सन् १८०६ की रात को वेलोर की छावनी के हिन्दोस्तानी सिपाही बिगड़ खड़े हुए। दो बजे

वेलोर का ग़दर

रात को उन्होंने सदर गारद के सामने जमा होकर अपने कमाण्डिङ्ग अफ़सर करनल फ़ैनकोर्ट के मकान को घेर लिया और उसे गोली से मार दिया। उसके बाद उन्होंने अपने शेष ईसाई अफ़सरों और गोरे सिपाहियों को ख़त्म करना शुरू किया। किन्तु अन्त में यह बग़ावत शान्त कर दी गई और बाग़ियों को पूरा दण्ड दिया गया।

टीपू सुलतान के बेटे और उसके घर के लोग उन दिनों वेलोर के क़िले में क़ैद थे। बाद में साबित हो गया कि इन लोगों का इस बग़ावत से कोई किसी तरह का सम्बन्ध न था, फिर भी उन्हें वेलोर से हटाकर बङ्गाल भेज दिया गया। गवरनर बेण्टिङ्क और कमाण्डर-इन-चीफ़ क्रेडक दोनों बरख़ास्त कर दिए गए, और कम्पनी के अफ़सरों का ईसाई मत प्रचार का जोश बहुत दर्जे तक ठण्डा हो गया।

सर जॉर्ज बारलो को अब गवरनर जनरली से हटाकर मद्रास का गवरनर नियुक्त करके भेज दिया गया और लॉर्ड मिण्टो को उसकी जगह गवरनर जनरल नियुक्त किया गया।



अट्ठाईसवाँ अध्याय

प्रथम लॉर्ड मिण्टो

[१८०७—१८१३ ई०]

कम्पनी की स्थिति

दिसम्बर सन् १८०६ में इङ्गलिस्तान से चल कर ३ जुलाई सन् १८०७ को लॉर्ड मिण्टो ने कलकत्ते में ब्रिटिश भारत की गवरनर जनरली का कार्य सँभाला। हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों की हालत उस समय ख़ासी नाज़ुक थी। एक तो कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली था, क़र्ज़ा बढ़ा हुआ था और आर्थिक अवस्था बिलकुल बिगड़ी हुई थी। इसके अतिरिक्त दूसरे मराठा युद्ध के कारण प्रायः समस्त भारतीय नरेश अंगरेज़ों के व्यवहार से अत्यन्त असन्तुष्ट थे। जसवन्तराव होलकर

और राजा भरतपुर के हाथों जनरल मॉनसन और जनरल लेक की एक वर्ष से ऊपर की लगातार हारों और ज़िल्लत के कारण भारतवासियों में अंगरेज़ों की कीर्ति को भी ज़बरदस्त धक्का पहुँच चुका था। बरार के राजा और महाराजा सींधिया दोनों के कुछ उपजाऊ इलाके अंगरेज़ों के हाथ आ गए थे, फिर भी अपने अपने राज के अन्दर सींधिया, भोंसले और होलकर, तीनों की पूर्ण स्वाधीनता में कोई फ़रक़ न आया था। राजपूताने के राजाओं और विशेष कर गोहद के राना ने मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों की पूरी सहायता की थी, किन्तु युद्ध के बाद अंगरेज़ों ने इन नरेशों के साथ जिस तरह की कृतघ्नता का बर्ताव किया, उसे देख अन्य भारतीय नरेशों के दिलों से भी अंगरेज़ों की ईमानदारी में विश्वास उठ गया था। चारों ओर इस बात की सम्भावना दिखाई देती थी कि विविध भारतीय नरेश ब्रिटिश भारत पर हमला करके अपने खोए हुए इलाके फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष

इसके अतिरिक्त स्वयं अंगरेज़ी इलाके के अन्दर कम्पनी की भारतीय प्रजा अत्यन्त दुखी और असन्तुष्ट थी। ब्रिटिश भारत में ज़मीन का लगान इतना अधिक बढ़ा दिया गया था कि जितना अंगरेज़ों के राज से पहले कभी सुनने मे भी न आया था और न जिसकी उस समय किसी भी देशी राज के अन्दर मिसाल मिल सकती थी।

नए अंगरेज़ी इलाकों के अन्दर गोहत्या के प्रारम्भ होने और अन्य अनेक अनुसने अत्याचारों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है।

परिणाम यह था कि लॉर्ड मिण्टो को इस बात का डर था कि अंगरेज़ी इलाके की असन्तुष्ट प्रजा अपने नए विदेशी और विधर्मी शासकों के विरुद्ध बलवा न कर बैठे।

कम्पनी के लिए सब से पहला काम यह था कि अपनी भारतीय प्रजा को इस प्रकार दबा कर रक्खे जिससे प्रजा उसके विरुद्ध विद्रोह न कर सके। प्रजा को लगातार आपत्तियों में फँसाये रखने में ही उस समय के विदेशी शासकों को अपनी कुशलता दिखाई दी, और प्रजा की ख़ुशहाली और निश्चिन्तता में उन्हें अपने लिए ख़तरा नज़र आया। लॉर्ड कॉर्नवालिस के जिन शासन सुधारों का ऊपर वर्णन हो चुका है उनका मुख्य उद्देश भी भारतीय प्रजा में सदा के लिए आपसी झगड़े क़ायम रखना ही था और यही उन 'सुधारों' का परिणाम हुआ।

अंगरेज़ी इलाके में डकैतियाँ

लॉर्ड मिण्टो के समय में क़रीब क़रीब समस्त ब्रिटिश भारत के अन्दर डकैतियों का बाज़ार ख़ूब गरम था, और उनके साथ साथ भयङ्कर हत्याएँ, घरों में आग लगा देना, और तरह तरह के अत्याचार जगह जगह हो रहे थे।*

लार्ड डफ़रिन ने ३० नवम्बर सन् १८८८ को कलकत्ते में वक्तृता देते हुए कहा था—

"× × × लार्ड मिण्टो के समय में कलकत्ते से इधर उधर बीस बीस

* " the scenes of horror, the murders, the burnings, the excessive cruelties . "—the Judge of circuit in Rajeshaye, 1808

मील तक पूरे ज़िले के ज़िले डकैतों की दया पर छोड़ दिए गए थे और यह हालत पचास वर्ष से अधिक बङ्गाल पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा रहने के बाद की थी।"*

इतिहास लेखक जेम्स मिल हमारे इस भ्रम को भी दूर कर देता है कि सम्भव है अंगरेज़ों के आने से पहले भी इस देश में डकैतियों की यही हालत रही हो। वह लिखता है—

"अंगरेज़ी हुकूमत और उसके क़ानूनों के अधीन इस तरह के जुर्म (अर्थात् डकैतियाँ) कम नहीं हुए, बल्कि इस दर्जे बढ़ गए कि जो किसी भी सभ्य क़ौम के न्याय शासन के लिए अत्यन्त लज्जाजनक है। अंगरेज़ी हुकूमत के अधीन ये जुर्म न केवल इस दर्जे बढ़ गए कि जिसकी भारत की देशी हुकूमतों के अधीन कहीं कोई मिसाल नहीं मिलती, बल्कि किसी काल में भी किसी भी देश में जहाँ किसी दर्जे औचित्य के साथ भी यह कहा जा सकता है कि वहाँ हुकूमत और क़ानून मौजूद थे, इस तरह के जुर्म इतने कभी भी देखने में न आए थे।"†

---

* "In his (Lord Minto's) time whole districts within twenty miles of Calcutta were at the mercy of dacoits, and this after the English had been more than fifty years in the occupation of Bengal."—Lord Dufferin on the 30th November, 1888 at Calcutta.

† "This class of offences did not diminish under the English Government and its legislative provisions. It increased, to a degree highly disgraceful to the legislation of a civilized people. It increased under the English Government, not only to a degree of which there seems to have been no example under the Native Governments of India, but to a degree surpassing what was ever witnessed in any country in which law and government could with any degree of propriety be said to exist."—Mill, vol. v, 387

उस समय का एक प्रसिद्ध अंगरेज़ जज सर हेनरी स्ट्रैची लिखता है—

"मुझे विश्वास है कि अंगरेज़ों की अदालतें खुलने के समय से डकैती के जुर्म बहुत बढ़ गए हैं।"*

सन् १८०८ में राजशाही के डिवीज़नल जज ने लिखा—

"अनेक बार कहा जा चुका है कि राजशाही में डकैतियाँ बहुत होती हैं। × × × फिर भी प्रजा की हालत की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में जान या माल की कोई रक्षा नहीं की जाती।"†

सन् १८०६ में गवरमेण्ट के सेक्रेटरी डाउड्सवेल ने लिखा—

"भारतीय प्रजा की जान और माल की कोई हिफ़ाज़त नहीं की जाती।"‡

यह भी नहीं कि अंगरेज़ सरकार के पास प्रजा की रक्षा के लिए उस समय काफ़ी सामान न रहा हो। जेम्स मिल लिखता है—

---

* "The crime of dacoity has, I believe, increased greatly, since the British administration of Justice"—Sir Henry Strachey

† "That dacoity is very prevalent in Rajashaye has been often stated . . . Yet the situation of the people is not sufficiently attended to It can not be denied that in point of fact, there is no protection for persons or property"

‡ "To the people of India there is no *protection, either of person or of property*"

"बंगाल की अंगरेज़ सरकार के पास इतनी फ़ौज मौजूद है कि बड़ी आसानी से वह सारी प्रजा का संहार कर सकती है;"*

स्वयं लॉर्ड मिण्टो ने अपनी धर्मपत्नी के नाम एक 'प्राइवेट' पत्र में उपहास के साथ लिखा था —

लॉर्ड मिण्टो का पत्र

"हाल में डाकू लोग बैरकपुर से तीस मील के अन्दर आ गए हैं। दल बाँध कर डाका डालने का जुर्म थोड़ा बहुत बङ्गाल में हमेशा होता रहा है किन्तु आजकल यहाँ डाकुओं को कामयाबी भी होती है और दण्ड भी कुछ नहीं मिलता; इसलिए आस पास के अधिक जंगली इलाक़ों में, जहाँ लोगों को इतने अर्से तक एक बाज़ाब्ता और क़ानूनी हुकूमत का सुख भोगने को नहीं मिला, डकैतियाँ जितनी होती हैं उससे भारत के इस सभ्य और समृद्ध भाग में कहीं अधिक होती है। और ऊपर से देखने में इन प्रान्तों की अंगरेज़ी हुकूमत के लिए यह लज्जाजनक है कि हमारे सब से पुराने इलाक़े इस अराजकता और अन्याय के दुष्परिणामों से सब से अधिक अरक्षित हों।"†

---

* 'Such is the military strength of the British Government in Bengal that it could exterminate all the inhabitants with the utmost ease,'—Mill, vol v, p 410

† "They (the dacoits) have of late come within thirty miles of Barrackpore. The crime of gang robbery has at all times, though in different degrees, obtained a footing in Bengal The prevalence, of the offence, occasioned by its success and impunity, has been much greater in this civilized and flourishing part of India, than in the wilder territories adjoining, which have not enjoyed so long the advantages of a regular and legal government, and it appears at first sight mortifying to the English administration of these provinces, that our oldest possessions should be the worst protected against the evils of lawless violance"—Lord Minto in a private letter to Lady Minto

ऊपर के उद्धरण में लॉर्ड मिण्टो का यह इशारा करना कि कम्पनी के इलाके के लोग उस समय पास के देशी इलाकों से अधिक समृद्ध थे, सर्वथा झूठ है। असंख्य उद्धरण इस बात के सुबूत में दिए जा सकते हैं कि पास के देशी इलाकों की प्रजा कम्पनी के इलाके की प्रजा से कई गुना अधिक समृद्ध थी। मिसाल के तौर पर उस समय के कम्पनी के इलाके और मराठा इलाके की तुलना करते हुए एक अंगरेज़ लेखक लिखता है :—

अंगरेज़ी और देशी इलाकों में तुलना

"बरार के जागीरदारों की ज़मीनें कम्पनी सरकार के इलाकों की अपेक्षा अधिक समृद्ध अवस्था में है, इसका सबब यह है कि वे ज़मीने अधिक सुरक्षित हैं और वहाँ की रय्यत पर कम अत्याचार किए जाते हैं।"*

फिर भी अंगरेज़ी इलाके की तुलना में देशी इलाकों के अन्दर डकैतियों का निशान तक न था।

यह कह सकना कि किन किन उपायों से उस समय इन निरङ्कुश डाकुओं के हौसले बढ़ाए गए, बहुत कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन डाकुओं को दण्ड देना या उनसे प्रजा की रक्षा करना उस समय भारत के अंगरेज़ शासकों की नीति के विरुद्ध था। भारतीय प्रजा के इस तरह की आपत्तियों मे पड़े रहने में ही उन्हें

---

* "The lands of the Jagirdars, in Berar, are in a more prosperous condition than those of the Circar, because they are better protected, and the ryots less oppressed."—*Origin of the Pindaries etc* by an Officer in the service of the Honourable East India Company, 1818, p 149

अपना हित दिखाई देता था, और "प्रजा की जान माल की रक्षा" करने में उन्हें अपना अहित।

भारतीय इतिहास के अंगरेज़ लेखक प्रायः गर्व के साथ लिखते हैं कि अंगरेज़ों के भारत आगमन के समय इस देश में चारों ओर अराजकता और कुशासन का दौर था और विदेशियों ने आकर आपसी मार काट और डाकुओं की लूट मार से भारत वासियों की रक्षा की। किन्तु इतिहास के पृष्ठ लौटने से कुछ दूसरा ही दृश्य देखने को मिलता है। मुग़ल साम्राज्य के अन्त के दिनों में, जब कि वह विशाल साम्राज्य सङ्कट की अवस्था में था, सम्राट के अनेक अनुचरों ने विविध प्रान्तों में अपने अपने लिए स्वतन्त्र बादशाहतें क़ायम कर लीं। इस प्रकार ही हैदराबाद में आसफ़-जाह और अवध में सआदत ख़ाँ ने अपनी अपनी सल्तनतें क़ायम कीं। लड़ाइयाँ और रक्तपात भी उस समय भारत में अवश्य हुआ, क्योंकि बिना लड़ाइयों और रक्तपात के नई सल्तनतें क़ायम नहीं हो सकतीं। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि ईसा की १८ वीं सदी में या १९ वीं सदी के आरम्भ में जितनी लड़ाइयाँ और जितना रक्तपात भारत में हुआ है उससे यूरोप में कहीं अधिक हुआ है। इसके अतिरिक्त मुग़ल साम्राज्य के समय की समृद्धि का तो ज़िक्र ही क्या, जिसे देखकर यूरोप और बाक़ी सब संसार के यात्री चकित रह जाते थे; किन्तु इन समस्त नई सल्तनतों के क़ायम करने वाले मराठे, राजपूत और मुसलमान नरेश भी अपनी प्रजा

अंगरेज़ों के साथ साथ अराजकता का प्रवेश

की आवश्यकताओं की ओर पूरा ध्यान देते थे और प्रजा के जान माल की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। प्रायः समस्त अंगरेज़ लेखक स्वीकार करते हैं कि उस समय भी जब कि ब्रिटिश भारत के अन्दर चारों ओर डकैतियों का बाज़ार गरम था और भारतीय प्रजा के जान माल की कोई रक्षा न की जाती थी, पास के देशी राज्यों में, जहाँ पर कि प्रजा के पास धन वैभव कहीं अधिक था, उनकी जान और माल दोनों की पूरी हिफ़ाज़त की जाती थी। निस्सन्देह अराजकता और कुशासन अंगरेज़ों के आने से पहले भारत में मौजूद न थे। इतिहास साक्षी है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ ही साथ इस देश में शान्ति और समृद्धि दोनों का ख़ात्मा हुआ, और अराजकता और कुशासन ने उनका स्थान ग्रहण किया।

यहाँ तक कि देशी राज्यों के अन्दर भी जितने उपद्रव और विद्रोह होने शुरू हुए वे कम्पनी के बङ्गाल में क़दम जमाने के बाद से शुरू हुए और अधिकतर कम्पनी के शासकों या उनके गुप्तचरों के ही पैदा किए हुए थे। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने ही अवध के नवाब वज़ीर से निरपराध वीर रुहेलों का संहार करवाया और आसफ़ुद्दौला के काँपते हुए हाथों से उसकी वृद्धा माँ के महलों को लूटने में मदद ली। किन्तु यह सब कहानी किसी दूसरे स्थान की है।

लॉर्ड मिण्टो ने अपने पत्र में यह भी स्वीकार किया है कि पचास वर्ष से ऊपर के अंगरेज़ी शासन ने भारतवासियों और

ख़ास कर बंगालियों को इतना "कायर और निर्वीर्य" बना दिया था कि वे डाकुओं का मुक़ाबला करने के असमर्थ हो गए थे।*

दूसरा ख़तरा उस समय अंगरेज़ों को मराठों से था। होलकर, सींधिया और भोंसले का अभी तक सर्वनाश न हो पाया था और यह डर था कि कहीं ये नरेश फिर से आपस में मिल कर अंगरेज़ों से बदला न लें।

जसवन्तराव होलकर का चरित्र

इन तीनों में सबसे अधिक भय अंगरेज़ों को अभी तक जसवन्तराव होलकर से था। जसवन्तराव के चरित्र के विषय में ग्रॉएट डफ़ लिखता है—

"जसवन्तराव होलकर के चरित्र का मुख्य गुण वह कठोर, उद्यमशीलता और पराक्रमशीलता थी, जो कि उसके अन्य देशवासियों के समान उसमें विजय के समय तो अनन्त होती ही थी, किन्तु जो कठिन से कठिन पराजयों के समय भी उसके अन्दर से कम होने न पाती थी। इसी तरह आम मराठों की अपेक्षा वह अधिक सुशिक्षित था, और फ़ारसी और मराठी दोनों लिख सकता था। व्यवहार में वह निष्कपट था, × × × उसका क़द छोटा था, किन्तु शरीर अत्यन्त फुर्तीला और मज़बूत था; यद्यपि उसका रंग साँवला था और अचानक किसी बन्दूक़ के छूट जाने के कारण उसकी एक

* ... loss of martial habits and character, have made the people of Bengal so timid and enervated, that no resistance is to be apprehended in the act, nor punishment afterwards."—Lord Minto's letter to Lady Minto

आँख जाती रही थी, फिर भी उसका चेहरा देखने में बुरा न लगता था, और चेहरे से एक प्रकार का हँसमुखपन और बहादुराना हिम्मत प्रकट होती थी।"*

निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर से बढ़ कर अंगरेज़ों का जानी दुश्मन उस समय भारत में दूसरा न था। जसवन्तराव के ख़ास दरबारियों में विश्वासघातक अमीर ख़ाँ अभी तक मौजूद था, जिसने भरतपुर के मोहासरे के समय ३३ लाख रुपए अंगरेज़ों से लेकर होलकर के सवारों को अंगरेज़ों के भालों और गोलियों के हवाले कर दिया था। अमीर ख़ाँ के ज़रिए अंगरेज़ों के षड़यन्त्र होलकर के दरबार में बराबर जारी थे।

अंगरेज़ों और अमीर ख़ाँ में साज़िश

न जाने क्यों और कैसे सन् १८०८ में जसवन्तराव होलकर बीमार पड़ा और फिर एकाएक पागल हो गया। तुरन्त होलकर दरबार के अन्दर दो दल खड़े हो गए। एक मराठों का दल और दूसरा अमीर

जसवन्तराव की मृत्यु

---

* "The chief feature of Jaswant Rao Holkar's character was that hardy spirit of energy and enterprise which, though, like that of his countrymen boundless in success, was also not to be discouraged by trying reverses He was likewise better educated than Marathas in general, and could write both the Persian language and his own; his manner was frank, and could be courteous . . . In person his stature was low, but he was of a very active strong make, though his complexion was dark, and he had lost an eye by the accidental bursting of a matchlock, the expression of his countenance was not disagreeable, and bespoke something of droll humor, as well as of manly boldness "—*History of the Marathas*, by Captain Grant Duff, p 606

ख़ाँ और उसके पिण्डारियों का दल। इन दोनों दलों के बीच बराबर प्रतिस्पर्धा और गुप्त प्रयत्न जारी रहे।

अन्त में अंगरेज़ों के सौभाग्य और सम्भवतः उनके प्रयत्नों से तय हो गया कि जसवन्तराव के उन्माद की अवस्था में उसकी रानी तुलसीबाई के नाम पर अमीर ख़ाँ ही राज का समस्त कारबार करे। थोड़े दिनों बाद जसवन्तराव की मृत्यु हो गई। रानी तुलसीबाई ने चार वर्ष के एक लड़के मलहरराव होलकर को गोद ले लिया। इस प्रकार राज के शासन की बाग़ अमीर ख़ाँ के हाथों ही में रही और कम से कम होलकर की ओर से लार्ड मिण्टो का भय बिलकुल दूर हो गया।

होलकर दरबार की स्थिति

अमीर ख़ाँ को अंगरेज़ों ने राजपूतों और अन्य भारतीय नरेशों के विरुद्ध उकसा कर लड़ाना शुरू किया, और स्वयं होलकर राज के अन्दर उसी के द्वारा दलबन्दियाँ और साज़िशें जारी रक्खीं।

अंगरेज़ों और अमीर ख़ाँ की इन साज़िशों के विषय में इतिहास लेखक मॉलेन लिखता है—

"जो सरदार अंगरेज़ों के अनुग्रह पात्र बने हुए थे, उनमें से एक अमीर ख़ाँ था। × × × पिछली सन्धियों का उल्लंघन करते हुए लॉर्ड मिण्टो ने होलकर के इलाक़े का एक ख़ासा हिस्सा इस शख़्स को दे दिया था, और इस आततायी डाकू और हत्यारे और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दरमियान एक बाज़ाब्ता सन्धि द्वारा मित्रता का सम्बन्ध क़ायम हो चुका था। × × × होलकर के राज की अखण्डता के विरुद्ध अंगरेज़ों और अमीर ख़ाँ के बीच

की साज़िशें हमारी क़ौम की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली न थीं। इन साज़िशों के सम्बन्ध में दरबार के आस पास के सब लोग उस रियासत के अन्दर के सब दल, कोई अंगरेज़ों के पक्ष में और कोई उनके विरुद्ध, और एक दूसरे के पक्ष में और विपक्ष में सब के सब साज़िशों में लगे हुए थे। जिस प्रदेश के ऊपर उस होलकर का राज था, जिसकी कीर्ति एक समय दूर दूर तक फैली हुई थी, उस प्रदेश को अब दरोग़हलफ़ी, विश्वासघात, बलात अपहरण, क़तल, हत्या, लूट, बग़ावत और आपसी लड़ाइयों ने कलंकित और टुकड़े टुकड़े कर रक्खा था।"*

इतिहास लेखक ग्रॉएट डफ़ उस समय की इन दलबन्दियों के उद्देश के विषय में साफ़ लिखता है—

"यह आशा की जाती थी कि यदि मराठा सरदार आपस में लड़ते रहेंगे, अपने पड़ोसियों को लूटते रहेंगे, और उन्हें स्वयं अपने इलाक़ों के छिन जाने का डर बना रहेगा, तो वे अंगरेज़ सरकार के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने से रुके रहेंगे।"†

---

* "Among the chiefs who received favour from the English was one Amir Khan . . . This person had, in spite of previous treaties, a considerable portion of Holkar's territory made over to him by Lord Minto and a formal treaty sealed the bond of amity between this desperate robber and *murderer and the East India Company* . . . The intrigues between the *English and Amir Khan against the integrity of Holkar's dominion were not* honourable to our nation. In connection with them, all persons about the court, all parties in that state, intrigued for and against the English, and for and against one another. Perjury, perfidy, abduction, assassination, murder plunder, revolt and civil war rent and stained realms which had owned the sovereignty of the once far-renowned Holkar."—Nolan's *History of the British Empire*, pp. 510, 511, 521.

† "It was expected that their (the Maratha Chiefs') domestic wars, the

होलकर से उतर कर दूसरा डर अंगरेज़ों को महाराजा सींधिया और बरार के राजा से था। इन दोनों के थोड़े थोड़े इलाके पिछले युद्ध में छीन लिए गए थे। उनके राज अंगरेज़ी सरहद से मिले हुए थे। बहुत सम्भव था कि इस समय वे अपने खोए हुए इलाकों को फिर से विजय करने के प्रयत्न करते। कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस योग्य न थी कि इन बलवान नरेशों के मुक़ाबले के लिए सारी सरहद पर सेनाएँ रक्खी जा सकतीं। इस कठिनाई को हल करने के लिए अंगरेज़ों ने दो मुख्य उपाय किए। एक इन राज्यों में अपने गुप्तचर भेज कर इन नरेशों के विरुद्ध जगह जगह विद्रोह खड़े करवा दिए और अनेक छोटे बड़े मराठा सरदारों को एक दूसरे से लड़ाए रक्खा; और दूसरे पिण्डारियों को धन देकर और उकसा कर उनसे मराठों के इलाकों में लूट मार करवाई।

मराठों को एक दूसरे से लड़ाना

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले हमें पिण्डारियों के विषय में कुछ अधिक जान लेना आवश्यक है। क्योंकि भारत के प्रायः समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने वीर पिण्डारियों के चरित्र पर अनेक झूठे इलज़ाम लगाने, उन्हें डाकू और लुटेरे बताने और उन्हें बदनाम करने के पूरे प्रयत्न किए हैं।

पिण्डारियों का चरित्र

plunder of their neighbours, and the fear of loosing what they possessed, would deter them from hostile proceedings against the British Government —Grant Duff

पिण्डारी दक्खिन भारत की एक पठान जाति थी। ये लोग आरम्भ से दक्खिन के भारतीय नरेशों के यहाँ सेना में सवार हुआ करते थे। इनके प्रायः अपने घोड़े होते थे। हज़ारों पिण्डारी मराठों की सेनाओं में नौकर थे और मराठों के सबसे अधिक विश्वस्त और वीर सेनानियों में गिने जाते थे। मराठों और औरङ्गज़ेब के युद्धों में पिण्डारियों ने बड़ी वीरता के साथ औरङ्गज़ेब के विरुद्ध मराठों का साथ दिया। १७ वीं शताब्दी से लेकर १६ वीं शताब्दी के शुरू तक अनेक पिण्डारी सरदारों के नाम उस समय के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। नसरू पिण्डारी शिवाजी का एक विश्वस्त जमादार था। एक दूसरा पिण्डारी सरदार सेनापति पुनापा उन दिनों मराठों का एक बड़ा भारी मददगार था। पेशवा बाजीराव पहले ने अधिकतर पिण्डारियों ही की सहायता से मालवा प्रान्त को विजय किया। उसके बाद होलकर और सींधिया दोनों की सेनाओं में हज़ारों पिण्डारी योद्धा और अनेक पिण्डारी सरदार शामिल थे। हीरा ख़ाँ पिण्डारी और बुरान ख़ाँ पिण्डारी माधोजी सींधिया के दो विश्वस्त और योग्य सेनापति थे। एक और प्रसिद्ध पिण्डारी सरदार चीतू को महाराजा दौलतराव सींधिया ने उसकी सेवाओं के बदले में नवाब की उपाधि और एक जागीर प्रदान कर रक्खी थी। दौलतराव सींधिया ही की सेना में एक और पिण्डारी सरदार करीम ख़ाँ को भी नवाब की उपाधि और जागीर प्रदान की गई थी।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में एक पिण्डारी सेनापति हूल

सवार के अधीन १५ हज़ार सवारों ने पूर्ण जॉनिसारी के साथ मराठों के पक्ष में युद्ध किया था।

एक अंगरेज़ लेखक लिखता है कि पिण्डारियों की सेनाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग खुले भरती किए जाते थे सम्भवतः उनके सरदारों में भी हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग होते थे, क्योंकि पूर्वोक्त लेखक के अनुसार विविध पिण्डारी दलों के, जिन्हें 'दुर्रे' या 'लब्बर' कहते थे, सरदारों का पद पैतृक न होता था। वरन् प्रत्येक सरदार के मरने पर उसके समस्त अनुयायी मिलकर अपने में से सब से अधिक वीर और सब से अधिक योग्य व्यक्ति को अपना सरदार चुन लेते थे। इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त अंगरेज़ लिखता है :—

मराठों और मुसलमानों का सम्बन्ध

"मालूम होता है कि मराठों और मुसलमानों के बीच कभी भी अधिक धार्मिक वैमनस्य मौजूद न था। दोनों एक ही भाषा का उपयोग करते हैं। दोनों में बहुत से रिवाज एक समान पाए जाते हैं। मराठों ने मुसलमानों की अनेक उपाधियाँ अपने यहाँ ले रक्खी हैं। सींधिया और अन्य मराठा नरेशों के सेनापति प्रायः मुसलमान हैं; और मुसलमान नरेशों के दरबारों की बाग प्रायः ब्राह्मण मन्त्रियों के हाथों में होती है।"*

* "No great religious enmity would ever appear to have existed between the Marathas and Mohammedans The same language is common to them both, many of their customs are the same and the former have adopted many of the titles of the latter The Generals of Scindhia and the other Maratha chiefs, are often Mohammedans and Brahmans frequently govern

पिण्डारी सरदारों का व्यवहार अपने अनुयाइयों के साथ इतना सुन्दर होता था कि विशेष कर १८ वीं सदी के अन्त और १९ वीं सदी के शुरू में उनके अनुयाइयों की संख्या ज़ोरों के साथ बढ़ती चली गई। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि इनमें से अधिकांश पिण्डारी सरदार मालवा में बस गए। सींधिया और होलकर दरबारों की ओर से अधिकतर नर्बदा के किनारे किनारे इन्हें अपने गुज़ारे के लिए मुफ़्त ज़मीनें दे दी गईं। शान्ति के समय ये लोग खेती बाड़ी करके और अपने टट्टुओं और बैलों पर माल लादकर उसे बेच कर अपना गुज़ारा करते थे और इनसे यह शर्त थी कि युद्ध छिड़ने पर अपने घोड़ों सहित मराठा दरबारों की मदद के लिए पहुँच जाया करें। होलकर राज में रहने वाले पिण्डारी 'होलकर शाही' और सींधिया राज में रहने वाले 'सींधिया शाही' कहलाते थे। जसवन्तराव होलकर का अनुयायी प्रसिद्ध अमीर ख़ाँ भी एक पिण्डारी सरदार था।

पिण्डारियों का सैनिक संगठन

जनरल वेल्सली ने २९ मार्च सन् १८०३ को जनरल स्टुअर्ट को लिखा था कि मैंने तीन हज़ार पिण्डारी सवार पेशवा की नौकरी के लिए तैयार किए हैं और —

"यदि पेशवा उन्हें नौकर रखना पसन्द न करे तो × × × उन्हें या तो बरख़ास्त कर दिया जाय और या बिना तनखाह दिए शत्रु को लुटवाने में

the Courts of Mussalman Princes"—*Origin of the Pindaries* etc., by an Officer in the Service of the Honourable East India Company, 1818

उनका उपयोग किया जाय; और हर सूरत में यदि पेशवा उनका ख़र्च देने से इनकार कर दे तो भी × × × यदि हम उन्हें होलकर की ओर जाने से रोके रक्खें तो इससे हमारी सेना को निस्सन्देह इतना लाभ होगा कि उसके मुक़ाबले में कम्पनी के ऊपर जो कुछ ख़र्च करना पड़ेगा वह बहुत ही थोड़ा होगा।"*

पिण्डारियों से देशी राजाओं को लुटवाना

ज़ाहिर है कि उस समय भी अंगरेज़ पिण्डारियों को धन और उत्तेजना दे देकर उनसे देशी राजाओं के इलाक़ों में लूट मार करवाया करते थे। इसीलिए ग्रॉगट डफ़ लिखता है कि यदि कोई अंगरेज़ निहत्था भी इन पिण्डारी डाकुओं के बीच से रात को निकल जाता था तो वे उसे कुछ न कहते थे।

वास्तव में पिण्डारियों से अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात कराना और उनसे भारतीय नरेशों के इलाक़ों को लुटवाना उस समय की कम्पनी की भारतीय नीति का एक विशेष अंग था।

किन्तु यह हालत बहुत दिनों न रह सकी। सन् १८१२ ई० के

---

* "If he (the Peshwa) should not approve of retaining them, they may either be discharged or may be employed in the plunder of the enemy without pay . . . and at all events supposing that His Highness should refuse to pay their expense, . . . the charge to the Company will be trifling in comparison with the benefit which this detachment must derive from keeping this body of Pindaries out of Holkar's services, . . ."— Duke of Wellington's despatches, vol 1 pp 120 121

लगभग इन पिण्डारी डाकुओं ने अंगरेज़ी इलाक़े पर भी धावे मारने शुरू कर दिए। ग्रॉण्ट डफ़ लिखता है—

अंगरेज़ी इलाक़ों पर धावे

"कुछ समय तक यानी जब तक कि × × × पिण्डारियों को अधिक उपजाऊ मैदानों में धावा मारने के लिए उत्तेजित नहीं किया गया, तब तक उनके धावे अधिकतर मालवा, मारवाड, मेवाड और समस्त राजपूताना और बरार तक ही परिमित रहे। × × × किन्तु यदि पिण्डारियों को अपने धावों का क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण करने के लिए उत्तेजित करने वाले और कारण न भी पैदा होते, तो भी अंगरेज़ सरकार की अधूरी चालों और स्वार्थमय नीति (Selfish policy) ने हिन्दोस्तान की जो हालत कर दी थी उसमें यह असम्भव था कि हिन्दोस्तान का कोई हिस्सा बहुत दिनों तक इनके लूट मार के धावों से बचा रहता।"

पिण्डारियों के अंगरेज़ी इलाक़ों पर धावे शुरू कर देने के अनेक कारण हो सकते हैं। सम्भव है कि कुछ देशी नरेशों ने अंगरेज़ों ही की नीति का अनुकरण करके पिण्डारियों को अंगरेज़ी इलाक़ों पर धावा करने के लिए उत्तेजित किया हो, किन्तु अंगरेज़ों का देशी राजाओं की प्रजा के लुटने और कम्पनी की हिन्दोस्तानी प्रजा के लुटने दोनों में लाभ था, क्योंकि जब कि देशी नरेश अपनी प्रजा को सुखी और सुरक्षित रखने में अपना हित समझते थे, कम्पनी के शासकों को अपनी कुशल अपनी हिन्दोस्तानी प्रजा को निर्बल और भयभीत रखने में ही दिखाई देती थी। पिण्डारियों के अंगरेज़ी इलाक़ों पर हमले शुरू कर देने का एक कारण यह

भी था कि अंगरेज़ों ने पिण्डारी सरदारों के बढ़ते हुए बल को रोकने के लिए उन्हें आपस में एक दूसरे के विरुद्ध भड़काना और एक दूसरे से लड़ाना शुरू कर दिया था, और उनमें से कई की वे रक़में बन्द कर दीं जो पहले उन्हें कम्पनी से मिला करती थीं।

पिण्डारी सरदारों की ओर कम्पनी की चालें कितनी दुरङ्गी थीं, इसकी एक सुन्दर मिसाल सन् १८०६ का अमीर ख़ाँ का बरार पर हमला है।

अमीर ख़ाँ का बरार पर हमला

इस मामले में कम्पनी के दो उद्देश थे। एक, यद्यपि अमीर ख़ाँ से कम्पनी के अनेक बड़े बड़े काम निकल चुके थे, जिनके लिए अंगरेज़ अमीर ख़ाँ को अनेक बार धन भी दे चुके थे, फिर भी अमीर ख़ाँ का बल इस समय इतना बढ़ गया था कि अंगरेज़ों को स्वयं अपने लिए उससे भय हो गया। अमीर ख़ाँ एक वीर और पराक्रमी सेनापति था और अंगरेज़ अब जिस प्रकार हो, उसके बल को कम करने की कोशिशों में लग गए। दूसरे, बहुत दिनों से वे बरार के राजा को सबसीडियरी सन्धि के जाल में फँसाने के प्रयत्न कर रहे थे।

२४ मार्च सन् १८०५ को मार्किस वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा था, जिसमें लिखा है कि—उस समय जब कि होलकर और अंगरेज़ों में युद्ध जारी था, नागपुर के रेज़िडेण्ट ने बरार के राजा और उसके मन्त्रियों को खूब

समझाया कि आपको अंगरेज़ों के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लेनी चाहिए। पत्र में लिखा है कि रेज़िडेण्ट ने उस अवसर पर बरार के राजा से साफ़ साफ़ कहा कि यदि आपने अंगरेज़ों के साथ सबसीडीयरी सन्धि न कर ली, तो डर है कि जसवन्तराव होलकर के साथ अंगरेज़ों का युद्ध समाप्त होने के बाद जसवन्तराव की सेना आपके इलाक़े पर हमला कर दे ; और यदि अंगरेज़ों और आपके बीच पहले से सबसीडीयरी सन्धि हो जायगी तो अंगरेज़ सबसीडीयरी सेना द्वारा आपकी सहायता कर सकेंगे। किन्तु रेज़िडेण्ट के हर तरह समझाने पर भी राजा ने सबसीडीयरी सन्धि को स्वीकार करने से इनकार किया। इस तरह की सन्धियों के विषय में उन दिनों आम नियम यह था कि पहले अंगरेज़ रेज़िडेण्ट और कम्पनी के दूत देशी नरेशों और उनके मन्त्रियों को ज़बानी इस तरह की सन्धियों के फ़ायदे सुझाते थे और फिर देशी नरेश की ओर से कम्पनी के नाम पत्र द्वारा सन्धि के लिए इच्छा प्रकट कराई जाती थी। और दिखाया यह जाता था कि ये सन्धियाँ देशी नरेशों की प्रार्थना पर की जाती हैं। उस समय अंगरेज़ बरार के राजा पर इससे अधिक ज़ोर न दे सकते थे। इसलिए मार्क्विस वेल्सली ने अपने पत्र के अन्त में लिखा है—

"यह अधिक उचित मालूम हुआ कि राजा के दिल पर आइन्दा की घटनाओं का प्रभाव पड़ने तक के लिए राजा को छोड़ दिया जाय और इस बात पर विश्वास किया जाय कि उन घटनाओं का राजा पर इस तरह का

प्रभाव पड़ेगा कि वह फिर इस तरह की सन्धि के लिए अपनी स्वीकृति दे देगा और हमारा उद्देश सिद्ध हो जायगा ।"*

जाहिर है कि होलकर की कुछ सेना से बरार पर हमला करवा कर बरार के राजा को डराने और इस प्रकार उसे सबसीडीयरी सन्धि में फँसाने का इरादा अंगरेज़ सन् १८०५ ही में कर चुके थे। वे यह भी जानते थे कि होलकर की सेना में अमीर ख़ाँ हमारा ही आदमी है।

अमीर ख़ाँ के साथ दग़ा

लॉर्ड मिण्टो के समय में अंगरेज़ों ने निज़ाम को उकसा कर उससे अमीर ख़ाँ के नाम यह पत्र लिखवा दिया कि आप बरार पर आकर हमला कीजिये और मैं धन इत्यादि में आपकी सहायता करूँगा। कहा गया कि जिन दिनों जसवन्तराव होलकर नागपुर में था उन दिनों बरार के राजा ने जसवन्तराव के कुछ कीमती जवाहरात अपने पास रख लिए थे। अमीर ख़ाँ से अब बरार के राजा के नाम एक पत्र लिखवाया गया कि आप वे जवाहरात या उनकी क़ीमत होलकर दरबार को लौटा दें; और जब बरार के राजा से कोई सन्तोषप्रद उत्तर न मिल सका तो अमीर ख़ाँ ने बरार पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। अमीर ख़ाँ और अंगरेज़ कम्पनी के बीच पहले से यह साफ़ साफ़ सन्धि हो गई थी कि अंगरेज़ होलकर दरबार के मामलों में और विशेष कर बरार के

---

* "It appeared to be more advisable to leave the Raja to the operation of future events on his mind, and to trust exclusively to (?) the object of obtaining the consent of the Raja to the alliance, . . ."

राजा के साथ होलकर दरबार के झगड़ों में किसी तरह का दख़ल न देंगे। इस सन्धि के भरोसे और निज़ाम की सहायता पर विश्वास करके अमीर ख़ाँ अपनी सेना लेकर जनवरी सन् १८०९ में बरार की सरहद पर जा पहुँचा।

दूसरी ओर बरार के राजा को अंगरेज़ों ने यह सुझाया कि निज़ाम और अमीर ख़ाँ दोनों मुसलमान मिल कर तुम्हारे विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं, और बरार के उस इलाक़े पर, जो निज़ाम की सरहद से मिला हुआ है, अमीर ख़ाँ का राज क़ायम कर देना चाहते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि लॉर्ड मिण्टो ने बिना माँगे कम्पनी की सेना अमीर ख़ाँ के मुक़ाबले और राजा बरार की मदद के लिए रवाना कर दी।

अमीर ख़ाँ अपने मुक़ाबले में कम्पनी की सेना को आया हुआ देख कर चकित रह गया। प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन लिखता है कि अमीर ख़ाँ ने—

'होलकर दरबार के साथ अंगरेज़ों की सन्धि की उस शर्त की दुहाई दी जिसमें अंगरेज़ सरकार ने यह वादा किया था कि हम होलकर के मामलों में किसी तरह का भी दख़ल न देंगे, × × × अमीर ख़ाँ का एतराज़ नहीं सुना गया, फिर भी उसकी दलील अकाट्य और न्याय्य थी; × × × उसकी दलील यह थी कि अंगरेज़ सरकार का व्यवहार सन्धि के साफ़ विरुद्ध है और उन गम्भीर वादों के भी विरुद्ध है जो अंगरेज़ सरकार ने होलकर दरबार से किए हैं कि बरार के राजा से जसवन्तराव का जो कुछ

झगड़ा है उसमें हम कोई दख़ल न देंगे। इन दलीलों का अब कोई प्रभाव न पड़ सकता था।"*

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बरार के राजा के साथ अंगरेज़ों की कोई सन्धि इस तरह की न थी जिससे वे ऐसे अवसर पर राजा की मदद करने के लिए बाध्य होते, और न राजा ने उनसे मदद की प्रार्थना की थी। फिर भी अमीर ख़ाँ को हराने और बरार के राजा की रक्षा करने के लिए अंगरेज़ी सेना मौके पर मौजूद हो गई। मालूम नहीं, इसके बाद स्वयं अमीर ख़ाँ की नीति किस ओर को झुकी। कम्पनी की सेना के बढ़ते ही अमीर ख़ाँ बरार के राजा का इलाक़ा छोड़ कर पीछे हट गया। अंगरेज़ों ने भी अमीर ख़ाँ का अधिक दूर तक पीछा करना उचित न समझा, और यह घटना यहीं समाप्त हो गई।

अमीर ख़ाँ का बरार से लौटना

इस प्रकार की नीति द्वारा लॉर्ड मिण्टो ने अपनी भारतीय प्रजा होलकर, सींधिया और भोंसले जैसे भारतीय नरेशों को अंगरेज़ों के विरुद्ध सर उठाने से रोके रक्खा।

* " . . . . appealed with unanswerable justice, although with no avail to the stipulation of the existing treaty with Holkar . . . . which engaged that the British Government would not in any manner whatever interfere in his affairs . . . . he argued that the conduct of the Government was a manifest infraction of the treaty, and a breach of the solemn promises made to Jaswant Rao, that it would not meddle with his claims upon the Raja of Berar These representations were no longer likely to be of any weight — Mill, vol vii, p 210

बुन्देलखण्ड के राजाओं के विरुद्ध भी लॉर्ड मिण्टो को सेनाएँ भेजनी पड़ी और एक साधारण सा युद्ध त्रिवानकुर में भी हुआ। किन्तु लॉर्ड मिण्टो के समय की सब से अधिक महत्वपूर्ण घटना ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की ओर उसकी नीति थी। मिण्टो की इस पर राष्ट्र नीति को बयान करने से पहले इससे पूर्व की मार्किस वेल्सली की पर राष्ट्र नीति को बयान करना आवश्यक है।

बुन्देलखण्ड और त्रिवानकुर

मार्किस वेल्सली के समय में ज़मानशाह अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह था सिन्ध और पंजाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के सामन्त थे, और ज़मानशाह के ब्रिटिश भारत पर हमला करने की कई बार ख़बर उड़ चुकी थी। इसके लिए मार्किस वेल्सली ने तीन मुख्य उपाय किए। एक, उसने ईरान के बादशाह बाबा ख़ाँ के पास अपने विशेष दूत भेज कर बाबा ख़ाँ को धन का लोभ दिया और उसे अपने सहधर्मी और पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए उकसाया। दूसरे सिन्ध और पंजाब के नरेशों को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़काया और तीसरे ईरान ही के ज़रिये अफ़ग़ानिस्तान में आपसी फूट डलवाई और ज़मानशाह के विरुद्ध साज़िशें करवाईं।

वेल्सली की पर राष्ट्र नीति

८ अक्तूबर सन् १७९८ को मार्किस वेल्सली ने बम्बई के गवरनर डनकन को लिखा—

अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध साज़िश

"मैं आपसे सहमत हूँ कि आपने बुशायर में रहने के लिए जिस देशी एजण्ट को नियुक्त किया है, उससे

यह काम बहुत अच्छी तरह निकाला जा सकता है जिसका आपने अपने पत्र मे ज़िक्र किया है। और चूंकि हिन्दोस्तान पर ज़मानशाह के हमले की सम्भावना बढ़ती हुई मालूम होती है, इसलिए मेरी राय है कि जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी मेंहदीअली खाँ को बाबा ख़ाँ के दरबार में अपनी कारस्वाइयाँ शुरू कर देनी चाहिएँ × × × निस्सन्देह यह बहुत ही ज़रूरी है कि उस मुल्क में इस तरह की आफ़त खड़ी कर दी जाय जिससे विवश होकर ज़मानशाह या तो इधर हमला करने का इरादा छोड़ दे और या यदि रवाना हो चुका हो तो वापस लौट जाय।"*

शिया सुन्नी के झगड़े

कम्पनी का यह "देशी एजण्ट" मेंहदीअली ख़ाँ एक ईरानी अमीर था, जो हिन्दोस्तान में बस गया था। बुशायर से उसने ईरान के बादशाह बाबा ख़ाँ के नाम अनेक पत्र लिखे जिनमें अनेक कल्पित घटनाएँ बयान करके उसने बाबा ख़ाँ को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया। बाबा ख़ाँ शिया सम्प्रदाय का और अफ़गानिस्तान का बादशाह सुन्नी था। मेंहदीअली ख़ाँ ने ईरान के

* "I concur with you in thinking that the services of the native agent whom you have appointed to reside at Bushire may be usefully employed for the purpose mentioned in that letter and as the probability of the invasion of Hindostan by Zeman Shah seems to increase I am of opinion that Mehdi Ali Khan can not too soon commence his operations at the Court of Baba Khan. . *It would certainly be a very desirable object to excite such an alarm in that quarter as may either induce the Shah to relinquish h projected expedition or may recall him should he have actually embarked on it*" —Marquess Wellesley's letter to the Hon J Duncan Governor of Bombay, dated 8th October, 1798

बादशाह को लिखा कि काबुल के बादशाह के सुन्नी अफ़ग़ानों ने लाहौर के शिया मुसलमानों पर ऐसे ऐसे अत्याचार किए हैं कि वहाँ के हज़ारों शिया मुसलमानों ने भाग भाग कर अंगरेज़ों के इलाक़े में पनाह ली है, इसलिए ज़मानशाह को दबाना दीन इसलाम की ख़िदमत करना है।

ईरान के साथ कूटनीति

मेहदीअली ख़ाँ के बेधड़क झूठ बोलने की एक छोटी सी मिसाल यह दी जा सकती है कि उसने ईरान के बादशाह को लिखा कि अंगरेज़ कम्पनी के सात सौ बहादुर सिपाहियों ने सिराजुद्दौला के तीन लाख सिपाहियों को हरा दिया।*

मालूम होता है मेहदीअली ख़ाँ की बातों का ईरान के बादशाह पर ख़ासा असर हुआ। सन् १७६६ की शरद ऋतु में बादशाह ने मेहदीअली ख़ाँ को मिलने के लिए तेहरान बुलाया। मेहदीअली ख़ाँ ने शाह और उसके दरबारियों को बड़ी बड़ी नज़रें देने में बहुत सा धन व्यय किया। निस्सन्देह यह सब धन भारत के कोष का था। इसके बाद मेहदीअली ख़ाँ अपना काम करके बुशायर लौट आया।

कर्क पैट्रिक का पत्र

मेहदीअली ख़ाँ के काम को पक्का करने और अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध ईरान के साथ सन्धि करने के लिए सन् १७६६ के अन्त में मार्किस वेलसली ने मर जॉन मैलकम को, जो उस समय कप्तान मैलकम था, अपना विशेष दूत नियुक्त करके ईरान भेजा। गवरनर-

---

* *History of Persia* by Lieut. Colonel P M Sykes, vol II, p 397

जनरल की ओर से उसके फ़ौजी सेक्रेटरी करनल कर्कपैट्रिक ने मैलकम के नाम १० अक्तूबर सन् १७९९ को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें मैलकम को ईरान में काम करने के लिए आदेश दिए गए। यह पत्र इतने महत्व का है कि यहाँ पर उसके कुछ वाक्य उद्धृत करना आवश्यक है। करनल कर्कपैट्रिक ने मैलकम को लिखा—

"बम्बई में गवरनर और उसकी कौन्सिल से आपको उन सब पत्रों की नक़लें मिलेंगी जो गवरनर और मेहदीअली ख़ाँ के बीच आए गए हैं। मेहदीअली ख़ाँ एक देशी एजण्ट है, जिसे कुछ दिनों से मिस्टर डनकन ने गवरनर जनरल के आदेश के अनुसार इस कार्य के लिए नियुक्त किया है कि हिन्दोस्तान के विरुद्ध बार बार ज़मानशाह जो तजवीज़ें करता है, उनमें ज़मानशाह को विफल करने के लिए मेहदीअली ख़ाँ ईरान के दरबार के साथ बातचीत शुरू करे और जारी रक्खे।

* * *

"बसरा या बग़दाद पहुँच कर जितनी जल्दी हो सके, आप ईरान के दरबार को अपनी नियुक्ति की सूचना भेज दें, और मोटे तौर पर यह लिख भेजें कि आपको भेजने का उद्देश उस मेल और मित्रता को फिर से क़ायम करना है जो पुराने समय में ईरान की सरकार और अंगरेज़ सरकार के बीच क़ायम थी। यदि कोई मनुष्य आपसे मिलने के लिए × × × भेजा जाय तो आपका उससे इससे ज़्यादा खुल कर बात करना अच्छा नहीं है; किन्तु यदि आपके साथ इस विषय पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाय तो आप कह सकते हैं कि और बातों के साथ साथ, मुझे यह आदेश दिया गया है कि मैं हिन्दोस्तान के अंगरेज़ी इलाक़ों और ईरान के बीच व्यापार को उन्नति देने के लिए प्रयत्न करूँ।"

निस्सन्देह "व्यापार को उन्नति देना" केवल एक आड़ थी। मैलकम के ईरान भेजे जाने का वास्तविक उद्देश इस पत्र के नीचे के वाक्य से ज़ाहिर है—

"तुम्हारे भेजे जाने का मुख्य उद्देश ज़मानशाह को हिन्दोस्तान पर हमला करने से रोकना है; × × × दूसरा लक्ष्य गवरनर जनरल का यह है कि यदि किसी समय फ़्रान्सीसी किसी ऐसे मार्ग से भारत में प्रवेश करने का प्रयत्न करें जिसमें ईरान का बादशाह उन्हें रोक सके, तो ईरान के दरबार के साथ सन्धि कर ली जाय कि वह फ़्रान्सीसियों के विरुद्ध हमें दिल से पूरी तरह मदद दे।"

मैलकम को इस पत्र में अधिकार दिया गया कि नीचे लिखी शर्तों पर ईरान के बादशाह के साथ सन्धि कर ली जाय—

ईरान के साथ सन्धि की शर्तें

"ईरान के बादशाह के साथ सन्धि कर ली जाय कि इस तरह के उपायों द्वारा, जो ईरान के बादशाह और कप्तान मैलकम के बीच तय हो जायँ, ज़मानशाह को हिन्दोस्तान के किसी भाग पर हमला करने से रोका जाय, और यदि ज़मानशाह अटक के पार आ जाय या हिन्दोस्तान पर हमला कर बैठे, तो ईरान का बादशाह इस बात का वादा करे कि वह इस तरह की ज़रूरी तदबीरें करेगा जो कि ज़मानशाह को फ़ौरन् अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए लौटने पर मजबूर कर दें।"

बाबा ख़ाँ को अपने एक सहधर्मी और पड़ोसी नरेश के साथ इस प्रकार विश्वासघात पर राज़ी करने के लिए उसे लोभ देना आवश्यक था। इसलिए मैलकम को लिख दिया गया—

"कम्पनी इस सेवा से बदले में वादा करे कि या तो उस समय तक जिस समय तक कि यह सन्धि क़ायम रहे कम्पनी ईरान के बादशाह को तीन लाख रुपए सालाना की सहायता देती रहे और या × × × ईरान के बादशाह को किसी समय भी जो × × × असाधारण ख़र्च करना पड़े, कम्पनी उसका एक हिस्सा, जो अधिक से अधिक एक तिहाई हो, अदा करे।"

शाहशुजा को भड़काना

इसके अलावा ज़मानशाह के ख़िलाफ़ अफ़ग़ानिस्तान में उपद्रव खड़े करना भी ज़रूरी था। ज़मानशाह के दो निर्वासित भाई महमूद और शुजा उन दिनों ईरान में रहते थे। मैलकम को इन दोनों के साथ साज़िश करने के लिए कहा गया। इसी पत्र में गवरनर जनरल ने उसको लिखा—

"× × × ज़मान ख़ाँ को रोके रखने के लिए जो अनेक उपाय काम में लाए जा सकते हैं, उन पर विचार करते हुए आप स्वभावतः उन उपायों की ओर भी उचित ध्यान देंगे, जो ज़मान ख़ाँ के उन निर्वासित भाइयों द्वारा किए जा सकते हैं जो इस समय बाबा ख़ाँ की शरण में ईरान में रहते हैं।"

मैलकम के भेजे जाने का उद्देश

मैलकम के ईरान भेजे जाने का एक और उद्देश ज़मानशाह के बल इत्यादि का ठीक ठीक पता लगाना भी था। मैलकम को आदेश दिया गया—

"बाबा ख़ाँ के दरबार में रहते समय आप ज़मान-शाह के बल और उसके वसीलों और अपने विविध पड़ोसियों के साथ उसके राजनैतिक सम्बन्धों के ठीक ठीक पता लगाने का प्रयत्न कीजियेगा और कोई न

कोई ऐसा प्रबन्ध भी कर दीजियेगा जिससे आइन्दा ज़मानशाह के इरादों और हरकतों की हमें ठीक ठीक और समय पर सूचना मिलती रहे।"*

ज़मानशाह पर आपत्ति

ज़मानशाह का विचार भारत पर हमला करने का कभी रहा हो या न रहा हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, अपने पड़ोस की उस स्वाधीन सल्तनत को निर्बल और आपत्तिग्रस्त रखने में भारत के विदेशी शासकों का हित था। ज़मानशाह के विरुद्ध अंगरेज़ों की साज़िशें बहुत हद तक सफल हुईं। मैलकम के ईरान पहुँचने के दो

---

* "At Bombay you will be furnished by the Governor-in-Council with copies of all the correspondence which has passed between him and Mehdi Ali Khan, a native agent employed for sometime past by Mr Duncan, under the instructions of the Governor-General, in opening and conducting a negotiation at the Court of Persia with a view to preventing Zeman Shah from executing his frequently renewed projects against Hindostan

*   *   *

"You will apprise the Court of Persia of your deputation as soon as possible after your arrival, either at Basrah or at Bagdad, intimating in general terms, that the object of it is to revive the good understanding and friendship which anciently subsisted between the Persian and the British Governments It is not desirable that you should be more particular with any person who may be sent to meet you, or to ascertain the design of your mission, but if much pressed on the subject you may signify, that among other things, you have been instructed to endeavour to extend and improve the commercial intercourse between Persia and the British positions in India.

*   *   *

"The primary purpose of your mission is to prevent Zeman Shah from invading Hindostan   The next object of His Lordship is to engage the Court of Persia to act vigorously and heartily against the French in the

वर्ष के भीतर ही अफ़ग़ानिस्तान में आपसी झगड़े, हत्या, रक्तपात और क्रान्ति का बाज़ार गरम हो गया। वह ज़मानशाह, जिसके नाम से अंगरेज़ डरते थे, तख़्त से उतार दिया गया। सन् १८०१

---

event of their attempting at any time to penetrate to India by any route in which it may be practicable for the King of Persia to oppose their progress.

* * *

"To engage to prevent Zeman Shah by such means as shall be concerted between His Majesty and Captain Malcolm, from invading any part of Hindostan; and in the event of his crossing the Attock, or of the actual invasion of Hindostan by that Prince, the King of Persia to pledge himself to the adoption of such measures as shall be necessary for the purpose of compelling Zeman Shah to return immediately to the defence of his own dominions.

* * *

"The Company's part of the treaty to engage to pay to the King of Persia *for his service*, either an annual fixed subsidy of three lacs of rupees during the period that this treaty shall continue in force, or a proportion, not exceeding one-third of such extraordinary expense as His Majesty shall at any time actually and *Bonafide* incur for the specific purposes stated in the forgoing article.

* * *

"In considering the different means by which Zeman Khan may be kept in check during the period required, you will naturally pay due attention to those which may be derived from the exiled brothers of that Prince, now resident in Persia under the protection of Baba Khan.

* * *

"You will endeavour during your residence at the Court of Baba Khan to obtain an accurate account of the strength and resources of Zeman Shah, and of his political relations with his different neighbours, and to establish some means of obtaining *here-after* the most correct and speedy information on the subject of his future intentions and movements."—Governor-General's letter of instructions to John Malcolm, dated 10 October, 1799.

में ज़मानशाह के सौतेले भाई महमूद ने उसकी आँखें निकाल कर उसे क़ैद कर दिया और स्वयं बादशाह बन बैठा। तीसरे भाई शाहशुजा ने महमूद को तख़्त से उतार कर ज़मानशाह को क़ैद से रिहा किया और ख़ुद तख़्त पर बैठ गया। यह शाहशुजा सर्वथा अंगरेज़ों का आदमी था। निस्सन्देह मैलकम और उसके साथियों ने ईरान से बैठे बैठे बड़ी होशियारी के साथ अपना सारा काम पूरा कर लिया।

इतिहास-लेखक मिल एक स्थान पर लिखता है कि उस ज़माने के अंगरेज़ अपने मतलब के लिए काबुल के बादशाह के हमले की झूठी अफ़वाह प्रायः उड़ा दिया करते थे। यही चाल उन्होंने एक बार दौलतराव सींधिया के साथ चली थी। भावी घटनाओं ने साबित कर दिया कि मैलकम को भेजने का वास्तविक उद्देश न बाबा खाँ से दोस्ती करना था और न ज़मानशाह को रोकना था, वरन् अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ख़ानेजङ्गियाँ पैदा करके अफ़ग़ानिस्तान के ऊपर आगामी अंगरेज़ी हमले के लिए मैदान तैयार करना था।

झूठी अफ़वाहों की मशा

मार्किस वेल्सली के समय में फ़्रान्स के ईरान द्वारा भारत पर हमला करने की सम्भावना प्रायः बिलकुल न थी। इसलिए गवरनर जनरल का अपने पत्र में इस ओर सङ्केत करना भी केवल एक राजनैतिक चाल थी।

ईरान के अतिरिक्त मार्किस वेल्सली ने अपने विशेष दूत सिन्ध

और पञ्जाब भेज कर वहाँ के नरेशों और अन्य लोगों के साथ भी काबुल के बादशाह के विरुद्ध साज़िशें कीं।

अब हम फिर लॉर्ड मिण्टो के शासन काल की ओर आते हैं।

फ़्रान्स और रूस का भय

लॉर्ड मिण्टो के समय में ब्रिटिश भारत के ऊपर काबुल के हमले का भय बिलकुल जाता रहा था, किन्तु फ़्रान्स के हमले का भय मार्किस वेल्सली के समय से अधिक था। बल्कि सम्भावना यह थी कि फ़्रान्स और रूस मिलकर उत्तर पश्चिम के रास्ते भारत पर हमला करें। इससे पूर्व रूस और इंगलिस्तान में परस्पर मित्रता रह चुकी थी। किन्तु सन् १८०७ में यूरोप के अन्दर टिलसिट नामक स्थान पर रूस और फ़्रान्स के सम्राटों के बीच सन्धि हुई। कहा जाता है कि उसी समय इन दोनों यूरोपियन सम्राटों ने मिल कर भारत पर हमला करने और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इलाक़ों को जीत कर आपस में बाँटने का इरादा किया। कुछ दिनों बाद फ़्रान्स को आन्तरिक कठिनाइयों के कारण भारत के ऊपर फ़्रान्स के हमले का भय जाता रहा, किन्तु रूस के हमले का भय इसके लगभग १०० वर्ष बाद तक बना रहा। यद्यपि यह डर सदा केवल डर ही रहा, फिर भी भारत के अन्दर अंगरेज़ों की शासन नीति पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

लॉर्ड मिण्टो और ईरान

लॉर्ड मिण्टो के समय में इंगलिस्तान के मन्त्रियों ने रूस और फ़्रान्स के इरादों को विफल करने के लिए सर एच० जोन्स को इंगलिस्तान का राजदूत नियुक्त करके ईरान भेजा, और लॉर्ड मिण्टो ने फिर सर

जॉन मैलकम को अपनी ओर से सर एच० जोन्स की सहायता के लिए रवाना किया।

इस बीच ईरान और रूस में कुछ झगड़ा हुआ। ईरान ने अंगरेज़ों के वादों के अनुसार अंगरेज़ों से मदद चाही। अंगरेज़ों ने मदद देने से इनकार कर दिया। विवश होकर ईरान ने अपने कुछ दूत फ्रान्स भेजे। फ्रान्स में इन दूतों का खूब स्वागत हुआ, और ईरान और फ्रान्स के बीच सन्धि तय करने के लिए फ्रान्स के कुछ दूत ईरान आए। ठीक उसी समय अंगरेज़ों की ओर से एच० जोन्स और मैलकम भी ईरान पहुँचे। मैलकम ने इस बार ईरान दरबार के साथ बड़ी धृष्टता का व्यवहार किया; उसने अपनी बातचीत शुरू करने के लिए सब से पहली शर्त यह रक्खी कि फ्रान्स के राजदूत और उसके साथी ईरान से बाहर निकाल दिए जायँ। ईरान के बादशाह को बहुत बुरा मालूम हुआ। मैलकम की डाँट न चल सकी, और उसे असफल भारत लौट आना पड़ा। किन्तु एच० जोन्स ने वहाँ रह कर जिस तरह हो सका, स्थिति को सँभाला और कम से कम कहने के लिए ईरान और इंगलिस्तान के बीच एक सन्धि कर ली। यह सन्धि भारतीय ब्रिटिश सरकार के लिए अधिक मान सूचक न थी। सन्धि की एक शर्त यह थी कि यदि ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के बीच युद्ध हो तो अंगरेज़ उसमें किसी तरह का दख़ल न दें, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी या भारतीय ब्रिटिश सरकार ईरान के किसी मामले में भी किसी तरह का दख़ल न दें।

लॉर्ड मिण्टो ने भारतीय ब्रिटिश सरकार की इज़्ज़त को फिर से क़ायम करने के लिए दोबारा मैलकम को ईरान भेजा। मैलकम ने अपने रोज़नामचे में लिखा है कि किसी प्रकार "धोखेबाज़ी से, झूठ बोल कर और साज़िशों द्वारा"* उसे इस बार ब्रिटिश भारतीय सरकार और ईरान सरकार के बीच फिर से मित्रता का सम्बन्ध क़ायम करने में सफलता प्राप्त हुई।

अफ़ग़ानिस्तान में एलफ़िन्सटन का उद्देश

उधर जिस समय कि एच० जोन्स ने ईरान के साथ यह सन्धि की कि ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई में अंगरेज़ किसी तरह का दख़ल न देंगे, ठीक उसी समय एक दूसरे अंगरेज़ एलफ़िन्सटन को इस लिए अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया कि वह अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के साथ इस विषय की सन्धि कर ले कि यदि ईरान अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करेगा तो अंगरेज़ अफ़ग़ानिस्तान की मदद करेंगे। निस्सन्देह एक ओर मुसलिम ईरान को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काना और दूसरी ओर मुसलिम अफ़ग़ानिस्तान को ईरान के हमले के विरुद्ध मदद देने का वादा करना, पाश्चात्य कूटनीति का एक ख़ासा सुन्दर नमूना है। वास्तव में रूस और फ़्रान्स के हमले से अपने नए भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अंगरेज़ों को ईरान और अफ़ग़ानिस्तान दोनों को अपनी ओर रखना और साथ ही दोनों को एक दूसरे से लड़ाए रखना आवश्यक प्रतीत होता था।

* "Deceit, falsehood and intrigue"—Malcolm's Journal p. 186

अंगरेज़ों का भारतीय साम्राज्य निकटवर्ती अफ़ग़ानिस्तान के बादशाहों या वहाँ की प्रजा को कभी भी नहीं फला। मार्किस वेल्सली के समय से लेकर आज तक अफ़ग़ानिस्तान को गुप्त षड्यन्त्रों, आपसी लड़ाइयों और हत्याओं का क्षेत्र बनाए रखना ही भारत के ईसाई शासकों ने अपनी सलामती के लिए सदा हितकर समझा और अफ़ग़ानिस्तान की प्रजा को इन विदेशियों से सिवाय मुसीबतों और बरबादी के और कुछ न मिल सका।

ईरान के अतिरिक्त लॉर्ड मिण्टो ने तीन और स्वाधीन दरबारों में अपने विशेष दूत भेजे। एक सिन्ध, दूसरे पञ्जाब और तीसरे अफ़ग़ानिस्तान। इन तीनों जगहों के दूतों के कृत्यों को संक्षेप में बयान करना आवश्यक है। इनमें सब से पहले हम सिन्ध के दूतों का वर्णन करते हैं।

लॉर्ड मिण्टो और सिन्ध

इससे पहले कम्पनी का एक व्यापारी एजेण्ट सिन्ध में रहा करता था। सन् १८०२ में सिन्ध के कारीगरों के साथ असह्य दुर्व्यवहार के कारण वह सिन्ध से निकाल दिया गया। उसके बाद सात वर्ष तक सिन्ध के साथ अंगरेज़ों की तिजारत बन्द रही। अब लॉर्ड मिण्टो ने अपना एक दूत कप्तान सीटन सिन्ध की राजधानी हैदराबाद भेजा। सीटन ने हैदराबाद के अमीर से कहा कि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह शाहशुजा आपको गद्दी से उतार कर आपकी जगह एक निर्वासित नरेश अब्दुलनबी को हैदराबाद की गद्दी पर बैठाना चाहता है और अंगरेज़ आपकी मदद के लिए

तैयार हैं। अमीर तुरन्त अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध अंगरेज़ों के साथ सन्धि करने को तैयार हो गया।

सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि

किन्तु अंगरेज़ अफ़ग़ानिस्तान के साथ भी मित्रता की सन्धि कर रहे थे। इसलिए हैदराबाद के अमीर ने जब सन्धि में यह साफ़ साफ़ शर्त रखनी चाही कि यदि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह सिन्ध पर हमला करेगा तो अंगरेज़ सिन्ध की मदद करेंगे, तब अंगरेज़ राजदूत ने टालमटोल की। उसी समय शाह ईरान के कुछ दूत हैदराबाद के दरबार में ठहरे हुए थे। इन दूतों ने ईरान की ओर से अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध हैदराबाद के अमीर को सहायता देने का वादा किया, यहाँ तक कि एक ईरानी सेना सिन्ध की सहायता के लिए ईरान से चल भी दी। इस बीच में अब्दुलनबी मर गया, शाहशुजा स्वयं काबुल के अन्दर कई तरह की मुसीबतों में फँस गया और उस ओर से सिन्ध का डर बिलकुल जाता रहा। ईरानी सेना का सिन्ध आना भी अंगरेज़ गवारा न कर सकते थे। कप्तान सीटन ने अब फ़ौरन सिन्ध के अमीरों के साथ इस विषय की एक सन्धि कर ली कि सिन्ध के शत्रुओं के विरुद्ध अंगरेज़ सिन्ध को मदद देंगे और अंगरेज़ों के शत्रुओं के विरुद्ध सिन्ध के अमीर अंगरेज़ों को मदद देंगे। इस सन्धि की बिना पर ईरानी सेना ईरान लौटा दी गई।

किन्तु यह सन्धि भी अंगरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान की मित्रता

के साफ़ विरुद्ध जाती थी। इसलिए कप्तान सीटन के स्वीकार कर लेने पर भी लॉर्ड मिण्टो ने इस सन्धि को स्वीकार न किया। मिण्टो ने एक दूसरे अंगरेज़ स्मिथ को बम्बई से सिन्ध भेजा।

अमीरों के साथ दूसरी सन्धि

स्मिथ ८ अगस्त सन् १८०६ को हैदराबाद पहुँचा। अमीर को समझा बुझा कर कप्तान सीटन वाली सन्धि रद्द कर दी गई और २३ अगस्त सन् १८०६ को कम्पनी और सिन्ध के अमीरों के बीच एक नई सन्धि हो गई, जिसमें दोनों सरकारों के बीच "सदा के लिए" मित्रता और एक दूसरे के साथ तिजारत का सम्बन्ध क़ायम किया गया। यह तय हुआ कि सिन्ध के वकील अंगरेज़ों के यहाँ और अंगरेज़ों के वकील सिन्ध में रहा करें और फ़ान्सीसियों को सिन्ध में रहने की इजाज़त न दी जाय।

दिखलाया यह गया कि इस सन्धि का उद्देश केवल फ़ान्सीसियों के विरुद्ध सिन्ध के साथ मित्रता करना है, किन्तु वास्तविक उद्देश था अफ़ग़ानिस्तान से सिन्ध को फाड़ना और सिन्ध की सब ख़बरें रखने और सिन्ध में आइन्दा अपनी साज़िशों का जाल पूरने के लिए वहाँ एक स्थायी एजन्सी क़ायम करना।

सतलज नदी के उस पार महाराजा रणजीतसिंह का राज था। रणजीतसिंह नाम को काबुल के बादशाह का सामन्त था। नदी के इस पार अनेक छोटी छोटी सिख रियासतें थीं, जिनमें से अधिकांश दूसरे मराठा युद्ध तक महाराजा सींधिया की सामन्त थीं। रणजीत

रणजीतसिंह की अदूरदर्शिता

सिह अपढ़ किन्तु वीर, और योग्य सेनापति था। वह काबुल के प्रभुत्व को अन्त कर अपने लिए एक छोटा सा स्वतन्त्र साम्राज्य क़ायम कर लेना चाहता था। किन्तु रणजीतसिंह में दूरदर्शिता या नीतिज्ञता की कमी थी। मार्किस वेल्सली को भी उस समय पञ्जाब को अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लेने की कोशिश करना इतना लाभदायक दिखाई न देता था। वह मराठों और अफ़ग़ानिस्तान के बीच में पञ्जाब को एक इस तरह की स्वतन्त्र रियासत (बफ़र स्टेट) बनाए रखना चाहता था, जिसका समय समय पर मराठों या अफ़ग़ानिस्तान दोनों के विरुद्ध उपयोग किया जा सके। इसीलिए मार्किस वेल्सली महाराजा रणजीतसिंह और सतजल के इस पार के सिख राजाओं के साथ बराबर साजिशे करता रहा। रणजीतसिंह ने इस आशा में कि अंगरेज़ मुझे इस उपकार का बदला देंगे, न केवल ऐन सङ्कट के समय मराठों को मदद ही नहीं दी, वरन् जसवन्तराव होलकर का पीछा करने के लिए कम्पनी की सेना को अपने राज से जाने की इजाज़त दे दी, और एक प्रकार जसवन्तराव को उसके शत्रुओं के हवाले कर दिया।

पिछले अध्यायों में दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार दूसरे मराठा युद्ध के समय पटियाला और दोआब की अन्य सिख रियासतों को अंगरेज़ों ने मराठों के विरुद्ध अपना ओर फोड़ लिया था। रणजीतसिंह में यदि वीरता के साथ साथ थोड़ी सी नीतिज्ञता भी होती तो वह इन सब छोटे बड़े राजाओं को अपनी ओर करके उनकी मदद से पञ्जाब में एक स्थायी सिख साम्राज्य क़ायम

कर सकता था। किन्तु इसके स्थान पर वह अपने देश और अपने धर्म के इन नरेशों और उनकी प्रजा को थोड़े से स्वार्थ के बदले में विदेशियों के हवाले कर देने के लिए राज़ी हो गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम मार्किस वेल्सली के २६ सितम्बर सन् १८०३ के एक पत्र में लिखा है :—

"लाहौर के राजा रणजीतसिंह ने, जो सिख राजाओं में मुख्य है, कमाण्डर-इन-चीफ़ के पास यह तजवीज़ लिख भेजी है कि मैं सतलज नदी के दक्खिन का सिखों का इलाक़ा कम्पनी को दे देने के लिए तैयार हूँ, इस शर्त पर कि अंगरेज़ और मैं दोनों एक दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में एक दूसरे की सहायता दें।"*

सिख रियासतों के साथ सन्धियाँ

किन्तु महाराजा रणजीतसिंह की इस 'तजवीज़' की ओर ध्यान देने की अंगरेज़ों को उस समय आवश्यकता न थी। रणजीतसिंह से ऊपर ही ऊपर सतलज के इस पार के राजाओं के साथ वे धीरे धीरे पृथक सन्धियाँ करते जा रहे थे। इन सन्धियों के अनुसार ये सब राजा एक एक कर कम्पनी के संरक्षण (Protection) में ले लिए जाते थे और भविष्य के लिए इस प्रकार का प्रबन्ध कर लिया जाता था कि धीरे धीरे बिना युद्ध उनकी रियासतें कम्पनी के

* "Raja Ranjit Singh, the Raja of Lahore and the principal amongst the Sikh chieftains, has transmitted proposals to the Commander-in-Chief for the transfer of the territory belonging to that nation south of the river Satlaj, on the condition of mutual defence against the respective enemies of that chieftain and of the British Nation."—Governor-General in Council to the Hon'ble Secret Committee, etc., September 29th, 1803.

शासन में आ जायँ। इन सन्धियों की एक शर्त यह बताई जाती थी कि यदि किसी राजा या सरदार के पुत्र न हो तो उसे गोद लेने का अधिकार न होगा, और यदि कोई दूसरा न्याय्य उत्तराधिकारी न हो तो उसकी रियासत कम्पनी की रियासत समझी जायगी। इसी विचित्र नियम के अधीन अम्बाला, कैथल इत्यादि कई सिख रियासतें समय समय पर अंगरेज़ी राज में मिला ली गईं। कुछ समय बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने भी इसी नियम के अनुसार अनेक अन्य देशी रियासतों को चुपके से अंगरेज़ी राज में शामिल कर लिया।

सतलज के इस पार के इन राजाओं को स्वयं रणजीतसिंह के विरुद्ध भी भड़काया गया। अन्त में जब रणजीतसिंह ने देखा कि अपने देशवासियों के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ देने से मुझे कोई लाभ न हुआ तो विवश होकर उसने सतलज के दक्खिन के समस्त विद्रोही राजाओं को दमन करके जमना तक के इलाके को अपने अधीन करने का सङ्कल्प किया।

दोआब के राजा रणजीतसिंह के व्यवहार से सन्तुष्ट न थे। रणजीतसिंह ने फ़ौज लेकर उन पर चढ़ाई की। ख़बर उड़ी कि कम्पनी की सेना जमना नदी पर जमा हो रही है और रणजीतसिंह के विरुद्ध इन राजाओं को सहायता देने वाली है। इस ख़बर की सच्चाई का पता लगाने के लिए महाराजा रणजीतसिंह ने लॉर्ड मिण्टो को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने अंगरेज़ कम्पनी

रणजीत सिंह के दरबार में अंगरेज़ दूत

के साथ पूर्ववत् मित्रता का सम्बन्ध क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की और लिखा कि—"जमना के इस ओर का प्रदेश, सिवाय उन स्थानों के जिन पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा है, शेष मेरे अधीन है। उसे ऐसा ही रहने दिया जाय।" इस पत्र के उत्तर में लॉर्ड मिण्टो ने मेटकाफ़ को, जो बाद में सर चार्ल्स मेटकाफ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपना विशेष दूत नियुक्त करके रणजीतसिंह के दरबार में भेजा। मेटकाफ़ को भेजने का उद्देश महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की मित्रता दर्शाना बताया गया, किन्तु जिस समय मेटकाफ़ को रणजीतसिंह के दरबार में रवाना किया गया, उसी समय उसके साथ ही साथ मिण्टो ने कमाण्डर-इन-चीफ़ को कूच की तैयारी करने की आज्ञा दी और लिखा :—

"यह मानने के लिए कारण मौजूद हैं कि जिस देश पर रणजीतसिंह ने ज़बरदस्ती अपनी सत्ता जमा रक्खी है, उसका एक ख़ासा भाग बहुत असन्तुष्ट है, और यदि भरपूर कोशिश की जाय और सफलता हो जाय, तो हमारे लिए इससे अधिक लाभ की और कोई बात नहीं हो सकती कि हम अपनी सरहद और सिन्धु नदी के बीच के समस्त देश से अपनी विरोधी और प्रतिस्पर्धी शक्तियों को निकाल कर उनकी जगह अपने मित्र और अपने आश्रित क़ायम कर दें।"*

---

* "There is reason to believe that a considerable portion of the country usurped by Ranjit Singh is strongly disaffected, and should any grand effort be made and be crowned with success, nothing would be more advantageous to our interests than the substitution of friends and dependants for hostile and rival powers throughout the country between our frontier and the Indus "—*Lord Minto in India*, p 154

अगस्त सन् १८०८ के अन्त में मेटकाफ़ दिल्ली से चला। ११ सितम्बर को वह क़सूर पहुँचा। रणजीतसिंह उस समय क़सूर में था। मेटकाफ़ के पत्र में लिखा है कि रणजीतसिंह ने बड़े आदर के साथ मेटकाफ़ का स्वागत किया। ख़ूब ख़ातिर तवाज़ो हुई। २२ सितम्बर को मेटकाफ़ और रणजीतसिंह में मामले की बात चीत शुरू हुई। मेटकाफ़ ने रणजीतसिंह को समझाया कि फ़्रान्सीसी अफ़ग़ानिस्तान और पञ्जाब पर हमला करने वाले हैं, इसलिए आपको अंगरेज़ों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए। मेटकाफ़ ने गवरनर जनरल को एक पत्र में लिखा—

मेटकाफ़ और रणजीतसिंह

"बातचीत करते हुए आपके आदेश के अनुसार मैंने राजा को यह डराने की कोशिश की कि आपके राज पर आपत्ति आने की सम्भावना है, साथ ही उसे यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि अंगरेज़ आपकी रक्षा कर सकते हैं।"†

किन्तु रणजीतसिंह की आँखों में धूल डालना इतना सरल न था। उसने मेटकाफ़ से साफ़ पूछा कि अंगरेज़ सरकार सतलज के दोनों ओर की सब सिख रियासतों के ऊपर मेरा आधिपत्य स्वीकार करती है या नहीं? मेटकाफ़ ने उत्तर दिया कि इस विषय में

रणजीतसिंह की साफ़ बातें

† "In the course of this conversation, I endeavoured, in conformity to the instructions of the Supreme Government, to alarm the Raja for the safety of his territories, and at the same time to give him confidence in our protection."—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol 1, p 394.

अपनी सरकार के विचार प्रकट करने का मुझे अधिकार नहीं है। रणजीतसिंह इस उत्तर को सुन कर खिन्न हो गया। उसने फ़ौरन् दोआब पर चढ़ाई की और कई राजाओं से ख़िराज वसूल किया। इस सारे समय मे मेटकाफ़ कम्पनी के एजण्ट की हैसियत से बराबर रणजीतसिंह के दरबार में बना रहा।

अपने सच्चे इरादे के विषय में अंगरेज़ों ने रणजीतसिंह को उस समय तक धोखे में रक्खा, जिस समय तक कि उनकी तैयारी पूरी नहीं हो गई। २२ दिसम्बर सन् १८०८ को मेटकाफ़ ने महाराजा रणजीतसिंह को साफ़ साफ़ इत्तला दी कि अंगरेज़ सरकार का यह निश्चय है कि जमना और सतलज के बीच की रियासतें कम्पनी के संरक्षण में हैं, सतलज पार के जो इलाके पहले से आप के अधीन हैं उन पर आप अपना आधिपत्य क़ायम रख सकते हैं, किन्तु जिन इलाक़ों को आपने हाल में अपने अधीन किया है वे सब आपको कम्पनी के लिए छोड़ देने होंगे और कम्पनी के इस निश्चय के अनुसार कार्य कराने के लिए सतलज के बाएँ तट पर कम्पनी की एक सेना नियुक्त की जायगी।

अमृतसर में हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा

महाराजा रणजीतसिंह मेटकाफ़ के इस कथन को सुन कर कोप से भर गया, इतने पर भी इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है कि उसने बड़ी होशियारी के साथ अपने क्रोध को रोका* और अपने मन्त्रियों से सलाह करके उसी दिन शाम को

* Sir John Kaye, *Lives of Indian Officers*, vol 1, p. 396.

मेटकाफ़ से कहला भेजा कि अंगरेज़ सरकार की तजवीज़ ऐसी विचित्र है कि बिना अन्य सिख सरदारों से सलाह किए मैं अपना अन्तिम निश्चय प्रकट नहीं कर सकता। इसके बाद अपने सरदारों से सलाह करने के लिए रणजीतसिंह मेटकाफ़ को साथ लेकर अमृतसर आया।

अमृतसर में इस समय एक और छोटी सी घटना हुई, जो अंगरेज़ों की भारतीय नीति की दृष्टि से खासी अर्थसूचक थी। फ़रवरी सन् १८०६ में मेटकाफ़ अमृतसर में था। मोहर्रम के दिन थे, मेटकाफ़ के साथ कुछ शिया मुसलमान भी थे। इन लोगों ने बिना रणजीतसिंह या नगर के कर्मचारियों से इजाज़त लिए नगर में घूम घूम कर मोहर्रम मनाना शुरू किया और वह भी कुछ ऐसे तरीक़े से जिस तरीक़े से कि सिखों की सत्ता क़ायम होने के समय से उस समय तक कभी भी अमृतसर के अन्दर देखने में न आया था। यहाँ तक कि अमृतसर के नगर निवासियों को बुरा मालूम हुआ। इसी पर कुछ अकालियों और मेटकाफ़ के आदमियों में लड़ाई होगई। रणजीतसिंह सुनते ही तुरन्त मौक़े पर पहुँचा, मेटकाफ़ के ख़ेमों को उसने फ़ौरन शहर से कुछ दूर भेज दिया और ज्यों त्यों कर झगड़े को शान्त कर दिया।

हमें याद रखना चाहिए कि मेहदीअली ख़ाँ ने बाबा ख़ाँ से एक बात यह भी कही थी कि पञ्जाब में शिया मुसलमानों के साथ बहुत अन्याय किया जाता है।

लॉर्ड मिण्टो की उद्देश पूर्ति

मेटकाफ़ की मुख्य बात पर अपने सरदारों के साथ सलाह करके रणजीतसिंह एक बार अंगरेज़ों से लड़ने के लिए तैयार होगया। अंगरेज़ों ने अब उसे यह लोभ दिया कि आप अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करके उत्तर और पच्छिम की ओर अपना साम्राज्य बढ़ाइए और अंगरेज़ों की मित्रता के बदले में सतलज पार का प्रदेश अंगरेज़ों के लिए छोड़ दीजिये। इसके अतिरिक्त रणजीतसिंह को डराने के लिए जनवरी सन् १८०६ में कुछ सेना दिल्ली से करनल ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने रवाने करदी गई। पञ्जाब के कई सरदार इस समय रणजीतसिंह के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष में दिखाई दिए।

अन्त में रणजीतसिंह ने अपनी सेनाएँ पीछे हटा लीं। २५ अप्रैल सन् १८०६ को रणजीतसिंह और अंगरेज़ों के बीच सन्धि हो गई। हाल में सतलज के इस पार जो इलाक़ा रणजीतसिंह ने अपने अधीन कर लिया था वह उससे ले लिया गया। सतलज और जमना के बीच के थोड़े से इलाक़े को छोड़ कर जो पहले से रणजीतसिंह के अधीन था, वहाँ का बाक़ी सारा प्रदेश कम्पनी के अधीन मान लिया गया; और वहाँ के समस्त देशी नरेश और उनकी प्रजा कम्पनी के हाथों में सौंप दी गई। महाराजा रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए आज़ाद छोड़ दिया गया।

लॉर्ड मिण्टो का उद्देश पूरा हुआ। सिखों और अफ़ग़ानों के

बीच वैमनस्य के कारण और बढ़ गए। ब्रिटिश भारत और उसके भावी आक्रामकों के बीच में पंजाब एक दीवार हो गया; और अंगरेज़ी राज के विस्तार के लिए सतलज तक का मैदान साफ़ हो गया।

लॉर्ड मिण्टो ने एलफ़िन्सटन को अंगरेज़ सरकार का विशेष दूत नियुक्त करके अफ़ग़ानिस्तान भेजा। मैलकम ईरान में था, उसने वहाँ के बादशाह बाबा ख़ाँ को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काया। मेटकाफ़ ने पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए उकसाया, और एलफ़िन्सटन ने अफ़ग़ानिस्तान में शाहशुजा को ईरान के साथ लड़ाने का पूरा प्रयत्न किया।

लॉर्ड मिण्टो और अफ़ग़ानिस्तान

एलफ़िन्सटन के भेजे जाने का उद्देश यह बताया गया कि फ़्रान्स और रूस मिल कर भारत पर हमला करने वाले हैं और उस आपत्ति का मुक़ाबला करने के लिए अंगरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान में मित्रता क़ायम करने की ज़रूरत है। महाराजा रणजीतसिंह के इलाक़े से नीचे नीचे उसे बचाते हुए बीकानेर, बहावलपुर और मुलतान के रास्ते होता हुआ एलफ़िन्सटन २५ फ़रवरी सन् १८०६ को पेशावर पहुँचा।

आरम्भ में अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह और वहाँ के दरबार ने एलफ़िन्सटन को अपने देश में आने की इजाज़त न दी। एलफ़िन्सटन को कुछ दिनों मुलतान में रुकना पड़ा। इसका कारण यह था कि अफ़ग़ानिस्तान में उस समय आपसी लड़ाइयाँ और

बग़ावतें जारी थीं। अफ़ग़ानों को इस बात का डर था कि अंगरेज़ कहीं उनसे फ़ायदा उठाने की कोशिश न करें। एलफ़िन्सटन ने अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को विश्वास दिलाया कि अंगरेज़ों का उद्देश केवल अफ़ग़ानिस्तान के साथ मित्रता क़ायम करना है, ताकि एक दूसरे को समय पड़ने पर सहायता दे सकें। इस पर शाहशुजा ने इजाज़त दे दी, और ५ मार्च सन् १८०६ को पेशावर में शाहशुजा और अंगरेज़ राजदूत में भेंट हुई। शाहशुजा ने बड़े सत्कार के साथ एलफ़िन्सटन का स्वागत किया।

एलफ़िन्सटन ने शाहशुजा को समझाया कि अफ़ग़ानिस्तान को रूस, फ्रान्स और ईरान तीनों से ख़तरा है, साथ ही उसे अंगरेज़ों की मित्रता का भी विश्वास दिलाया। एलफ़िन्सटन ने शाहशुजा से प्रार्थना की कि आप फ़्रान्सीसियों और ईरानियों को अपने राज में न घुसने दें और यदि ये लोग भारत पर हमला करना चाहें तो आप उन्हें रोकने में अंगरेज़ों को मदद दें। किन्तु शाहशुजा के विरुद्ध उस समय उसके देश के अन्दर आफ़त मची हुई थी। उसे एक ज़बरदस्त बग़ावत का मुक़ाबला करना पड़ रहा था। इतिहास लेखक जान के लिखता है कि—"जब किसी मनुष्य के घर में आग लगी हुई हो तब उसे अधिक दूर के डर दिखाने का समय नहीं होता।" शाहशुजा और उसके मन्त्रियों ने एलफ़िन्सटन के जवाब में उससे यह इच्छा प्रकट की कि अंगरेज़ पहले अफ़ग़ानिस्तान की बग़ावतों को शान्त करने में शाहशुजा को मदद दें। एलफ़िन्सटन ने इससे इनकार किया। इतिहास लेखक के लिखता है कि—

"हमें मानना पड़ेगा कि अफ़ग़ान मन्त्रियों ने अपने पक्ष में मुनासिब और कम से कम एक दरजे तक सच्ची दलीलें दीं। वे यह न समझ सके कि यदि अंगरेज़ अपने शत्रुओं के विरुद्ध काबुल के बादशाह की मदद चाहते हैं तो वे काबुल के बादशाह को उसके शत्रुओं के विरुद्ध मदद क्यों नहीं देते; इस सूरत में तो वे कहते थे कि सन्धि का सारा लाभ अंगरेज़ों को है और सारा ख़तरा हमारे बादशाह को।"*

मुल्ला जाफ़र

अफ़ग़ान मन्त्री मुल्ला ज़ाफ़र के साथ एलफ़िन्सटन की जो बातचीत हुई उसके सम्बन्ध में एलफ़िन्सटन लिखता है—

"मुल्ला ज़ाफ़र ने कहा कि मैं यह नहीं मानता कि आप बादशाह को धोखा देना चाहते हैं, किन्तु मेरा यह भी ख़याल नहीं है कि आप उतने ही सीधे हैं जितने आप अपने तई ज़ाहिर करते हैं, × × × उसने साफ़ कहा कि आपका चरित्र बड़ी चालबाज़ी का है और बहुत से लोग यह समझते हैं कि आपके साथ किसी तरह का भी व्यवहार करने में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।"†

---

* "The Afghan ministers, it must be admitted, argued the case acutely and not without some amount of fairness They could not see why, if the English wished the King of Cabul to help them against their enemies, they should not in their turn help the King to resist his, but as it was, they said all the advantage was on our side, and all the danger on the side of the King"—Sir John Kaye's *Lives of Indian Officers* vol 1, pp 241, 42

† "He said that he did not believe that we intended to impose upon the King, but he did not think that we were so plain as we pretended to be . He frankly owned that we had the character of being very designing and that most people thought it necessary to be very vigilant in all transactions with us."—Elphinstone

शाहशुजा और उसके मन्त्रियों को यह पता न था कि अंगरेज़ हमें हमारी घरेलू आपत्तियों में इसलिए मदद नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वास्तव में ये समस्त आपत्तियाँ अंगरेज़ों ही की पैदा की हुई हैं।

एलफ़िन्सटन की उद्देश पूर्ति

करीब १० वर्ष पहले अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर इन्हीं सब उपद्रवों को खड़ा करने के लिए मेहदीअली ख़ाँ और उसके बाद मैलकम को ईरान भेजा गया था और इसी काम के लिए ईरान की सरकार को नक़द रक़म दी गई थी। शाह महमूद ने इस समय शाहशुजा के विरुद्ध बग़ावत खड़ी कर रक्खी थी। शाहशुजा और शाह महमूद दोनों को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़का कर अंगरेज़ों ने ही ईरान से अफ़ग़ानिस्तान भिजवाया था। साथ ही अभी हाल में महाराजा रणजीतसिंह को दोआब के बदले में अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई करने के लिए उकसाया जा चुका था। इन हालतों में एलफ़िन्सटन शाहशुजा से सिवाय मित्रता की ऊपरी बातें मिलाने के और क्या कर सकता था?

शाहशुजा ने अब एलफ़िन्सटन पर ज़ोर देना शुरू किया कि आप शीघ्र अपने इलाक़े को लौट जाइए। फ़्रान्सीसियों के हमले का भय इस बीच बिलकुल जाता रहा था, किन्तु रूस के हमले का डर बाक़ी था। इसलिए अंगरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान के बीच सन्धि होना आवश्यक था। अन्त में धन के ज़ोर से अंगरेज़ों और शाहशुजा में सन्धि हो गई। शाहशुजा ने वादा किया कि मैं फ़्रान्सीसियों या ईरानियों को अपने राज से होकर न निकलने

दूँगा और कम्पनी ने इसके बदले में अफ़ग़ानिस्तान को वार्षिक धन देते रहने का वादा किया। एलफ़िन्सटन और उसके साथी अफ़ग़ानिस्तान के सैन्य बल इत्यादि का पूरा ज्ञान प्राप्त करके, अफ़ग़ानिस्तान और भारत के मार्गों और मार्ग की कौमों की जानकारी प्राप्त करके पञ्जाब के रास्ते हिन्दोस्तान लौट आए।

एक फ्रान्सीसी लेखक लिखता है कि अंगरेज़ों ने रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए इसलिए उकसाया क्योंकि वे जानते थे कि रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पञ्जाब और रणजीतसिंह का शेष समस्त राज कम्पनी के हाथों में आ जायगा।

डच और फ्रान्सीसी टापुओं पर कब्ज़ा

हिन्द-महासागर में उस समय तक कुछ छोटे छोटे टापू फ्रान्सीसियों के और कुछ डच लोगों के अधीन थे। लॉर्ड मिराटो ने सन् १८०६ में भारत से सेना भेज कर फ्रान्सीसी टापुओं पर हमला किया। सन् १८१० में यह टापू अंगरेज़ों के हाथों में आ गए। इसी तरह सन् १८११ में डच टापुओं पर भी अंगरेज़ों का कब्ज़ा हो गया। इन सब टापुओं की विजय का पूरा ख़र्च भारत से लिया गया। सन् १८१३ में लॉर्ड मिराटो इङ्गलिस्तान के लिए रवाना हो गया।

निस्सन्देह उस नाज़ुक समय में अंगरेज़ क़ौम की दृष्टि से लॉर्ड मिराटो का शासन-काल एक बहुत सफल शासन-काल था

किन्तु कम्पनी के गोरे सिपाही और उनके अफ़सर लॉर्ड मिण्टो के शासन-काल से इतने सन्तुष्ट न रह सके। बात यह थी कि कम्पनी को आर्थिक कठिनाई के कारण लॉर्ड मिण्टो को प्रायः हर महकमे का खर्च कम करना पड़ा। उस समय के गोरे अफ़सरों को अपनी तनख़ाहों के अलावा कई तरह के भत्ते दिए जाते थे। हिन्दोस्तानी पलटनों के गोरे अफ़सरों को एक प्रकार का मासिक भत्ता मिलता था जिसे 'टेण्ट कण्ट्रेक्ट' यानी डेरे के सामान का ठेका कहते थे। मई सन् १८०८ से मद्रास प्रान्त में यह भत्ता बन्द कर दिया गया। गोरे अफ़सर इस पर तुरन्त बिगड़ खड़े हुए।

गोरे सिपाहियों की बग़ावत

मछलीपट्टन, श्रीरङ्गपट्टन, हैदराबाद और अन्य कई स्थानों पर अंगरेज़ अफ़सरों ने बग़ावत का झण्डा खड़ा कर दिया। मामला बढ़ गया। यहाँ तक कि जब एक बाग़ी गोरी पलटन श्रीरङ्गपट्टन के बाग़ियों से मिलने के लिए चित्तलद्रुग से श्रीरङ्गपट्टन जा रही थी, मार्ग में एक दूसरी किन्तु राजभक्त गोरी पलटन के साथ उनकी मुठभेड़ हो गई और दोनों ने एक दूसरे के ऊपर गोलियाँ चलाईं। भारतवासियों पर इस घटना का बहुत ही अहितकर प्रभाव पड़ने का डर था।

फ़ौरन गोरे सिपाहियों को समझाने और उनकी शिकायतें दूर करने के लिए लॉर्ड मिण्टो स्वयं मद्रास पहुँचा। अन्य अनेक बड़े से बड़े अंगरेज़ अफ़सरों को इसी कार्य के लिए प्रान्त की विविध

छावनियों में भेजा गया। मामला शीघ्र शान्त हो गया. एक यूरोपियन लेखक इस बगावत के सम्बन्ध में लिखता है—

"यह बग़ावत एक बड़े नाज़ुक समय में हुई। सतलज के इस पार के लोग, और मराठे और बुन्देलखण्ड वाले अभी तक क़ाबू में न आए थे। यदि रणजीतसिंह उस समय सतलज पार कर मराठों के देश और बुन्देलखण्ड से होता हुआ बङ्गाल पहुँच जाता, तो निस्सन्देह अंगरेज़ों की सत्ता फिर से उन्हीं सीमाओं के अन्दर परिमित हो जाती, जो लॉर्ड क्लाइव के समय में थीं; किन्तु मद्रास के बाग़ियों ने शीघ्र इस ख़तरे को अनुभव कर लिया और वे ख़ुद अपनी अपनी जगह लौट गए × × × और गवरमेण्ट इतनी निर्बल थी कि उसने एक भी अफ़सर को गोली से न उड़ाया।"*

निस्सन्देह ग़ैर ईसाई काले सिपाहियों की समय समय की बग़ावतों को शान्त करने के लिए अंगरेज़ों ने इस देश में जिस तरह के उपायों का उपयोग किया है, गोरे सिपाहियों की इस बग़ावत को शान्त करने में उस तरह के उपायों का उपयोग नहीं किया गया। न एक भी गोरे अफ़सर को फाँसी दी गई और न किसी को तोप के मुँह से उड़ाया गया।

* "This happened at a critical period If Ranjit Singh had then crossed the Sutlaj, the Marathas and Bundelkhand, which were not then reduced to submisson, and marched to Bengal, the British power would no doubt have re-entered into the limits conquered by Lord Clive,—but the revolted of Madras soon perceived the danger and returned of themselves to their duty and the Government had the weakness not to shoot a single officer."—M Victor Jacquemont's *Letters from India* Vol 1, pp 323, 24

उन्तीसवाँ अध्याय

भारतीय उद्योग धन्धों का सर्वनाश

मार्क्विस ऑफ़ हेस्टिंग्स

लार्ड मिण्टो के बाद मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स भारत का गवरनर जनरल हुआ। १४ अप्रैल सन् १८१३ को इङ्गलिस्तान से चल कर ११ सितम्बर सन् १८१३ को हेस्टिंग्स भारत पहुँचा। गवरनर जनरली के साथ साथ कम्पनी की सेनाओं के कमाण्डर-इन-चीफ़ का पद भी हेस्टिंग्स ही को दिया गया। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तीन अंगरेज़ गवरनर जनरलों ने हिन्दोस्तान के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देकर उसकी नींवों को पक्का

किया। वेलसली, हेस्टिंग्स और डलहौज़ी। इन तीनों में मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स का समय एक प्रकार से सब से अधिक महत्वपूर्ण था। इस समय से ही भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों को नष्ट करना और इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों को उन्नति देना अंगरेज़ों की भारतीय नीति का एक विशेष अङ्ग बन गया।

अंगरेज़ों के भारत आने से हज़ारों वर्ष पूर्व भारत के बने हुए कपड़े और भारत का अन्य माल भारत के बने हुए हज़ारों जहाज़ों में लद कर चीन, जापान, लङ्का, ईरान, अरब, कम्बोदिया, मिश्र, अफ़रीक़ा, इतालिया, मैक्सिको आदिक संसार के समस्त सभ्य देशों में जाकर बिकता था। अंगरेज़ों के आगमन के सैकड़ों वर्ष बाद तक भी उद्योग धन्धों की दृष्टि से भारत संसार का सब से अधिक उन्नत देश था।

भारत का प्राचीन व्यापार

१९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक, जब कि हिन्दोस्तान का बना हुआ तरह तरह का माल और विशेषकर हिन्दोस्तान के बने हुए सुन्दर कपड़े इङ्गलिस्तान में जाकर बिकते थे और खूब पसन्द किए जाते थे, इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़े भारत में लाकर बेचने का अंगरेज़ शायद स्वप्न में भी विचार न कर सकते थे। सुप्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहासज्ञ लैकी लिखता है कि सन् १६८८ की अंगरेज़ी राज्यक्रान्ति के पश्चात् जब मलका मेरी अपने पति के साथ इङ्गलिस्तान आई तो "भारतवर्ष के रङ्गीन कपड़ों का शौक़ उसके साथ आया, और तेज़ी के साथ हर श्रेणी के अंगरेज़ों में फैलता

गया।"* और आगे चल कर लेकी लिखता है कि "१७ वीं शताब्दी के अन्त में बहुत बड़ी संख्या में हिन्दोस्तान की सस्ती और नफ़ीस कैलीको, मलमल और छीटें इङ्गलिस्तान में आती थीं और इतनी पसन्द की जाती थीं कि इंगलिस्तान के ऊनी और रेशमी कपड़ा बनाने वालों को उनसे बहुत बड़ा ख़तरा हो गया।"†

उस समय तक के भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विषय में प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहासज्ञ डॉक्टर रॉबर्टसन सन् १८१७ में लिखता है :—

"इस युग में सोना और चाँदी और विशेष कर चाँदी दूसरे मुल्कों से हिन्दोस्तान में भेजी जाती थी जिससे हिन्दोस्तान को बहुत बड़ा लाभ था। पृथ्वी का कोई और भाग ऐसा नहीं है जहाँ के लोग अपने जीवन की आवश्यकताओं या अपने ऐश आराम की चीज़ों के लिए दूसरे देशों पर इतना कम निर्भर हों। ईश्वर ने भारतवासियों को अत्यन्त उपयुक्त जलवायु दिया है, उनकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, और इस पर वहाँ के लोग अत्यन्त दक्ष हैं; × × × इन सब बातों के कारण हिन्दोस्तानी अपनी समस्त इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। नतीजा यह है कि बाहरी संसार की उनके साथ सदा एक ही ढङ्ग से तिजारत होती रही है, और उनके यहाँ के अद्भुत,

---

* A passion for coloured East Indian calicoes, which *speedily* spread through all classes of the community "—Lecky's *History of England in the Eighteenth Century*, vol ii, p 158

† "At the end of the seventeenth century great quantities of cheap and graceful Indian Calicoes muslins, and chintzes were imported into England, and they found such favour that the woolen and silk manufacturers were seriously alarmed "—Ibid, vol. vii, pp 255—256

प्राकृतिक तथा हाथ के बने हुए माल के बदले में क़ीमती धातुएँ उन्हें दी जाती रही हैं।"*

यही लेखक एक दूसरे स्थान पर लिखता है कि हज़रत ईसा के जन्म के समय से लेकर उन्नीसवीं सदी के शुरू तक भारत के साथ अन्य देशों का व्यापार बराबर इसी ढङ्ग का बना रहा।† १८ वीं सदी के उत्तरार्ध तक इंगलिस्तान के उद्योग धन्धे भारत के उद्योग धन्धों के मुक़ाबले में बहुत ही पिछड़े हुए थे। इंगलिस्तान के जुलाहे और अन्य कारीगर सुन्दरता, मज़बूती, सस्तेपन या निकासी, किसी बात में भी अपने माल की तुलना भारतीय माल के साथ न कर सकते थे। उस समय तक जो यूरोपियन व्यापारी भारत पहुँचे उन सब का केवल मात्र उद्देश भारत का बना हुआ माल अपने देशों को ले जाना होता था। यही उद्देश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भी था।

इंगलिस्तान और भारत के माल की तुलना

प्लासी के युद्ध के बाद से बंगाल की लूट के प्रताप अंगरेज़ों को

* "In all ages, gold and silver, particularly the latter have been the commodities exported with the greatest profit to India In no part of the earth do the natives depend so little upon foreign countries, either for the necessaries or luxuries of life The blessings of a favourable climate and a fertile soil, augmented by their own ingenuity, afford them whatever they desire In consequence of this trade with them has always been carried on in one uniform manner, and the precious metals have been given in exchange for their peculiar production, whether of nature or art"—*A Historical Disquisition Concerning India*, New edition (London 1817), p 180

† Ibid, p. 203

भारत का माल मुफ्त में या कौड़ियों के दाम मिलने लगा, और बंगाल, करनाटक, अवध और अन्य प्रान्तों से ख़ज़ाने लद लद कर इंगलिस्तान जाने लगे। इस अपूर्व लूट के कारण इंगलिस्तान के पिछड़े हुए उद्योग धन्धों को उन्नति करने का अवसर मिला।* ब्रुक्स नामक एक यूरोपियन लेखक लिखता है कि सन् १७६० तक इङ्गलिस्तान में सूत कातने इत्यादि के यन्त्र अत्यन्त प्रारम्भिक और अनघड़ थे * वाट नामक अंगरेज़ ने सन् १७६८ में पहली बार भाप की शक्ति (स्टीम पावर) के उपयोग का आविष्कार किया और स्टीम एञ्जिन की ईजाद की। बङ्गाल की लूट के धन ने इस तरह की ईजादों को सफल होने का मौक़ा दिया। ब्रुक्स ऐडम्स लिखता है कि—"यदि वाट ५० साल पहले पैदा हुआ होता तो वह और उसकी ईजाद दोनों साथ ही साथ मर जाते। शायद दुनिया के शुरू में अब तक कभी भी किसी भी पूँजी से इतना लाभ नहीं उठाया गया जितना कि भारतवर्ष की लूट से, क्योंकि क़रीब ५० वर्ष तक इङ्गलिस्तान का मुक़ाबला करने वाला कोई न था। × × × १७६० और १८१५ के बीच (इङ्गलिस्तान के उद्योग-धन्धों ने) बड़ी तेज़ी के साथ आश्चर्यजनक उन्नति की।"†

बंगाल की लूट

---

* *The Law of Civilization and Decay*, by Brooks Adams, pp 263-64.

† ". . . had Watt lived fifty years earlier, he and his invention must have perished together Possibly since the world began, no investment has ever yielded the profit reaped from the Indian plunder, because *for nearly fifty years Great Britain stood without a competitor* Between 1760 and 1815 the growth was very rapid and prodigious."—*The Law of Civilization and Decay*, pp. 263, 264.

अन्दाज़ा लगाया गया है कि प्लासी से वाटरलू तक अर्थात् सन् १७५७ से १८१५ तक क़रीब एक हज़ार मिलियन पाउण्ड अर्थात् १५ अरब रुपया शुद्ध लूट का भारत से इङ्गलिस्तान पहुँचा। * यानी ५८ वर्ष तक २५ करोड़ रुपया सालाना कम्पनी के मुलाज़िम भारतवासियों से लूट कर अपने देश ले जाते रहे। निस्सन्देह संसार के इतिहास में इस भयङ्कर लूट की दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती। स्वयं भारत के अन्दर इस लूट के मुकाबले में महमूद ग़ज़नवी और मोहम्मद गोरी के प्रसिद्ध हमले केवल गुड़ियों के खेल थे। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उस समय के एक रुपए और आजकल के एक रुपए में कम से कम दस और एक का अन्तर है। इस भयङ्कर लूट ने ही ब्रुक्स ऐडम्स के अनुसार इङ्गलिस्तान की नई ईजादों को फलने और वहाँ के कारख़ानों को जन्म लेने का अवसर दिया।

नेपोलियन की जीत का इङ्गलिस्तान पर असर

१९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप की अवस्था बदली। फ़ान्स के जगत्प्रसिद्ध विजेता नेपोलियन बोनापार्ट का प्रभाव लगभग समस्त यूरोपियन महाद्वीप पर फैल गया। महाद्वीप की प्रायः समस्त राजशक्तियाँ नेपोलियन के इशारे पर चलने लगीं। केवल इङ्गलिस्तान, जिसे अपने भारतीय साम्राज्य के निकल जाने का डर था, नेपोलियन के विरुद्ध डटा रहा। नेपोलियन

* *Prosperous British India*, by William Digby, C I E p 33

को गिराने के लिए यूरोप की विविध राजशक्तियों के साथ साज़िशें करने में और यूरोप के शासकों को बड़ी बड़ी रिशवतें देने में इङ्गलिस्तान ने पानी की तरह धन बहाया। इङ्गलिस्तान के पास उस समय इतना धन कहाँ था? धन कमाने का मुख्य उपाय अंगरेज़ों के हाथों में व्यापार था। नेपोलियन ने समस्त यूरोपियन महाद्वीप में इङ्गलिस्तान से माल का आना जाना बन्द कर दिया, जिससे इङ्गलिस्तान के व्यापार को बहुत बड़ी हानि पहुँची। नेपोलियन का मुक़ाबला करने के लिए इस हानि को पूरा करना आवश्यक था और हानि के पूरा करने के लिए भारत के सिवा अंगरेज़ों को दूसरा देश उस समय नज़र न आ सकता था।

सन् १८१३ का चारटर एक्ट

ईस्ट इण्डिया कम्पनी इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के क़ानून द्वारा क़ायम हुई थी। कम्पनी के अधिकारों को जारी रखने के लिए पार्लिमेण्ट को हर बीस वर्ष के बाद नया क़ानून पास करना पड़ता था, जिसे 'चारटर एक्ट' कहते थे। सन् १८१३ के 'चारटर एक्ट' के समय से इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल भारतवासियों के सिर मढ़ने और भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों का नाश करने के विधिवत् प्रयत्न शुरू हुए। यहाँ तक कि सन् १८१३ के इस 'चारटर एक्ट' को ही वर्तमान भारत की भयङ्कर दरिद्रता और असहायता का मूल कारण कहा जा सकता है।

व्यापार सम्बन्धी अत्याचार

किन्तु इस नए क़ानून और उसके परिणामों को पूरी तरह समझने से पहले यह आवश्यक है कि हम भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उस समय तक के व्यापार के वास्तविक रूप को जान लें। कम्पनी अपने व्यापार में जिस तरह के अन्याय और अत्याचार करती थी उसकी दो चार प्रामाणिक मिसालें नीचे दी जाती हैं—

रिचर्ड्स नामक एक अंगरेज़ ने सूरत की अंगरेज़ी कोठी के रोज़नामचे से कुछ घटनाएँ उद्धृत की हैं, जो उसने सन् १८१३ में पुस्तकाकार प्रकाशित कीं, और जिनसे मालूम होता है कि सन् १७९६ और सन् १८११ के बीच सूरत में कम्पनी के व्यापार का ढङ्ग किस प्रकार का रहा। वह लिखता है—

"जो कपड़ा सूरत से विलायत भेजा जाता था, वह अत्यन्त कड़े और निष्ठुर अत्याचारों द्वारा वसूल किया जाता था। जुलाहों को उनकी इच्छा और हित दोनों के विरुद्ध कम्पनी से काम का ठेका लेने और उस ठेके के अनुसार काम कर देने के लिए मजबूर किया जाता था। कभी कभी जुलाहे इस प्रकार जबरन् काम करने की अपेक्षा भारी जुर्माना दे देना अधिक पसन्द करते थे। कम्पनी अपने नमूने के अनुसार या बढ़िया माल के लिए जुलाहों को जो दाम देती थी उससे कहीं घटिया माल के लिए डच, पुर्तगाली, फ़्रान्सीसी और अरब सौदागरों से उन जुलाहों को ज़्यादा दाम मिल सकते थे। × × × कम्पनी का व्यापारी रेज़िडेण्ट साफ़ कहता था कि कम्पनी का उद्देश यह है कि कम या निश्चित दामों पर थान

ख़रीद कर कपड़े के समस्त व्यापार का अनन्य अधिकार कम्पनी अपने हाथों में रक्खे। इस उद्देश को पूरा करने के लिए इतनी ज़बरदस्ती की जाती थी और इतनी अधिक सज़ाएँ दी जाती थीं कि अनेक जुलाहों ने मजबूर होकर अपना पेशा तक छोड़ दिया। इस बात को भी रोकने के लिए कि कोई जुलाहा अपना पेशा न छोड़ने पाए, यह नियम कर दिया गया कि किसी जुलाहे को फ़ौज में भरती न किया जाय। एक बार यह भी हुक्म दे दिया गया कि कोई जुलाहा बिना अंगरेज़ अफ़सर की इजाज़त के शहर के दरवाज़ों से बाहर न निकल सके। जब तक जुलाहे सूरत के नवाब की प्रजा थे, उन्हें दण्ड देने और उन पर दबाव डालने के लिए नवाब को बार बार अर्ज़ियाँ दी जाती थीं × × × नवाब अंगरेज़ सरकार के हाथों में केवल एक कठपुतली था × × × आस पास के देशी नरेशों पर भी ज़ोर दिया जाता था कि वे अपने इलाक़ों में इस बात का हुक्म दे दें कि कपड़ों के थान केवल कम्पनी के सौदागरों और दलालों के हाथ ही बेचे जायँ और कदापि किसी दूसरे के हाथ न बेचे जायँ। इसके बाद जब सूरत अंगरेज़ी अमलदारी में मिला लिया गया तब इसी तरह के अन्यायों और अत्याचारों को जारी रखने के लिए बार बार अंगरेज़ी अदालतों का उपयोग किया जाता था। जब तक कम्पनी सूरत में कपड़े का व्यापार करती रही, कम्पनी के मुलाज़िमों का काम करने का ढंग बिलकुल इसी तरह का रहा। ठीक इसी ढंग से दूसरी कोठियों का भी व्यापार चलता था।"*

---

* "That the Surat investment was provided under the most rigorous and oppressive system of *coercion*, that the weavers were compelled to enter into engagements and to work for the Company, contrary to their own interests, and of course to their own inclinations, choosing in some instances

लॉर्ड वेल्सली ने १६ जुलाई सन् १८०४ को मद्रास गवर्नमेण्ट के नाम एक पत्र लिखा, जिससे विस्तृत पता चलता है कि मद्रास प्रान्त की समस्त अंगरेज़ी कोठियों में भी ये सब अत्याचार ठीक इसी तरह जारी थे।

सन् १७९३ का क़ानून

बङ्गाल में भी इसी तरह जुलाहों को ज़बरदस्ती पेशगी रुपए देकर पहले से उनका माल खरीद लिया जाता था। सन् १७९३ में बङ्गाल की सरकार ने एक क़ानून पास किया, जिसके अनुसार कोई मनुष्य जिसे कम्पनी का कुछ भी धन देना हो या जो किसी तरह कम्पनी के कपड़े के व्यापार से सम्बन्ध रखता हो, न कभी कम्पनी

---

to pay a heavy fine rather than be compelled so to work, that they could get better prices from Dutch, Portuguese, French and Arab merchants for inferior goods, than the Company paid them for standard or superior goods,

that the object of the commercial resident was, as he himself observed, to establish and maintain the complete monopoly of the whole of piece goods trade at reduced or prescribed prices, that in the prosecution of this object compulsion and punishment were carried to such a height, as to induce several weavers to quit the profession, to prevent which they were not allowed to enlist as Sepoys, or even on one occasion to pass out of the gates without permission from the English chiefs, that so long as the weavers were the subjects of the Nawab, frequent application was made to him to punish and coerce weavers ... the Nawab who was but a tool in the hands of the British Government ... Neighbouring Princes were also prevailed on to give orders in their districts, that the Company's merchants and brokers should have a preference to all others, and that on no account should piece goods be sold to other persons, that subsequently to the transfer of Surat to the British Government, the authority of the Adalat (our own Court of Justice), was constantly interposed to enforce a similar series of arbitrary and oppressive acts

का काम छोड़ सकता था, न किसी दूसरे के लिए काम कर सकता था, और न स्वयं अपने ही लिए काम कर सकता था। इस छोटे से नियम ने देश भर में प्रत्येक जुलाहे को कठोर से कठोर अर्थों में कम्पनी का आजीवन गुलाम बना दिया। यदि कोई कारीगर अपना वादा पूरा न कर सकता था तो उसे हवालात में बन्द कर दिया जाता था और उसका सब माल कच्चा और तैयार कम्पनी के नाम ज़ब्त कर लिया जाता था। इस बात की भी बिलकुल परवा न की जाती थी कि वह किसी दूसरे का भी क़र्ज़दार है या नहीं।

रेशम के कारीगरों के साथ अत्याचार

बङ्गाल के जिन ज़िलों में कम्पनी की रेशम की कोठियाँ थीं, उनमें कम से कम सन् १८२९ तक प्रजा के ऊपर इससे भी अधिक अत्याचार होते रहे। सूरत की कोठी का सा पूरा ढंग वहाँ वर्ता जाता था। इसके अतिरिक्त सन् १८२७ में बङ्गाल भर में रेशम के दाम कुछ बढ़ गए। अंगरेज़ शासकों ने कम्पनी के रेशम ख़रीदने वाले गुमाश्तों को हुकुम दिया कि बिना रेशम के कारीगरों से पूछे या उनके हित का ख़याल किए, क़ीमत घटा कर नियत कर दी जाय।*

"As long as the Company continued to trade in piece goods at Surat this was the uniform practice of their commercial servants It may be taken as a specimen of the practice of other factories "—As quoted in *The Ruin of Indian Trade and Industries*, By Major B. D. Basu, pp 78, 79

* Mr Saunder's evidence in March 1831, before the Parliamentary Committee

हेनरी गूगर नामक एक अंगरेज़ बङ्गाल के अन्दर कम्पनी के रेशम के व्यापार के इस ढंग को इस प्रकार बयान करता है—

"जिन ज़िलों में रेशम तैयार होती थी उनमें जगह जगह कम्पनी के व्यापारी रेज़िडेण्ट रहते थे। आम तौर पर ये रेज़िडेण्ट जितनी ज़्यादा रेशम कम्पनी के लिए जमा कर सकते थे उतनी ही ज़्यादा उनकी आमदनी होती थी × × ×।

"दोनों ओर से इस प्रकार कारवाई होती थी,—हर फसल (बन्द) से पहले दो तरह के लोगों को पेशगी रुपया दिया जाता था; एक काश्तकारों को जो रेशम के कीड़े पालते थे और दूसरे उन कारीगरों को जो रेशम लपेटने का काम करते थे। इन कारीगरों की संख्या बहुत बड़ी थी और आस पास के ग्रामों में अधिकतर इन्हीं की आबादी थी। काश्तकारों को पेशगी देकर कच्चा माल निश्चित कर लिया जाता था, कारीगरों को पेशगी देकर उनकी लपेटने की मेहनत के विषय में कम्पनी पहले से निश्चिन्त हो जाती थी × × ×।

"× × × मैं एक इस तरह की घटना बयान करता हूँ कि जिस तरह की घटनाएँ प्रतिदिन हुआ करती थीं।

"एक हिन्दोस्तानी काश्तकार अपने उस फ़सल के पले हुए कीड़े मेरे हाथ बेचना चाहता है और मुझसे कुछ पेशगी ले जाता है। इसी तरह एक गाँव भर के रेशम लपेटने वाले मिल कर मुझसे पेशगी ले जाते हैं (मुझसे मतलब यहाँ पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अतिरिक्त किसी बाहरी सौदागर से है)। इस सौदे के पक्का हो जाने के बाद कम्पनी के रेज़िडेण्ट के दो नौकर उस गाँव में पहुँचते हैं; एक के हाथ में रुपयों की एक थैली, दूसरे के हाथ में एक रजिस्टर—जिसमें रुपया पाने वालों के नाम लिखे

जाते हैं। जिस आदमी को रुपया दिया जाता है, वह लेने से इनकार करता है और कहता है कि मैं पहले अमुक व्यक्ति के साथ सौदा पक्का कर चुका हूँ, किन्तु उसकी एक नहीं सुनी जाती। यदि वह धन लेने से इनकार ही करता रहता है तो एक रुपया उसके मकान में फेंक दिया जाता है, उसका नाम रजिस्टर मे लिख लिया जाता है, जो आदमी थैली लाया था उसकी गवाही करा ली जाती है और समझा जाता है कि ज़ाब्ते की काररवाई हो गई। इस अन्याय द्वारा रेज़िडेण्ट को अधिकार है कि वह मेरे दरवाज़े से मेरा माल और मेरे कारीगरों को ज़बरदस्ती मुझसे छीन ले जाय और वह छीन ले जाता है।

"यह अन्याय यहीं पर ही ख़त्म नहीं होता। यदि मैं अपने रुपए की वापसी के लिए उस आदमी पर अदालत मे दावा करता हूँ तो जज का फ़र्ज़ है कि मेरे हक़ में डिग्री देने से पहले रेज़िडेण्ट से यह पता लगा ले कि क़र्ज़दार को कम्पनी का तो कुछ रुपया नहीं देना है। यदि देना होता है तो पहले रेज़िडेण्ट के हक़ में डिग्री मिलती है और मुझे अपने रुपए से हाथ धोना पड़ता है।"*

---

* "The East India Company had their *commercial residents* established in the different parts of the silk districts, whose emoluments *mainly depended on the quantity of silk they secured for the Company*.

"The system pursued by both parties was thus —Advances of money before each bund or crop were made to two classes of persons—first, to the cultivators who reared the cocoons next, to the large class of winders who formed the mass of the population of the surrounding villages By the first the raw material was secured, by the last the labor for working it

" . . I will state a case of every day occurrence

आगे चल कर हेनरी गूगर लिखता है कि माल की क़ीमत तय करने का पूरा अधिकार रेज़िडेण्ट को होता है।

सिराजुद्दौला के समय से लेकर बङ्गाल के अंदर कम्पनी का यह प्रयत्न बराबर जारी था कि देश का सारा व्यापार कम्पनी ही के हाथों में आ जाय। एक प्रसिद्ध अंगरेज़ बोल्ट्स, जिसकी पुस्तक प्लासी के केवल दस वर्ष के बाद प्रकाशित हुई थी, इस प्रयत्न के परिणामों को इस प्रकार बयान करता है—

जुलाहों पर अनसुने अत्याचार

"इस उद्देश की पूर्ति के लिए देश के ग़रीब कारीगरों और मज़दूरों के साथ इस तरह के अत्याचार और अन्याय किए गए हैं, जिनका अनुमान तक नहीं किया जा सकता। वास्तव में इन कारीगरों और मज़दूरों के ऊपर

" . . . A native wishing to sell me the cocoons he produces for the season takes my advance of money, a village of winders does the same. After this contract is made, *two of the* Resident's servants *are despatched to* the village, the one bearing a bag of rupees the other a book, in which to register the names of the recipients In vain does the *man* to whom the money is offered protest that he has entered *into* a *prior* engagement with *me* *If he* refuses to accept it, *a rupee is thrown* into his house, his name is written before the witness who carries the bag, and that is enough Under this iniquitous *proceeding* the Resident, by the authority committed *to* him forcibly seizes my property and my laborers *even at my door*

"*Nor does the* oppression stop here If I sued the man in court for repayment of the money I had thus been defrauded of, the judge was compelled, before granting a decree in my favour, to ascertain from the commercial Resident whether the *defaulter* was in debt to the East India Company. If he was, *a* *prior* decree was given to the Resident and I lost my money"—*A Personal Narrative of Two Years Imprisonment in Burma 1824—26*, By Henry Gouger, p 2.

कम्पनी ने इस तरह अपना अनन्य अधिकार जमा रक्खा है कि मानों वे सब कम्पनी के ख़रीदे हुए गुलाम हैं × × × ग़रीब जुलाहों को सताने के अनेक और असंख्य तरीक़े हैं और देश के अन्दर कम्पनी के एजण्ट और गुमाश्ते इन तरीक़ों का प्रतिदिन उपयोग करते रहते हैं। उदाहरण के लिए जुर्माने करना, क़ैद कर देना, कोड़े मारना, ज़बरदस्ती इक़रार नामे लिखवा लेना इत्यादि। इन सबका परिणाम यह है कि देश के अन्दर कपड़ा बुनने वालों की संख्या बेहद कम होगई है। × × × इसलिए कपड़ा बुनने वाले अपनी मेहनत का उचित मूल्य लेने की इच्छा से प्रायः निजी तौर पर अपना कपड़ा दूसरों के हाथ बेचने की कोशिश करते है। × × × इस पर अंगरेज़ कम्पनी का गुमाश्ता जुलाहे पर निगाह रखने के लिए अपने सिपाही नियुक्त कर देता है और बहुधा ज्योंही कि थान पूरा होने के क़रीब आता है, ये सिपाही थान को ज़बरदस्ती करघे में से काट कर निकाल लेते हैं। × × × देश भर के अन्दर हर पेशे के कारीगरों के साथ हर तरह का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता जाता है; यहाँ तक कि बुनने वाले यदि अपना माल किसी को बेचने का साहस करते हैं और दलाल और पैकार यदि इस तरह की बिक्री में सहायता देते हैं या उससे आँख बचा जाते हैं तो कई बार ऐसा हो चुका है कि कम्पनी के एजण्ट उन्हें पकड़ कर क़ैद कर लेते हैं, उनके बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ डाल देते हैं, उनसे बड़ी बड़ी रक़में जुर्माने की वसूल करते है, उनके कोड़े लगाते हैं और अत्यन्त लज्जाजनक तरीक़ों से उनसे वह चीज़ भी छीन लेते हैं जिसे वे सबसे अधिक मूल्यवान् समझते हैं, यानी उन्हे जाति भ्रष्ट कर देते हैं। × × × गुमाश्तों द्वारा इस तरह के अत्याचार सिराजुद्दौला के समय से अंगरेज़ कम्पनी की सत्ता बढ़ने के साथ साथ शुरू हुए × × ×

सिराजुद्दौला के समय में जङ्गलबाड़ी के इलाक़े के आस पास में कपड़ा बुनने वालों के सात सौ से ऊपर कुटुम्बों ने इस तरह के अत्याचारों के कारण अपना पेशा और अपना देश दोनों को एक साथ छोड़ दिया × × × बंगाल में लॉर्ड क्लाइव के पिछले शासन में इस जोश में कि कम्पनी की कच्ची रेशम की आमदनी को बढ़ाया जाय, रेशम के लपेटने वालों को सताने में मानव समाज के पवित्रतम नियमों का घोर उल्लङ्घन किया गया। × × ×"*

* "To effect this, inconceivable oppressions and hardships have been practised towards the poor manufacturers and workmen of the country who are, in fact monopolised by the Company as so many slaves. Various and innumerable are the methods of oppressing the poor weavers which are daily practised by the Company's agents and gomashtas in the country such as by fines, imprisonments, floggings forcing bonds from them etc., by which the number of weavers in the country has been greatly decreased. The weaver, therefore, desirous of obtaining the just price of his labour frequently attempts to sell his cloth privately to others, This occasions the English Company's gomashta to set his peons over the weaver to watch him, and not infrequently to cut the piece out of the loom when nearly finished therefore every kind of oppression to manufacturers of all denominations throughout the whole country has daily increased, in so much that weavers, for daring to sell their goods, and dalals and pykars for having contributed to and connived at such sales have by the Company's agents, been frequently seized and imprisoned confined in irons fined considerable sums of money, flogged and deprived, in the most ignominious manner, of what they esteem most valuable their castes. It was not till the time of Serajuddowla that oppressions of the nature now described, from the employing of gomashtas, commenced with the increasing power of the English Company in Serajuddowla's time above seven hundred families of weavers in the districts round Jungalbarry, at once abandoning their country and their professions on account of oppressions of this nature, winders of raw silk were pursued with such rigour during Lord Clive's late Government in Bengal from a zeal for increasing the Company's investment of raw silk, that the most sacred laws

विद्वान लेखक ने सम्भवतः लज्जा या शालीनता के विचार से यह साफ़ नहीं लिखा कि बंगाल के कपड़ा बुनने वालों को किस प्रकार "जातिभ्रष्ट" किया जाता था या "मानव समाज के" किन "पवित्रतम नियमों" का और किस प्रकार "घोर उल्लङ्घन" किया जाता था !

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक लिखता है :—

जुलाहों का अपने अँगूठे काटना

"यदि हिन्दोस्तानी जुलाहे उतना काम पूरा नहीं कर सकते जितना कम्पनी के गुमाश्ते ज़बरदस्ती उन पर मढ़ देते हैं, तो कमी को पूरा कराने के लिए उनका माल असबाब लेकर उसी जगह नीलाम कर दिया जाता है; और कच्चे रेशम के लपेटने वालों के साथ इतना अधिक अन्याय किया गया है कि इस तरह की मिसालें देखी गई हैं जिनमें उन्होंने स्वयं अपने अँगूठे काट डाले, ताकि कोई उन्हें रेशम लपेटने के लिए विवश न कर सके।"*

रेशम लपेटने का काम बिना अँगूठे के नहीं हो सकता।

एक और स्थान पर यही लेखक लिखता है कि रय्यत को एक

---

of society were atrociously violated "—*Considerations on Indian Affiars*, by Bolts, pp 72, 74, 192—195

* " upon their inability to perform such agreements as have ben forced upon them by the Company's agents, have had their goods seized and sold on the spot to make good the deficiency, and the winders of raw silk, have been treated also with such injustice, that instances have been known of their cutting off their thumbs to prevent their being forced to wind silk "—Ibid



बच्चे बेच कर लगान अदा करना

और कम्पनी के व्यापारी गुमाश्ते माल के लिए इस तरह दिक़ करते थे जिससे वे अपनी भूमि को ठीक रखने और सरकारी लगान तक देने के असमर्थ हो जाते थे, दूसरी ओर लगान वसूल करने वाले अफ़सर उन्हें लगान के लिए सताते थे, "और अनेक ही बार ऐसा हुआ है कि इन निर्दय लुटेरों ने उन्हें मजबूर कर दिया कि वे लगान अदा करने के लिए या तो अपने बच्चों को बेच डालें या देश छोड़ कर भाग जायँ।"*

अत्याचारों पर हरबर्ट स्पेन्सर

१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और १९ वी शताब्दी के पूर्वार्ध के कम्पनी के इन अत्याचारों के विषय में ही सुप्रसिद्ध अंगरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है :—

"कल्पना कीजिए कि उन लोगों के कारनामे कितने काले रहे होंगे जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने इस बात को स्वीकार किया कि—"भारत के आन्तरिक व्यापार में जो अटूट धन कमाया गया है, वह सब इस तरह के घोर अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया है जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश या किसी ज़माने में भी सुनने में न आए होंगे।"†

---

* "And not infrequently have by those harpies been necessitated to sell their children in order to pay their rents or otherwise obliged to fly the country"—Ibid

† "Imagine how black must have been their deeds, when even the Directors of the Company admitted that 'the vast fortunes acquired in the

ऊपर के उद्धरणों से ज़ाहिर है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में कम्पनी की भारतीय प्रजा के जान माल, उनकी मान मर्यादा या उनकी 'पवित्रतम भावनाओं' किसी का अणुमात्र भी मूल्य न था। निस्सन्देह संसार के किसी भी देश और किसी भी युग में प्रजा की वह भयङ्कर दुर्दशा न हुई होगी जो कम्पनी के शासन काल में भारतीय प्रजा की हुई।

सन् १८१३ की नई व्यापारिक नीति

अब हम फिर सन् १८१३ के नए क़ानून की ओर आते हैं। इस क़ानून के पास होने से पहले भारत और इङ्गलिस्तान के बीच व्यापार करने का अनन्य अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्राप्त था। सन् १८१३ के क़ानून में सब से पहली बात यह की गई कि यह अनन्य अधिकार कम्पनी से छीन लिया गया और भारत के साथ व्यापार करने का दरवाज़ा प्रत्येक अंगरेज़ व्यापारी और प्रत्येक अंगरेज़ व्यक्ति के लिए खोल दिया गया। इसका अर्थ यह था कि भारतीय प्रजा के ऊपर अत्याचारों के करने और उन्हें इस प्रकार लूटने का अधिकार अब आम तौर पर सब अंगरेज़ों को दे दिया गया।

इसके अतिरिक्त सन् १८१३ में ही पहली बार यह तय हुआ कि भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट किया जाय, इङ्गलिस्तान के

---

inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct that was ever known in any age or country' "—*Social Statics* by Herbert Spencer, 1st edition, p. 367

उद्योग धन्धों को बढ़ाया जाय और इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल ज़बरदस्ती भारतवासियों के सिर मढ़ा जाय। जिस समय इस विषय पर बहस हो रही थी पार्लिमेण्ट के एक सदस्य मिस्टर टीरने ने पार्लिमेण्ट में व्याख्यान देते हुए स्पष्ट कहा—

टीरने का व्याख्यान

"आम असूल अब से यह होगा कि इङ्गलिस्तान अपने यहाँ का बना हुआ सब माल ज़बरदस्ती भारत में बेचे और उसके बदले में हिन्दोस्तान की बनी हुई एक भी चीज़ न ले। यह सच है कि हम रुई अपने यहाँ आने देंगे, किन्तु जब हमें यह पता लग गया है कि हम मशीनों के ज़रिए हिन्दोस्तानियों की निस्बत सस्ता कपड़ा बुन सकते हैं तो हम उनसे यह कहेंगे कि 'तुम बुनने का काम छोड़ दो, हमें कच्चा माल दो और हम तुम्हारे लिए कपड़ा बुन देंगे।' सम्भव है कि व्यापारियों और कारीगरों की दृष्टि में यह बहुत ही स्वाभाविक सिद्धान्त हो। किन्तु इसमें फ़िलासफ़ी छाँटना या इस असूल के समर्थकों को ख़ास तौर पर हिन्दोस्तान के हितचिन्तक गिनना ज़रा ज़्यादती है। यदि हिन्दोस्तान के दोस्त कहने के बजाय हम अपने तईं हिन्दोस्तान के दुश्मन कहें तो समस्त हिन्दोस्तानी कारीगरी के नाश करने की इस सलाह से बढ़ कर दुश्मनी की सलाह और हम हिन्दोस्तान को क्या दे सकते हैं?"*

* "The general principle was to be that England was to force all her manufactures upon India, and not to take a single manufacture of India in return. It was true they would allow cotton to be brought, but then having found out that they could weave, by means of machinery, cheaper than the people of India they would say,—'Leave off weaving, supply us

निस्सन्देह मिस्टर टीरने की स्पष्टवादिता सराहनीय है। केवल एक वाक्य ऊपर के उद्धरण में असत्य था। वह यह कि "हम मशीनों के ज़रिए हिन्दोस्तानियों की निस्बत सस्ता कपड़ा बुन सकते हैं।" आगे की घटनाओं से साफ़ ज़ाहिर हो गया कि 'मशीनों' और 'भाप' की मदद से भी इङ्गलिस्तान के कारीगर भारत के कारीगरों के मुक़ाबले में सस्ता या अच्छा कपड़ा न बुन सकते थे, और यदि अनसुने महसूलों, अन्यायों, बहिष्कारों और असंख्य राजनैतिक हथकण्डों द्वारा भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट न किया गया होता तो भाप की ताक़त के लिए इङ्गलिस्तान के कपड़े के कारख़ानों को चला सकना सर्वथा असम्भव था। अब देखना यह है कि किन किन उपायों द्वारा अंगरेज़ों ने उस समय अपनी इस नीति को सफल बनाया।

भारतीय उद्योग धन्धों के नाश के उपाय

सन् १८१३ का क़ानून पास होने से पहले पार्लिमेण्ट की दो ख़ास कमेटियाँ इस बात के लिए नियुक्त की गईं कि वे हिन्दोस्तान से गए हुए सब बड़े बड़े अंगरेज़ों की गवाहियाँ जमा करके इस नीति को सफल बनाने के उपाय निकालें। जितने

---

with the raw material, and we will weave for you ' This might be a very natural principle for merchants and manufacturers to go upon, but it was rather too much to talk of the philosophy of it, or to rank the supporters of it as in a peculiar degree the friends of India. If instead of calling themselves the friends of India, they had professed themselves its enemies, what more could they do than advise the destruction of all Indian manufacutres ?"
—Mr Tierney in the House of Commons, 1813

अंगरेज़ गवाह इन दोनों कमेटियों के सामने पेश हुए उन्होंने एक मत से यह बयान किया कि हिन्दोस्तानियों को इङ्गलिस्तान के बने हुए किसी माल की बिलकुल आवश्यकता नहीं है और न इङ्गलिस्तान का माल यहाँ आसानी से खपाया जा सकता है। इन असंख्य गवाहियों को यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक है। जो जो मुख्य उपाय अपनी नीति को सफल करने के लिए उस समय के अंगरेज़ शासकों ने तय किए उन्हें संक्षेप में इस प्रकार गिनाया जा सकता है,—

(१) इङ्गलिस्तान के बने हुए माल को नाम मात्र महसूल पर या बिना महसूल भारत में आने दिया जाय।

(२) इङ्गलिस्तान में भारत के बने हुए माल पर इतना ज़बरदस्त महसूल लगाया जाय कि जिससे भारत का माल वहाँ इङ्गलिस्तान के बने हुए माल के मुक़ाबले में सस्ता न बिक सके।

(३) भारत के अन्दर चुङ्गी के क़ायदों और चुङ्गी की दर में इस तरह के परिवर्तन किए जायँ जिनसे रुई इत्यादि कच्चे माल के इङ्गलिस्तान भेजने में आसानी हो, जिनसे भारतीय कारीगरों की लागत और भारतीय व्यापारियों की कठिनाइयाँ बढ़ जायँ और भारत का बाज़ार भी भारत के माल के लिए बन्द हो जाय और अंगरेज़ी माल के लिए ख़ाली हो जाय।

(४) अंगरेज़ व्यापारियों और कारीगरों को भारत में रहने और काम करने के लिए धन की सहायता और अन्य विशेष सुविधाएँ दी जायँ।

(५) भारतीय कारीगरों पर हर तरह का दबाव डाल कर उनकी कारीगरी के रहस्यों का पता लगाया जाय, जैसे थानों को धोना, रँगना इत्यादि, और इंगलिस्तान के व्यापारियों और कारीगरों को उन रहस्यों की सूचना दी जाय। और प्रदर्शनियों के ज़रिए भारतवासियों की आवश्यकताओं और उनकी कारीगरी के भेदों का पता लगाया जाय।

(६) माल के लाने ले जाने के लिए भारत में रेलें जारी की जायँ।

(७) अपनी मण्डियों को पक्का करने के लिए ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को विस्तार दिया जाय और भारतवर्ष को इंगलिस्तान का गुलाम बना कर रक्खा जाय।

पार्लिमेण्ट की कमेटी

सन् १८३०-३२ में पार्लिमेण्ट की ओर से एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसका उद्देश यह तहकीक़ात करना था कि पूर्वोक्त उपाय कहाँ तक सफल हुए और सन् १८१४ से उस समय तक भारत के अन्दर इंगलिस्तान का व्यापार कहाँ तक बढ़ा। कमेटी के सामने अनेक गवाहों के बयान हुए। पहला प्रश्न जो प्रत्येक गवाह से किया गया वह यह था कि सन् १८१४ से अब तक भारत के अन्दर महसूल की तबदीलियों से अंगरेज़ व्यापारियों को व्यापार के लिए क्या क्या सुविधाएँ दी जा चुकी हैं? इस प्रश्न के कुछ उत्तरों से प्रस्तुत विषय पर ख़ासी रोशनी पड़ती है।

लारपैंट नामक एक अंगरेज़ गवाह ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—

अंगरेज़ी माल पर महसूल माफ़

"इंगलिस्तान का बना हुआ जो माल हिन्दोस्तान के अन्दर आता है, उस पर महसूल घटा कर कुल क़ीमत पर २½ फ़ीसदी महसूल कर दिया गया है, और बहुत से ख़ास ख़ास तरह के माल पर बिलकुल ही महसूल उड़ा दिया गया है।

* * *

"चुङ्गी की दर बदल दी गई है और कई चीज़ों पर चुङ्गी उड़ा दी गई है।

"जो अंगरेज़ क़हवा (काफी) या नील का काम करना चाहते हैं, उन्हें ६० साल के पट्टे पर ज़मीनें मिलने की इजाज़त दे दी गई है, इत्यादि।"

एक दूसरे अंगरेज़ गवाह सलीवन ने बयान किया—

"सन् १८१४ में व्यापार का द्वार खुल जाने के समय से रुई के ऊपर महसूल बिलकुल हटा लिया गया है, जो रुई हिन्दोस्तान से चीन भेजी जाती है उस पर महसूल घटा कर पाँच फ़ीसदी कर दिया गया है, और जो रुई हिन्दोस्तान से इंगलिस्तान भेजी जाती है उस पर महसूल बिलकुल नहीं लिया जाता।"

क्रॉफ़र्ड नामक गवाह ने बयान किया—

"महसूल के मामले में सन् १८१३ के क़ानून में यह बात दर्ज कर दी गई थी कि बिना इंगलिस्तान के अधिकारियों से पूछे हिन्दोस्तान में बाहर के माल पर कोई नया महसूल न लगाया जाय। इसी के अनुसार पुराने महसूलों को कम करके और उनकी एक सूची तैयार करके इंगलिस्तान से हिन्दोस्तान

भेजी गई और हिन्दोस्तान की सरकार ने सन् १८१९ में उसी को क़ानून का रूप दे दिया, इत्यादि।"

ग्लासगो चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स ने अपने बयान में लिखा—

"ऊनी कपड़ों, धातुओं और जहाज़ी सामान के ऊपर हिन्दोस्तान में बिलकुल महसूल नहीं लिया जाता, जिससे निस्सन्देह इंगलिस्तान के इन चीज़ों के व्यापार को बहुत बड़ी सुविधा प्राप्त हुई है।"

भारतीय माल पर निषेधकारी महसूल

दूसरा उपाय जो भारतीय उद्योग धन्धों को नष्ट करने का किया गया वह इंगलिस्तान के अन्दर भारत के बने हुए माल पर ज़बरदस्त महसूल लगा देना था, ताकि भारत का माल इंगलिस्तान में इंगलिस्तान के बने हुए माल से सस्ता न बिक सके।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ लैकी लिखता है कि भारत के बने हुए कपड़े उन दिनों इतने सुन्दर, सस्ते और मज़बूत होते थे कि १८ वीं शताब्दी के शुरू ही में इंगलिस्तान के कपड़ा बुनने वालों को हिन्दोस्तान के कपड़ों के मुक़ाबले में अपने रोज़गार के नष्ट हो जाने का डर हो गया। उसी समय से इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने क़ानून बना कर कई तरह के भारतीय कपड़ों का इंगलिस्तान आना बन्द कर दिया और दूसरे कई तरह के कपड़ों पर भारी महसूल लगा दिए। यह उपाय भी काफ़ी साबित न हुए तब लैकी के बयान के अनुसार सन् १७६६ में इंगलिस्तान के अन्दर यदि कोई

अंगरेज़ महिला हिन्दोस्तानी कपड़े की पोशाक पहनती थी तो उसे राजदण्ड दिया जाता था।*

सन् १८१३ में पार्लिमेण्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए रॉबर्ट ब्राउन नामक एक अंगरेज़ व्यापारी ने, जो हिन्दोस्तान से सूती कपड़े मँगाया करता था, बयान किया कि उन दिनों हिन्दोस्तान से जाने वाले कपड़ों पर इंगलिस्तान में दो तरह का महसूल लिया जाता था। एक, अंगरेज़ी बन्दरगाहों में माल के जहाज़ों से उतरते ही और दूसरे इंगलिस्तान निवासियों के उपयोग के लिए इंगलिस्तान की मण्डियों में माल के पहुँचने के समय। इसके अतिरिक्त सारे हिन्दोस्तानी माल को तीन श्रेणियों में बाँट दिया गया था। पहली श्रेणी में मलमल इत्यादि थीं, जिन पर बन्दरगाह में उतरते समय १० फ़ीसदी और इंगलिस्तान की मण्डियों में जाते समय २७½ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था। दूसरी श्रेणी में कैलिको (कालीकट का एक ख़ास कपड़ा) इत्यादि थे जिन पर बन्दरगाहों में उतरते समय ३⅛ फ़ीसदी और मण्डियों में जाते समय ३⅛ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था। तीसरी श्रेणी में वे कपड़े थे जिनका बेचना या पहनना इंगलिस्तान के अन्दर जुर्म समझा जाता था। इस तरह के माल पर बन्दरगाहों में उतरते समय ६८⅛ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था; और व्यापारियों के लिए आवश्यक था कि उस माल को फ़ौरन् दूसरे मुल्कों

* Lecky's *History of England in the Eighteenth Century*, vol vii pp 255—266, 320

को भेज दे। इतनी कड़ाई के होते हुए भी दूसरी श्रेणी के कपड़े ७२ फ़ीसदी महसूल देने के पश्चात् उस प्रकार के अंगरेज़ी कपड़ों के मुक़ाबले में इङ्गलिस्तान के बाज़ारों के अन्दर ६० फ़ीसदी तक कम दाम में मिलते थे।

अर्थात् आज से क़रीब सौ वर्ष पहले तक भारत में जो कपड़ा हाथ के सूत से और हाथ के करघों पर तैयार होकर १००) रुपए से कम में मिल सकता था, उतना सुन्दर और उतना मज़बूत कपड़ा इङ्गलिस्तान के पुतलीघर वाले भाप और मशीनों की मदद से ४५०) रुपए में भी तैयार करके न बेच सकते थे।

तीन हज़ार फ़ीसदी तक महसूल

हिन्दोस्तान से उन दिनों तरह तरह के सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ों के अतिरिक्त हाथ की छुड़ियाँ जिन पर सोने चाँदी की मूठें और तरह तरह का काम होता था, चीनी मिट्टी के बरतन, चमड़े और लकड़ी की चीज़ें, शराब, अरक़, वारनिश का काम, नारियल का तेल, सींग, रस्सियाँ, चाय, अराकट चटाइयाँ, चीनी, साबुन, काग़ज़ इत्यादि अनेक तरह का माल इङ्गलिस्तान जाता था। सन् १८१३ से १८३२ तक इङ्गलिस्तान की आवश्यकतानुसार बराबर इङ्गलिस्तान के अन्दर इन चीज़ों पर महसूल घटता बढ़ता रहा। कई तरह के भारतीय कपड़ों, ख़ास कर रेशमी रूमालों और रेशम की बनी हुई चीज़ों का बिकना इङ्गलिस्तान में सन् १८२६ तक क़ानूनन् बन्द रहा। बहुत सी चीज़ों पर १०० फ़ीसदी से भी ज़्यादा महसूल लिया जाता था। कई पर ६०० फ़ीसदी तक

और रिकर्ड नामक एक अंगरेज़ ने सन १८३२ की पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने बयान किया कि किसी चीज़ पर ३,००० फ़ी सैकड़ा तक महसूल लिया जाता था। अर्थात् एक रुपए की चीज़ पर तीस रुपए महसूल। सारांश यह कि जब कि एक ओर इङ्गलिस्तान के बने हुए माल पर हिन्दोस्तान में अधिक से अधिक ढाई फ़ीसदी महसूल लिया जाता था और बहुत सा माल बिना महसूल आने दिया जाता था, दूसरी ओर इङ्गलिस्तान के अन्दर हिन्दोस्तान के माल पर भयङ्कर कानूनी और सामाजिक बहिष्कार जारी था।

भारत की असहायता

इतिहास लेखक विलसन इङ्गलिस्तान के कपड़े के व्यापार की उन्नति और भारत के कपड़ा बुनने के धन्धे के इस प्रकार सर्वनाश के विषय में लिखता है—

"हमारे सूती कपड़े के व्यापार का यह इतिहास इस बात की एक शोकमय मिसाल है कि हिन्दोस्तान जिस देश के अधीन हो गया था उसने हिन्दोस्तान के साथ किस तरह अन्याय किया। गवाहियों में यह बयान किया गया था कि सन् १८१३ तक हिन्दोस्तान के सूती और रेशमी कपड़े इङ्गलिस्तान के बाज़ारों में इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों के मुक़ाबले में ५० फ़ीसदी से ६० फ़ीसदी तक कम दाम पर फ़ायदे के साथ बिक सकते थे। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि हिन्दोस्तान के माल पर ७० और ८० फ़ीसदी महसूल लगाकर या उसका इङ्गलिस्तान में आना सर्वथा बन्द करके इङ्गलिस्तान के व्यापार की रक्षा की जाय। यदि ऐसा न होता, यदि इस तरह की आज्ञाएँ न दी गई होतीं और भारत के माल पर इस तरह के भारी निषेधकारी महसूल न लगाए गए होते, तो

पेज़ली और मैञ्चेस्टर के पुतली घर खुलते ही बन्द हो गए होते और फिर भाप की ताक़त से भी दोबारा न चलाए जा सकते। इन पुतलीघरों का निर्माण भारतीय कारीगरी के बलिदान पर किया गया।

"यदि भारत स्वाधीन होता तो वह इसका बदला लेता, इङ्गलिस्तान के बने हुए माल पर निषेधकारी महसूल लगाता और इस प्रकार अपने यहाँ की कारीगरी को सर्वनाश से बचा लेता। किन्तु उसे इस प्रकार की आत्मरक्षा की इजाज़त न थी। वह विदेशियों के चङ्गुल में था। इङ्गलिस्तान का माल बिना किसी तरह का महसूल दिए ज़बरदस्ती उसके सिर मढ़ दिया गया, और विदेशी कारीगरों ने एक ऐसे प्रतिस्पर्धी को को दबा कर रखने और अन्त में उसका गला घोंट देने के लिए, जिसके साथ वे बराबरी की शर्तों पर मुक़ाबला न कर सकते थे, राजनैतिक अन्याय के शस्त्र का उपयोग किया।"*

---

* "The history of the trade of cotton cloths with India is a melancholy instance of the wrong done to India by the country on which she had become dependent It was stated in evidence, that the cotton and silk goods of India up to this period (1813) could be sold for a profit in the British market, at a price from fifty to sixty per cent, lower than those fabricated in England It consequently became necessary to protect the latter by duties of seventy and eighty per cent, on their value, or by positive prohibition Had this not been the case, had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of Paisley and of Manchester would have been stopped in their outset, and could scarcely have been again set in motion even by the powers of steam They were created by the sacrifice of the Indian manufacture Had India been independent, she would have retaliated would have imposed preventive duties upon British goods, and thus would have preserved her own productive industry from annihilation This act of self-defence was not permitted her, she was at the mercy of the stranger British goods were forced upon her without paying any duty, and the foreign manufacturer employed the arm of political injustice to keep down

इङ्गलिस्तान और यूरोप की मण्डियाँ हिन्दोस्तान के बने हुए माल के लिए निषेधकारी महसूलों द्वारा बन्द कर दी गईं। इङ्गलिस्तान के बने हुए माल की बिक्री के लिए भारत में विशेष सुविधाएँ कर दी गईं। किन्तु असख्य भारतीय कारीगरियों के सर्वनाश के लिए यह भी काफ़ी न था। भारतवर्ष की विशाल मण्डियाँ अभी तक भारत के बने हुए माल की खपत के लिए मौजूद थीं। भारत की इन मण्डियों में इङ्गलिस्तान के बने माल के लिए जगह बनाने के वास्ते उनमें भारत ही के बने हुए माल का पहुँच सकना और बिक सकना असम्भव कर देना आवश्यक था। इसके लिए मुख्य उपाय यह किया गया कि भारतवर्ष के अन्दर चुङ्गी के पुराने तरीक़ों को बदला गया और चुङ्गी का एक नया नाशकारी महकमा क़ायम किया गया।

नई चुङ्गी

फ़्रेडरिक शोर नामक उस समय के एक अंगरेज़ विद्वान ने चुङ्गी के पुराने हिन्दोस्तानी तरीक़े और इसके बाद के अंगरेज़ी तरीक़े की तुलना करते हुए लिखा है कि चुङ्गी वसूल करने का पुराना हिन्दोस्तानी तरीक़ा यानी मुग़लों या नवाबों के समय का तरीक़ा यह था कि हर चालीस, पचास या साठ मील के ऊपर चुङ्गीघर बने हुए थे। हर चुङ्गीघर को पार करते समय व्यापारी को अपने माल पर चुङ्गी देनी पड़ती थी जो एक लदे हुए बैल पर एक ख़ास

---

and ultimately strangle a competitor with whom he could not have contended on equal terms "—Mill's *History of British India*, vol vii, p 385

रक़म, टट्टू पर उससे कुछ ज़्यादा, ऊँट पर और कुछ ज़्यादा, बैलगाड़ी पर उससे कुछ अधिक इत्यादि, इसी हिसाब से नियत थी। माल की क़ीमत या क़िस्म से चुङ्गी का कोई सम्बन्ध न था। इसके अतिरिक्त चुङ्गी इतनी हलकी होती थी कि कोई उससे बचने की कोशिश न करता था। न किसी को माल खोल कर देखने की आवश्यकता होती थी, न किसी 'पास' या 'रवन्ने' की ज़रूरत; और न किसी व्यापारी को कोई कष्ट होता था। जो व्यापारी अपना माल अधिक दूर ले जाता था उसे हर ५० या ६० मील के बाद वही बँधी हुई रक़म देनी होती थी।

इसकी जगह जो नया तरीक़ा अंगरेज़ों ने जारी किया, वह यह था—

तलाशी की चौकियाँ

चुङ्गीघरों के अलावा देश भर में अनेक 'चौकियां' बना दी गईं, जिनमें हर व्यापारी के सब माल को खोल कर देखा जाता था। चुङ्गीघर में व्यापारी से एक बार चुङ्गी ले ली जाती थी और उसे एक 'पास' या 'रवन्ना' दे दिया जाता था ताकि उस व्यापारी को दोबारा कहीं चुङ्गी न देनी पड़े। माल की क़ीमत और क़िस्म के अनुसार हर तरह के माल पर अलग अलग चुङ्गी रक्खी गई। चाहे व्यापारी को बहुत दूर जाना हो और चाहे बहुत नज़दीक, किन्तु चुङ्गी की रक़म वह नियत की गई, जो इससे पहले दूर से दूर जाने वाले व्यापारी को रास्ते भर के सब चुङ्गीघरों पर मिला कर देनी पड़ती थी। इस प्रकार पहली बात तो यह हुई कि देश के आन्तरिक व्यापार पर चुङ्गी पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ गई।

दूसरी बात इस नए तरीक़े में 'रवन्ना' थी। व्यापारी के किसी एक स्थान से चलते समय उसके सारे माल पर एक रवन्ना दिया जाता था। यदि कहीं पर व्यापारी अपना आधा माल बेच दे तो बचे हुए माल के लिए उसे पास के चुङ्गीघर पर जाकर पिछला रवन्ना दिखला कर, माल का रवन्ने के साथ मीलान करवाकर और आठ आने सैकड़ा नया महसूल देकर आवश्यकतानुसार एक या अधिक नए रवन्ने ले लेने होते थे। यदि एक साल तक माल का कोई हिस्सा न बिका हो तो भी बारह महीने के बाद हर रवन्ना रद्दी हो जाता था। व्यापारी के लिए ज़रूरी था कि बारह महीने ख़त्म होने से पहले किसी पास के चुङ्गीघर पर जाकर पिछले रवन्ने से अपने माल का मीलान करवा कर और आठ आने सैकड़ा नया महसूल देकर नया रवन्ना हासिल कर ले, अन्यथा बारह महीने समाप्त होने के बाद उसे अपने समस्त माल पर नए सिरे से चुङ्गी देनी पड़ती थी।

भारतीय व्यापारियों की दिक़्क़तें

तीसरी और सब से बढ़ कर बात इस नए तरीक़े में तलाशी की 'चौकियाँ' थीं। ये चौकियाँ देश भर में जगह जगह बना दी गई थीं। चौकियों के छोटे से छोटे मुलाज़िम को किसी भी माल को रोक लेने, उसे खुलवा कर देखने और रवन्ने से मीलान करने आदि का अधिकार था। यदि माल रवन्ने के मुताबिक़ न होता था या व्यापारी के पास रवन्ना न होता था तो इन चौकियों पर सारा माल क़ानूनन् ज़ब्त कर लिया जा सकता था। इस पर तारीफ़ यह कि यदि कोई व्यापारी किसी ऐसे स्थान से माल ले कर चलता

था कि जहाँ से आगे के चुङ्गीघर तक पहुँचने से पहले उसे किसी तलाशी की चौकी पर से जाना पड़े तो उससे यह आशा की जाती थी कि वह अपने घर से माल लेकर निकलने से पहले ही किसी चुङ्गीघर से अपने माल के लिए रवन्ना हासिल कर ले। इस विचित्र और असम्भव नियम का नतीजा यह था कि जो मामूली व्यापारी अपने घर से कुछ दूर ख़ास मेलों या बाज़ारों से माल ख़रीद कर दूसरे स्थानों पर जाकर बेचते थे उन्हें प्रायः अपने घर के पास के चुङ्गीघर वालों को पहले से यह बता देना होता था कि हम क्या, कितना और किस क़ीमत का माल ख़रीदेंगे और पहले ही से उसके लिए रवन्ना ले लेना होता था। जिस व्यापारी को यह पता न हो सकता था कि मुझे कौन सा माल और किस पड़ते पर मिल सकेगा, उसके व्यापार और रोज़गार के लिए यह नियम सर्वथा घातक था।

बेहिसाब चुङ्गी

एक तो चुङ्गी बेहद बढ़ा दी गई थी, दूसरे इन चौकियों पर प्रायः इतना समय नष्ट होता था, माल के मीलान करवाने में इतनी कठिनाई होती थी, चौकी के छोटे मुलाज़िमों के लिए माल को पहचान सकना, उसकी क़ीमत का अन्दाज़ा लगा सकना या व्यापारी के लिए यह साबित कर सकना कि माल ठीक वही है जो रवन्ने में दर्ज है—इतना कठिन होता था और चौकियों और चुङ्गीघरों के मुलाज़िमों के अधिकार इतने विस्तृत होते थे कि इस नई पद्धति के कारण देश के व्यापारियों और कारीगरों की कठिनाइयाँ बेहद बढ़ गई, उनके हौसले टूट गए

और असंख्य देशी दस्तकारियों का और देश के आन्तरिक व्यापार का सत्यानाश हो गया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इंगलिस्तान का बना हुआ माल, जो अंगरेज़ और उनके एजण्ट यहाँ बेचते थे, इन समस्त असुविधाओं से बरी था।

फ़्रेड्रिक शोर लिखता है—

"हम इस बात की बड़ी बड़ी शिकायतें सुनते हैं कि इस देश के लोग ग़रीब होते जा रहे हैं, देश का आन्तरिक व्यापार नष्ट होता जा रहा है और देश की दस्तकारियाँ बजाय उन्नति करने के, गिरती जा रही हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है? हमारी इस चुङ्गी की प्रणाली के कारण समस्त व्यापारियों को जिन असह्य क्लेशों का सामना करना पड़ता है, क्या उनसे किसी और नतीजे की आशा की जा सकती थी?"*

फ़्रेड्रिक शोर ने मिसालें दी हैं कि किस प्रकार देहली और बनारस के दुशालों के व्यापारियों का काम इस पद्धति द्वारा नष्ट हो गया है। बुख़ारा, रूस, पेशावर और काबुल के व्यापारियों को इससे कितना नुक़सान पहुँचा और वे किस प्रकार शिकायतें करते थे। भारत की दस्तकारियों पर तो कई कई बार चुङ्गी देनी पड़ती थी; कच्चे माल पर अलग और बने हुए माल पर अलग।

* "We hear loud complaints of the impoverishment of the people, the falling off of the internal trade, and the decline instead of the increase of manufactures. Is it to be wondered at? Could any other result be anticipated from the intolerable vexation to which all merchants are exposed by our internal customs?"—*Notes on Indian Affairs*, By Hon. Frederick Shore

यहाँ तक कि दुशालों के व्यापारियों को दो बार, चमड़े के व्यापारियों को तीन बार और सूती कपड़े के व्यापारियों को चार बार चुङ्गी देनी पड़ती थी। अन्त में फ्रेड्रिक शोर लिखता है :—

"यदि यह हालत बहुत दिनों जारी रही, तो थोड़े ही दिनों में हिन्दोस्तान सिवाय इतने अन्न के कि जो उसकी आबादी के गुज़ारे के लिए ठीक काफ़ी हो, उसे पकाने के लिए थोड़े से भद्दे मिट्टी के बरतनों के, और थोड़े से मोटे कपड़ों के और कुछ न बना सकेगा। यदि हम केवल इस बोझ को हिन्दोस्तान की छाती पर से हटा लें तो अब भी थोड़े ही दिनों में भारत और इंगलिस्तान के बीच व्यापार का नक़्शा बिलकुल पलट जाय।"*

अंगरेज़ व्यापारियों को सहायता

जो सात उपाय सन् १८१३ में नियत किए गए उनमें पहले तीन का विस्तृत बयान दिया जा चुका है। चौथा उपाय अंगरेज़ों को भारत में रहने और काम करने की विशेष सुविधाएँ देना था। भारत की दृष्टि से यह ग़लती वास्तव में उस समय से शुरू हुई जब कि दिल्ली के सम्राट ने एशियाई उदारता में आकर इन विदेशियों को व्यापार करने के लिए भारत में इस तरह के अधिकार दे दिए जिस तरह के कि आज कल का कोई ईसाई शासक किसी भी दूसरे देश के लोगों को अपने देश के अन्दर न देगा। वास्तव में उस

---

* " if this be continued much longer, India will, ere long, produce nothing but food just sufficient for the population, a few coarse earthen-ware pots to cook it in and a few coarse cloths Only remove this incubus and the tables will very soon be turned "—Ibid

समय से ही भारतीय व्यापार और उद्योग धन्धों के नाश और भारत की राजनैतिक पराधीनता का बीज वपन हुआ। बङ्गाल के अन्दर अंगरेज़ व्यापारियों को जो रिआयतें दी गई उन्ही का परिणाम नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्रों का रचा जाना और प्लासी का निर्णायक संग्राम था। इसके बहुत दिनों बाद भारत की अंगरेज़ी सरकार ने भारतवासियों के ख़र्च पर आसाम और कुमायूँ के अन्दर चाय की काश्त के अनेक तजरुबे किए; इसलिए कि तजरुबे सफल होने के बाद वहाँ के चाय के सब बागीचे ऐसे अंगरेज़ों के हवाले कर दिए जायँ जो वहाँ रह कर काम करना चाहें, बाद में ऐसा ही किया भी गया। भारतवासियों के ख़र्च पर कई अंगरेज़ों को तरह तरह की चाय के बीज लाने के लिए चीन भेजा गया। और चीनी काश्तकार हिन्दोस्तान में लाए गए ताकि अंगरेज़ उनसे चाय की काश्त का तरीका सीख सकें। इसलिए, ताकि इन चाय के बागीचों में काम करने वालों की कभी कमी न होने पाए, वहाँ पर शुद्ध गुलामी की प्रथा क़ानूनन् प्रचलित की गई। अपने भारतीय गुलामों पर इन गोरे मालिकों के अत्याचारों की कथा भी एक पृथक कहानी है। इसी प्रकार लोहे के काम करने वाले और नील को काश्त करने वाले अंगरेज़ों को भी भारत वासियों के ख़र्च पर समय समय पर धन और क़ानून दोनों की सहायता दी गई। इसी तरह के और भी असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु इस विषय को विस्तार देना व्यर्थ है।

भारतीय कारीगरी के रहस्यों का पता लगाना

पाँचवाँ उपाय भारतीय कारीगरी के रहस्यों का पता लगाना था। इन रहस्यों और भारतवासियों की आवश्यकताओं का पता लेने के लिए अनेक प्रदर्शनियाँ की गईं। लन्दन में भारतवासियों के ख़र्च पर एक विशाल अजायबघर बनाया गया, जिसमें अङ्गरेज़ कारीगरों की जानकारी के लिए भारतीय कारीगरी के नमूने इत्यादि जमा किए गए। इससे भी बढ़ कर भारत के बने हुए कपड़ों के सात सौ भिन्न भिन्न नमूने अठारह बड़ी बड़ी जिल्दों में जमा किए गए। इन संग्राह को बीस प्रतियाँ तैयार कराई गईं। इनमें अठारह अठारह विशाल जिल्दों की तेरह प्रतियाँ इंगलिस्तान के कारीगरों की जानकारी के लिए उस देश के विविध औद्योगिक केन्द्रों में रक्खी गईं, और शेष सात प्रतियाँ भारत में आने जाने वाले अंगरेज़ व्यापारियों के लिए भारतवर्ष के सात मुख्य मुख्य केन्द्रों में रक्खी गईं। वास्तव में ये बीस प्रतियाँ बीस औद्योगिक अजायबघर हैं। यह विशाल कार्य इंगलिस्तान की कारीगरी को बढ़ाने और भारत की कारीगरी को नष्ट करने के लिए किया गया, किन्तु इसके ख़र्च का एक एक पैसा ग़रीब हिन्दोस्तानियों की जेब से लिया गया। अक्षरशः जिन पैनी छुरियों से भारतीय कारीगरों के गले काटे गए उन छुरियों को उन्हीं कारीगरों के ख़र्च पर तैयार किया गया।

हिन्दोस्तानी कारीगारी के रहस्यों का पता लगाने के लिए

और भी अनेक तरह की ज़बरदस्तियाँ की गईं। मेजर कीथ नामक एक अंगरेज़ लिखता है :—

"प्रत्येक मनुष्य जानता है कि कारीगर अपने औद्योगिक रहस्यों को कितनी सावधानी के साथ छिपा कर रखते हैं। यदि आप डूल्टन कम्पनी (इंगलिस्तान की एक कम्पनी) के मिट्टी के बरतनों के कारखाने को देखने जायँ तो सौजन्य के साथ आपको टाल दिया जायगा। फिर भी हिन्दोस्तानी कारीगरों को ज़बरदस्ती मजबूर किया गया कि वे अपने थानों को धोकर सफ़ेद करने के तरीक़े और अपने दूसरे औद्योगिक रहस्य मैञ्चेस्टर वालों पर प्रकट कर दें, और उन्हें मानना पड़ा। इण्डिया हाउस के महकमे ने एक क़ीमती संग्रह तैयार किया, इसलिए ताकि उसकी मदद से मैञ्चेस्टर दो करोड़ पाउण्ड (अर्थात् तीस करोड़ रुपए) सालाना हिन्दोस्तान के ग़रीबों से वसूल कर सके। इस संग्रह की प्रतियाँ "चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स" को मुफ़्त भेंट की गईं और हिन्दोस्तानी रय्यत को उनकी क़ीमत देनी पड़ी। सम्भव है कि सम्पत्ति विज्ञान (पोलिटिकल इकानामी) की दृष्टि से यह सब जायज़ हो, किन्तु वास्तव में इस तरह के काम में और एक दूसरी चीज़ (लूट) में बेहद आश्चर्यजनक समानता है।"*

* "Every one knows how jealously trade secrets are guarded. If you went over Messrs Doulton's Pottery Works, you would be politely over-looked Yet under the force of compulsion the Indian workman had to divulge the manner of his bleaching and other trade secrets to Manchester A costly work was prepared by the India House Department to enable Manchester to take twenty millions a year from the poor of India copies were gratuitously presented to Chambers of Commerce, and the Indian Raiyat had to pay for them This may be political economy, but it is marvellously like something else "—Major J B Keith in the *Pioneer* September 7, 1891

इंगलिस्तान के व्यापार को फैलाने और कच्चे माल को बाहर ले जाने के लिए भारत भर में रेलों का जाल पूर दिया गया। दूसरे देशों को पराधीन करने और उनको पराधीनता को बनाए रखने में मिश्र, भारत, चीन, मञ्चूरिया कोरिया और साइबेरिया में सब जगह रेलों ने बहुत ज़बरदस्त काम किया है।

रेलें

सन् १८१३ का नया 'चारटर' भारतवासियों के लिए केवल आर्थिक दृष्टि से ही घातक न था, नैतिक दृष्टि से भी वह भारतवासियों के अधिकाधिक पतन का कारण हुआ। भारतीय जीवन की सरलता और शुद्धता को भङ्ग करने ही में उस समय के धन-लोलुप अंगरेज व्यापारियों को अपना हित दिखाई देता था। सन् १८३२ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने जो गवाह पेश हुए उनमें से एक मिस्टर ब्रेकन ने अपने बयान में कहा—

भारतवासियों में शराब का प्रचार

"अब कलकत्ते में उन हिन्दोस्तानियों के अन्दर, जो शराब पर ख़र्च कर सकते हैं, तरह तरह की शराबें बहुत बड़ी मिक़दार में खपती हैं।"

इसी गवाह ने एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में कहा—

"मैंने कलकत्ते के एक देशी दूकानदार से, जो वहाँ के बड़े से बड़े खुर्दफ़रोशों में से है, सुना है कि उसके शराबों, ब्राण्डी और बियर, के ग्राहकों में से अधिकांश ग्राहक हिन्दोस्तानी हैं।"

इस गवाह से पूछा गया कि—हिन्दोस्तानियों को कौन सी शराब सब से ज़्यादा पसन्द है? उसने उत्तर दिया—शेम्पेन। फिर

पूछा गया कि—क्या हिन्दोस्तानी पहले बिलकुल शराब नहीं पीते थे ? उसने जवाब दिया—मैं समझता हूँ, कि बहुत ही कम । पूछा गया—क्या शराब पीना उनके धर्म के विरुद्ध नहीं है ? जवाब मिला—मुझे नहीं मालूम कि उनके धर्म के विरुद्ध है या नहीं, किन्तु उनकी आदतों के विरुद्ध अवश्य है ; वे खुले तौर पर शराब नहीं पीते । किन्तु जब कभी पीते हैं तो उनका पीना धर्म के विरुद्ध हो या न हो उनके यहाँ के सामाजिक रिवाज के विरुद्ध अवश्य होता है ।"*

दूसरे अंगरेज़ गवाहों ने भी बड़े हर्ष के साथ बयान किया कि यूरोपियनों के संसर्ग से भारतवासियों में शराब पीने की आदत और यूरोप के ऐश आराम के और अन्य दिखावटी सामान ख़रीदने

---

*Mr Bracken before the Commons Committee on 24th March, 1832 —

"Liquors in Calcutta are now consumed in large quantities by natives who can afford to purchase them "

In answer to another question —

"I heard from a native shopkeeper in Calcutta, who is one of the largest retail shopkeepers that his customers for wines, and brandy, and beer, were principally natives "

Question —What should you say was the favourite wine among the natives ?

"Champaigne "

Question —Formerly did they not consume any wine ?

"Very little, I believe "

Question —Is it not contrary to their religion ?

'I do not know whether it is contrary to their religion but it is contrary to their habits . it is not done openly, but when done it is a violation of their custom rather than of their religion '

की आदत बढ़ती जाती है जिससे अंगरेज़ी व्यापार का लाभ है। निस्सन्देह भारतीयों को चरित्रभ्रष्ट करने में उस समय के विदेशी व्यापारी-शासकों का स्पष्ट लाभ था।

भारतीय कपड़े के व्यापार का अन्त

अब हम इन समस्त प्रयत्नों के परिणामों की ओर नज़र डालते हैं। नीचे के अङ्कों से साबित है कि अपने इन प्रयत्नों मे इङ्गलिस्तान के व्यापारी-शासकों को पूरी सफलता प्राप्त हुई।

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् १८३४ में प्रकाशित किया कि सन् १८१६ में जो सूती कपड़े बङ्गाल से विदेशों को गए उनका मूल्य १,६५,६४,३८० रुपए था। उसके बाद घटते घटते सन् १८३२ में केवल ८,२२,८६१ रुपए का कपड़ा बङ्गाल से बाहर गया। इसके विपरीत इङ्गलिस्तान का बना हुआ कपड़ा बङ्गाल के अन्दर सन् १८१४ में केवल ४५,००० रुपए का आया; सन् १८१६ में ३,१७,६०२ रुपए का, और सन् १८२८ में ७६,६६,३८३ रुपए का केवल सूती कपड़ा इङ्गलिस्तान से बङ्गाल में आकर खपा। सन् १८२३ तक एक गज़ विदेशी सूत भी बङ्गाल के अन्दर न आता था; किन्तु सन् १८२८ में क़रीब अस्सी लाख रुपए के कपड़े के अतिरिक्त ३५,२२,६४० रुपए का सूत इङ्गलिस्तान से बङ्गाल में आया।

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि सन् १८३३ तक एक करोड़ रुपए साल का विलायत का बाज़ार और लगभग ८० लाख रुपए का स्वयं बङ्गाल का बाज़ार बङ्गाल के कपड़ा बुनने वालों के

हाथों से छीना जा चुका था। सर चार्ल्स ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा कि —

"१,८०,००,००० रुपए सालाना की इस विशाल रक़म को पैदा करने में जितने लोग लगे हुए थे उनकी अब क्या हालत होगी ?"*

गाँठों के हिसाब से सन् १८१४ में ३,८४२ गाँठें कपड़े की हिन्दोस्तान से इङ्गलिस्तान भेजी गईं। सन् १८२४ में १,८७८ और सन् १८२८ में केवल ४३३ गाँठें। यदि थानों की संख्या को देखा जाय तो सन् १८२४ में १,६७,५२४ थान कपड़े के हिन्दोस्तान से इङ्गलिस्तान गए और सन् १८२९ में केवल १३,०४४ थान।

इङ्गलिस्तान के बने हुए कुल सूती माल का दाम जो सन् १८१४ में भारतवर्ष आया १६,१५,३१५ रुपया था, सन् १८२८ में यह रक़म बढ़कर ३,०१,४६,६१५ रुपए तक पहुँच गई; अर्थात् १४ वर्ष के अन्दर हिन्दोस्तान में आने वाले इङ्गलिस्तान के सूती माल की क़ीमत लगभग १९ गुनी बढ़ गई। ऊनी कपड़ा सन् १८१४ में इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान केवल ६,७०,६८० रुपए का आया। उसी वर्ष कुल माल कपड़े, लोहा, ताँबा, शराब, काग़ज़, काँच इत्यादि मिलाकर इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान ६,१४,८७,४७५ रुपए का आया। सन् १८३० में कुल माल इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान ३०,११,००,३१० रुपए का आया, जिसमें से २,१३, ८८, ७७०

* "What is to become of all the people who were employed in working up this great annual amount (1,80,00,000 Rs.)"—Sir Charles Trevelyan, 1834

रुपए का ऊनी माल और १३,१०,४३,२४० रुपए का सूती माल था ।*

सन् १८३०—३२ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने जो गवाह पेश हुए उन्होंने एक स्वर से बयान किया कि हिन्दोस्तान में लङ्काशायर के बने हुए कपड़ों की खपत में १५ वर्ष के अन्दर अपूर्व और आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है ।

कपड़े का धन्धा किसी भी देश के उद्योग धन्धों में सदा सब से अधिक महत्वपूर्ण होता है । इसलिए हमने इसे इस अध्याय में इतना अधिक विस्तार दिया है । किन्तु जिस प्रकार कम्पनी ने इस भारतीय धन्धे को नष्ट किया ठीक उसी प्रकार उस समय के अन्य अनेक उद्योग धन्धों के भी नाश का पता चलता है ।

भारतीय जहाज़ों के उद्योग का नाश

भारतीय जहाज़ों के उद्योग को और विशेष कर माल लाने ले जाने वाले जहाज़ों की कारीगरी को किस प्रकार नष्ट किया गया इस पर रोशनी डालते हुए डब्लू एस० लिंडसे लिखता है—

"सन् १७८९ में पुर्तगालियों के पास कैन्टन शहर में ख़ाली तीन जहाज़ थे जब कि वे समस्त पूर्वीय व्यापार में पूरी तरह लगे हुए थे । डच लोगों के पास पाँच, फ़्रान्सीसियों के पास एक, डेन मार्क वालों के पास एक, संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पास पन्द्रह और अंगरेज़ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास चालीस जहाज़ थे, जब कि केवल अंगरेज़ी इलाक़े की भारतीय

* Taken from Parliamentary Papers 1830—32, as quoted in Major B D Basu's *Ruin of Indian Trade and Industries*, pp 70, 71, One pound being taken equal to Rs 15

प्रजा के पास भी इतने ही जहाज़ थे जितने इन सबके पास मिलाकर। इसके अतिरिक्त एशिया का क़रीब क़रीब सारा जहाज़ी व्यापार हिन्दुस्तान के बने जहाज़ों में होता था। इन जहाज़ों के मालिक भी हिन्दोस्तानी थे। ये जहाज़ भारत से चीन, और मलाबार के किनारे से ईरान की खाड़ी और लाल सागर तक उतने ही चक्कर लगाते थे जितने कि आशा अन्तरीप के रास्ते यूरोप के जल मार्ग का पता लगने के पहले।

"किन्तु इन भारत के बने हुए जहाज़ों को सन् १७९५ से पहले लन्दन माल लाने ले आने की इजाज़त नहीं मिली। उस साल चूंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बहुत से जहाज़ इङ्गलिस्तान की सरकार के काम में फँसे हुए थे लिहाज़ा प्रान्तीय सरकारों को लिखा गया कि वे माल लाने ले आने के लिए हिन्दोस्तानी जहाज़ों को नियुक्त करलें। सोलह पौण्ड प्रति टन के हिसाब से चावल और दूसरे वज़नी माल और बीस पौण्ड प्रति टन के हिसाब से हल्का माल टेम्स तक पहुँचाने का तय हुआ। इन जहाज़ों को इजाज़त थी कि राह में कम्पनी के इलाक़े के लिये जो और माल ये मुनासिब समझें लाद सकते थे।"*

किन्तु भारतीय जहाज़ों की यह सुविधा थोड़े ही दिनों बाद छीन ली गई, और जब सन् १७९६ में कम्पनी का चारटर फिर से दोहराया गया तो उसमें एक विशेष धारा इस बात की रख दी गई कि इङ्गलिस्तान के व्यापारी, या भारत के व्यापारी, या कम्पनी के अपने मुलाज़िम जो भी माल भारत से इङ्गलिस्तान लाएँ ले जाएँ वे केवल उन्हीं जहाज़ों में ले जा सकेंगे जो कम्पनी के किराये के होंगे, अन्य दूसरे जहाज़ों में नहीं।

---

* *"History of Merchant shipping."* vol ii, pp 454, 455

लार्ड मेलविले ने मार्किस हेस्टिंग्स के कम्पनी के नाम २१ मार्च सन् १८१२ के एक पत्र के निम्न लिखित वाक्य को उद्धृत किया है "इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि १७६६ का क़ानून कम से कम इस देश के जहाज़ के व्यापारियों के लिये सन्तोष प्रद नहीं साबित हुआ।"*

सन् १७६६ के बाद से चन्द वर्षों के अन्दर भारत के जहाज़ी धन्धे का क़रीब क़रीब नाश हो गया।

भारत के लोहे के उद्योग धन्धे का नाश

सर जार्ज वाट ने इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री की आज्ञानुसार सन् १६०८ में "कमर्शियल प्राडक्ट्स आफ़ इण्डिया" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें लिखा है—"इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं कि भारत में प्राचीन ऐतिहासिक काल से लोहे गलाने के कारख़ानों का ज़िक्र मिलता है। और रेल के क़रीब की जगहों में हमने इङ्गलिस्तान से सस्ता लोहा भेज कर इस भारतीय उद्योग का नाश कर दिया। किन्तु बम्बई और मध्य प्रान्त के अन्दर के हिस्सों में इस उद्योग ने कुछ तरक्क़ी के आसार दिखाए हैं। सैयद अली बिलग्रामी के अनुसार मध्यकाल की दमिश्क की मशहूर तलवारें निज़ाम राज की फ़ौलाद से ही बनती थीं। इस समय तक हैदराबाद अपनी तलवारों और ख़ञ्जरों के लिये मशहूर है।"

बैलेंटाइन बाल ने अपनी पुस्तक "जंगल लाइफ़ इन इण्डिया"

* Ibid, p. 457.

में लिखा है—"बहुत से गाँवों में लोहे गलाने की भट्टियाँ थीं। पहले ये भट्टियाँ क़रीब क़रीब हर गाँव में थीं किन्तु अब यह उद्योग नष्ट कर दिया गया। इस तरह के कारख़ानों का ठेका जगह जगह अंगरेज़ कम्पनियों को दे दिया गया। तरह तरह की ज़बरदस्तियों द्वारा इस भारतीय उद्योग धन्धे का नाश हो गया और इसके कारण लाखों भारतीय लोहारों और कोलों की जीविका का अन्त कर दिया गया *"

भारतीय काग़ज़ के उद्योग का नाश

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल तक भारतवर्ष में काग़ज़ बनाने के जगह जगह कारख़ाने थे; सर जार्ज वाट ने एशिया के विविध देशों के साथ साथ भारत में काग़ज़ के बनाने और इस्तेमाल के सम्बन्ध में लिखा है—

"पुराने ज़माने में भारत में काग़ज़ बनाने के सम्बन्ध मे जिस आदमी ने तफ़सील से लिखा है वह बकैनन हैमिल्टन है। काग़ज़ बनाने के लिए जो मसाला इस्तेमाल किया जाता था वह सन होता था। सन् १८४० से पूर्व भारत में बहुत सा काग़ज़ चीन से आता था। किन्तु इसी समय के क़रीब लोगों के अन्दर एक भावना पैदा हुई और हाथ से काग़ज़ बनाने के बहुत से हिन्दू और मुसलिम कारख़ाने सारे देश में क़ायम हो गए। इन कारख़ानों के बने काग़ज़ से देश की सारी आवश्यकता पूरी होने लगी। किन्तु जिस समय सर चार्ल्स वुड ने भारत मन्त्री का कार्य भार सम्हाला उस समय एक हुक्मनामा निकाला गया कि आइन्दा भारत की सरकार अपने इस्तेमाल

---

* Jungle Life in India, by Valentine Ball, pp 224—25

के लिए जो भी काग़ज़ ख़रीदे वह सब इंगलिस्तान का बना होना चाहिए और इस हुक्मनामे ने भारत के बढ़ते हुए काग़ज़ के व्यापार को बहुत ज़बरदस्त नुकसान पहुँचाया।"*

यह सर चार्ल्स वुड भारत के पिछले गवरनर जनरल लार्ड इरविन का पितामह था।

भारतीय चीनी के धन्धे का नाश

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय भारत में चीनी का उद्योग अपने शिखर पर था। हज़ारों मन भारतीय चीनी इङ्गलिस्तान और यूरोप के अन्य बन्दरगाहों में उतरती थी। जब खुले व्यापार में अंगरेज़ सौदागर भारतीय चीनी के व्यापार को न दबा सके तब महसूल के घातक उपायों को इस्तेमाल किया गया। सर जार्ज वाट लिखता :—

"इंगलिस्तान की सरकार ने भारतीय चीनी पर इतना महसूल लगाया कि उसका आना ही बन्द हो गया। यह अन्य उपनिवेशों की चीनी के महसूल से एक क्वार्टरवेट पीछे ८ शिलिंग ज़्यादा था।"

आगे चल कर वाट लिखता है :—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तरह भारतीय चीनी के उद्योग को एक भारी धक्का पहुँचाया गया और यदि भारत में कमी पूरा करने के ज़बरदस्त साधन न होते तो यह चोट मंघातक साबित होती। यदि इङ्गलिस्तान भारत से कच्ची चीनी ख़रीदता रहता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्पत्ति का क्षेत्र और माल की पैदावार का बढ़ना एक लाज़िमी नतीजा

* "The Commercial Products of India" by Sir George Watt, p 866

था। किन्तु यह सब उलट गया और जो खाने पीने की चीज़ें अब इङ्गलिस्तान से भारत भेजी जाती हैं उनमें चीनी ५३.३ प्रतिशत होती है और सूती कपड़े के बाद हिन्दुस्तान में भेजी जाने वाली वस्तुओं में चीनी का ही दूसरा नम्बर है। इस तरह कुछ समय पहले जो दो चीज़ें भारत से सब से अधिक मिक़दार में बाहर भेजी जाती थीं वही भारत में आने वाली बन गई।"*

भारत के उद्योग धन्धों का नाश और स्वाधीनता हरण

सन् १८३०-३२ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के मेम्बरों ने बयान किया कि उस समय दो करोड़ पाउण्ड यानी तीस करोड़ रुपए सालाना की आमदनी इङ्गलिस्तान के कारीगरों और मज़दूरों को भारत के व्यापार से हो रही थी। इसके बाद इङ्गलिस्तान की यह आय प्रति वर्ष बढ़ती चली गई। और जिस औसत से यह आय बढ़ती गई उसी औसत से भारतवर्ष की पराधीनता भी। हमारे उद्योग धन्धे और व्यापार के नाश और हमारी स्वाधीनता के नाश में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। एक की कड़ियाँ ढीली होने से दूसरे पर उसका लाज़िमी असर होता है। एक अंगरेज़ लेखक इस विषय का वर्णन करते हुए बड़े सुन्दर शब्दों में लिखता है :—

"मालूम होता है हम इस बात को पूरी तरह अनुभव नहीं करते कि हिन्दोस्तान यदि हमारे हाथ से निकल गया तो बिला शुबहा एशिया के साथ हमारी सारी तिजारत का खात्मा हो जायेगा। किन्तु यदि हम सोचें तो यह

---

* "*The Commercial Products of India*" by Sir George Watt, p 958

बात आसानी से समझ में आ सकती है। यदि हिन्दोस्तान हमारे हाथ से निकल गया तो उसके साथ साथ न सिर्फ़ हिन्दोस्तान की मण्डियाँ ही हमारे लिए बन्द हो जावेंगी और ऐसी पूरी तरह बन्द हो जावेंगी जैसी कि मध्य एशिया की मण्डियाँ इस समय हमारे लिए बन्द हैं बल्कि इसके साथ साथ जिस हिन्दोस्तान में कच्चा माल खूब पैदा होता है, और जिसके रहने वाले अत्यन्त प्राचीन समय से बड़े कुशल दस्तकार हैं, वह बहुत जल्दी उद्योग धन्धों की दृष्टि से संसार के बड़े से बड़े देशों की पंक्ति में आ जावेगा। ज्योंही हिन्दोस्तानियों को विदेशियों के मुक़ाबले से अपने उद्योग धन्धों के रक्षा करने का मौक़ा मिला अपने यहाँ की सस्ती मज़दूरी और कच्चे माल की बहुतायत की मदद से हिन्दोस्तान का माल एशिया भर की मण्डियों से हमारे माल को निकाल कर बाहर कर देगा और खुद उसकी जगह ले लेगा।"*

स्वयं लार्ड डफ़रिन ने इस विषय पर व्याख्यान देते हुए एक बार कहा था :—

लॉर्ड डफ़रिन का व्याख्यान

"सचमुच यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि यदि हमारे भारतीय साम्राज्य पर कभी कोई गहरी आफ़त

* "We do not appear to realise the fact that the loss of India will assuredly deprive us of all our Eastern trade, and yet it is easy to see that it will be so, for not only will the marts of India be closed against us if we lose it—as firmly closed against us as are those of Central Asia now—but besides this, India, with its raw produce and its people skilled in manufactures from of old, will soon, under a system of protection, become a great manufacturing nation,—will soon with its cheap labour and abundant supply of raw material supplant us through out the East"—India for Sale Kashmir Sold, by W Sedgwick, Major, R E, Calcutta, W. Newman & Co., Ltd. 1886, page 4

आई या यदि हिन्दोस्तान के साथ हमारे राजनैतिक सम्बन्ध में थोड़ा बहुत भी फ़र्क़ पड़ा, तो हमें एक ऐसी असह्य विपत्ति का सामना करना पड़ेगा कि जिसके घातक नतीजों से ग्रेट ब्रिटेन भर में या कम से कम देश के उन समस्त हिस्सों में जहाँ बड़े बड़े कल कारख़ाने हैं एक झोंपड़ा भी बच न सकेगा।" *

भारत की निर्धनता

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और अंगरेज़ सरकार के ज़बरदस्त प्रयत्नों से १६ वीं शताब्दी के अन्त में भारत के प्राचीन उद्योग धन्धे इतिहास मात्र रह गए और जो देश क़रीब सौ वर्ष पहले संसार का सब से अधिक धनवान देश था वह सौ वर्ष के विदेशी शासन के परिणाम स्वरूप संसार का सब से अधिक निर्धन देश हो गया।

* "Indeed, it would not be too much to say that if any serious disaster ever overtook our Indian Empire or *if our political relations with the Peninsula of Hindustan were to be even partially disturbed, there is not a cottage in Great Britain—at all events in the manufacturing districts—which would not be made to feel the disastrous consequences of such an intolerable calamity* —Lord Dufferin's Speeches in India John Murray, p. 234

तीसवाँ अध्याय

नैपाल युद्ध

लॉर्ड हेस्टिंग्स के शासन काल का पहला राजनैतिक काम नैपाल युद्ध था। पिछले अध्यायों मे कहा जा चुका है कि अंगरेज़ों की उन दिनों एक मुख्य अभिलाषा यह थी कि भारतवर्ष के अन्दर ठीक उसी प्रकार अंगरेज़ों की बस्तियाँ आबाद की जायँ जिस प्रकार ऑस्ट्रेलिया, अफ़रीका, अमरीका आदि देशों मे की जा चुकी थीं। इस तरह के अंगरेज़ी उपनिवेशों के लिए भारत के अन्दर सब से अधिक उपयोगी स्थान हिमालय की रमणीक घाटियाँ थीं। इसलिए देहरादून, कुमायूँ और गढ़वाल के इलाकों

भारत में अंगरेज़ी उपनिवेशों की योजना

पर अंगरेज़ों के बहुत दिनों से दाँत थे। किन्तु ये सब ज़िले उस समय नैपाल के स्वाधीन राज में शामिल थे। यही हेस्टिंग्स के नैपाल युद्ध का वास्तविक कारण था। इससे कुछ वर्ष पहले भी महाराजा रणजीतसिंह को भड़का कर और उनसे मदद का वादा करके अंगरेज़ उसे गोरखों से लड़ा चुके थे।* प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहासज्ञ प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन लिखता है —

"किसी उत्तरीय (यूरोपियन) जाति के लोग केवल एक ऐसे प्रदेश और ऐसे जलवायु में ही जमा हो सकते हैं और बढ़ सकते हैं जो कि हिन्दोस्तान के गरम मैदानों की अपेक्षा यूरोपियन सङ्गठन के लिए अधिक अनुकूल हो, और जहाँ पर कि उनके स्वतन्त्रता से फैलने के लिए काफ़ी जगह हो; और यदि कभी भी पूरब में अंगरेज़ों के उपनिवेश किसी ऐसे स्थान पर क़ायम होंगे जहाँ अंगरेज़ों की अपनी नैतिक और शारीरिक शक्तियाँ ज्यों की त्यों बनी रह सकें, तो इसकी आशा हम केवल भारतीय एल्प्स (हिमालय) की पहाड़ियों और घाटियों में ही कर सकते हैं—अर्थात् इस तरह के उपनिवेश जब कभी क़ायम होंगे, गोरखा युद्ध के प्रताप से ही क़ायम होंगे।"†

---

* Cunningham's *History of the Sikhs*

† "Under a climate more congenial to European organisation than the sultry plains of India, and with space through which they may freely spread, the descendants of a northern race may be able to aggregate and multiply and if British Colonies be ever formed in the East with a chance of preserving the moral and physical energies of the parent country, it is to the vales and mountains of the Indian Alps that we must look for their existence, it will be to the Gorkha War that they will trace their origin."—Mill's *History of British India*, vol viii, pp 59, 60

ज़ाहिर है कि भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश बसाने के लिए इन पहाड़ी इलाक़ों की ज़रूरत थी और ये इलाक़े नैपाल से बिना युद्ध न मिल सकते थे। किन्तु युद्ध का ज़ाहिरा कारण कुछ और बताया गया। सारन और गोरखपुर के ज़िलों में भारत और नैपाल की सरहदें मिलती थीं। सरहद की कुछ ज़मीन कम्पनी और नैपाल दरबार के बीच विवाद ग्रस्त थी। वास्तव में उस समय तक भारत और नैपाल के बीच की सरहद बिलकुल साफ़ न थी और इस तरह के विवाद पहले भी कई बार हो चुके थे। ये विवाद दोनों राज्यों के संयुक्त कमीशनों के सुपुर्द कर दिए जाते थे और आम तौर पर उन कमीशनों का फ़ैसला दोनों स्वीकार कर लेते थे।

युद्ध का ज़ाहिरा कारण

इतना ही नहीं, वरन् मालूम होता है कि अनेक बार ये झगड़े अंगरेज़ों के उकसाए हुए होते थे, और इस तरह के झगड़े खड़े करने मे उन दिनों अंगरेज़ों का लाभ भी था। इतिहास लेखक हेनरी टी० प्रिन्सेप लिखता है कि अंगरेज़ सरकार अपनी सरहद के भारतीय ज़मींदारों का, जो अंगरेज़ सरकार को ख़िराज देते थे और अंगरेज़ों की ही प्रजा समझे जाते थे, विश्वास न करती थी, इसलिए अनेक बार अंगरेज़ जान बूझ कर उन ज़मींदारों के विरुद्ध नैपाल दरबार को बढ़ाते रहते थे। प्रिन्सेप यह भी लिखता है कि चूंकि अंगरेज़ सरकार ने इन ज़मींदारों के साथ स्थायी बन्दोबस्त कर रक्खा था, इसलिए ज़मींदारों की भूमि छिन जाने या कम हो जाने से अंगरेज़ों को कोई हानि न थी और न उन्हें इसकी परवा थी,

और जब कभी किसी झगड़े में अंगरेज़ ज़मींदारों का पक्ष लेते थे तो नैपाल सरकार अंगरेज़ों का कहना मान लेती थी।* इस बार भी वास्तव में झगड़ा कुछ ज़मींदारों और नैपाल के बीच था और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि अंगरेज़ चाहते तो पहले झगड़ों के समान इस झगड़े का भी शान्ति के साथ निबटारा हो जाता।

झगड़े का मोल लेना

किन्तु इस बार हेस्टिंग्स की इच्छा कुछ दूसरी थी। हेस्टिंग्स के भारत पहुँचने से पहले इस तरह का एक झगड़ा मौजूद था, और उस झगड़े के फ़ैसले के लिए एक कमीशन भी नियुक्त था। इस कमीशन पर मेजर ब्रेडशा कम्पनी का वकील था। मालूम होता है मेजर ब्रेडशा को हेस्टिंग्स का इशारा मिल गया। मार्च सन् १८१४ में एक दिन अचानक और अकारण मेजर ब्रेडशा ने अपने साथ के नैपाली कमिश्नरों का अपमान कर डाला। प्रोफ़ेसर विलसन लिखता है—

"नैपाली कमिश्नर मेजर ब्रेडशा से मिलने आए, मेजर ब्रेडशा ने उनके साथ अशिष्ट भाषा का उपयोग किया; इस पर वे लोग चुप रह गए; और यह देख कर कि कोई काम उनके सामने पेश नहीं किया गया, उठ कर चले आए।"†

* *History of the Political and Military Transactions in India during the Administration of the Marquis of Hastings*, by Henry T Prinsep, pp 6. et seq

†*History of British India*, by Mill and Wilson, vol viii, p 12, footnote

हेस्टिंग्स को बहाना मिल गया। जिस ज़मीन के विषय में झगड़ा था वह उस समय नैपाल के कब्ज़े में थी हेस्टिंग्स ने बजाय मामले को तय करने के फ़ौरन महाराज नैपाल को एक ज़ोरदार पत्र लिखा कि विवादग्रस्त भूमि तुरन्त ख़ाली कर दीजिये। यह पत्र गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट द्वारा नैपाल दरबार के पास भेजा गया। उसी दिन हेस्टिंग्स ने एक पत्र गोरखपुर के अंगरेज़ मैजिस्ट्रेट को लिखा कि यदि महाराजा नैपाल को पत्र भेजने के २५ दिन के अन्दर नैपाली उस ज़मीन को ख़ाली न कर दें तो गोरखपुर से कम्पनी की सेना भेज कर उस भूमि पर ज़बरदस्ती कब्ज़ा कर लिया जाय।

नैपाली समझ गए कि अंगरेज़ युद्ध के लिए कटिबद्ध हैं।

छेड़ छाड़

नैपाली जाति एक वीर जाति है। उस समय तक अपने समस्त इतिहास में उन्हें कभी भी पराधीनता या पराजय तक का सामना न करना पड़ा था। उन्होंने लड़ाई के इस आह्वान को स्वीकार कर लिया। फिर भी उन्होंने अत्यन्त शिष्ट भाषा में गवरनर जनरल के अशिष्ट पत्र का उत्तर दिया, जिसमें नैपाल दरबार ने अपनी ओर से मित्रता क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की। उधर गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट ने २५ दिन समाप्त होते ही विवादग्रस्त भूमि पर कब्ज़ा करने के लिए तीन कम्पनी गोरे सिपाहियों की रवाना कर दीं। गोरखे अभी तक इसके लिए तैयार न थे। वे अंगरेज़ी सेना का बिना विरोध किए पीछे हट गए। अंगरेज़ी सेना उस इलाके में कुछ थाने क़ायम करके

वापस आगई। किन्तु अंगरेज़ी सेना अभी गोरखपुर पहुँची भी न थी कि २६ मई सन् १८१४ को सवेरे गोरखा सेना ने नए अंगरेज़ी थानों पर हमला करके उस इलाक़े पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया।

हेस्टिंग्स समझता था नैपाली इस ज़बरदस्ती को चुपचाप स्वीकार कर लेंगे। किन्तु गोरखा सेना के हमले ने मामले को संगीन बना दिया। अब अंगरेज़ों के लिए इस हमले का जवाब देना आवश्यक था। किन्तु हेस्टिंग्स के मार्ग में अभी दो कठिनाइयाँ थीं। एक तो प्रिन्सेप के अनुसार गवरनर जनरल चाहता था कि युद्ध के एलान से पहले जो अंगरेज़ उस समय नैपाल के साथ तिजारत कर रहे थे उन्हें अपनी पूंजी सहित वापस बुला लिया जाय। दूसरे यदि युद्ध देर तक चला तो उसके लिए काफ़ी धन की आवश्यकता थी।

नवाब अवध और नैपाल युद्ध

जून सन् १८१४ में मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स धन की तलाश में कलकत्ते से उत्तर पूर्वी प्रान्तों की ओर रवाना हुआ। कम्पनी की आर्थिक स्थिति उस समय ख़ासी गिरी हुई थी। कम्पनी की हुण्डियाँ बाज़ार में बारह फ़ीसदी बट्टे पर बिकती थीं। किन्तु कम्पनी और उसके अंगरेज़ अफ़सरों की पुरानी कामधेनु अवध का नवाब मौजूद था। नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर उस समय अवध की मसनद पर था। कहते हैं कि अंगरेज़ रेज़िडेण्ट मेजर बेली के बुरे व्यवहार के कारण नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ज़िन्दगी से बेज़ार हो रहा था। यहाँ तक कि गवरनर जनरल के पास इसकी शिकायत पहुँची,

और गवरनर जनरल फ़ौरन कलकत्ते से लखनऊ के लिए चल दिया।

लॉर्ड हेस्टिंग्स ने १३ अक्तूबर सन् १८१४ के अपने निजी रोज़नामचे में लिखा है—

अवध के नवाब के साथ अन्याय

"नवाब वज़ीर मेजर बेली के उद्धत प्रभुत्व के नीचे हर घण्टे आहें भरता था। उसे यह आशा थी कि मैं इस अन्याय से उसे छुटकारा दिला दूँगा, किन्तु मैंने उसके ऊपर मेजर बेली के प्रभुत्व को रिवट लगा कर और भी अधिक पक्का कर दिया। मेजर बेली अत्यन्त छोटी से छोटी बातों में भी नवाब पर हुकूमत चलाता था। जब कभी मेजर बेली को नवाब से कुछ कहना होता था वह चाहे जिस समय बिना सूचना दिए नवाब के महल में पहुँच जाता था, अपने आदमियों को बड़ी बड़ी तनख़ाहों पर ज़बरदस्ती नवाब के यहाँ नौकर रखा देता था, और ये ही लोग नवाब के समस्त कार्यों की ख़बर देने के लिए मेजर बेली को जासूसों का काम देते थे। इस सब से बढ़ कर मेजर बेली जिस हाकिमाना शान के साथ हमेशा नवाब से बातचीत करता था उसके कारण उसने नवाब को उसके कुटुम्बियों और उसकी प्रजा तक की नज़रों में गिरा रक्खा था।"*

---

* "Nawab-Vazier had reckoned on being emancipated from the imperious domination of Major Baillie under which His Excellency groaned every hour, but that I had riveted him in his position, Major Baillie dictated to him in the merest trifles, broke in upon him at his palace without notice, whensoever he (Major Baillie) had anything to prescribe, fixed his (Major Baillie's) creatures upon His Excellency with large salaries, to be spies upon all his actions, and above all, lowered His Excellency in the eyes of his family and his subjects by the magisterial tone which he constantly

इस पर भी कहा जाता है कि नवाब ग़ाज़ीउद्दीन लॉर्ड हेस्टिंग्स से इतना खुश हुआ कि अपनी "कृतज्ञता प्रकट करने के लिए"* उसने अंगरेज़ गवरनर जनरल को ढाई करोड़ रुपए क़र्ज़ दे दिए।

मेजर बर्ड ने विस्तार के साथ बयान किया है कि यह ढाई करोड़ की नई रक़म नवाब ग़ाज़ीउद्दीन को किस प्रकार सता सता कर और किस प्रकार की यातनाएँ दे देकर वसूल की गई।† इस यात्रा में ही हेस्टिंग्स ने नैपाल युद्ध के लिए अपनी विस्तृत योजना तैयार की, और लखनऊ से ही पहली नवम्बर सन् १८१४ को नैपाल के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

युद्ध की विशाल तैयारी

नैपाल का राज कम्पनी के राज से कहीं छोटा था। दोनों राज्यों के बीच पञ्जाब में सतलज नदी से लेकर बिहार में कोशी नदी तक क़रीब ६०० मील की लम्बी सरहद थी। युद्ध का एलान करने से पहले गवरनर जनरल ने इस सरहद के पाँच अलग अलग स्थानों से पाँच सेनाओं द्वारा नैपाल पर हमला करने का प्रबन्ध कर लिया। इन पाँच सेनाओं का बटवारा इस प्रकार किया गया—

(१) सबसे पहली सेना करनल ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने में नियुक्त की गई। यह वही ऑक्टरलोनी था जिसका

assumed"—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, Panini Office, Allahabad, p 97

* 'Out of gratitude"

† *Dacoitee in Excelsis or Spoliation of Oudh, by the East India Company*, by Major Bird, chap IV, pp 58-76

ज़िक्र पहले कई बार आ चुका है, जो दिल्ली में मुसलमानी तर्ज़ से रहता था, और जिसने अनेक हिन्दोस्तानी रण्डियाँ रख रक्खी थीं, जिनसे वह गुप्तचरों का काम लिया करता था। ऑक्टरलोनी के अधीन क़रीब छै हज़ार हिन्दोस्तानी पैदल और तोपख़ाने के सैनिक थे। यह सेना सतलज के निकट की पहाड़ियों पर से नैपाल पर हमला करने के लिए थी।

(२) दूसरी सेना मेजर जनरल जिलैस्पी के अधीन मेरठ में थी, जिसका काम देहरादून, गढ़वाल, श्रीनगर और नाहन पर हमला करना था। इस सेना में क़रीब एक हज़ार गोरे सिपाही और ढाई हज़ार देशी पैदल थे।

(३) तीसरी सेना मेजर जनरल वुड के अधीन बनारस और गोरखपुर में जमा की गई। इस सेना मे क़रीब एक हज़ार गोरे और तीन हज़ार देशी सिपाही थे। इसका काम बूटवाल के रास्ते पालपा में प्रवेश करना था।

(४) चौथी सेना मेजर जनरल मॉरले के अधीन मुर्शिदाबाद से जमा की गई। इसमें ६०७ गोरे और क़रीब ७००० देशी सिपाही थे। नैपाल पर हमला करने के लिए यही मुख्य सेना थी। इसका काम गण्डक और बागमती के बीच के दर्रों से होकर नैपाल की राजधानी काठमण्डू पर हमला करना था।

(५) पाँचवीं सेना और अधिक पूरब में कौशी नदी के उस पार मेजर लैटर के अधीन जमा की गई। इस सेना में क़रीब दो हज़ार सिपाही थे। मेजर लैटर का मुख्य कार्य पूर्निया की सरहद की

रक्षा करना और सिकिम के राजा को नैपाल के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ना था।

इस प्रकार अंगरेज़ सरकार ने तीस हज़ार सेना मय तोपों आदि के नैपाल पर हमला करने के लिए तैयार कर ली। इस सेना के मुकाबले के लिए नैपाल दरबार मुश्किल से १२ हज़ार सेना जमा कर सका। नैपाली अंगरेज़ों के मुकाबले में न धन खर्च कर सकते थे, न उनके पास अच्छे हथियार थे, और न वे कूटनीति में ही अंगरेज़ों की टक्कर के थे।

वीर बलभद्रसिंह

सबसे पहले मेजर जनरल जिलैस्पी की सेना ने नैपाल की सरहद के अन्दर प्रवेश किया। नाहन और देहरादून दोनों उस समय नैपाल के राज में थे। नाहन का राजा अमरसिंह थापा नैपाल दरबार का एक प्रसिद्ध सेनापति था और अमरसिंह थापा का भतीजा सेनापति बलभद्रसिंह केवल ६०० आदमियों सहित देहरादून की रक्षा के लिये नियुक्त था। अंगरेज़ी सेना के आने की ख़बर पाते ही बलभद्रसिंह ने बड़ी शीघ्रता के साथ देहरादून से क़रीब साढ़े तीन मील दूर नालापानी की सब से ऊँची पहाड़ी के ऊपर कलङ्गा नाम का एक छोटा सा दुर्ग खड़ा कर लिया। बलभद्रसिंह के आदमी अभी बड़े बड़े कुदरती पत्थरों और जङ्गली लकड़ियों की सहायता से इस दुर्ग की चहार दीवारी तैयार कर ही रहे थे कि जिलैस्पी की सेना का अधिकांश भाग करनल मॉबी के अधीन २४ अक्तूबर को देहरादून पहुँच गया। लिखा है कि 'खीरी के ज़मींदारों' और 'बहादुरसिंह के बेटे राना

जीवनसिंह' ने देहरादून तक पहुँचने में अंगरेज़ों को बहुत मदद दी। जिलैस्पी स्वयं कुछ पीछे रह गया। हमें स्मरण रखना चाहिए कि इसके आठ दिन के बाद १ नवम्बर को हेस्टिंग्स ने नैपाल के साथ बाज़ाब्ता युद्ध का एलान किया। फिर भी सेनापति बलभद्र सिंह ने इस अवसर पर अपने से नौ गुनी और कहीं अधिक सन्नद्ध अंगरेज़ी सेना का अपने नाम मात्र के दुर्ग में जिस वीरता के साथ मुक़ाबला किया, वह वीरता संसार भर के इतिहास में सदा के लिए स्मरणीय रहेगी।

कलङ्गा के दुर्ग के अन्दर बलभद्रसिंह के पास केवल तीन सौ सिपाही और तीन सौ स्त्रियाँ और बच्चे थे। करनल मॉबी को विश्वास था कि बलभद्रसिंह उस छोटे से अधकचरे दुर्ग के अन्दर, मुट्ठी भर आदमियों के सहारे, अंगरेज़ी सेना के मुक़ाबले का साहस न करेगा। २४ अक्तूबर की रात को मॉबी ने बलभद्रसिंह को लिख भेजा कि दुर्ग अंगरेज़ों के हवाले कर दो, बलभद्रसिंह ने मॉबी के दूत के सामने पत्र को पढ़ कर फाड़ डाला और उसी दूत की ज़बानी अंगरेज़ी सेना को तुरन्त युद्ध के लिए आमन्त्रित किया।

२५ तारीख़ को सवेरे करनल मॉबी अपनी सेना सहित नाला पानी की तलहटी में जा पहुँचा। दुर्ग के चारों ओर तोपें लगा दी गईं। दुर्ग के भीतर से नैपाली बन्दूक़ों की गोलियाँ बराबर अंगरेज़ी तोपों का जवाब देती रहीं। मॉबी ने जब देखा कि शत्रु को वश में कर सकना इतना सरल नहीं है, तो उसने जनरल जिलैस्पी को ख़बर दी। जिलैस्पी उस समय सहारनपुर में था २६ अक्तूबर को

ज़िलैस्पी नालापानी पहुँचा। तीन दिन ज़िलैस्पी को तैयारी में लगे। उसके बाद उसकी आज्ञानुसार चारों ओर से चार अंगरेज़ी पलटनों ने एक साथ दुर्ग पर हमला किया। एक ओर की पलटन करनल कारपेराटर के, दूसरी ओर की कप्तान फ़ॉस्ट के, तीसरी ओर की मेजर कैली के, और चौथी ओर की कप्तान कैम्पबेल के अधीन थी। एक पाँचवीं पलटन मेजर लडलो के अधीन ख़ास ज़रूरत के समय के लिए पीछे रक्खी गई।

नैपाली स्त्रियों की वीरता

चारों ओर से ज़ोरों के साथ कलङ्गा के दुर्ग पर गोलेबारी शुरू हुई। अंगरेज़ी तोपों ने बलभद्रसिंह के तीन सौ बहादुरों में से अनेकों को खेत कर दिया। फिर भी दुर्ग के भीतर से बन्दूकों की गोलियाँ लगातार तोप के गोलों का जवाब देती रहीं; और अंगरेज़ी सेना में से जो योधा बार बार दुर्ग तक पहुँचने की कोशिश करते थे उन्हें हर बार वहीं पर ख़त्म करती रहीं। कप्तान वन्सीटॉर्ट लिखता है कि गोलियों की इस बौछार में अनेक बार साफ़ दिखाई दिया कि नैपाली स्त्रियाँ बेधड़क चहारदीवारी पर खड़ी होकर वहाँ से शत्रुओं के ऊपर पत्थर फेंक रही थीं; यहाँ तक कि बाद में दीवार के खण्डहरों में अनेक स्त्रियों की लाशें मिलीं। अंगरेज़ी सेना ने अनेक बार ही दुर्ग की दीवार तक पहुँचने के प्रयत्न किए, किन्तु ये सब प्रयत्न निष्फल गए। इनमें अनेक ही अंगरेज़ी अफ़सरों और सिपाहियों की जानें गईं। इन्हीं में से एक प्रयत्न में मेजर जनरल ज़िलैस्पी ने भी कलङ्गा की दीवार के नीचे अपने प्राण दिए।

जिलैस्पी की मृत्यु वास्तव में अत्यन्त करुणाजनक थी। उसका मुख्य कारण गोरे सिपाहियों की कायरता थी।

जिलैस्पी की करुणाजनक मृत्यु

इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि बार बार की हार से चिढ़कर जनरल जिलैस्पी स्वयं तीन कम्पनियाँ गोरे सिपाहियों की साथ लेकर दुर्ग के फाटक की ओर बढ़ा। दुर्ग के अन्दर से गोलियों और पत्थरों की बौछार शुरू होते ही ये तीन सौ गोरे सिपाही पीछे हट गए। वीर जिलैस्पी अकेला आगे बढ़ा। उसने अपनी नङ्गी तलवार घुमा कर और ललकार कर अपने सिपाहियों को आगे बुलाना चाहा। किन्तु व्यर्थ! इतने ही में एक गोली दुर्ग के फाटक से ३० गज़ पर जिलैस्पी की छाती में आकर लगी, जिलैस्पी वहीं पर ढेर होगया।

लिखा है कि कलङ्गा के ठीक फाटक के ऊपर गोरखों की एक तोप थी जिसकी आग से होकर शत्रु को आगे बढ़ने की हिम्मत न होती थी। गोरखों के पैने तीरों ने भी अंगरेज़ी सेना के संहार में सहायता दी। इसके अतिरिक्त विलियम्स साफ़ लिखता है कि गोरखे इस वीरता के साथ दुर्ग की रक्षा कर रहे थे कि अंगरेज़ी सेना को दुर्ग की दीवार तक बढ़ने का साहस न होता था। भारत के अन्दर प्रायः प्रत्येक ऐसे ख़तरे के अवसर पर अंगरेज़ सिपाहियों ने हद दरजे की कायरता का परिचय दिया है। भरतपुर के मुहासरे के समय के उनके लज्जास्पद व्यवहार को इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर बयान किया जा चुका है।

कलङ्गा का दुर्ग

जिलेस्पी की मृत्यु के बाद थोड़ी देर के लिए सेना का नेतृत्व फिर करनल मॉबी के हाथों में आया। मॉबी ने मुहासरे को जारी रखने की अपेक्षा अब जल्दी से पीछे हट आने में ही अधिक बुद्धिमत्ता समझी। पीछे हट कर उसने सहायता के लिए दिल्ली पत्र लिखा। एक महीने में और अधिक फ़ौज और तोपें दिल्ली से देहरादून पहुँचीं। २५ नवम्बर को फिर एक बार अंगरेज़ी सेना ने कलङ्गा के दुर्ग को विजय करने का प्रयत्न किया, इस बार भी उन्हें हार खाकर पीछे हटना पड़ा। मुहासरा जारी रहा और अंगरेज़ी तोपें रात दिन दुर्ग के ऊपर गोलों की वर्षा करती रहीं।

गोरखा सेना की प्यास से लाचारी

इस बीच दुर्ग के अन्दर पानी का काल पड़ गया। पानी वहाँ नीचे की पहाड़ियों के कुछ झरनों से जाता था। ये झरने इस समय अंगरेज़ी सेना के हाथों में थे, और अंगरेज़ों ने दुर्ग के अन्दर पानी का जाना बिलकुल बन्द कर दिया था। बलभद्रसिंह और उसके बचे हुए साथियों की हालत इस समय अत्यन्त करुणाजनक थी। अंगरेज़ी तोपों के गोले दुर्ग के भीतर लगातार अपना काम कर रहे थे। इस बौछार में ज़ख़्मियों की चीखें और पानी की एक एक बूँद के लिए स्त्रियों और बच्चों की तड़पन और इस सब पर एक छोटा सा नाम मात्र का दुर्ग जिसके चारों ओर की दीवारों में सूराख़ हो चुके थे, और दुर्ग के बाहर असंख्य शत्रु। शत्रु के गोलों की शायद वे इतनी परवा न करते, किन्तु पानी की प्यास ने उन्हें लाचार कर दिया।

३० नवम्बर को सवेरे, जब कि अंगरेज़ी तोपों से गोलेबारी बराबर जारी थी और उनके जवाब में गोरखा बन्दूक़ों की गोलियाँ भी लगातार अपना काम कर रही थी, एकाएक दुर्ग के अन्दर की बन्दूकें और कमानें चन्द मिनिट के लिए शान्त होगई। अचानक दुर्ग का लोहे का फाटक खुला।

अंगरेज़ समझे कि बलभद्रसिंह अब हमारी अधीनता स्वीकार कर लेगा, किन्तु उन्हें धोखा हुआ। शायद अब भी शत्रु की अधीनता स्वीकार करने का विचार तक वीर बलभद्रसिंह या उसके साथी गोरखों के चित्त में न आया होगा। कलङ्गा के भीतर के क़रीब ६०० प्राणियों में से ७० उस समय तक ज़िन्दा बचे थे, जिनमें कुछ स्त्रियाँ भी थी। ये सब प्यास से बेताब थे। दुर्ग का फाटक खुलते ही ये ७० गोरखे स्त्री और पुरुष नङ्गी तलवारें हाथों में लिए, बन्दूकें कन्धों पर रक्खे, कमर से खुकरियाँ लटकाए, सरों पर फ़ौलादी चक्र लपेटे, वीर बलभद्रसिंह के नेतृत्व में शान्ति और शान के साथ फाटक से बाहर निकले। बलभद्रसिंह का शरीर सीधा, चेहरा हँसता हुआ और चाल एक सच्चे सिपाही की तरह नपी हुई थी। पेश्तर इसके कि अंगरेज़ अफ़सर यह समझ सकें कि क्या हो रहा है, बलभद्रसिंह अंगरेज़ी सेना के बीच से रास्ता काटता हुआ अपने ७० साथियों सहित नालापानी के झरनों पर पहुँचा। जी भर कर उन सब ने चश्मों का ताज़ा पानी पिया, और फिर वहाँ से ललकार कर कहा—तुम्हारे लिये दुर्ग विजय

कर सकना असम्भव था, किन्तु अब मैं अपनी इच्छा से दुर्ग छोड़ता हूँ।"*

इसके बाद शत्रु के देखते देखते एक क्षण भर के अन्दर बलभद्रसिंह और उसके साथी पास की पहाड़ियों में गुम हो गए।

अद्भुत वीरता

जिस समय अंगरेज़ दुर्ग के भीतर पहुँचे वहाँ सिवाय मरदों, औरतों और बच्चों की लाशों के और कुछ न था। कप्तान वन्सीटॉर्ट लिखता है कि इस दुर्ग के मुट्ठी भर संरक्षकों ने अंगरेज़ों की पूरी एक डिवीज़न सेना को एक महीने से ऊपर तक रोके रक्खा।† जनरल जिलेस्पी को मिलाकर अंगरेज़ों के ३१ अफ़सर और ७१८ सिपाही इस संग्राम में काम आए। अंगरेज़ों ने कलङ्गा के दुर्ग पर क़ब्ज़ा करते ही उसे ज़मीन से मिलाकर बराबर कर दिया। इस समय उस स्थान पर साल वृक्षों का एक घना जङ्गल है। आर० सी० विलियम्स इस घटना के सम्बन्ध में लिखता है—

"कलङ्गा के दुर्ग की रक्षा का इस प्रकार अन्त हुआ। यह रक्षा का कार्य वीर से वीर जाति के इतिहास को अलङ्कृत करने वाला था और इस वीरता के साथ उसका सम्पादन किया गया जो प्रायः हमारी अपनी पराजयों की ख़िल्लत को धोने के लिए काफ़ी थी।"‡

---

* " . . On abandoning his strong-hold, the Gorkha Leonidas triumphantly exclaimed in a loud voice, '*to capture the fort was a thing forbidden, but now I leave it of my own accord*'"—*Memoir of Dehra Dun* by G R C Williams

† *Notes on Nepal*, by Captain Vansittart

‡ " Such was the conclusion of the defence of Kulunga, a feat of arms

देहरादून के जङ्गलों में रीचपाना नदी के किनारे अभी तक एक छोटा सा स्मारक बना हुआ है जिस पर खुदा हुआ है—

"हमारे वीर शत्रु बलभद्रसिंह और उसके वीर गोरखों की स्मृति में सम्मानोपहार × × ×।"*

बलभद्रसिंह कलङ्गा से निकल कर अपने सिपाहियों सहित एक दूसरे नैपाली दुर्ग जौंतगढ़ की रक्षा के लिए पहुँच गया।

जौंतगढ़ में मेजर बेलडॉक ने एक हज़ार सेना सहित दुर्ग पर हमला किया। बलभद्रसिंह के पास पाँच सौ से कम सैनिक थे। फिर भी विलियम्स लिखता है अंगरेज़ी सेना को ज़िल्लत के साथ हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा। बलभद्रसिंह जौंतगढ़ की रक्षा का काम केवल साठ आदमियों को सौंप कर अपने शेष आदमियों सहित जयटक के दुर्ग की रक्षा के लिए पहुँचा।

साज़िशें

कम्पनी के अफ़सर समझ गए कि केवल सेना और तोपों के बल बिना अपने सुपरिचित "गुप्त उपायों" के गोरखों को जीत सकना असम्भव है। कलङ्गा के दुर्ग पर क़ब्ज़ा करने के बाद करनल मॉबी ने अपने एक मातहत करनल कारपेण्टर को जमना नदी के दाहिनी ओर नैपाल के इलाक़े

---

worthy of the best days of chivalry, conducted with a heroism almost sufficient to palliate the disgrace of our own reverses "—G. R C Williams *Memoir of Dehra Dun.*

* " . . As a tribute of respect for our gallant adversary Balabhadra Singh . And his brave Gorkhas . "

में भेजा, इसलिए कि वह वहाँ की पहाड़ी क़ौमों को भड़का कर नैपाल दरबार के विरुद्ध उनसे विद्रोह करवा दे। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि करनल कारपेण्टर के प्रयत्नों से जौनसर इलाक़े की प्रजा बग़ावत कर बैठी, जिसके कारण बैराठ के दुर्ग की मुट्ठी भर गोरखा सेना को दुर्ग छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। करनल मॉबी स्वयं सिरमौर की राजधानी नाहन पहुँचा। सिरमौर नैपाल की एक सामन्त रियासत थी। हाल में नैपाल दरबार ने सिरमौर के पुराने राजा को किसी अपराध में गद्दी से उतार कर अमरसिंह थापा को वहाँ का शासन सौंप दिया था। अमरसिंह थापा उस समय श्रीनगर के दुर्ग की रक्षा के लिए नियुक्त था। अमरसिंह का पुत्र रणजूरसिंह नाहन में था। करनल मॉबी ने अमरसिंह की अनुपस्थिति मे पदच्युत राजा को अपनी ओर तोड़ लिया। अमरसिंह ने अपने पुत्र रणजूरसिंह को आज्ञा दी कि तुम नाहन छोड़ कर कुछ दूर उत्तर की ओर जयटक के दुर्ग में आ जाओ और आस पास की पहाड़ियों को अपनी सेना से घेर लो। जयटक के दुर्ग में रणजूरसिंह के अधीन क़रीब दो हज़ार नैपाली सेना थी। २० दिसम्बर सन् १८१४ को जनरल जिलैस्पी की जगह जनरल मारटिण्डल उस ओर की अंगरेज़ी सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। २५ को जनरल मारटिण्डल ने अपनी समस्त सेना सहित जयटक के दुर्ग पर हमला किया। वीर बलभद्रसिंह भी उस समय जयटक के दुर्ग में मौजूद था। मारटिण्डल की सेना दुर्ग की नैपाली सेना से कई गुनी थी।

मारटिंडल कलङ्गा के दुर्ग की कहानी सुन चुका था। उसे पता लगा कि जयटक के दुर्ग के अन्दर पीने का पानी नीचे के कुछ कुओं से जाता है। उसने अपनी मुख्य सेना को दो अलग अलग दलों में बाँट कर एक मेजर लडलो के अधीन और दूसरा मेजर रिचर्ड्स के अधीन दो ओर से इन कुओं को घेर लेने के लिए भेजा। किन्तु गोरखों ने इन दोनों सैन्यदलों को बुरी तरह परास्त किया और मेजर लडलो और मेजर रिचर्ड्स दोनों को अपने अनेक अफ़सर और सैकड़ों सिपाही मैदान में छोड़ कर और अनेक शत्रु के हाथों क़ैद करा कर पीछे लौट आना पड़ा। प्रोफ़ेसर विलसन लिखता है कि इस हार के बाद जनरल मारटिण्डल को जयटक के क़िले पर दोबारा हमला करने का साहस न हो सका। जनरल जिलैस्पी वाली सेना की कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है। कुल जितनी सेना मेरठ से रवाना हुई थी उसमें से एक तिहाई इस समय तक ख़त्म हो चुकी थी।

अंगरेज़ों की हारें

दो और सेनाएँ, जिनमें क़रीब बारह हज़ार सिपाही थे, गोरखपुर और बिहार में जमा की गई थीं। इन दोनों सेनाओं का काम पूरब की ओर से नैपाल में प्रवेश करके राजधानी काठमण्डू पर हमला करना था। किन्तु इन दोनों दलों को और भी अधिक लज्जास्पद पराजयों का सामना करना पड़ा। अनेक स्थानों पर नैपाली सेना के साथ इनके संग्राम हुए, और हर संग्राम में बुरी तरह हार खाकर इन्हें पीछे हट जाना पड़ा। इन दोनों विशाल

सैन्यदलों के कई अंगरेज़ सेनापति इतने अयोग्य और कायर साबित हुए कि गवरनर जनरल को उन्हें बरख़ास्त कर देना पड़ा। अभी तक जितने युद्ध अंगरेज़ों ने भारत में लड़े थे, उनमें शायद सबसे अधिक प्रचण्ड और रक्तमय यह नैपाल युद्ध ही था। इस युद्ध में पद पद पर नैपालियों ने अपने शत्रुओं से कहीं बढ़ कर वीरता और युद्ध कौशल का परिचय दिया। हमें इस युद्ध के समस्त संग्रामों को विस्तार में बयान करने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास लेखक प्रिन्सेप पूर्वोक्त दोनों सेनाओं की पराजयों के विषय में लिखता है :—

"अवध की सरहद से लेकर रङ्गपुर तक गोरखों ने हमारी सेनाओं को बन के उस पार जाने से पूरी तरह रोके रक्खा; जब कि वे बेधड़क हमारे इलाक़े में घुस आते थे और हम कुछ न कर पाते थे, और देश भर में हमारे विरुद्ध खूब बढ़ बढ़ कर अफ़वाहें उड़ी हुई थीं।"*

अमरसिंह और ऑक्टरलोनी

चौथी सेना ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने में थी। पाँचों मुख्य सेनापतियों में केवल एक ऑक्टरलोनी ही ऐसा था जिसने किसी न किसी अंश में सफलता प्राप्त की। ऑक्टरलोनी पाश्चात्य कूटनीति में प्रवीण था, और इस कूटनीति से ही उसने थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त की।

* "From the frontier of Oudh to Rangpur, our armies were completely held in check on the outside of the forest, while our territory was insulted with impunity and the most extravagant alarms spread through the country."
—Prinsep's *History of the Political and Military Transactions in India, etc.*

ऑक्टरलोनी नैपाल की सबसे अधिक पश्चिमी सरहद पर था। सतलज के पास से उसने नैपाली इलाके में प्रवेश किया। सतलज के बाएँ किनारे से तीन अलग अलग पंक्तियाँ पहाड़ियों की शुरू होती हैं। इन तीनों पर गोरखों ने नालागढ़, रामगढ़ और मालम नाम के तीन क़िले बना रक्खे थे। इन क़िलों के बीच में और उनके पार कई छोटी छोटी रियासतें थीं जो सब नैपाल के अधीन थीं। जनरल ऑक्टरलोनी ने पहले इन रियासतों को अपनी ओर फोड़ना शुरू किया।

३१ अक्तूबर सन् १८१४ को ऑक्टरलोनी अपनी सेना लेकर इन पहाड़ियों पर चढ़ा। २ नवम्बर को उसने नालागढ़ के दुर्ग के सामने तोप लगा दीं। नालागढ़ और उसके पास तारागढ़ के दुर्गों में मुशकिल से ५०० गोरखा सिपाही थे। ऑक्टरलोनी की सेना क़रीब ६ हज़ार थी। चार दिन के प्रयत्न के बाद ६ नवम्बर को ये दोनों दुर्ग ऑक्टरलोनी के हाथों में आगए। इसके बाद १३ नवम्बर को ऑक्टरलोनी रामगढ़ की ओर बढ़ा। रामगढ़ में बलभद्रसिंह का चचा सुप्रसिद्ध सेनापति अमरसिंह कुल कम तीन हज़ार सेना सहित ऑक्टरलोनी के मुक़ाबले के लिए मौजूद था। ऑक्टरलोनी के पास उस समय कम से कम सात हज़ार सेना थी। फिर भी अमरसिंह ने अपने तीन हज़ार सैनिकों से अंगरेज़ों के सात हज़ार सैनिकों को न केवल दुर्ग से बाहर ही रोके रक्खा, वरन् कई बार स्वयं दुर्ग से निकल कर उन्हें ज़बरदस्त शिकस्त दी और दूर तक खदेड़ दिया। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है कि इन विजयों के

समय भी गोरखों ने पराजित शत्रु के साथ इस उदारता का व्यवहार किया जो एशियाई क़ौमों का एक विशेष गुण है। उन्होंने अंगरेज़ों को अपने मुरदे मैदान में ले जाने और उन्हें दफ़न करने इत्यादि की पूरी इजाज़त दे दी। प्रिन्सेप और अन्य यूरोपियन लेखकों के अनुसार गोरखे इस समस्त युद्ध में शत्रु की ओर इससे भी बढ़ कर वीरोचित उदारता का परिचय देते रहे।

गवरनर जनरल के नाम ऑक्टरलोनी के एक पत्र से मालूम होता है कि इस समय ऑक्टरलोनी को अपनी सफलता में भारी सन्देह हो गया। फिर भी वह नैपाल दरबार के विरुद्ध आस पास के पहाड़ी राजाओं के साथ साज़िशों में लगा रहा। इन राजाओं में सबसे पहले उसने हिन्दुर (नालागढ़) के राजा रामसरन को अपनी ओर मिलाया। कनिङ्घम ने अपने सिखों के इतिहास में लिखा है कि राजा रामसरन की सहायता उस समय अंगरेज़ों के लिए सब से अधिक लाभदायक सिद्ध हुई। रामसरन ने ऑक्टरलोनी को आदमियों और रसद दोनों की मदद दी। राजा रामसरन ही ने अपने आदमियों से अंगरेज़ों की तोपों के जाने के लिए मकराम से नाहर तक सड़क बनवा दी। दूसरा पहाड़ी राजा, जिसे ऑक्टरलोनी ने अपनी ओर मिलाया अमरसिंह का एक सम्बन्धी बिलासपुर का राजा था। इसके अतिरिक्त गवरनर जनरल ने ऑक्टरलोनी का पत्र पाते ही और अधिक सेना उसकी सहायता के लिए भेज दी।

इस प्रकार ऑक्टरलोनी के पास अब एक तो अमरसिंह से

दुगुनी से अधिक सेना थी, दूसरे उसने नैपाल राज के सामन्तों और वहाँ की प्रजा को भी झूठे लोभ दे देकर अमरसिंह के विरुद्ध तोड़ लिया।

इस सब के होते हुए भी नवम्बर सन् १८१४ से अप्रैल सन् १८१५ तक अर्थात् पूरी सरदी भर ऑक्टरलोनी ने अमरसिंह की सेना पर जितनी बार हमले किए उतनी बार ही उसे हार खाकर पीछे हटना पड़ा। इतिहास लेखक प्रिन्सेप ने इन सब लड़ाइयों में अमर सिंह की वीरता और उसके युद्ध कौशल की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

ऑक्टरलोनी की हार

नैपालियों की ओर इस समय सब से बड़ी कमी इस बात की रही कि गोरखा सेनापतियों का केवलमात्र लक्ष्य अपने इलाक़े की रक्षा करना था। उन्होंने एक बार भी आगे बढ़ कर अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला करने का इरादा न किया। इसका कारण चाहे यह रहा हो कि संख्या में, धन में और युद्ध के सामान में वे अंगरेज़ों से कम थे और उन्हे आगे बढ़ने का साहस न हो सका, या यह कि वे वृथा रक्तपात के विरुद्ध थे, किन्तु इससे अंगरेज़ों को अपने "गुप्त उपायों" के लिए काफ़ी समय मिल गया।

पश्चिम में ऑक्टरलोनी की साज़िशें जारी रहीं और पूरब में मेजर लैटर ने, जो पाँचवीं सेना का प्रधान सेनापति था, सिक्किम के राजा को नैपाल के विरुद्ध अपनी ओर कर लिया, और उसकी मदद से नैपाल के मोराङ्ग प्रान्त पर क़ब्ज़ा कर लिया।

कुमायूँ और गढ़वाल

गवरनर जनरल को इस समय पता लगा कि नैपाल की सरहद का सब से अधिक नाज़ुक हिस्सा कुमायूँ और गढ़वाल की ओर का है। कुमायूँ का प्रान्त उस समय नैपाल के अधीन चौतरा बामशाह नामक एक सूबेदार के शासन में था। गवरनर जनरल ने करनल गार्डनर को चौतरा बामशाह के साथ साज़िश करने के लिए नियुक्त किया। इस गार्डनर ने सन् १७९८ में होलकर के यहाँ नौकरी की थी, और विश्वासघात के अपराध में होलकर के यहाँ से निकाला जा चुका था। गार्डनर ने इसलाम की विधि के अनुसार एक मुसलमान स्त्री के साथ निकाह कर रक्खा था। साज़िशें करने में वह ऑक्टरलोनी के समान सिद्धहस्त था। गार्डनर की मदद के लिए एक और अंगरेज़ डॉक्टर रथरफ़ोर्ड को नियुक्त किया गया, जो गढ़वाल और कुमायूँ में कम्पनी का व्यापारिक एजएट और मुरादाबाद में सिविल सर्जन रह चुका था। लिखा है कि डॉक्टर रथरफ़ोर्ड ने सारे कुमायूँ और गढ़वाल भर में अनेक पण्डितों, देशी सिपाहियों और अन्य लोगों को तनख़ाहें दे देकर उनसे जासूसों का काम लिया। कुछ इतिहास लेखकों की राय है कि नैपाल युद्ध के अन्त में अंगरेज़ों की सफलता का सब से अधिक श्रेय ऑक्टरलोनी और डॉक्टर रथरफ़ोर्ड, इन दो सज्जनों को ही मिलना चाहिए। गार्डनर और रथरफ़ोर्ड दोनों को पूरी सफलता हुई। कुमायूँ और गढ़वाल के मातहत शासक और वहाँ की अधिकांश प्रजा नैपाल दरबार के विरुद्ध अंगरेज़ों से मिल गई, और अन्त में अप्रैल सन् १८१५ में थोड़ी सी सेना करनल निकोल्स के

अधीन भेज कर बिना अधिक रक्तपात के हेस्टिंग्स ने कुमायूँ और गढ़वाल दोनों पर क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह अवध के ढाई करोड़ रुपयों ने इस काम में हेस्टिंग्स को ख़ूब मदद दी।

इस प्रकार नैपाली साम्राज्य के दो सबसे अधिक उर्वर प्रान्त केवल रिशवतों के बल उस साम्राज्य से तोड़ लिए गए। नैपाल दरबार के लिए यह एक ज़बरदस्त धक्का था।

लम्बी थैली

हम ऊपर लिख चुके हैं कि नैपालियों को ६०० मील की लम्बी सरहद की रक्षा करनी पड़ रही थी। कुल सेना उनके पास अंगरेज़ों की आधी से भी कहीं कम थी। इस पर भी जितनी बार और जहाँ जहाँ अंगरेज़ों और नैपालियों में खुला युद्ध हुआ, वीरता और युद्ध कौशल दोनों में नैपाली अंगरेज़ों से कहीं बढ़ कर साबित हुए, और हर संग्राम में अंगरेज़ों को ज़िल्लत के साथ हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा। किन्तु इस समस्त वीरता और युद्ध कौशल के होते हुए भी, पाश्चात्य कूटनीति और अवध के धन के प्रताप से चन्द महीनों के अन्दर पूरब में मोराङ्ग का प्रान्त, बीच में कुमायूँ और गढ़वाल के प्रदेश और पश्चिम में हिन्दुर और बिलासपुर की सामन्त रियासतें नैपाली साम्राज्य से तोड़ ली गईं। देहरादून और नालागढ़ अंगरेज़ों ने विजय कर लिए। प्रिन्सेप ने साफ़ स्वीकार किया है कि नैपाल युद्ध में अंगरेज़ों को मुख्य कर अपनी "लम्बी थैली"* के प्रताप से सफलता प्राप्त हुई।

किन्तु इससे अधिक बढ़ना अंगरेज़ों के लिए असम्भव था।

---

* " . . . the length of the purse "—Prinsep, vol i, p 136

नैपाली भी पाश्चात्य कूटनीति के सामने लाचार हो गए। दोनों पक्ष अब सुलह चाहते थे। जून सन् १८१५ में युद्ध बन्द हो गया। महाराजा नैपाल ने अपने कुल-पुरोहित गुरु गजराज मिश्र को अंगरेज़ पोलिटिकल एजण्ट मेजर ब्रेडशा के पास सुलह की बातचीत के लिए भेजा। मेजर ब्रेडशा ने गवरनर जनरल की आज्ञानुसार जो शर्तें पेश कीं उनको स्वीकार करना किसी भी आत्म सम्मानी नरेश के लिए सम्भव न था। संक्षेप में वे शर्तें ये थीं—

सन्धि

जितने इलाक़े पर अंगरेज़ों ने इस समय तक क़ब्ज़ा कर लिया है वह सब और उसके अलावा नैपाली सरहद के बराबर और बहुत सा इलाक़ा अंगरेज़ों को दे दिया जाय, काठमण्डू में एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट दल बल सहित रहा करे और बिना अंगरेज़ों की इजाज़त के नैपाल दरबार न किसी यूरोपनिवासी को अपने यहाँ आने दे और न नौकर रक्खे, इत्यादि।

महाराजा नैपाल ने गवरनर जनरल से इन शर्तों पर फिर विचार करने की प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ। इस बीच गवरनर जनरल बराबर चारों ओर सरहद पर फ़ौजें बढ़ाता रहा। सेनापति अमरसिंह ने मार्च सन् १८१५ में, जब कि लड़ाई जारी थी, अपने स्वामी महाराजा नैपाल के नाम एक पत्र लिखा जिससे अमरसिंह की नीतिज्ञता और वीरता दोनों का परिचय मिलता है। इस पत्र में अमरसिंह ने महाराजा नैपाल को सलाह दी कि—

अमरसिंह थापा का पत्र

"अंगरेज़ों पर किसी तरह का विश्वास न किया जाय, नैपाल के सामन्तों के साथ साज़िशें करके ये लोग सदा नैपाल को निर्बल करने के प्रयत्न करते रहेंगे, काठमण्डू मे अंगरेज़ रेज़िडेण्ट को स्थायी तौर पर रहने की इजाज़त देना अत्यन्त ख़तरनाक है, इससे धीरे धीरे नैपाल के ऊपर 'सबसीडीयरी' सेना का लादा जाना और अन्त मे नैपाल का पराधीन हो जाना अनिवार्य हो जायगा।"

भरतपुर के राजा, टीपू सुलतान इत्यादि की मिसालें देकर अमरसिंह ने महाराजा नैपाल को सलाह दी कि—"नैपाल के अन्दर अंगरेज़ों को रिआयतें देकर सुलह करने की अपेक्षा मरदाना वार लड़ते रहने में देश का अधिक हित है।" इत्यादि।*

इसमें सन्देह नहीं कि अमरसिंह ने उस समय के अंगरेज़ों के चरित्र को पूरी तरह समझ लिया था। एक ओर अंगरेज़ गवरनर जनरल की असम्भव माँगें, दूसरी ओर अमरसिंह जैसों की सलाह और नैपालियों का स्वाभाविक आत्म सम्मान, परिणाम यह हुआ कि सात महीने से ऊपर युद्ध बन्द रहने के बाद जनवरी सन् १८१६ में नए सिरे से अंगरेज़ों और नैपालियों के बीच युद्ध शुरू हो गया। किन्तु दोनों पक्ष थक चुके थे, इस बार मुशकिल से दो महीने युद्ध जारी रह सका।

अन्त में मार्च सन् १८१६ में दोनों पक्षों के बीच सन्धि हो गई, जिसमें नैपाल की स्वाधीनता क़ायम रही, किन्तु नैपालियों की भावी राजनैतिक आकांक्षाओं को एक ओर से चीनी साम्राज्य

* Prinsep, vol i, p 192

और तीन ओर से ब्रिटिश साम्राज्य के बीच परिमित कर दिया गया। नैपाल का कुछ दक्खिनी हिस्सा, जिसकी वार्षिक आय क़रीब एक करोड़ रुपये की थी, अंगरेज़ी इलाक़े में मिला लिया गया और एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट नैपाल की राजधानी में रहने लगा।

लिखा है कि इस सन्धि के बाद बलभद्रसिंह ने अपने मुट्ठी भर साथियों सहित महाराजा रणजीतसिंह के यहाँ जाकर नौकरी कर ली, और रणजीतसिंह व अफ़ग़ानों के एक संग्राम में लड़ते लड़ते अपने प्राण दिए।

यद्यपि इस युद्ध से नैपाली साम्राज्य का एक अङ्ग उससे तोड़ लिया गया और बहुत दिनों तक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के कारण नैपाली राजधानी के अन्दर नई तरह की साज़िशों और दलबन्दियों का एक सिलसिला जारी रहा; * फिर भी नैपालियों की स्वाभाविक वीरता, नैपाल के अन्दर अंगरेज़ों को अनेक कठिनाइयों और नैपालियों के भारत के अनुभव से शिक्षा ग्रहण करने के कारण अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के पैर नैपाल में न जमने पाए, और न सन् १८१६ से आज तक नैपाली साम्राज्य की स्वाधीनता या क्षेत्रफल में किसी तरह का ज़ाहिरा अन्तर पड़ने पाया।

अमरसिंह की बुद्धिमानी

क़रीब १०० वर्ष के बाद सन् १९१२ में १८१४—१६ के नैपाल युद्ध का सिंहावलोकन करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर करनल शेक्सपीयर ने नैपालियों की वीरता, उनकी सुजनता और उनकी उदारता की

* *History of Nepal*, by Dr Daniel Wright, p 54

इकतीसवाँ अध्याय

हेस्टिंग्स के अन्य कृत्य

इस अध्याय में हम लॉर्ड हेस्टिंग्स के शासन काल की कुछ छोटी छोटी घटनाओं को बयान करना चाहते हैं।

कच्छ

इनमें सबसे पहली घटना कच्छ की स्वाधीनता का अपहरण थी।

कच्छ सिन्ध के दक्खिन और काठियावाड़ के पच्छिम और उत्तर में एक छोटी सी स्वाधीन रियासत थी। अभी तक जाड़ेजा कुल के राजपूत राव कच्छ पर शासन करते हैं। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने इस रियासत की स्वाधीनता को अपहरण कर लेने का इरादा किया। बहाना ढूंढ लेना कुछ भी कठिन न था। डकैतियाँ उन दिनों भारत में जगह जगह होती रहती थीं। कहा जाता है कि नैपाल युद्ध के दिनों में कच्छ के कुछ डाकुओं ने काठियावाड़ के

केसी हिस्से पर डाका डाला। काठियावाड़ के राजा पेशवा और गायकवाड़ के सामन्त थे, और पेशवा और गायकवाड़ दोनों, सन्धियों द्वारा, कम्पनी सरकार के मित्र थे। बस, कच्छ पर हमला करने के लिए यही काफ़ी वजह समझी गई। करनल ईस्ट के अधीन एक सेना कच्छ पर चढ़ाई करने के लिए भेजी गई। कच्छ जैसी छोटी सी रियासत को विजय कर लेना कम्पनी के लिए अधिक कठिन न था। करनल ईस्ट ने थोड़ी सी लड़ाई के बाद अञ्जार के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, इसके बाद कच्छ के राजपूत राजा को डराया गया कि सिन्ध के मुसलमान अमीर तुम पर हमला करने वाले हैं और यदि तुमने अंगरेज़ कम्पनी के संरक्षण मे आना स्वीकार न किया तो अंगरेज़ तुम्हारे विरुद्ध सिन्ध के अमीरों को मदद देने पर मजबूर हो जायँगे। इस विचित्र न्याय के औचित्य पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है और न यह बताने की आवश्यकता है कि कच्छ पर सिन्ध के हमले की बात सर्वथा झूठ थी। लाचार होकर सन् १८१६ में कच्छ के राव ने कम्पनी के साथ सन्धि कर ली। पच्छिमी भारत में अंगरेज़ों का प्रभाव बढ़ गया, और उसी दिन से कच्छ की स्वाधीनता समाप्त हो गई।

हाथरस और मुरसान

क़रीब इतनी ही छोटी कहानी हाथरस और मुरसान नामक जाट रियासतों की है। गङ्गा और जमना के बीच की जाट रियासतें इस समय तक स्वाधीन थीं। इनमें मुख्य भरतपुर की रियासत थी, जिसे परास्त करने के प्रयत्न में लॉर्ड लेक दो बार ज़िल्लत उठा

चुका था। लॉर्ड हेस्टिंग्स को तीसरी बार भरतपुर राज के साथ युद्ध छेड़ने में बुद्धिमत्ता दिखाई न दी। किन्तु दोआब के जाट राजाओं और वहाँ की प्रजा के दिलों से कम्पनी की ज़िल्लत को दूर करना भी ज़रूरी था। इसलिए लॉर्ड हेस्टिंग्स ने हाथरस और मुरसान की छोटी छोटी रियासतों पर हमला करके उन्हें अपने अधीन कर लेना आवश्यक समझा।

हाथरस पर कम्पनी का क़ब्ज़ा

इतिहास लेखक प्रिन्सेप साफ़ लिखता है कि हाथरस पर हमला करने के लिए अंगरेज़ों के पास कोई भी बहाना न था। हाथरस का क़िला हिन्दोस्तान के ख़ास मज़बूत क़िलों में गिना जाता था। ११ फ़रवरी सन् १८१७ को अचानक कम्पनी की सेना ने पहुँच कर चारों ओर से हाथरस के क़िले को घेर लिया। हाथरस के राजा दयाराम से कहा गया कि चूँकि हाथरस का क़िला उसी नमूने का है जिस नमूने का कि भरतपुर का, इसलिए गवरनर जनरल की इच्छा है कि अंगरेज़ अफ़सरों को हाथरस का क़िला भीतर से देखने की इजाज़त दी जाय, ताकि उसके बाद वे फिर आवश्यकता पड़ने पर भरतपुर के क़िले को विजय करने का प्रयत्न कर सकें। राजा दयाराम भरतपुर के प्रसिद्ध राजा रणजीतसिंह का एक निकट सम्बन्धी था। उसने इस अनुचित माँग को पूरा करने से इनकार कर दिया। राजा से यह भी कहा गया कि आप क़िले का एक दरवाज़ा अंगरेज़ों के हवाले कर दें और उन्हें उस दरवाज़े को ढाने की इजाज़त दे दें। राजा दयाराम अंगरेज़ों के इरादे को समझ

गया, उसने कम्पनी के किसी भी आदमी को क़िले के अन्दर आने की इजाज़त न दी। वह अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित क़िले की रक्षा के लिये तैयार हो गया।

किन्तु राजा दयाराम के पास न कम्पनी का सा सामान था और न उतनी विशाल सेना। हाथरस के क़िले और नगर दोनों के ऊपर गोलेबारी शुरू हुई। २३ फ़रवरी को एक ओर से नगर की दीवार का कुछ टुकड़ा टूटा। दूसरी मार्च को कहा जाता है कि किसी अंगरेज़ी तोप का एक गोला क़िले के भीतर बारूद के मेगज़ीन में जाकर पड़ा, जिससे मेगज़ीन में आग लग गई और क़िले को बहुत बड़ी हानि हुई। मालूम होता है कि इस क़िले के अन्दर भी कम्पनी के 'गुप्त उपाय' अपना कुछ काम कर चुके थे। फिर भी क़िले के अन्दर की तोपें बराबर अंगरेज़ी तोपों का जवाब देती रहीं। किन्तु कब तक? अन्त में जब राजा दयाराम ने देख लिया कि अधिक देर तक कम्पनी की सेना से क़िले को बचा सकना असम्भव है तो एक दिन आधी रात को अपने दो चार साथियों सहित क़िले से बाहर निकल गया। मार्ग में कुछ गोरे सिपाहियों ने उसे घेर लिया, किन्तु उनका ख़ात्मा करता हुआ राजा दयाराम अंगरेज़ी सेना के हाथों से बच कर अपनी राजधानी छोड़ कर निकल गया।

मुरसान पर क़ब्ज़ा

हाथरस का क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ जाने के बाद मुरसान के राजा भगवन्तसिंह की हिम्मत और भी टूट गई। कहा जाता है कि उसने बिना लड़े अपना क़िला और राज दोनों अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिए। इस

प्रकार हाथरस और मुरसान की जाट रियासतें कम्पनी के इलाक़े में मिला ली गईं।

नैपाल युद्ध के खर्च के लिए ढाई करोड़ रुपये नक़द अवध के नवाब से लिए गए थे। उस ढाई करोड़ के बदले में नवाब को कुछ देना भी आवश्यक था। जो इलाक़ा नैपाल से लिया गया उसका एक टुकड़ा हेस्टिंग्स ने इन ढाई करोड़ के बदले में नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को भेंट कर दिया। इस टुकड़े के विषय में लिखा है कि वह इतना बञ्जर था कि यदि नवाब ग़ाज़ीउद्दीन केवल एक करोड़ रुपये से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्से ख़रीद लेता तो जो आमदनी उसे इन हिस्सों से होने लगती उसका छठा हिस्सा भी इस नए नैपाली इलाक़े से प्राप्त न हो सकता था।*

अवध और दिल्ली सम्राट

मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स अवध के नवाब को और भी बढ़ाना चाहता था। इसका एक मात्र कारण यह था कि अंगरेज़ उस समय दिल्ली सम्राट के रहे सहे प्रभाव को अन्त कर देने के लिए उत्सुक थे। अवध का नवाब दिल्ली सम्राट का एक सूबेदार और मुग़ल दरबार का वज़ीर था। हेस्टिंग्स ने अक्तूबर सन् १८१९ में लखनऊ में एक दरबार करवा कर नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को बाज़ाब्ता 'बादशाह' का ख़िताब दिया। इसका मतलब यह था कि अवध का नवाब अब से दिल्ली सम्राट के अधीन नहीं रहा। किन्तु इसका यह अर्थ कभी न था कि नवाब को अपनी स्वाधीनता

* *Dacoitee in Excelsis etc* by Major Bird

वास्तव में कुछ बढ़ गई हो। ग़ाज़ीउद्दीन को 'बादशाह' स्वीकार करने से पहले गवरनर जनरल ने उससे यह साफ़ शर्त कर ली थी कि कम्पनी के साथ आपके सम्बन्ध में इससे कोई अन्तर न पड़ने पाएगा। वास्तव में इस हास्योत्पादक घटना से उस समय के अवध के नवाबों की बेबसी का ख़ासा परिचय मिलता है।

सम्राट अकबरशाह दूसरा उस समय दिल्ली के तख़्त पर था। सम्राट की ओर लॉर्ड हेस्टिंग्स के भावों का और अधिक पता हेस्टिंग्स के २२ जनवरी सन् १८१५ के रोज़नामचे से लगता है। उस समय तक यह प्रथा चली आती थी कि प्रायः प्रत्येक गवरनर जनरल दिल्ली जाकर सम्राट से भेंट करता था। अंगरेज़ दिल्ली सम्राट को भारत का सम्राट और स्वयं कम्पनी सरकार का न्याय्य अधिराज स्वीकार करते थे। सम्राट के साथ पत्र व्यवहार करने, मिलने तथा बातचीत करने में समस्त अंगरेज़ अफ़सर प्राचीन मान मर्यादा का पालन करते थे। लिखा है कि सम्राट अकबरशाह ने हेस्टिंग्स को मिलने के लिए दिल्ली बुलाना चाहा। सम्राट का उद्देश सम्भवतः उन अनेक वादों की याद दिलाना था जो हेस्टिंग्स के पूर्वाधिकारियों ने अपने मतलब के लिए सम्राट शाहआलम से किए थे। किन्तु हेस्टिंग्स ने यह कह कर जाने से इनकार किया कि मुझे मुलाक़ात में ऐसे नियमों के पालन करने में एतराज़ है, जिनका अर्थ यह हो कि दिल्ली सम्राट कम्पनी सरकार का अधिराज है। इस एतराज़ का कारण हेस्टिंग्स ने अपने रोज़नामचे में इस प्रकार दर्ज किया है। वह लिखता है—

"हमारा यह स्वीकार कर लेना कि दिल्ली का बादशाह हमारा न्याय्य अधिराज है, एक ऐसे अस्तित्व को क़ायम रखना है कि जिसके झण्डे के नीचे कभी भी चारों ओर से मुसलमान आ आकर जमा हो सकते हैं। ऐसा करना ख़तरनाक है।"*

निस्सन्देह हेस्टिंग्स का 'ख़तरा' सच्चा था। इसके केवल ४२ वर्ष के बाद ही न केवल मुसलमानों, बल्कि भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने दिल्ली सम्राट के झण्डे के नीचे जमा होकर एक बार भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया।

* "It is dangerous to uphold for the Musalmans a rallying point, sanctioned by our own acknowledgment that a just title to supremacy exists in the King of Delhi . . . ."—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, 22nd January, 1815.



बत्तीसवाँ अध्याय

तीसरा मराठा युद्ध

नैपाल युद्ध के समाप्त होते ही लॉर्ड हेस्टिंग्स की साम्राज्य पिपासा और अधिक बढ़ गई। हेस्टिंग्स ने ६ फ़रवरी सन् १८१४ के निजी रोज़नामचे में अपनी उस समय की नीति को इस प्रकार बयान किया है :—

हेस्टिंग्स की नीति

"हमारा उद्देश यह होना चाहिए कि यदि ज़ाहिरा तौर पर नहीं, तो कम से कम व्यवहार में अंगरेज़ सरकार को इस देश का अधिराज बना दिया जाय। देश की बाक़ी रियासतें यदि कहने के लिए न भी सही तो भी वास्तव में हमारी सत्ता के अधीन हमारे सामन्तों की तरह रहनी चाहिएँ ; × × × एक तो उन सब का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि जिस समय उन्हें बुलाया जाय वे अपनी सब सेनाओं सहित अंगरेज़ सरकार की मदद करें। दूसरे जब कभी उन रियासतों में कोई आपसी झगड़े हों, वे

बिना एक दूसरे पर हमला किए उन झगड़ों को हमारी सरकार के सामने पेश करें × × × यदि दिल्ली के दरबार को अपने अधिराज होने का कोई दावा है तो उस दावे को नष्ट करना भी हमारी इस योजना का निस्सन्देह एक अङ्ग होगा। इस योजना को पूरा करने के लिए समय और उचित परिस्थिति की आवश्यकता है।"*

बात यह थी कि नैपाल युद्ध के साथ साथ कम्पनी की आर्थिक कठिनाई बहुत अंश तक दूर हो चुकी थी। ढाई करोड़ की रक़म, जो नैपाल युद्ध के लिए अवध के नवाब से ली गई थी, कुछ ख़र्च हो चुकी थी और कुछ शायद अभी तक बाक़ी थी। इसके अतिरिक्त नैपाल का जो इलाक़ा कम्पनी को मिला था युद्ध समाप्त होते ही कम्पनी के अफ़सरों ने उसका जी भर कर शोषण किया। इस शोषण के अतिरिक्त कम्पनी की सालाना आमदनी में भी नए इलाक़े के कारण क़रीब एक करोड़ वार्षिक की वृद्धि हो चुकी थी। हेस्टिंग्स के पास अब नई सेनाएँ जमा करने और कम्पनी की साम्राज्य पिपासा को शान्त करने के लिए काफ़ी धन मौजूद था।

भारत के अन्दर सब से बड़ी ताक़त, जिसे अपने अधीन

---

* "Our object ought to be, to render the British Government paramount in effect, if not declaredly so We should hold the other states as vassals, in substance, though not in name First they should support it with all their *forces in any call* Second, they should submit their mutual differences to the head of the confederacy (*our Government*) without attacking each other's territories. The completion of such a system which must include the extinction of any pretention to pre-eminence in the Court of Delhi, demands *time* and favourable coincedences "—*Privat Journal of the Marquess of Hastings*, February 6th, 1814, p 30

करना था जिसके उर्वर प्रान्तों को कम्पनी के साम्राज्य में मिलाना इस समय आवश्यक था, मराठों की ताक़त थी। इसलिए सबसे पहले मराठों ही की ओर हेस्टिंग्स का ध्यान गया। नैपाल युद्ध से छुटकारा पाते ही उसने पेशवा, भोंसले, सींधिया और होलकर की सरहदों के बराबर बराबर विशाल सेनाएँ जमा करनी शुरू कर दीं। इस समस्त तैयारी के वास्तविक उद्देश को मराठा नरेशों से छिपाए रखने के लिए बहाना यह लिया गया कि यह सब केवल पिण्डारियों की लूट मार से अंगरेज़ी इलाक़े की रक्षा करने के लिए किया जा रहा है। किन्तु हेस्टिंग्स का वास्तविक उद्देश देर तक छिपा न रह सका।

वास्तविक उद्देश

हेस्टिंग्स की तैयारी और तीसरे मराठा युद्ध की प्रगति को बयान करने से पहले इस स्थान पर पिण्डारियों और उनके दमन के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। ऊपर एक अध्याय में लिखा जा चुका है कि पिण्डारी दक्खिन की एक वीर, युद्ध प्रेमी जाति थी, जो शिवाजी के समय से लेकर १६ वी शताब्दी के शुरू तक मराठा नरेशों की सेना का एक विशेष और महत्वपूर्ण अङ्ग बनी रही।

पिण्डारियों का दमन

उस समय के अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने पिण्डारियों को डाकू, लुटेरे, हत्यारे और निर्दयी लिखा है। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि पिण्डारियों का पेशा डकैती न था और न वे स्वभाव से निर्दय थे। ऊपर लिखा जा चुका है कि ये लोग अधिकतर नर्बदा के

पिण्डारियों की विशेषता

किनारे किनारे रहते थे, और ईमानदारी के साथ परिश्रम करके अपना और अपने बाल बच्चों का पेट भरते थे। शान्ति के समय ये लोग खेती बाड़ी करके टट्टू और बैलों पर माल लाद कर उसे बेच कर अपना गुज़ारा करते थे और युद्ध के समय मराठा नरेशों के यहाँ आकर उनकी सेना में शामिल हो जाते थे। इतिहास लेखक मैलकम लिखता है—

"मलहरराव होलकर और तुकाजी होलकर के समय में पिण्डारियों को × × × प्रति मनुष्य चार आने रोज़ दिए जाते थे; और इसके अतिरिक्त वे अपने टट्टुओं और बैलों पर नाज, चारा और लकड़ी लाद कर अपना गुज़ारा करते थे। इन चीज़ों के लिए पिण्डारी बाज़ार एक बड़ी मण्डी होता था।"*

उस समय के चार आने इस समय के क़रीब ढाई रुपए के बराबर हैं।

यही अंगरेज़ लेखक पिण्डारियों के स्वभाव के विषय में लिखता है—

"यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि × × × जो असंख्य क़ैदी पिण्डारियों के हाथों में आते थे, जिन क़ैदियों में कि पुरुष और स्त्री और हर आयु के लोग शामिल होते थे, उनसे यद्यपि पिण्डारी सेवा का काम लेते थे, उन्हें अपने सरदारों को दे देते थे और उनके रिश्तेदारों से रुपए लेकर उन्हें छोड़ भी देते थे; फिर भी वे कभी किसी क़ैदी को गुलाम बना कर दूसरों के हाथ न बेचते थे, और न बञ्जारों की तरह कभी गुलामों के क्रय-विक्रय का काम करते थे।"

* Malcolm's *Report on Central India*, vol 1, p 436.

प्रोफ़ेसर विलसन ने भी लिखा है कि—

"आम तौर पर पिण्डारी लोग वीर होने के अतिरिक्त ईमानदार और वफ़ादार भी होते थे, और जिन जिन ग्रामों से वे गुज़रते थे उनमें अपने व्यवहार के कारण इतने सर्वप्रिय हो जाते थे कि बाद में गाँव वाले उनके विरुद्ध किसी तरह की ख़बर देने या मदद देने के लिए हरगिज़ राज़ी न होते थे।"

हम एक पिछले अध्याय में दिखा चुके हैं कि स्वयं कम्पनी के अफ़सरों ही ने इन वीर पिण्डारियों को उत्तेजना और धन दे देकर उनसे अनेक बार अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात कराया और देशी नरेशों के इलाक़ों को लुटवाया। पिण्डारियों का इस प्रकार का उपयोग उन दिनों कम्पनी के अफ़सरों की एक साधारण नीति थी। किन्तु अंगरेज़ों के संसर्ग से पहले न पिण्डारियों का कभी डकैती पेशा था, न वे स्वभाव से निर्दय थे और न उन्होंने कभी अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात किया था।

पिण्डारी आम तौर पर मराठा नरेशों के सब से अधिक वीर और वफ़ादार अनुयायी थे। यही कारण है कि लॉर्ड हेस्टिंग्स मराठों पर तीसरी बार हमला करने से पहले पिण्डारी जाति को विध्वंस कर देना चाहता था। अपने इस कार्य को न्याय्य ठहराने के लिए कहा गया कि पिण्डारी लोग कम्पनी और उसके मित्रों के इलाक़ों में निरन्तर लूटमार करते रहते हैं। पिण्डारियों की लूटमार और उनकी निर्दयता के अनेक क़िस्से चारों ओर फैलाए गए, जिनमें से अधिकांश झूठे और कल्पित थे।

पिण्डारियों का इस्तेमाल

जब कि उस समय कम्पनी के अफ़सरों ने अनेक बार ही मराठों और राजपूतों और विशेष कर जयपुर इत्यादि के इलाके पिण्डारियों को उकसा कर उनसे लुटवाए, दूसरी ओर पिण्डारियों के कम्पनी के इलाके पर हमला करने को केवल दो ख़ास मिसालें मिलती हैं। एक सन् १८०८—१८०९ में, जब कि पिण्डारियों ने गुजरात के किसी भाग पर धावा किया ; और दूसरे सन् १८१२ में, जब कि उन्होंने मिरज़ापुर और शाहाबाद में कुछ लूट मार की। किन्तु इन दोनों बार अंगरेज़ों ने कोई विशेष प्रयत्न उनके विरुद्ध नहीं किया। यदि डकैतियों से प्रजा की रक्षा करना ही लॉर्ड हेस्टिंग्स का वास्तविक उद्देश होता तो ब्रिटिश भारत के अन्दर उन दिनों असंख्य डाकू अपने भयङ्कर कृत्यों से ब्रिटिश भारतीय प्रजा को दुखी कर रहे थे, जिसका वृत्तान्त एक पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने उन डाकुओं को दमन करने का कभी कोई उपाय नहीं किया।

झगड़ा मोल लेना

पिण्डारियों से झगड़ा मोल लेने के लिए अक्तूबर सन् १८१५ में मेजर फ़्रेज़र ने निस्सन्देह बिना गवरनर-जनरल की आज्ञा के किसी कारण पिण्डारियों के एक जत्थे पर हमला कर दिया। इस पर बेज़ार होकर पिण्डारियों ने कृष्णा नदी के किनारे किनारे समस्त अंगरेज़ी इलाके में लूट मार शुरू कर दी। इसके बाद पिण्डारियों और अंगरेज़ों के अनेक संग्राम हुए, जिन्हें विस्तार से बयान

करना अनावश्यक है। पिण्डारियों के अलग अलग जत्थे होते थे, जो 'दुर्रे' या 'लब्बर' कहलाते थे। जब तक इनके ये सब दुर्रे मेल से कार्य करते रहे, अंगरेज़ों के लिए उन्हें जीत सकना असम्भव दिखाई दिया। किन्तु ज्योंही कम्पनी की कूटनीति के कारण विविध पिण्डारी दुर्रों के अन्दर फूट फैल गई, ये दुर्रे एक एक कर बरबाद होगए। जो पिण्डारी सरदार अपने साथियों के साथ विश्वासघात करके अंगरेज़ों से मिल गए उन्हें कम्पनी की ओर से हज़ारों रुपए सालाना की जागीरें दे दी गई। जो अपनी आन पर डटे रहे या जिन्होंने मराठा नरेशों के साथ विश्वासघात करने से इनकार किया वे या तो युद्ध में मारे गए या जंगलों में खूंखार जानवरों का शिकार हुए। इस प्रकार धीरे धीरे कम्पनी के प्रतिनिधियों ने उन वीर पिण्डारियों के अस्तित्व को मिटा डाला, जिनका अपने साम्राज्य निर्माण के कार्य में वे हाल ही में सीढ़ी की तरह उपयोग कर चुके थे।

किन्तु लॉर्ड हेस्टिंग्स ने मराठा साम्राज्य की सरहद के बराबर बराबर इस समय एक लाख से ऊपर सेना जमा कर ली थी। यह विशाल तैयारी केवल तीस हज़ार पिण्डारियों के दमन के लिए ही न थी।

युद्ध की विशाल तैयारी

इस तैयारी के विषय में इतिहास लेखक सर जॉन के ने लिखा है—

"हमारी सैनिक तैयारियाँ इतने ज़बरदस्त पैमाने पर थीं × × × ।

"पाठक को चाहिए कि भारत का कोई नक़शा अपने सामने रख ले, और सोचे कि कृष्णा और गंगा नदियों के बीच में कितनी लम्बी और

विस्तृत भूमि है। इसके बाद दक्खिन-पच्छिम में पूना से लेकर उत्तर-पूर्व में कानपुर तक नज़र डाले; मुख्य मुख्य देशी दरबारों की जगहों को ध्यान में रक्खे, और फिर उन विशाल सेनाओं की कल्पना करे जो तीनों बड़े बड़े प्रान्तों से चुन कर ली गई थीं, और जो हिन्दोस्तान और दक्खिन दोनों को घेरते हुए और पिण्डारी जत्थों और स्वाधीन रियासतों दोनों को एक साथ अपने जाल में लपेटते हुए, इस विस्तृत भू-भाग के ऊपर फैलती जा रही थी। वास्तव में उस समय के (अंगरेज़ राजनैतिक) शिकारी इसे भारत के राजों, महाराजों का एक ज़बरदस्त आखेट समझते थे; और यदि वे राजा महाराजा भी इस मामले को लगभग इसी दृष्टि से देखते थे और यह समझते थे कि बहुत दिनों तक आराम करने के बाद, फ़िरङ्गी लोग अब फिर एक ज़बरदस्त युद्ध के लिए तैयारी कर रहे हैं और अपनी समस्त विशाल सैनिक शक्तियों को लगा कर देशी रियासतों को पृथ्वी पर से मिटा देने का एक व्यापक प्रयत्न करने वाले हैं, तो हमें उनके ऐसा समझने पर आश्चर्य नहीं हो सकता।

'मराठे जाग उठे, वे पहले से बेचैन थे ही। अब वे सशङ्क हो गए। × × ×

"मुझे मालूम होता है कि पेशवा और बरार के राजा का यही हाल हुआ। हमारी सेनाओं के जमा होने और बढ़ने से वे चौंक गए। उन्हें विश्वास न हुआ कि ये ज़बरदस्त सैनिक तैयारियाँ केवल पिण्डारियों को वश में करने के लिए की जा रही हैं। उन्होंने सोचा कि जिस युद्ध को स्वयं गवरनर जनरल एक विशाल सेना लेकर अपने नेतृत्व में चला रहा है, उसका शुरू में और ज़ाहिरा उद्देश चाहे कुछ भी हो, किन्तु अन्त में वह युद्ध

स्वाधीन मराठा रियासतों के विरुद्ध लड़ा जायगा। और उनका यह सन्देह बेबुनियाद न था। पिण्डारियों के दमन के बाद ही नए मराठा युद्ध की सम्भावना पर बड़े बड़े सरकारी पत्र व्यवहार हो रहे थे, और हमारी छावनियों में इस विषय की बातचीत होती रहती थी। राजनीतिज्ञ लोग कौन्सिल की मेज़ पर बैठ कर सञ्जीदगी के साथ इस विषय की बहसें करते थे, और सिपाही लोग खाने की मेज़ पर बैठ कर खुश हो होकर इसकी पेशीनगोइयाँ करते थे। × × × निस्सन्देह हम यह आशा नहीं कर सकते कि जिस समय हम अपनी तोपों मे गोले भर कर, उनके मुँह पर बारूद रख कर, जलता हुआ फ़लीता हाथ में लिए खड़े हों, उस समय सारी दुनिया अपनी तोपें उतार कर अलग रख दे।"*

एक दूसरा अंगरेज़ लेखक लिखता है—

"सन् १८१७ की गर्मी और पतझड़ के दिनों मे विविध सेनाएँ अपनी अपनी जगह जमा हुईं। एक बड़ी सेना स्वयं लॉर्ड हेस्टिंग्स के नेतृत्व में क़रीब ३४,००० स्थायी सैनिकों की थी। इस सेना की तीन डिवीज़नें की गईं और शेष कुछ सेना बचा कर रिज़र्व में रक्खी गई। तीन डिवीज़नों मे से एक आगरे में, दूसरी कालपी के नज़दीक जमना के किनारे सिकन्दरे मे, और तीसरी कलिञ्जर बुन्देलखण्ड मे; और बाक़ी सेना दिल्ली के दक्खिन पच्छिम रेवाड़ी मे नियुक्त की गई।

"दक्खिन की सेना लेफ़्टिनेन्ट-जनरल सर टॉमस हिसलप के अधीन पाँच डिवीज़नों और एक रिज़र्व में बाँटी गई; जिसमें ५७,००० स्थायी सैनिक थे।

---

* *Life and Correspondence of Sir John Malcolm*, by Sir John Kaye, vol ii, p. 187

यह सेना इस प्रकार नियुक्त की गई कि हौंदिया और होशङ्गाबाद के रास्ते सारी सेना एक साथ नर्बदा पार कर बरार और खानदेश के इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर सके और आवश्यकतानुसार कार्य कर सके; गुजरात से एक डिवीज़न गोहद के रास्ते मालवा में प्रवेश करने के लिए नियुक्त की गई। इतनी अधिक विशाल सेना पहले कभी भी अंगरेज़ी इलाक़े से न निकली थी। इस बाज़ाब्ता विशाल सेना के अतिरिक्त २३,००० अनस्थायी सवार और थे, जिनमें से १३,००० दक्खिन की सेना के साथ थे और १०,००० बङ्गाल की सेना के साथ।"*

आगे चल कर इस लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि इस पूरी सेना का उद्देश समस्त मराठा रियासतों को घेर कर उनके स्वाधीन अस्तित्व को सदा के लिए मिटा देना था।

अंगरेज़ों का भौगोलिक ज्ञान

दूसरे मराठा युद्ध के समय अंगरेज़ों की पराजयों का एक कारण यह भी था कि उस समय तक अंगरेज़ मध्य भारत की भूमि से बहुत ही कम परिचित थे। सन् १८१५ से पहले कम्पनी के दफ़्तरों में हिन्दोस्तान के जो नक़शे होते थे वे बिलकुल ग़लत और हास्यजनक होते थे। यहाँ तक कि राजपूताने के नक़शे में चित्तौड़ उदयपुर के पच्छिम में होता था और राजपूताने की नदियों का प्रवाह प्रायः उलटा दिखाया जाता था। नए युद्ध से पहले अंगरेज़ों ने राजपूताना और मध्यभारत के भूगोल का ठीक ठीक पता लगा लेना आवश्यक समझा। इसलिए सन् १८०६ में 'राजस्थान' नामक

---

* *Memoirs of Colonel Skinner*, vol. ii, pp 124—129

ग्रन्थ का सुप्रसिद्ध रचयिता करनल जेम्स टॉड उस प्रदेश की भौगोलिक जाँच के लिए नियुक्त किया गया।

करनल टॉड

करनल टॉड का नाम भारत और विशेष कर राजपूताने के इतिहास में बहुत दिनों तक क़ायम रहेगा। सन् १८१५ में करनल टॉड ने मध्य भारत का एक सच्चा और विस्तृत नक़शा तैयार किया। इसके बाद करनल टॉड राजपूताने के प्राचीन इतिहास की खोज करता रहा। सन् १८१७ में वह मेवाड़, मारवाड़, जयपुर, कोटा और बूंदी की पाँच राजपूत रियासतों के लिए कम्पनी का एजन्ट नियुक्त हुआ और सन् १८२३ तक उस पद पर काम करता रहा।

करनल टॉड जितना कुशल कूटनीतिज्ञ था उतना ही विद्वान भी था। कम्पनी के एजेण्ट की हैसियत से उसका मुख्य कार्य यह था कि राजपूत राजाओं को बढ़ा बढ़ा कर मराठों और मुसलमानों दोनों के विरुद्ध सदा उनके कान भरता रहे, ताकि राजपूतों के दिलों में मराठों और मुसलमानों की ओर से काफ़ी घृणा उत्पन्न हो जाय; और ये तीनों जातियाँ भारत की स्वाधीनता के नाम पर विदेशियों के विरुद्ध मिलने न पाएँ। करनल टॉड ने अपना कार्य बड़ी सुन्दरता और सफलता के साथ पूरा किया। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राजस्थान' इसी उद्देश को सामने रख कर लिखा गया और मराठों और मुसलमानों दोनों के विरुद्ध अनेक भ्रान्त और कल्पित वृत्तान्तों से भरा हुआ है।* करनल टॉड ने भारत के योग्य, महान्

* Mahadeva Govinda Ranade, in the *Journal of the Puna Sarvajanik Sabha*, vol. 1

और कर्त्तव्यनिष्ठ सम्राट अकबर के चरित्र पर भी झूठा कलङ्क लगाने में सङ्कोच नहीं किया। किन्तु अपना राजनैतिक उद्देश पूरा करने में करनल टॉड को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। सर डेविड ऑक्टरलोनी लिखता है कि करनल टॉड राजपूताने के राजाओं और सरदारों से जी भर कर नज़रें और रिशवतें भी वसूल किया करता था।

टॉड के बनाए हुए मध्य भारत के नक़शे से लॉर्ड हेस्टिंग्स को तीसरे मराठा युद्ध में बहुत बड़ी सहायता मिली।

मराठों और राजपूतों का सम्बन्ध

इसके पहले शुरू से मराठों और राजपूतों के बीच अधिकतर अच्छा सम्बन्ध रह चुका था। इतिहास से पता चलता है कि राजपूतों ही की मदद से मराठों ने मालवा प्रान्त को विजय किया, बल्कि यदि राजपूतों की सहायता न होती तो सम्भव है कि मराठे मध्य भारत में एक चप्पा ज़मीन भी प्राप्त न कर पाते। विशेष कर जयपुर के राजा जयसिंह ने मालवा और उत्तरी हिन्दोस्तान को विजय करने में मराठों को बहुत बड़ी सहायता दी समस्त राजपूताना मराठा साम्राज्य का एक अंग था। पेशवाओं ने भी अपनी शक्ति भर राजपूताने के पुराने राजकुलों को उनके पैतृक सिंहासनों पर क़ायम रक्खा। निस्सन्देह हाल के दिनों में सींधिया और होलकर की सेनाओं ने राजपूतों के साथ युद्ध किए और उनकी रियासतों को भी कहीं कहीं लूटा। किन्तु इस तरह के कार्यों में अधिकतर उस समय की कम्पनी सरकार का हाथ होता था। अमीर ख़ाँ की सेना

से जयपुर को लुटवाना अंगरेज़ों ही की कूटनीति का काम था। फिर भी किसी मराठा नरेश ने कभी भी किसी राजपूत घराने के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं मिटाया और न किसी से उसकी गद्दी छीनी।

सींधिया के साथ नई सन्धि

जिस समय का ज़िक्र हम कर रहे हैं उस समय जयपुर इत्यादि राजपूत रियासतें महाराजा सींधिया की सामन्त थीं। दूसरे मराठा युद्ध के बाद अंगरेज़ों और सींधिया के बीच जो सन्धि हुई थी उसमें कम्पनी ने सींधिया और राजपूतों के इस सम्बन्ध को स्वीकार किया था; और सन्धि में यह एक साफ़ शर्त कर दी गई थी कि कम्पनी सरकार राजपूत रियासतों के साथ न किसी तरह का पत्र व्यवहार करेगी और न उनके साथ कोई पृथक सम्बन्ध क़ायम करेगी। करनल टॉड की नियुक्ति इस सन्धि का स्पष्ट उल्लङ्घन थी। इतना ही नहीं, वरन् करनल टॉड ने राजपूतों और मराठों के कभी कभी के पुराने झगड़ों को बढ़ाकर और अन्य झूठे सच्चे उपायों से मराठों की ओर से राजपूतों के चित्त में घृणा उत्पन्न कर दी; यहाँ तक कि करनल टॉड ही की कूटनीति की सहायता से लॉर्ड हेस्टिंग्स ने महाराजा सींधिया के साथ की उस दस वर्ष पूर्व की सन्धि के विरुद्ध राजपूत नरेशों के साथ सींधिया से ऊपर ही ऊपर पृथक सन्धियाँ कर लीं और महाराजा सींधिया से उनका सम्बन्ध तोड़ कर उन्हें कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसा लिया।

इसके पश्चात् महाराजा सींधिया से कम्पनी और राजपूत नरेशों के इस नए सम्बन्ध को स्वीकार कराना आवश्यक था। सींधिया राज के उत्तर में कम्पनी की काफ़ी सेना तैयार हो चुकी थी। इस सेना की सहायता से हेस्टिंग्स ने जिस तरह महाराजा सींधिया पर दबाव डाल कर उससे नई सन्धि स्वीकार कराई उसे हेस्टिंग्स ही के शब्दों में बयान करना उचित है। लॉर्ड हेस्टिंग्स का कथन है :—

"सींधिया के साथ हमारी पहली सन्धि × × × में एक शर्त हमारे लिए अपमानजनक और बाधक थी। इस शर्त के अनुसार हम राजपूत रियासतों के साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार न कर सकते थे, × × इस तरह के हानिकारक बन्धन को तोड़ कर मैंने इन सब रियासतों को अंगरेज़ सरकार की सामन्त बना लिया। यद्यपि इनमें से हर एक रियासत के पास बहुत सी सेना थी, फिर भी अपने आपस के झगड़ों के कारण (जो झगड़े कि मुख्य कर व्यर्थ की छोटी छोटी बातों और प्रायः इन नरेशों के पैतृक विवादों से उत्पन्न होते थे) वे कभी मिल कर एक न हो सकते थे।

× × ×

"निस्सन्देह यदि सींधिया, जो अन्य देशी नरेशों से कहीं अधिक शक्तिशाली था, उस समय अपनी अभ्यस्त सेनाओं व सुन्दर और सुव्यवस्थित तोपख़ाने सहित मैदान में उतर आता तो मराठा मण्डल के अन्य नरेशों को इतने अधिक स्थानों पर शस्त्र उठाने का समय मिल जाता और साहस हो जाता कि उससे हमें अपनी काररवाइयों में बहुत सावधान रहना पड़ता, हमें बहुत देर लग जाती, और हमारा ख़र्च बहुत बढ़ जाता। × × × सींधिया

ग्वालियर में अर्थात् अपने राज के सबसे अधिक धन सम्पन्न इलाक़े के बीचों बीच में था; किन्तु × × × सींधिया की स्थिति में सैनिक दृष्टि से एक और दोष था जिसकी तरफ़ मालूम होता है कि महाराजा सींधिया ने कभी ध्यान न दिया था। ग्वालियर से क़रीब २० मील दक्खिन में छोटी सिन्धु नदी से लेकर चम्बल तक अत्यन्त ढालू पहाड़ियों की एक पंक्ति है, जो घने भारतीय जङ्गलों से ढकी हुई है। × × × केवल दो रास्ते हैं जिन पर से कि गाड़ियाँ और शायद सवार सेना इन पहाड़ियों को पार कर सकती है। एक छोटी सिन्धु नदी के बराबर से, और दूसरा चम्बल नदी के पास से। मैंने अपनी सेना की बीच की डिवीज़न से एक ऐसी जगह घेर ली कि जिससे छोटी सिन्धु के बराबर के रास्ते से सींधिया का आ सकना असम्भव हो गया; और दूसरे रास्ते के पीछे मेजर जनरल डनकिन की डिवीज़न को खड़ा कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि सींधिया के सामने सिवाय इसके और कोई चारा न रहा कि या तो जो सन्धि पत्र मैंने उसके सामने रक्खा उस पर दस्तख़त कर दे; और या अपने शानदार तोपख़ाने को जिसमें सौ से ऊपर पीतल की तोपें थीं, उसके साथ के सारे सामान को, और अपने सबसे अधिक क़ीमती इलाक़ों को हमारे हाथों में छोड़ कर अपने इतने थोड़े से साथियों सहित, जो उसके साथ जा सकें, पगडण्डियों के रास्ते इन पहाड़ियों को पार करके निकल जाय। जो शर्तें मैंने सींधिया के सामने पेश की उनका सार उसका अंगरेज़ कम्पनी की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर लेना था; यद्यपि इन शर्तों को इस प्रकार रङ्ग दिया गया था जिससे जन साधारण की दृष्टि में सींधिया को ज़िल्लत अनुभव न हो।"*

---

* *Lord Hastings' Summary, etc*, pp. 97, 100

अर्थात् इस प्रकार घेर कर मराठा साम्राज्य के एक मुख्य स्तम्भ महाराजा दौलतराव सींधिया से एक नए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए गए। इस नई सन्धि से सींधिया राज की आन्तरिक स्वाधीनता में फ़र्क़ न आया, न महाराजा दौलतराव ने कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि स्वीकार की, किन्तु सींधिया का साम्राज्य परिमित होगया। राजपूताने के नरेश, जो अभी तक महाराजा सींधिया के सामन्त थे, इस नई सन्धि के अनुसार कम्पनी के अधीन हो गए, और सींधिया ने पिण्डारियों के दमन में अंगरेज़ों को सहायता देने का वादा कर लिया, राजपूत नरेशों की नई सबसीडीयरी सेनाएँ भी अब पिण्डारियों और मराठों दोनों के दमन के लिए कम्पनी के हाथ आ गईं।

चार मुख्य मराठा नरेशों, सींधिया, पेशवा, भोंसले और होलकर में से सींधिया को इस प्रकार बिना युद्ध के ही नीचा दिखा दिया गया। शेष तीनों को वश में करना अब लॉर्ड हेस्टिंग्स के लिए बाक़ी रह गया।

पेशवा बाजीराव और अंगरेज़

पेशवा बाजीराव, बसई की सन्धि और दूसरे मराठा युद्ध का बयान एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। बाजीराव अन्तिम पेशवा था, किन्तु अंगरेज़ों के साथ उसके अन्तिम संग्राम को बयान करने से पहले दूसरे मराठा युद्ध से उस समय तक के बाजीराव और कम्पनी के सम्बन्ध को बता देना आवश्यक है।

कम्पनी ही ने अपने हित के लिए बाजीराव को दोबारा पूना

की मसनद पर बैठाया और बाजीराव में चाहे कोई भी और दोष क्यों न रहा हो, किन्तु अंगरेज़ों की ओर उसका व्यवहार सदा सच्चा रहा। बाजीराव कायर था, राजनीति की शतरञ्ज का वह अत्यन्त कच्चा खिलाड़ी था। अपनी अदूरदर्शिता के कारण कई बार विदेशियों के हाथों में खेल कर वह मराठा सत्ता के नाश का सबब बना। किन्तु अपने विदेशी मित्रों का वह सदा वफ़ादार रहा। इसके अतिरिक्त उसकी सच्चाई, उसकी धर्मनिष्ठा और एक सामान्य शासक की हैसियत से उसकी योग्यता की अनेक अंगरेज़ लेखकों और यात्रियों ने प्रशंसा की है।* यहाँ तक कि रेज़िडेण्ट करनल बैरीक्लोज़ तक ने बाजीराव की सच्चाई को स्वीकार किया है, और बम्बई के विद्वान चीफ़ जस्टिस सर जेम्स मैकिन्टॉश ने तो दक्खिन के इस ब्राह्मण शासक को इंगलिस्तान के तीसरे जॉर्ज और फ़ान्स के नैपोलियन दोनों से कहीं अधिक योग्य शासक बताया है।† मैकिन्टॉश इन तीनों नरेशों से भली भाँति परिचित था।

जिस समय का ज़िक्र हम कर रहे हैं उस समय पेशवा बाजीराव क्रियात्मक दृष्टि से अंगरेज़ों के हाथों में क़ैदी था। फिर भी अंगरेज़ उसकी इस स्थिति से सन्तुष्ट न थे। दूसरे मराठा युद्ध के बाद से ही उसकी बेड़ियों को और अधिक जकड़ने, उसे भड़काने और उसे बरबाद करने के प्रयत्न बराबर जारी थे।

---

* *Origin of the Pindarries, etc.,*—by an Officer in the Service of Honorable East India Company, 1818, Allahabad reprint.

† *Poona Gazetteer*

कम्पनी के अंगरेज़ अफ़सर बाजीराव को अपना मित्र कहते थे। किन्तु जनरल वेलस्ली ने, जो बाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, बाज़ीराव के दरबार की सब ख़बरें रखने के लिए पूना के अन्दर रिशवतों का बाज़ार गरम कर रक्खा था। बाजीराव के मन्त्रियों से लेकर महल के नौकरों तक को अंगरेज़ों की ओर से गुप्त तनख़ाहें दी जाती थीं। सर बैरी क्लोज़ के बाद सन् १८११ में एलफ़िन्सटन पूना का रेज़िडेंट नियुक्त हुआ। मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स की ख़ास नज़र इस समय बाजीराव के उर्वर प्रान्तों की ओर थी, जिनकी वार्षिक आय क़रीब डेढ़ करोड़ थी। रेज़िडेंट एलफ़िन्सटन इस काम के लिए हेस्टिंग्स के हाथों में उपयोगी साबित हुआ।

रेज़िडेंट एलफिन्सटन

पेशवा बाजीराव को कम्पनी के विरुद्ध अनेक शिकायतें थीं। मसलन, पेशवा काठियावाड़ के नरेशों का अधिराज था, फिर भी कम्पनी ने पेशवा की इजाज़त के बिना काठियावाड़ के सामन्त नरेशों के साथ युद्ध किया और नवानगर और जूनागढ़ के नरेशों से बड़ी बड़ी रक़में बतौर दण्ड के वसूल कीं, जिसकी पेशवा को सूचना तक नहीं दी गई।

एलफ़िन्सटन ने कई ऐसे काम किए जिनसे बाजीराव के दिल में एलफ़िन्सटन और कम्पनी की नियत पर सन्देह बढ़ता चला गया। मसलन् पेशवा का निज़ाम और गायकवाड़ दोनों के साथ अरसे से कुछ हिसाब का झगड़ा चला आता था। निज़ाम और

गायकवाड़ दोनों अंगरेज़ों के हाथों में थे। बाजीराव ने एलफ़िन्सटन से कई बार कहा कि ये झगड़े तय करा दिए जायँ, किन्तु एलफ़िन्सटन सदा टालता रहा।

बाजीराव और गायकवाड़

इनमें गायकवाड के साथ पेशवा के झगड़े को कुछ विस्तार के साथ वर्णन करने की जरूरत है। सन् १७५१ में दूमाजी गायकवाड़ और पेशवा बालाजीराव के बीच एक सन्धि हुई थी, जिसके अनुसार दूमाजी ने गुजरात का आधा इलाक़ा पेशवा को दे दिया था। इसी इलाक़े में अहमदाबाद भी शामिल था। पेशवा ने अपने इस इलाक़े का मियादी पट्टा फिर से गायकवाड़ के नाम लिख दिया। दूमाजी गायकवाड़ ने वादा किया कि आवश्यकता के समय में पेशवा की मदद के लिए १०,००० सवार अपने यहाँ सदा तैयार रक्खूंगा, सवा पाँच लाख रुपए सालाना पेशवा को ख़िराज दिया करूँगा, और एक पृथक रक़म सतारा के राजा के ख़र्च के लिए हर साल भेजूँगा। दूमाजी के उत्तराधिकारियों की ओर इस ख़िराज को और अहमदाबाद की मालगुज़ारी की कुछ बक़ाया वर्षों से चली आती थी, जो इस समय तक बढ़ते बढ़ते क़रीब एक करोड़ रुपए के पहुँच चुकी थी। फ़तहसिंह गायकवाड़ इस समय बड़ोदा की गद्दी पर था और सर्वथा अंगरेज़ों के प्रभाव में था। इसलिए बाजीराव ने अनेक बार एलफ़िन्सटन से कहा कि गायकवाड़ के साथ इस मामले का निबटारा करा दिया जाय, किन्तु एलफ़िन्सटन बराबर टालता रहा।

अन्त में अहमदाबाद के इलाके की बाबत गायकवाड़ के नाम के पट्टे की मियाद ख़त्म होने के क़रीब आई।

गंगाधर शास्त्री

उस पट्टे को फिर से नया करवाना ज़रूरी था। इसलिए अंगरेज़ों के कहने के अनुसार फ़तहसिंह गायकवाड़ ने गङ्गाधर शास्त्री को इस काम के लिए यानी पेशवा के साथ पिछला हिसाब साफ़ करने और नया पट्टा प्राप्त करने के लिये अपना वकील नियुक्त करके पूना भेजा। गङ्गाधर शास्त्री एक अत्यन्त चतुर ब्राह्मण था। वह पूना के आस पास का रहने वाला था। घर के एक साधारण चाकर से बढ़ते बढ़ते वह इस पद को पहुँचा था। बड़ोदा और पूना में वह अंगरेज़ों के गुप्तचर की हैसियत से दोनों राज्यों के सर्वनाश के उपाय किया करता था। "बड़ोदा गज़ेटियर" का अंगरेज़ रचयिता लिखता है—

"गङ्गाधर शास्त्री मेजर ए० वाकर के साथ बड़ोदा गया। सन् १८०२ में उसने अंगरेज़ सरकार की नौकरी कर ली। जून सन् १८०३ में सूरत की अट्ठावीसी के चौरासी परगने में हन्दोल का गाँव सदा के लिए उसके और उसके वंशजों के नाम कर दिया गया। इस गाँव की वार्षिक आमदनी पाँच हज़ार रुपए थी। × × ×

"१२ जनवरी सन् १८०४ को गङ्गाधर शास्त्री की लड़की की शादी के मौक़े पर बम्बई सरकार ने उसे चार हज़ार रुपए दिए। १४ मई सन् १८०६ को गङ्गाधर को एक पालकी दी गई और उसके ख़र्च के लिए १२०० रुपए सालाना मञ्जूर किए गए।"*

* *Baroda Gazetteer*, p 210, footnote.

बड़ोदा दरबार के साथ नई सन्धि

मेजर ए० वाकर, जिसका ऊपर ज़िक्र है, कम्पनी सरकार की ओर से बड़ोदा भेजा गया था। कारण यह था कि उस समय अंगरेज़ महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ पर इस बात के लिए ज़ोर डाल रहे थे कि आप अपने दरबार की रही सही सेना को बरख़ास्त करके राज की रक्षा का कार्य केवल कम्पनी की सबसीडीयरी सेना के सुपुर्द कर दें। आनन्दराव इसके लिए किसी प्रकार राज़ी कर लिया गया। किन्तु बड़ोदा दरबार की सेना में उस समय अधिकतर अरब सिपाही और अरब जमादार थे। ये लोग वीर और राज के सच्चे हितचिन्तक थे। अपने और रियासत दोनों के नाश को वे इतनी आसानी से सहन न कर सके। महाराजा को इन वफ़ादार अरबों के विरुद्ध ख़ूब भड़काया गया। किन्तु महाराजा का एक सम्बन्धी मलहरराव गायकवाड़ भी महाराजा की इस घातक नीति के विरुद्ध खड़ा हो गया। अंगरेज़ों को मलहरराव और इन अरबों दोनों को दमन करने के लिए सेना भेजनी पड़ी। सेना भेजने से पहले "स्थिति को देखने और ठीक करने" के लिए मेजर वाकर को बड़ोदा भेजा गया। गायकवाड़ पेशवा का सामन्त था, फिर भी मेजर वाकर ने पेशवा से ऊपर ही ऊपर बड़ोदा दरबार के साथ एक सन्धि कर ली। निस्सन्देह पेशवा के अधिकारों पर यह साफ़ हमला था।

गायकवाड़ के दीवान को नामज़द करने इत्यादि के अधिकार अरसे से पेशवा को प्राप्त थे। कम्पनी ने अब पेशवा के इन सब

अधिकारों से इनकार किया। बड़ौदा गज़ेटियर के अनुसार अब पेशवा को केवल यह अधिकार रह गया था कि जो नया महाराजा बड़ौदा की गद्दी पर बैठे उसका अभिषेक बिना एतराज़ किये पेशवा अपनी ओर से कर दे। अंगरेज़ उन दिनों अपनी सुविधा के अनुसार कभी गायकवाड़ को पेशवा का सामन्त मान लेते थे, और कभी फिर एक स्वाधीन नरेश के समान उसके साथ व्यवहार करने लगते थे। करनल वैलेस्ली ने बड़ी सुन्दरता के साथ गायकवाड़ की ओर कम्पनी की उस समय की नीति को वर्णन किया है। उसका कथन है—

बड़ौदा के साथ दुरंगी चालें

"गायकवाड़ की रियासत कम्पनी के हाथों का एक खिलौना थी। जब ज़रूरत पड़ती थी उसे मित्रवत् कलेजे से लगा लिया जाता था; और जब ज़रूरत न रहती थी तब अलग कर दिया जाता था। गायकवाड़ रियासत के सम्बन्ध में इस तरह की सन्धियाँ की गईं जिनमें रियासत से पूछा तक नहीं गया। स्वयं रियासत के साथ इस तरह की सन्धियाँ की गईं जिनको तोड़ने में जब भी कम्पनी को लाभ दिखाई दिया, तोड़ डाली गईं। कभी उसे एक स्वाधीन रियासत कह कर पेशवा से युद्ध करने के लिए उकसाया गया; और फिर युद्ध समाप्त होने पर उसे मराठा साम्राज्य का केवल एक सामन्त माना गया। रियासत की बाह्य नीति बिलकुल इसी तरह चलाई जाती थी।"*

* "The Gaikwad state had been the utensil of the Honorable Company; it had been embraced as an ally when required, and dismissed when no longer wanted, treaties had been made respecting it, in which it was not

अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इस कार्य में और ख़ास कर बड़ोदा राज को कम्पनी के अधीन करने में अंगरेज़ों को सबसे अधिक सहायता गङ्गाधर शास्त्री से प्राप्त हुई ; और उस समय से लेकर अपनी मृत्यु के समय तक गुजरात और दक्खिन में कम्पनी की सत्ता को पक्का करने के कार्य में सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग गङ्गाधर शास्त्री ने लिया ।*

स्वभावतः पेशवा बाजीराव और पूना और बड़ोदा के अनेक समझदार नीतिज्ञ गङ्गाधर शास्त्री को देशद्रोही समझते थे। बाजीराव ने गङ्गाधर की इस नियुक्ति पर एतराज़ किया, किन्तु एलफ़िन्सटन ने बिलकुल परवा न की । १६ अक्तूबर सन् १८१३ को गङ्गाधर शास्त्री बड़ोदा से पूना के लिए रवाना हो गया ।

ख़ुरशेदजी जमशेदजी मोदी की हत्या

गङ्गाधर शास्त्री के पूना पहुँचने के समय एक प्रसिद्ध पारसी नीतिज्ञ खुरशेदजी जमशेदजी मोदी पूना में रहा करता था। खुरशेदजी पेशवा बाजीराव और मराठा सत्ता का सच्चा हितचिन्तक था। इससे पहले के रेज़िडेण्ट सर बैरी क्लोज़ के समय से पेशवा और उसके दरबार के साथ रेज़िडेण्ट का जो कुछ कारबार

---

consulted, treaties had been made with it which had been abrogated when it suited the Company's convenience, sometimes it had been induced to wage war with the Peshwa as an independent state and then again, on the return of peace, it had been acknowledged as a vassal merely of the Maratha Empire, thus its external policy had been altogether dictated."

* *History of the Rise, Decline and Present state of the Shastree Family*, published from Bombay 1868, pp. 6-8

होता था सब खुरशेदजी द्वारा ही होता था। सर बैरी क्लोज़ और पेशवा बाजीराव दोनों खुरशेदजी के कार्य से सन्तुष्ट थे।

गङ्गाधर शास्त्री के पूना पहुँचते ही एलफ़िन्सटन ने गङ्गाधर के साथ मिल कर पेशवा के विरुद्ध साज़िशें शुरू कीं। बड़ोदा गज़ेटियर* में लिखा है कि खुरशेदजी मोदी और पेशवा का एक मन्त्री त्र्यम्बक जी पेशवा को इन साज़िशों की ओर से सावधान करते रहते थे। यह भी लिखा है कि खुरशेदजी पेशवा को बराबर समझाता रहता था कि बसई की सन्धि में अंगरेज़ों को कितना लाभ हुआ है और मराठा सत्ता को कितनी हानि हुई है। मई सन् १८१४ में गङ्गाधर ने एलफ़िन्सटन को खुरशेदजी की ओर से आगाह किया।

एलफ़िन्सटन ने सब से पहले खुरशेदजी जमशेदजी मोदी को अलग करके पेशवा और उसके दरबार के साथ स्वयं पत्र व्यवहार करना शुरू कर दिया। खुरशेदजी को अलग करने का एक कारण एलफ़िन्सटन ने यह लिखा है कि—"बाजीराव ने खुरशेदजी को अपने पक्ष में कर लिया था और खुरशेदजी पेशवा का सच्चा हितचिन्तक था।" खुरशेदजी का इस प्रकार अलग किया जाना पेशवा बाजीराव को भी बुरा मालूम हुआ। इसके बाद एलफ़िन्सटन के निजी पत्रों से साबित है कि बाजीराव और उसके मन्त्रियों के साथ एलफ़िन्सटन का व्यवहार दिन प्रतिदिन धृष्ट और अपमान जनक होता चला गया। खुरशेदजी अभी पूना में मौजूद था।

* *Bombay Gazetteer*, p. 219

एलफ़िन्सटन की नज़रों में वह अधिकाधिक खटकने लगा। एलफ़िन्सटन ने हुकुम दिया कि खुरशेदजी को दक्खिन से निकाल कर गुजरात भेज दिया जाय। निर्बल बाजीराव में इनकार करने का साहस न था। खुरशेदजी पूना छोड़ने के लिए तैयार हो गया। किन्तु ठीक जिस समय कि खुरशेदजी जमशेदजी मोदी पूना से रवाना होने वाला था, एक दिन अचानक उसे ज़हर देकर मार डाला गया।

अंगरेज़ों का कथन है कि खुरशेदजी ने या तो खुद ज़हर खा लिया या पेशवा ने उसे ज़हर दिलवा दिया। ये दोनों बातें इतनी लचर हैं कि किसी को उन पर एक क्षण के लिए भी विश्वास नहीं हो सकता। खुरशेदजी उस समय एलफ़िन्सटन के मार्ग में सब से बड़ा कांटा था। उसका गुजरात में रहना अंगरेज़ों और गङ्गाधर की योजनाओं के लिए उतना ही ख़तरनाक हो सकता था जितना पूना में। अधिक सम्भावना यही है कि एलफ़िन्सटन ने अपने किसी गुप्तचर से खुरशेदजी की हत्या करवा डाली।

पेशवा बाजीराव ने खुरशेदजी की सेवाओं के लिए उसे गुजरात में कुछ जागीर प्रदान की थी, जो आज तक खुरशेदजी जमशेदजी मोदी के वंशधरों के पास है।

गङ्गाधर शास्त्री की हत्या

ऊपर आ चुका है कि गङ्गाधर शास्त्री के पूना जाने के दो उद्देश थे। एक पेशवा और गायकवाड़ के पिछले हिसाब को साफ़ करना और दूसरा अहमदाबाद के इलाके का पट्टा फ़तहसिंह गायकवाड़ के नाम

नया करवाना। किन्तु पेशवा फ़तहसिंह गायकवाड़ के हाल के व्यवहार, उसके ऊपर अंगरेज़ों के अनुचित प्रभाव, और स्वयं अपने साथ कम्पनी के व्यवहार को देखते हुए फिर से अहमदाबाद का पट्टा गायकवाड़ को देना न चाहता था। पेशवा को पूर्ण अधिकार था कि अपने इलाक़े का पट्टा जिसके नाम चाहे जारी करे। पेशवा बाजीराव ने नया पट्टा अपने वफ़ादार मन्त्री त्र्यम्बक जी के नाम कर दिया।

जब अहमदाबाद का नया पट्टा गायकवाड़ के नाम जारी न हो सका तो गङ्गाधर ने बिना पिछले हिसाब का निबटारा किए बड़ोदा लौट जाना चाहा। एलफ़िन्सटन ने भी उसके तुरन्त बड़ोदा लौट जाने पर ज़ोर दिया। कारण यह था कि अंगरेज़ चाहते थे कि पेशवा और गायकवाड़ दरबारों में वैमनस्य बराबर जारी रहे। बाद में मालूम हुआ कि वे अहमदाबाद के इलाक़े का पट्टा भी कम्पनी के नाम करवाना चाहते थे। त्र्यम्बक जी और पेशवा बाजीराव दोनों समझ गए कि गङ्गाधर के इस प्रकार लौटने का परिणाम अच्छा नहीं। इन दोनों ने अब गङ्गाधर शास्त्री को पूना में रोकने और किसी प्रकार उसे अपनी ओर करने की पूरी कोशिश की।

बॉम्बे गज़ेटियर * में लिखा है कि त्र्यम्बक जी इस समय वास्तव में गङ्गाधर के साथ मेल चाहता था। पेशवा ने भी इसकी पूरी कोशिश की, किन्तु गङ्गाधर कम्पनी के हाथों में था। एल-

* *Bombay Gazetteer*, Baroda vol., p 222

फ़िन्सटन ने त्र्यम्बक जी और पेशवा के मेल के प्रयत्नों को सफल न होने दिया। पेशवा ने गङ्गाधर को अपना मन्त्री नियुक्त करना चाहा, किन्तु बॉम्बे गज़ेटियर में साफ़ लिखा है कि एलफ़िन्स्टन के ज़ोर देने पर गङ्गाधर ने पेशवा के इस प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद पेशवा ने यह तजवीज़ की कि गङ्गाधर के पुत्र के साथ पेशवा की साली का विवाह किया जाय। शास्त्री ने इस तजवीज़ को स्वीकार कर लिया। नासिक में विवाह के रचे जाने की तजवीज़ की गई। तैयारियाँ होने लगीं। किन्तु ठीक उस समय जब कि दोनों ओर से तैयारी हो चुकी थी, शास्त्री ने बिना कोई कारण बताए विवाह से इनकार कर दिया। इस इनकार का कारण एलफ़िन्स्टन था। गङ्गाधर की पत्नी इस समय पेशवा के महल में आने जाने लगी थी। एलफ़िन्स्टन ने शास्त्री पर ज़ोर देकर उसका आना जाना भी बन्द करवा दिया। इस सब का एकमात्र कारण यह था कि अंगरेज़ सरकार उस समय बड़ोदा और पूना दरबारों के बीच किसी तरह का मेल न चाहती थी। बड़ोदा गज़ेटियर में लिखा है :—

"यह बात बड़े महत्व की थी कि बड़ोदा और पूना दरबारों के बीच नए राजनैतिक सम्बन्ध पैदा करने के बाजीराव जितने भी प्रयत्न करे उन्हें सफल न होने दिया जाय।"*

इस पर भी मालूम होता है कि धीरे धीरे पेशवा दरबार को

* " . . . it was important to thwart every attempt of Baji Rao to create fresh political ties between the Courts of Baroda and Poona."—*Baroda Gazetteer*, p. 219

अपने प्रयत्नों में कुछ दरजे तक सफलता प्राप्त हुई। धन या वैभव के लोभ में आकर या सम्भव है किसी अधिक उच्च भाव से प्रेरित होकर गङ्गाधर शास्त्री अब त्रयम्बक जी, बाजीराव और फ़तहसिंह गायकवाड़ दोनों में मेल कराने के पक्ष में होगया। अहमदाबाद का पट्टा गायकवाड़ को नहीं मिल सका। फिर भी गङ्गाधर शास्त्री ने अब पिछले हिसाब का निबटारा पेशवा की इच्छा के अनुसार और ईमानदारी के साथ करना चाहा। बड़ोदा गज़ेटियर में लिखा है—

"शास्त्री ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि उन्तालीस लाख रुपए मय सूद के गायकवाड़ को पेशवा के देने निकलते हैं, और पेशवा की अन्य समस्त माँगों के बदले में, जिनमें कि पेशवा के अनुसार एक करोड़ रुपए बकाया और चालीस लाख रुपए ख़िराज के थे, शास्त्री ने यह तजवीज़ की कि गायकवाड़ सात लाख रुपए सालाना का इलाक़ा पेशवा को दे दे। साथ ही शास्त्री ने × × × रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन से यह प्रार्थना की कि आप बड़ोदा दरबार को राज़ी करने में मेरी मदद कीजिये।"*

गङ्गाधर ने हिसाब की एक नक़ल और अपनी तजवीज़ गायकवाड़ दरबार को भेज दी। फ़तहसिंह गायकवाड़ अंगरेज़ों के कहने में था। कई महीने तक बड़ोदा से कोई जवाब न आया। अन्त में फ़तहसिंह ने अंगरेज़ों के कहने में आकर अपने ही प्रतिनिधि गङ्गाधर शास्त्री की तजवीज़ को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। पेशवा और गङ्गाधर शास्त्री को निराशा हुई। किन्तु गङ्गाधर

* Ibid, p 221

के इस प्रकार बड़ौदा लौट जाने का परिणाम पेशवा और गायकवाड़ में वैमनस्य का बढ़ जाना होता। इसलिए गङ्गाधर पूना में ठहर कर मेल के प्रयत्न करता रहा। एलफ़िन्सटन उस पर बराबर बड़ौदा लौट जाने के लिये ज़ोर देता रहा। इस बीच एक दिन गङ्गाधर पेशवा के साथ पण्ढरपुर की यात्रा को गया। १४ जुलाई सन् १८१५ को अचानक कुछ अपरिचित लोगों ने आकर तीर्थस्थान पण्ढरपुर में गङ्गाधर को क़त्ल कर डाला।

एलफ़िन्सटन और उसके साथी अंगरेज़ों ने यह जाहिर किया कि बाजीराव के मन्त्री त्रयम्बक जी ने पेशवा की आज्ञा से गङ्गाधर को मरवा डाला।

शास्त्री की हत्या की ज़िम्मेदारी

पेशवा बाजीराव एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण था, जिसने बॉम्बे गज़ेटियर के अनुसार पूना के आस पास कई लाख आम के वृक्ष लगवाए थे। ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को वह ख़ूब धन और जागीरें दिया करता था। पण्ढरपुर में विठोबा के मन्दिर का वह विशेष भक्त था। उस समय भी वह पण्ढरपुर की यात्रा के लिए गया हुआ था। गङ्गाधर शास्त्री भी ब्राह्मण था। इस सब के अतिरिक्त इस हत्या से महीनों पहले गङ्गाधर शास्त्री, बाजीराव और त्रयम्बकजी तीनों में मेल हो चुका था। और यही मेल कम्पनी के प्रतिनिधियों की नज़रों में ख़ास तौर पर खटक रहा था। इस समस्त स्थिति मे गङ्गाधर की हत्या का इलजाम बाजीराव या त्रयम्बकजी पर लगाना सरासर अन्याय है। त्रयम्बकजी के चरित्र और समस्त

जीवन में भी कोई बात ऐसी नहीं मिलती जिससे उसे इस हत्या के लिये उत्तरदाता माना जा सके। वास्तव में गङ्गाधर उस समय एलफ़िन्सटन के हाथों से निकल चुका था, दक्खिन और गुजरात के अन्दर कम्पनी के काले कारनामों के अनेक रहस्य गङ्गाधर को मालूम थे। गङ्गाधर वर्षों उनका भेदी रह चुका था और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि एलफ़िन्सटन ने इस हत्या द्वारा अपने मार्ग से एक नए और ख़तरनाक कण्टक को दूर कर दिया।

शास्त्री की हत्या में अंगरेज़ों को लाभ

गङ्गाधर की मृत्यु से अंगरेज़ों को दुहरा लाभ हुआ। एक ओर पूना और बड़ौदा में मेल अब और अधिक कठिन होगया, और दूसरे पेशवा बाजीराव और उसके मन्त्री त्रयम्बकजी को गङ्गाधर की हत्या के लिए जिम्मेदार ठहरा कर एलफ़िन्सटन ने अब उन दोनों के विरुद्ध आन्दोलन करना शुरू कर दिया। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है—

"शास्त्री की हत्या से जो स्थिति पैदा हो गई उसमें हम एक ब्राह्मण राजदूत की हत्या का बदला लेने वाले बन बैठे, और पेशवा की प्रजा में भी सार्वजनिक राय पूरी तरह हमारे पक्ष में हो गई। लोगों पर यह हितकर असर इसके बाद भी जारी रहा, क्योंकि दो साल बाद जब प्रायः समस्त मराठा राज्यों से हमारा युद्ध छिड़ गया उस समय यह याद करके कि सारे झगड़े की जड़ एक ब्राह्मण की निरपराध हत्या थी, जनता की राय में अंगरेज़ों के पक्ष को बहुत बड़ा नैतिक बल प्राप्त हुआ। बाद में पेशवा कुल के पतन पर लोगों ने जो उदासीनता प्रकट की उसका भी बहुत दरजे

तक यही कारण था कि लोग इस पतन को पेशवा बाजीराव के इस पाप कर्म का दण्ड समझते थे × × ×।"*

कहा जाता है कि रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन ने तहक़ीक़ात करके यह नतीजा निकाला कि शास्त्री की हत्या करने वालों को त्र्यम्बकजी ने नियुक्त किया था। मालूम नहीं वह तहक़ीक़ात किस ढङ्ग की थी और अपराधी त्र्यम्बकजी को जवाबदेही का अवसर दिया गया या नहीं। थोड़ा सा धन ख़र्च करके एलफ़िन्सटन जैसे आदमी के लिए गवाह खड़े कर लेना कोई कठिन कार्य न था। स्वयं अंगरेज़ों के उस समय के लेखों से साबित है कि एलफ़िन्सटन की यह तहक़ीक़ात केवल एक ढकोसला थी।

त्र्यम्बक जी की गिरफ़्तारी

वास्तव में त्र्यम्बकजी भी अंगरेज़ों के मार्ग में एक काँटा था। वह एक योग्य और जागरूक मराठा नीतिज्ञ था। गुजरात का जो इलाक़ा पेशवा ने हाल में उसे दिया था वह कम्पनी की सरहद से मिला हुआ था और अंगरेज़ों के स्वयं उस इलाक़े पर दाँत थे। एलफ़िन्सटन के पत्रों में इधर से उधर तक भरा पड़ा है कि त्र्यम्बकजी अंगरेज़ों के विरुद्ध पेशवा को सदा सावधान करता रहता था। मराठों के साथ नया युद्ध छेड़ने से पहले किसी प्रकार उसे पूना से अलग कर देना आवश्यक था। एलफ़िन्सटन ने पेशवा पर ज़ोर दिया कि त्र्यम्बकजी को फ़ौरन् अंगरेज़ों के हवाले कर

* Prinsep's *History of the Political and Military Transactions*, vol i, p 321

दो। यदि त्रयम्बकजी दोषी भी होता तो भी एलफ़िन्सटन की यह माँग सर्वथा न्यायविरुद्ध थी। बाजीराव ने इनकार कर दिया। एलफ़िन्सटन अपनी ज़िद पर डटा रहा। यहाँ तक कि उसने पूना के नगर को अंगरेज़ी सेना से घेरने और उसका बाज़ाब्ता मुहासरा करने की धमकी दी। बाजीराव स्वभाव से भीरु था। कम्पनी की सबसीडीयरी सेना पूना में मौजूद थी। मजबूर होकर बाजी राव ने अपने प्रिय मन्त्री निरपराध त्रयम्बकजी को अंगरेज़ों के हवाले कर दिया और अंगरेज़ों ने त्रयम्बकजी को थाने के क़िले में क़ैद कर दिया। पेशवा बाजीराव भी इस समय अपनी ज़िल्लत और परवशता को अच्छी तरह अनुभव करने लगा।

बाजीराव पर हमले की गुप्त तैयारी

इसके बाद नैपाल युद्ध के अन्त और तीसरे मराठा युद्ध की विशाल तैयारियों का समय आया। अकारण ७ अप्रैल सन् १८१७ को लॉर्ड हेस्टिंग्स ने सेनापति सर ईवन नेपियन को लिखा कि—"पेशवा और अंगरेज़ों के बीच युद्ध होने वाला है, और आप पेशवा के गुजरात के हिस्से और कोकण के उत्तरी भाग पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए तैयार रहें।"*

बाजीराव को जब इन तैयारियों का सुराग़ मिला, उसने अप्रैल सन् १८१७ में एक दिन एलफ़िन्सटन को अपने यहाँ बुला कर बहुत देर तक कम्पनी की ओर अपनी सच्चाई और वफ़ादारी

* *Bombay Gazetteer*, Baroda vol p 225

साबित करने का प्रयत्न किया। किन्तु इसका कोई असर न हो सका। अंगरेज़ अब बाजीराव को बहुत ही सरल चारा समझ रहे थे और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे।

पेशवा दरबार में गुप्त उपाय

अपने पुराने स्वभाव के अनुसार एलफ़िन्सटन ने अब पूना के अन्दर पेशवा बाजीराव के विरुद्ध "गुप्त उपाय" शुरू किए। इन गुप्त उपायों के सम्बन्ध में दो मराठा देशद्रोहियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने एलफ़िन्सटन को पेशवा राज का अन्त करने में सब से अधिक मदद दी। इनमें पहला बालाजी पन्त नातू था।

दो देशद्रोही

बालाजी शुरू में सतारा ज़िले में किसी साधारण घराने में पाँच या छै रुपए माहवार का नौकर था। सन् १८०३ में उसने पूना आकर रेज़िडेण्ट के यहाँ नौकरी कर ली। बढ़ते बढ़ते वह एलफ़िन्सटन का सब से पक्का जासूस बन गया। पेशवा के सारे कामों की वह एलफ़िन्सटन को खबर देता रहता था। वह एक अत्यन्त नीच प्रकृति का चालबाज़ मनुष्य था। कुछ समय बाद सतारा के पदच्युत राजा के वकील रङ्गोबापूजी ने बालाजी के नीच कृत्यों को संसार के सामने प्रकट किया, जिन्हें पढ़ कर कोई भी भारतवासी बालाजी से घृणा अनुभव किए बिना नहीं रह सकता। पेशवा के पतन के बाद एलफ़िन्सटन ने ५ सितम्बर सन् १८१८ को गवरनर जनरल के नाम बालाजी की सेवाओं को खूब तारीफ़ की और उसे एक जागीर और पेनशन दिए जाने की सिफ़ारिश की। गवरनर

जनरल ने एलफ़िन्सटन की सिफ़ारिश को ख़ुशी से मंज़ूर कर लिया।

एलफ़िन्सटन के दूसरे विश्वस्त मित्र का नाम यशवन्तराव घोरपड़े था। पेशवा के विरुद्ध झूठी सच्ची शहादतें जमा करने में यशवन्तराव ने एलफ़िन्सटन को बहुत बड़ी सहायता दी।

बाजीराव के साथ ज़बरदस्ती

एलफ़िन्सटन अब पेशवा के साथ युद्ध का कोई बहाना ढूँढ़ रहा था। एलफ़िन्सटन ने अपने ६ अप्रैल सन् १८१७ के रोज़नामचे में साफ़ लिखा है—"मैं समझता हूँ, पेशवा के साथ कोई झगड़ा हो जाना बड़ा अच्छा है।"*

कहा गया कि त्रयम्बकजी थाने के क़िले से भाग कर फिर पेशवा के इलाके में छिपा हुआ है। एलफ़िन्सटन ने कम्पनी की ओर से पेशवा बाजीराव के सामने यह माँग पेश की कि एक महीने के भीतर त्रयम्बकजी अंगरेज़ों के हवाले कर दिया जाय और इस बीच बतौर ज़मानत पेशवा के तीन क़िले सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ फ़ौरन् कम्पनी के सुपुर्द कर दिए जायँ।

किन्तु इस बार भी एलफ़िन्सटन और लॉर्ड हेस्टिंग्स की वास्तविक इच्छा पूरी न हुई। एलफ़िन्सटन दूसरी बार अंगरेज़ी सेना से पूना के नगर को घेरने वाला ही था जब कि ८ मई सन् १८१७ को कायर बाजीराव ने, जो युद्ध के लिए बिलकुल तैयार

* "I think a quarrel with the Peshwa desirable."—Elphinston's *Diary* 6th April, 1817

म था, सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ तीनों क़िले कम्पनी के नाम लिख दिए और अपने क़िलेदारों के नाम आज्ञा पत्र जारी कर दिए। पेशवा बाजीराव के साथ अंगरेज़ों की इससे आगे की काररवाइयों को बयान करने से पहले हम इस स्थान पर त्र्यम्बकजी का शेष जीवन वृत्तान्त दो चार शब्दों में दे देना चाहते हैं।

त्र्यम्बक जी का अन्त

या तो त्र्यम्बकजी के थाने से भागने का सारा क़िस्सा ही झूठा था और या वह सन् १८१८ में फिर गिरफ़्तार कर लिया गया था। इस बार वह बनारस के निकट चुनार के क़िले में रक्खा गया। अनेक यूरोपियन यात्री वहाँ समय समय पर उससे मिलने के लिए आए। इनमें पादरी (विशप) हीवर सन् १८२४ में त्र्यम्बकजी से मिला। विशप हीवर ने लिखा है कि—

"त्र्यम्बकजी बड़ी सख़्ती के साथ क़ैद था। उस पर एक यूरोपियन और एक हिन्दोस्तानी गारद रहती थी, उसे सन्तरियों की आँखों से कभी ओझल होने न दिया जाता था। उसके सोने के कमरे में भी तीन खिड़कियाँ थीं, जो बरामदे की तरफ़ खुलती थीं और जिनमें लोहे के सीख़चे लगे हुए थे। इस बरामदे ही मे गारद मौजूद रहती थी। × × ×"

एक दूसरा यात्री मेजर आर्चर, जो १६ फ़रवरी सन् १८२६ को त्र्यम्बकजी से मिलने गया, लिखता है कि—

"त्र्यम्बकजी सन् १८१८ से लगातार क़ैद है, किन्तु उसके क़ैद की मियाद उसके महान शत्रु-काल ने क़रीब क़रीब नियत कर दी है। उसका इलाज करने वाले वैद्य कहते हैं कि वह चन्द महीने से अधिक नहीं जी



चुनार का क़िला

जिसमें त्र्यम्बक जी डेंगलिया क़ैद रह कर घुल घुल कर मर गया

सकता। जब हम लोग मिलने गए तो उसका जिगर इतना बढ़ा हुआ था कि क़रीब आधी डबलरोटी के बराबर उसके पेट से एक ओर को निकला हुआ दिखाई देता था। वह बहुत दुर्बल हो गया था और सचमुच उसे देखकर दया आती थी। उसने यह प्रार्थना की कि मुझे मरने के लिए काशी जाने दिया जाय। किन्तु किसी ने इस प्रार्थना पर ध्यान न दिया × × ×।"

त्रयम्बकजी अनपढ़ था, फिर भी वह एक दूरदर्शी नीतिज्ञ और मराठा सत्ता का सच्चा हितचिन्तक था। उसका अपराध केवल यह था कि वह अपने स्वामी पेशवा बाजीराव का जीवन भर वफ़ादार रहा और एलफ़िन्सटन जैसों की चालों की ओर से बाजीराव को सावधान करता रहा। इस अपराध के दण्ड में उसे अपमान और कष्टों के साथ चुनार के क़िले के एक कोने में वर्षों सड़ सड़ कर प्राण देने पड़े और अन्त में उसकी यह अन्तिम इच्छा भी कि मेरी काशी में मृत्यु हो, पूरी न होने दी गई।

बाजीराव से छेड़छाड़

सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ के क़िले कम्पनी को मिल चुके थे। फिर भी बाजीराव से कम्पनी की माँगें भेड़िये और मेमने की सुप्रसिद्ध आख्यायिका में, भेड़िए की माँगों के समान हर क्षण बढ़ती और बदलती चली गईं।

सिंहगढ़ आदि पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हुए एक महीना भी न बीता था कि दो वर्ष पूर्व की गंगाधर शास्त्री की मृत्यु के मामले को फिर से उखाड़ा गया। उस समय केवल त्रयम्बकजी को इस हत्या के लिए दोषी ठहराया गया था। किन्तु अब पेशवा बाजीराव को

भी उसके लिए ज़िम्मेदार बताया गया, और इस कल्पित अपराध के बदले में पेशवा के अधिकांश उर्वर प्रान्त, जिनमें पेशवा का गुजरात का इलाक़ा भी शामिल था, पेशवा से तलब किए गए।

यह इलाक़ा गायकवाड़ को देने के लिए या गंगाधर के कुटुम्बियों को देने के लिए नहीं माँगा गया, वरन् अंगरेज़ कम्पनी बहादुर के लिए। किसी प्रकार पूना में पेशवा को घेर लिया गया और संगीनों के बल १३ जून सन् १८१७ को कातर बाजीराव से एक नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त करा लिए गए। इस सन्धि पत्र के अनुसार पेशवा ने अपना गुजरात का पूरा प्रान्त जिस पर अंगरेज़ों की वर्षों से नज़र थी, कम्पनी के हवाले कर दिया।

कहा जाता है कि इस अवसर पर बाजीराव ने यह भी स्वीकार कर लिया कि गंगाधर शास्त्री की हत्या में मेरा हाथ था।

संगीनों या कूटनीति के बल इस प्रकार किसी से अपराध स्वीकार करा लेना कम्पनी के भारतीय इतिहास में कोई अपूर्व बात नहीं थी। शिवाजी के वंशज सतारा के राजा प्रतापसिंह पर जब यह दोष लगाया गया कि तुम अंगरेज़ों के विरुद्ध साज़िश कर रहे हो, तो उससे यह साफ़ कहा गया था कि यदि तुम यह लिख कर दे दो कि तुम वास्तव में इस अपराध के दोषी हो तो तुम्हें तुम्हारी गद्दी पर बहाल रक्खा जायगा। मेजर वामनदास बसु ने अपनी पुस्तक "दी स्टोरी ऑफ़ सतारा" में दिखलाया है कि राजा प्रतापसिंह ने अपनी गद्दी से हाथ धो लिए, किन्तु इस झूठे स्वीकृति पत्र पर दस्तख़त करना स्वीकार न किया। भेद केवल यह था कि

बाजीराव में प्रतापसिंह जैसी आन की कमी थी। फिर भी एक बात ध्यान देने योग्य इस सम्बन्ध में यह है कि बाजीराव ने अंगरेज़ों के कहने में आकर या डर कर अपने आपको दोषी स्वीकार कर लिया, प्रतापसिंह ने झूठा दोष स्वीकार न किया फिर भी परिणाम दोनों का एक ही हुआ। प्रतापसिंह और बाजीराव दोनों को अपनी अपनी गद्दियाँ छोड़ कर कम्पनी की क़ैद में प्राण देने पड़े।

पूना की सन्धि के बाद

पेशवा बाजीराव अब बहुत घबरा गया। १३ जून की सन्धि के बाद ही वह पूना छोड़ कर पण्ढरपुर चला गया। वहाँ से वह सतारा के निकट माहुली नामक तीर्थ पहुँचा जहाँ कि कृष्णा और यमुना नदियों का संगम है। यहाँ उसने सर जॉन मैलकम को मिलने के लिए बुलाया। बाजीराव ने मैलकम से साफ़ कहा कि संगीनों के बल मुझसे पूना की सन्धि पर दस्तख़त कराए गए हैं, और वह सन्धि मेरे लिए कितनी हानिकर है। बाजीराव ने इस अवसर पर मैलकम से एलफ़िन्सटन की जो जो शिकायतें कीं उनमें से यह भी थी कि एलफ़िन्सटन के जासूस ऐसी बुरी तरह से मेरी देख रेख करते हैं कि एलफ़िन्सटन को यहाँ तक पता होता है कि मैंने किस दिन क्या क्या खाना खाया।* साथ ही बाजीराव ने अपने और कम्पनी के बीच फिर से सच्ची मित्रता क़ायम करने की अभिलाषा प्रकट की। सर जॉन मैलकम ने इलाज के तौर पर बाजीराव को यह सलाह दी कि आप एक सेना जमा करके पिण्डारियों के दमन में अंगरेज़ों

* Memorandum of Lieut. General Briggs

को सहायता देने के लिए भेजिए। भोले बाजीराव ने पूना लौट कर मैलकम की सलाह के अनुसार अंगरेज़ों की मदद के लिए सेना जमा करनी शुरू कर दी।

एक ओर मैलकम ने बाजीराव को सेना जमा करने की सलाह दी, दूसरी ओर एलफ़िन्सटन ने इसी सेना के आधार पर गवरनर जनरल को यह लिखना शुरू कर दिया कि बाजीराव अंगरेज़ों पर हमला करने की तैयारी कर रहा है! एलफ़िन्सटन ने गवरनर जनरल को यह भी लिखा कि बाजीराव के मुक़ाबले के लिए कम्पनी की और अधिक सेना फ़ौरन् पूना भेजी जाय। यह बात ध्यान देने योग्य है कि एलफ़िन्सटन ने एक बार भी बाजीराव से यह नहीं पूछा कि आप यह सेना क्यों जमा कर रहे हैं, और न उसके सेना जमा करने पर कोई एतराज़ किया।

३० अक्तूबर सन् १८१७ की शाम को जनरल स्मिथ और करनल बर के अधीन एक पूरी अंगरेज़ी पलटन ने अचानक पूना की छावनी में प्रवेश किया। एलफ़िन्सटन ने फ़ौरन् शहर से चार मील की दूरी पर एक ऊँची जगह इस सारी सेना को खड़ा कर दिया। मराठे अच्छी तरह समझ गए कि अंगरेज़ लड़ने पर कटिबद्ध हैं।

खड़की का संग्राम

५ नवम्बर सन् १८१७ को पूना के निकट खड़की नामक स्थान पर अंगरेज़ों और पेशवा की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। बापू गोखले पेशवा की सेना का प्रधान सेनापति था। अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने सेनापति गोखले के युद्ध कौशल और मराठा सेना की वीरता की

मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। गोखले के विषय में एक विद्वान अंगरेज़, जो स्वयं खड़की की लड़ाई में मौजूद था, लिखता है—"गोखले के भावों का आदर न करना असम्भव है। × × × इतिहास की देवी अपने देश के लिए सच्ची भक्ति और सेवा का सेहरा गोखले के सर बाँधेगी।"*

बापू गोखले

किन्तु गोखले की देशभक्ति, उसके युद्ध कौशल या उसकी वीरता किसी से भी काम न चल सका। बाला जी पन्त नातू और यशवन्तराव घोरपड़े जैसों के प्रताप से पेशवा की सेना अनेक विश्वासघातकों से छलनी छलनी हो चुकी थी। ये लोग न केवल पद पद पर अपने यहाँ की खबरें ही अंगरेज़ों को पहुँचाते रहते थे, वरन् गोखले के प्रयत्नों को असफल करने की भी अपनी शक्ति भर कोशिश कर रहे थे। जनरल स्मिथ की सेना पहले मैदान में पहुँची। करनल बर की सेना इसके कुछ बाद आकर मिली। गोखले की इच्छा थी कि करनल बर की सेना के आने से पहले ही जनरल स्मिथ की सेना पर हमला कर दिया जाय। किन्तु उसके कुछ नमकहराम साथियों ने उसकी इस इच्छा को पूरा न होने दिया। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त अंगरेज़ लिखता है कि—"× × × गोखले की फ़ौजें ऐन मौके पर उसका साथ छोड़ कर चल दीं।"†

---

* "It is impossible not to respect the spirit of Gokhale . . . the Muse of history will encircle his name with a laurel for fidelity and devotion in his country's cause."—*Fifteen Years in India, etc*, pp 304, 505

† ". . . his troops . . . deserted him in the hour of trial."—Ibid, p 492

परिणाम यह हुआ कि खड़की के संग्राम में अंगरेज़ों की विजय रही; और पेशवा बाजीराव को बापू गोखले और कुछ सेना सहित मैदान से हट जाना पड़ा। इसके बाद पेशवा और कम्पनी की सेनाओं में कई और छोटे छोटे संग्राम हुए जिनमें विजय कभी इस ओर और कभी उस ओर रही। इन्हीं में से एक संग्राम में बापू गोखले वीरगति को प्राप्त हुआ, जिससे पेशवा बाजीराव का साहस और भी टूट गया।

सतारा दरबार की ग़लती

दूसरी ओर एलफ़िन्सटन जानता था कि महाराष्ट्र देश में अंगरेज़ इस समय काफ़ी बदनाम हैं। सम्भव था कि मराठे इस प्रकार चुपचाप पेशवाई का अन्त न देख सकते और चारों ओर से आ आकर बाजीराव के झण्डे के नीचे जमा हो जाते। इस आपत्ति से बचने के लिए एलफ़िन्सटन ने देशद्रोही बालाजी पन्त नातू द्वारा उस समय के सतारा के राजा के साथ साज़िश शुरू की। पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों से पता चलता है कि सतारा के राजा से यह झूठा वादा किया गया कि इस युद्ध के बाद पेशवा के सारे अधिकार और मराठा साम्राज्य की बाग आपके हाथों में दे दी जायगी।* पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों से यह भी मालूम होता है कि सतारा के राजा के साथ अंगरेज़ों की साज़िशें कम से कम गंगाधर शास्त्री के समय से जारी थीं। सतारा के दरबार में भी ऐसे आदमियों की कमी न थी जो धन के बदले में अंगरेज़ों के इस षड्यन्त्र में शामिल

---

* *The Story of Satara*, by Major B D Basu



सेनापति बापू गोखले
[चित्रशाला प्रेस, पूना की कृपा द्वारा]



होने को तैयार थे। सतारा का राजा प्रतापसिंह इस समय नाबालिग़ था। अन्त में एलफ़िन्सटन और बालाजी पन्त नातू की चालों मे आकर नाबालिग़ प्रतापसिंह की माँ ने शिवाजी के वंशज और मराठा साम्राज्य के वास्तविक अधिराज सतारा के राजा की ओर से समस्त महाराष्ट्र प्रजा के नाम यह एलान प्रकाशित कर दिया कि पेशवा बाजीराव के साथ कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खे और इस संग्राम में सब अंगरेज़ों को मदद दें। निस्सन्देह सतारा दरबार की इस ग़लती ने पेशवा बाजीराव के हाथ पैर तोड़ दिए।

पेशवा राज का अन्त

बाजीराव ने विवश होकर जून सन् १८१८ में सर जॉन मैलकम से सुलह की बात चीत की। उस समय भी बाजीराव के पास क़रीब ६,००० सवार और ५,००० पैदल सेना मौजूद थी; और असीरगढ़ का क़िला अभी तक उसके पास था। अन्त मे सर जॉन मैलकम ने गवरनर जनरल की आज्ञानुसार बाजीराव को आठ लाख रुपए सालाना की पेनशन देकर कानपुर के निकट गंगा के किनारे बिठूर नामक स्थान में भेज दिया। पेशवा के इलाक़े मे से एक छोटी सी फाँक बतौर जागीर के सतारा के राजा को दे दी गई, और शेष समस्त इलाक़ा कम्पनी के राज में मिला लिया गया, जो आज कल के बम्बई प्रान्त में शामिल है। इस प्रकार पेशवा राज का अन्त हुआ, और अन्तिम पेशवा बाजीराव का ३२ वर्ष पदच्युत रहने के बाद सन् १८५० में ७५ वर्ष की आयु में देहान्त हुआ। सन् १८५७

के विप्लव का सुप्रसिद्ध नेता नाना साहब धुन्धु पन्त बाजीराव का दत्तक पुत्र था।

आठ लाख रुपए सालाना की पेनशन का कारण बताते हुए सर जॉन मैलकम ने गवरनर जनरल के नाम जो पत्र लिखा उसका सार इस प्रकार है—

"मैं राजा से लेकर रङ्क तक इस देश के सब लोगों के भावों से भली भाँति परिचित हूँ, इसलिए मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि अंगरेज़ सरकार का यश और उसकी कुशल दोनों इसी में हैं कि बाजीराव को क़ैद करने या मार डालने के बजाय रज़ामन्दी से उससे पदत्याग करवा कर पेनशन देकर कहीं भेज दिया जाय। यदि उसे मार डाला गया तो लोगों को उस पर दया आएगी, कुछ की आकांक्षाएँ जागेंगी और विदेशी शासन से असन्तुष्ट लोग कभी भी किसी भी नए हकदार के झण्डे के नीचे जमा हो जायँगे। यदि बाजीराव को क़ैद कर लिया गया तो भी लोगों की सहानुभूति उसके साथ रहेगी और मराठों के दिलों में एक न एक दिन बाजीराव के भाग निकलने और फिर से अपने देश को आज़ाद करने की आशा बनी रहेगी। किन्तु यदि बाजीराव अपनी सेना को बरख़ास्त करके स्वयं पद त्याग कर दे तो लोगों पर हमारे हित में बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"*

बाजीराव के शासन में पूना की अवस्था

अन्तिम पेशवा बाजीराव के समय में पूना की जन संख्या क़रीब ८ लाख यानी इस समय से चौगुनी थी। उस समय के पूना निवासियों की ख़ुशहाली के विषय में एक अंगरेज़ यात्री लिखता है—

---

* Kaye's *Life of Malcolm*, vol ii p 24

"जब मैं दक्खिन गया तो मैं यह देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और चकित रह गया कि पूना का शहर इतना ख़ुशहाल है। हाल में जो बरबादी, लूट और अकाल वहाँ हो चुके थे उनके कारण उस समय को यह ख़ुशहाली और भी आश्चर्यजनक मालूम होती थी। सभी मुख्य मुख्य गलियों और बाज़ारों में इस तरह के लोग भरे हुए थे जिनकी पोशाक और जिनकी शकल से यह मालूम होता था कि जितना आराम, जितना सुख, जितना व्यापार और जितनी दस्तकारियाँ उनके यहाँ हैं उससे अधिक हमारे (यूरोप के) किसी भी बड़े से बड़े व्यापारिक नगर में नहीं हैं। चारों ओर सर्वव्यापी ख़ुशहाली और बहुतायत का हँसता हुआ दृश्य दिखाई देता था। जब मैंने रेज़िडेण्ट से इसका ज़िक्र किया तो उसने मुझे इत्तला दी कि जब से पेशवा पूना लौट कर आया है उसने पूना की समृद्धि को बढ़ाने के उद्देश से पूना और उसके आस पास के प्रदेश में हर प्रकार के टैक्स माफ़ कर दिए हैं; और इसलिए ताकि पेशवा के अज्ञान में भी कोई राजकर्मचारी प्रजा के साथ ज़बरदस्ती न कर सके, उसने कोतवाल का पद तक उड़ा दिया है।"*

---

* "On a late excursion into the Deccan I was exceedingly pleased and surprised to observe the great appearance of prosperity which the city of Poonah exhibited, and which was the more remarkable after the scenes of desolation, plunder and famine, it had been so lately subjected to, all the principal streets and bazars were crowded with people, whose dress and general appearance displayed symptoms of comfort and happiness, of business and industry, not to be exceeded in any of our own great commercial towns. The whole, indeed, was a smiling scene of general welfare and abundance On noticing this to the Resident, he informed me that the Peshwa, since his return, with a view of promoting the prosperity of Poonah, had exempted

सींधिया से राजपूताना छीना जा चुका था, पेशवा की गद्दी समाप्त हो चुकी थी, गायकवाड़ अरसे से अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ही चुका था, अब केवल दो और मराठा राज बाक़ी थे, नागपुर का भोंसले राज और इन्दौर का होलकर राज।

भोंसला राज और अंगरेज़

नागपुर का राजा आम तौर पर बरार का राजा कहलाता था, किन्तु बरार का सूबा दूसरे मराठा युद्ध के बाद अंगरेज़ों ने मराठों से छीन कर निज़ाम को दे दिया था। नागपुर का नगर भोंसले राज की राजधानी था। इसलिए इसके बाद से भोंसले कुल के राजाओं को नागपुर के राजा कहना अधिक उचित है।

दूसरे मराठा युद्ध के समय राघोजी भोंसले नागपुर का राजा था। युद्ध के बाद वही एलफ़िन्सटन, जो बाद में पूना का रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ, चार वर्ष नागपुर का रेज़िडेण्ट रहा। एलफ़िन्सटन ने अगणित बार ही राघोजी भोंसले को यह समझाने का प्रयत्न किया कि आपको कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर लेनी चाहिए, किन्तु राघोजी ने जीते जी कम्पनी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न किया।

नागपुर में एलफ़िन्सटन के कारनामे उसके नाम जनरल

---

it and the surrounding country from every description of tax, and to prevent the possibility of exactions unknown to himself, had even abolished the office of Cutwal "—R Richards, 23rd July, 1801, quoted by William Digby in his *Prosperous British India—A Revelation*, page 450.

वेल्सली के केवल दो पत्रों से ज़ाहिर हो सकते हैं। जनरल वेल्सली ने एक बार एलफ़िन्स्टन के उत्तर में उसे लिखा :—

नागपुर में रेज़िडेण्ट के गुप्त कार्य

"आपके ६ तारीख़ के पत्र के उत्तर में मेरी प्रार्थना है कि ख़बरें हासिल करने के लिए आपको जो कुछ भी करना पड़ जाय, कीजियेगा। अगर आप यह समझें कि जयकिशन राम आपको ख़बरें ला लाकर देगा या दूसरों से मँगवा देगा, तो आप गवरनर जनरल से उसकी सिफ़ारिश करने का वादा कर लें, और गवरनर जनरल को इस विषय की इत्तला दे दें।"*

एक दूसरे पत्र में जनरल वेल्सली ने एलफ़िन्स्टन को लिखा :—

"रामचन्द्र राव ने जाने से पहले हमारा काम करने का वादा किया। मैं आपसे उसकी सिफारिश करता हूँ। वह शख़्स चलता पुरज़ा मालूम होता है, और इसमें सन्देह नहीं कि राजा अपनी ओर से अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलों की बातचीत उसकी मारफ़त कर चुका है। मैंने गवरनर जनरल से सिफ़ारिश की है कि उसे ६,००० रुपए सालाना पेन्शन दी जाय। मैं समझता हूँ, उससे आपको बड़ी काम की ख़बरें मिलेंगी।"†

---

* "In answer to your letter of the 6th, I beg you will do whatever you think necessary to procure intelligence If you think that Jaykishen Ram will procure it for you or give it to you, promise to recommend him to the Governor-General, and write to His Excellency on the subject"—Colebrooke's *Life of the Duke of Wellington*, vol 1, p 113

† "Before Ram Chandra went away he offered his services I recommend him to you He appears a shrewd fellow, and he has certainly been employed by the Raja in his most important negotiations I have recommended him to the Governor-General for a pension of 6,000 Rupees a year I think he will give you useful intelligence"—Ibid.

कम्पनी के रेज़िडेण्ट

लॉर्ड हेस्टिंग्स अपने पहली फ़रवरी सन् १८१४ के रोज़नामचे में उस समय के अंगरेज़ रेज़िडेण्टों के कर्तव्यों को बयान करते हुए लिखता है :—

"देशी नरेशों के साथ सन्धियाँ करते समय हम उन्हें स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लेते हैं। फिर हम उनके दरबारों में अपने रेज़िडेण्ट भेजते हैं। ये रेज़िडेण्ट बजाय केवल राजदूत का कार्य करने के दरबार के ऊपर अपना ही अनन्य अधिकार जमा लेते हैं; वहाँ के नरेश के सारे निजी कारबार में दख़ल देने लगते हैं; प्रजा के विद्रोही लोगों को राज के विरुद्ध भड़काते हैं, और अपने अधिकार का बड़े ज़ोरों के साथ प्रदर्शन करते हैं। अंगरेज़ सरकार की सहायता पाने के लिए ये रेज़िडेण्ट कोई न कोई नया झगड़ा (या गद्दी का नया अधिकारी) खड़ा कर लेते हैं। और उस पर इस तरह का रङ्ग चढ़ाते हैं कि अंगरेज़ सरकार पूरे बल से उस मामले को अपने हाथ में ले लेती है; न केवल उस एक बात पर ही, बल्कि रेज़िडेण्ट के समस्त व्यवहार पर अपने रेज़िडेण्ट की हर बात का अंगरेज़ सरकार पूरी तरह पक्ष लेती है।"*

---

* "In our treaties with them we recognise them as independent sovereigns Then we send a Resident to their courts Instead of acting in the character of ambassador, he assumes the functions of a dictator, interferes in all their private concerns countenances refractory subjects against them, and makes the most ostentatious exhibition of this exercise of authority To secure to himself the support of our Government, he urges some interest which, under the color thrown upon it by him is strenuously taken up by our Council, and the Government identifies itself with the Resident not only on the single point but on the whole tenor of his conduct"
—*Private Journal of the Marquess of Hastings,* February 1st, 1814, Panini Office *reprint*



एलफ़िन्सटन का मुख्य कार्य नागपुर में राजा के आदमियों को रिशवतें देकर अपनी ओर तोड़ना, साज़िशें करना और झूठी ख़बरें व गवाहियाँ तैयार कराना था। फिर भी राजा राघोजी के जीते जी कम्पनी को नागपुर में अधिक सफलता न मिल सकी।

अप्रैल सन् १८१६ में राघोजी की मृत्यु हुई। एलफ़िन्सटन की जगह उस समय जेनकिन्स रेज़िडेण्ट था।

राघोजी की मृत्यु

राघोजी के एक पुत्र था जिसका नाम पुरुषाजी था और जिसे बाला साहब भी कहते थे। बाला साहब का दिमाग़ कुछ कमज़ोर था और कहा जाता है कि शासनकार्य चला सकने के अयोग्य था। राघोजी के अप्पा साहब नामक एक भतीजा था जो बहुत होशियार था। अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने अप्पा साहब को बहका कर उसे अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया।

राघोजी भी इस बात को थोड़ा बहुत समझता था। एक बार अप्पा साहब की कुछ निजी जागीर के विषय में राघोजी और अप्पा साहब में कुछ मतभेद हुआ। कम्पनी को इस मामले में दख़ल देने का कोई अधिकार न था। फिर भी रेज़िडेण्ट ने अप्पा साहब के पक्ष में राघोजी पर दबाव डाला और राघोजी को रेज़िडेण्ट की इच्छा के अनुसार उस मामले का निबटारा कर देना पड़ा। राघोजी इन सब बातों को देख रहा था। अपना अन्त समय निकट आने पर अपने इकलौते बेटे बाला साहब और भतीजे अप्पा साहब दोनों को उसने अपने पास बुलाया और बाला साहब का हाथ अप्पा साहब के हाथ में देकर गम्भीर किन्तु करुण स्वर में अप्पा

साहब से कहा—"इस कुल की और इस राज की इज़्ज़त अब तुम्हारे हाथों में है।"

राघोजी के मरते ही बाला साहब नागपुर की गद्दी पर बैठा, और अप्पा साहब बाला साहब की ओर से राज का समस्त कारबार चलाने लगा। रेज़िडेण्ट जेनकिन्स ने अंगरेज़ सरकार की ओर से दरबार में जाकर बाला साहब और अप्पा साहब दोनों को बधाई दी।

राजा बाला साहब

राघोजी की मृत्यु से अंगरेजों को बड़ी खुशी हुई। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है—

"इस दरबार में जो साज़िशें जारी थीं और जो घटनाएँ उस समय हो रही थीं उनसे यह आशा की जाती थी कि नागपुर राज के साथ सबसीडीयरी सन्धि करने के लिये जिस अवसर की इतने दिनों से प्रतीक्षा थी, वह अब आ पहुँचा।"*

राघोजी की मृत्यु का समाचार पाते ही हेस्टिंग्स ने जेनकिन्स को लिखा कि तुम जिस तरह भी हो सके, अप्पा साहब को सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसाने की कोशिश करो। इस समय नागपुर के दरबार में जो साज़िशें जारी थीं उन्हें प्रिन्सेप ने अपने इतिहास में विस्तार के साथ लिखा है। हमें इन साजिशों के गोरखधन्धे में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इन साज़िशों में ही २४ अप्रैल सन् १८१६

आधी रात की सन्धि

* "The intrigues and passing occurrences of that court likewise promised equally to give the long sought opportunity of establishing a subsidiary connection with the Nagpur State."—*History of Political and Military Transactions in India*, by Prinsep

को ठीक आधी रात के समय किसी प्रकार अप्पा साहब को घेर कर और डरा कर उससे असहाय राजा परसाजी भोंसले की ओर से सबसीडीयरी सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिए गए। अप्पा साहब की आयु उस समय केवल २० वर्ष की थी। प्रिन्सेप ने अपनी पुस्तक के दस पृष्ठों में बयान किया है कि यह घोर अत्याचार रात्रि के अन्धकार में किस प्रकार किया गया। इस पाप कर्म में अंगरेज़ों के मुख्य सहायक अप्पा साहब के दो मन्त्री नागू पण्डित और नारायण पण्डित थे। इस नई सन्धि से अप्पा साहब ने भोंसले राज की अधिकांश सेना को बरख़ास्त करके कम्पनी की सेना को उसकी जगह रख लेना स्वीकार कर लिया और उसके ख़र्च के लिये २० लाख से ३० लाख तक सालाना देने का वादा किया।

जब इस सन्धि की सूचना हेस्टिंग्स के पास पहुँची तो उसने बड़े हर्ष के साथ अपने निजी रोज़नामचे में दर्ज किया—

"१ जून सन् १८१६—आज मेरे पास वह सन्धि पत्र पहुँचा है जिसके द्वारा नागपुर वास्तव में हमारे संरक्षण में कम्पनी की एक सामन्त रियासत बन गया। पिछले राजा राघोजी भोंसले की अकस्मात मृत्यु के कारण वहाँ के दरबार में इस तरह के अपूर्व आपसी झगड़े खड़े हो गए कि जिनसे मुझे वह कार्य पूरा करने का मौक़ा मिल गया जिसके लिये हम पिछले बारह वर्ष से निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। यद्यपि चतुराई से काम लेना पड़ा है और धन द्वारा अनेक बाधाएँ दूर की गई हैं, फिर भी मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी सन्धि के असूल अत्यन्त पवित्र हैं × × ×।"*

* 'June 1st (1816) This day has brought to me the treaty of

अप्पा साहब को लोभ

इसी तारीख़ के रोज़नामचे में हेस्टिंग्स ने विस्तार के साथ लिखा है कि अप्पा साहब के विरुद्ध महल के अन्दर किस प्रकार एक दल खड़ा किया गया, किस प्रकार उसे यह लोभ दिया गया कि चूंकि बाला साहब के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये यदि तुम अंगरेज़ों का कहना मान लोगे तो अंगरेज़ बाला साहब को कोई पुत्र गोद न लेने देंगे और अन्त में नागपुर की गद्दी तुम्हें दिलवा देंगे, किस प्रकार अप्पा साहब को राज के भीतर से और बाहर से तरह तरह के झूठे डर दिखाए गए, इत्यादि।

नागपुर में दो दल

अंगरेज़ों ही के पत्रों से यह भी ज़ाहिर होता है कि नागपुर के महल में उस समय दो दल थे। पुरुषाजी और उसके पक्ष के लोग भोंसले, सींधिया और पेशवा में सच्चा मेल क़ायम करना चाहते थे। अंगरेज़ अप्पा साहब को सामने करके उसे बाला साहब सींधिया और पेशवा तीनों की ओर से बहका रहे थे और इस नए दल द्वारा उस मेल को रोकने के प्रयत्नों में लगे हुए थे।

---

alliance by which Nagpur in fact ranges itself as a feudatory state under our protection A singular contention of personal interests at the court of that country, resulting from the unexpected death of Raghuji Bhonsla, the late Raja, has enabled me to effect that which has been fruitlessly laboured at for the last twelve years Though dexterity has been *requisite*, and money has removed obstructions, I can affirm, that the *principles* of my engagement are of the purest nature "—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, pp 254, et seq

जो नई सबसीडीयरी सन्धि कम्पनी और अप्पा साहब के बीच हुई उसके अनुसार अप्पा साहब ने भोंसले राज की ओर से बीस लाख से लेकर तीस लाख रुपए सालाना तक कम्पनी को देने का वादा किया; किन्तु राज की कुल वार्षिक आय करीब साठ लाख रुपए थी। इतिहास लेखक विलसन लिखता है—

"इस सन्धि की शर्तें कुछ सख़्त थीं, और सबसीडी की रक़म राज की वार्षिक आय के मुनासिब औसत से ज़्यादा थी, यही बोझ रियासत के लिए बहुत अधिक था और इस पर विशेष सेना का ख़र्च और बढ़ा दिया गया। राजा को इस बात की शिकायत करने की काफ़ी वजह थी कि उसके नए मित्रों की मित्रता उसे मँहगी पड़ी।"*

बाला साहब की हत्या

स्वभावतः नागपुर के सभी समझदार नीतिज्ञ और दरबारी इस सन्धि के विरुद्ध हो गए। बाला साहब के पक्ष वालों की संख्या बढ़ने लगी। रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को डर हो गया कि जब तक बाला साहब जीवित है, सम्भव है कि उसके पक्ष के लोग किसी दिन इस सन्धि को रद्द कराने का प्रयत्न करें। अचानक पहली फ़रवरी सन् १८१७ को प्रातःकाल जब कि अप्पा साहब किसी कार्यवश नागपुर से बाहर गया था, बाला साहब अपने बिस्तरे पर मरा

* "The conditions of the treaty were somewhat severe, and the amount of the subsidy exceeded a due proportion of the revenues of the country. The charge of the contingent was an addition to a burthen already too weighty for the state, and the Raja had some grounds for complaining of the costliness of his new friends."—Mill, vol, viii, p. 186

हुआ पाया गया। उसके मृत शरीर की दशा से ज़ाहिर था कि रात को उसकी हत्या की गई है। नागपुर भर में यह आम अफ़वाह फैल गई कि बाला साहब की हत्या कराने वाला रेज़िडेण्ट जेनकिन्स है। किन्तु जेनकिन्स ने इसकी कुछ भी परवा न की, और न गवरनर जनरल को इसकी सूचना तक दी।

राजा अप्पा साहब भोंसले

बाला साहब (पुरुषाजी) की मृत्यु के बाद अप्पा साहब नागपुर लौट आया और अप्पा साहब ही अब नागपुर की गद्दी पर बैठा।

किन्तु अंगरेज़ों की ओर राजा अप्पा साहब भोंसले का रुख अब बदलने लगा। इसके मुख्य कारण दो थे। एक बाला साहब की हत्या और दूसरे सबसीडीयरी सन्धि। अप्पा साहब इस बात को अनुभव करने लगा कि उस सन्धि का बोझ रियासत के ऊपर असह्य है। उसे पता चला कि मेरे दो मन्त्रियों नागू पण्डित और नारायण पण्डित ने अंगरेज़ों के साथ मिल कर मुझे सबसीडीयरी सन्धि के जाल में फँसवाया है। अप्पा साहब ने इन दोनों मन्त्रियों को बरख़ास्त कर दिया और उस सन्धि के बदलने के लिए रेज़िडेण्ट जेनकिन्स और गवरनर जनरल हेस्टिंग्स दोनों से प्रार्थनाएँ करनी शुरू कीं। रेज़िडेण्ट और उसके साथियों ने इसके जवाब में राजा अप्पा साहब को तरह तरह से अपमानित करना शुरू किया।

इसी समय मराठा मण्डल के प्राचीन नियम के अनुसार पेशवा बाजीराव ने राजा अप्पा साहब के पास एक खिलअत भेजी।



पुरुषा जी भोंसले उर्फ़ बाला साहब

ीयुत वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा]

पेशवा से अभी तक अंगरेज़ों की लड़ाई शुरू न हुई थी। इसलिए यह ख़िलअत पूना के रेज़िडेएट एलफ़िन्सटन की जानकारी में और उसकी अनुमति से भेजी गई। नवम्बर सन् १८१७ में ख़िलअत नागपुर पहुँची।

पेशवा की ख़िलअत

ख़िलअत के पहिने जाने के लिए जो विशेष दरबार होने वाला था उसमें राजा अप्पा साहब ने विधिवत् जेनकिन्स को भी निमन्त्रित किया। जेनकिन्स ने दरबार में जाने से इस बिना पर इनकार कर दिया कि पेशवा की ख़िलअत को स्वीकार करना नागपुर के राजा के लिए कम्पनी की ओर शत्रुता दर्शाने के तुल्य है। अप्पा साहब ने इसके उत्तर में रेज़िडेएट को विश्वास दिलाया कि आपकी आशङ्का निर्मूल है। किन्तु जेनकिन्स पर इसका कोई असर न हुआ। दरबार हुआ, ख़िलअत पहनी गई, किन्तु जेनकिन्स दरबार में न पहुँचा।

अप्पा साहब ने इस समय रेज़िडेएट के व्यवहार की कुछ शिकायतें गवरनर जनरल को लिख कर भेजीं। उनसे मालूम होता है कि कम्पनी की विशाल सेना के उपयोग के लिए जितना अनाज और

अप्पा साहब की शिकायतें

अन्य सामान नागपुर आता जाता था उस पर अंगरेज़ एक पाई महसूल की न देते थे; जितनी सबसीडीयरी सेना अंगरेज़ों ने नागपुर में रख रक्खी थी और जिसका सारा ख़र्च वे अप्पा साहब से माँगते थे वह २८ अप्रैल सन् १८१६ वाले सन्धिपत्र से कहीं अधिक थी; इत्यादि। अप्पा साहब की प्रार्थना केवल यह थी कि

इस तरह की शिकायतें दूर कर दी जाएँ और राजा की आर्थिक स्थिति को देख कर सबसीडीयरी सेना के खर्च की रकम को कम कर दिया जाय जिससे राजशासन के अन्य कार्य भी चल सकें। सितम्बर सन् १८१७ के अन्त में सर जॉन मैलकम इस सम्बन्ध में अप्पा साहब से मिला। अप्पा साहब ने मैलकम का खूब सत्कार किया। मुलाक़ात के बाद सर जॉन मैलकम ने गवरनर जनरल को लिखा कि अप्पा साहब की हार्दिक इच्छा अंगरेज़ों के साथ मित्रता क़ायम रखने की है। किन्तु गवरनर जनरल और रेज़िडेण्ट दोनों का पक्का इरादा भोंसले राज को समाप्त कर देने का था। रेज़िडेण्ट ने २६ नवम्बर सन् १८१७ को गवरनर जनरल को साफ़ लिख दिया कि अप्पा साहब का इस तरह की शिकायतें पेश करना ही अंगरेज़ सरकार के साथ उसकी शत्रुता का अकाट्य प्रमाण है!

युद्ध की तैयारी

२६ नवम्बर से पहले ही जेनकिन्स युद्ध की पूरी तैयारी कर चुका था। प्रोफ़ेसर विलसन रेज़िडेण्ट की इन तैयारियों के विषय में लिखता है :—

"बरार की सबसीडीयरी सेना का अधिकांश भाग इससे पहले ही युद्ध के मैदान में पहुँच चुका था, और एक सैन्यदल क़रीब तेरह मील दूर लेफ़्टिनेण्ट करनल स्कॉट के अधीन रामटेक में मौजूद था, जिसे जब चाहे, बुलाया जा सकता था; इस दल में दो पलटन मद्रासी सिपाहियों की, × × × एक पैदल पलटन गोरों की और एक पलटन देशी सवार तोपख़ाने की, और तीन पलटन नम्बर छै बङ्गाल सवारों की शामिल थीं। पलटनें रेज़िडेण्ट की

आज्ञानुसार २५ तारीख़ को रेज़िडेन्सी के मैदान में आ पहुँची, और वहाँ पर क़रीब चार सौ और सैनिक, दो तोपें और दो कम्पनी बङ्गाल पैदलों की और कुछ मद्रासी सवार उनमें आकर मिल गए। २६ तारीख़ को प्रातः काल सीताबल्डी की पहाड़ियों पर ये भारी सेनाएँ बाज़ाब्ता खड़ी कर दी गई।"*

इस विशाल सैन्यदल को ठीक राजधानी के सामने देख कर नागपुर के नीतिज्ञों का घबरा उठना स्वाभाविक था। दरबार के अन्दर तुरन्त दो दल पैदा होगए एक राजा अप्पा साहब और उसके कुछ साथी जो अभी तक युद्ध से बचना चाहते थे, और दूसरे वे लोग जो युद्ध को अनिवार्य देखकर फ़ौरन् अंगरेज़ी सेना पर हमला करने के पक्ष में थे। कहा जाता है कि इस वाद विवाद के अन्दर ही अप्पा साहब की इच्छा के विरुद्ध उसकी कुछ सेना ने २६ नवम्बर की शाम को सीताबल्डी की अंगरेज़ी सेना पर हमला कर दिया। किन्तु अंगरेज़ी सेना व्यवस्थित और तैयार थी। दूसरी ओर की सेना अव्यवस्थित और अनिश्चित थी। परिणाम यह हुआ कि मराठा सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा।

अप्पा साहब की कायरता

राजा अप्पा साहब ने रेज़िडेंट को कहला भेजा कि मेरी सेना ने मेरी इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है, मुझे इसका दुख है और आप इसके लिए जो शर्तें तजवीज़ करें, मुझे मन्जूर होंगी। जेनकिन्स ने अप्पा साहब के

युद्ध स्थगित

* Mill, vol viii, p 188

उत्तर में लिख भेजा कि मामला मेरे हाथों से अब गवरनर जनरल के हाथों में चला गया है, फिर भी यदि आप अपनी सेना को फ़ौरन् अमुक अमुक स्थान से पीछे हटा लें तो मैं गवरनर जनरल की आज्ञा आने तक युद्ध बन्द रखने के लिए तैयार हूँ। अप्पा साहब ने रेज़िडेण्ट की यह शर्त स्वीकार कर ली, और २७ तारीख़ की रात को मराठा सेना जिस जिस स्थान से जेनकिन्स ने कहा था, हटा ली गई।

हेस्टिंग्स के एक पत्र में लिखा है कि इस प्रकार युद्ध को स्थगित करने में जेनकिन्स का उद्देश केवल यह था कि उसकी थकी हुई सेना को विश्राम मिल जाय, और और अधिक सेना नागपुर पहुँच जाय। अप्पा साहब ने बार बार सुलह की प्रार्थना की, किन्तु रेज़िडेण्ट ने इसकी ओर ध्यान न दिया।

नई शर्तें

२६ तारीख़ को सुबह कम्पनी की कुछ और पलटनें नागपुर पहुँचीं। उसी दिन शाम को राजा ने जेनकिन्स को लिखा कि मैं अपनी अधिकांश सेना बरख़ास्त करने के लिए तैयार हूँ, मेरी प्रार्थना है कि सबसीडीयरी सन्धि क़ायम रक्खी जाय और मेरी सामान्य शिकायतों का समाधान कर दिया जाय। जेनकिन्स ने फिर वही उत्तर दिया कि मामला अब मेरे अधिकार से बाहर है। लगातार अंगरेज़ी सेनाएँ बराबर नागपुर पहुँचती रहीं, अन्त में १४ दिसम्बर सन् १८१७ को जेनकिन्स ने नीचे लिखी शर्तें अप्पा साहब के पास भेजीं, और साथ ही यह लिख दिया कि यदि १६ तारीख़ को प्रातःकाल चार बजे

तक इन शर्तों को पूरा न किया गया तो मराठा सेना के ऊपर चारों ओर से हमला कर दिया जायगा। शर्तों का सार इस प्रकार था—

(१) राजा अप्पा साहब इस बात को स्वीकार करे कि उसकी सेना के अंगरेज़ी सेना पर हमला करने के दण्ड स्वरूप सारी रियासत अंगरेज़ों की हो चुकी और अप्पा साहब केवल अंगरेज़ कम्पनी की दया से अपने लिए कुछ आशा कर सकता है।

(२) राजा की सारी युद्ध सामग्री तोपख़ाना इत्यादि कम्पनी के हवाले कर दिये जायँ और बाद में जब रियासत की सेना की संख्या निश्चित हो जायगी तो इस सामान का एक भाग वापस कर दिया जायगा।

(३) रेज़िडेण्ट के साथ मिल कर राजा अपनी समस्त अरब सेना को और अन्य सेना को, जितनी जल्दी हो सके, बरख़ास्त कर दे।

(४) राजा की सेना फ़ौरन, जिस स्थान पर अंगरेज़ कहें, चली जाय।

(५) नागपुर का नगर ख़ाली कर दिया जाय और कम्पनी की सेना उस पर क़ब्ज़ा कर ले। बाद में सन्धि हो जाने पर नगर वापस दे दिया जायगा।

(६) राजा स्वयं अंगरेज़ों की छावनी में चला आए और जब तक सब मामला तय न हो जाय वहीं रहे। इत्यादि।

इसके बदले में जेनकिन्स ने यह वादा किया कि यदि अप्पा साहब इन सब शर्तों को स्वीकार कर लेगा तो नागपुर का पूरा

राज ज्यों का त्यों अप्पा साहब को दे दिया जायगा और अंगरेज़ अप्पा साहब के शत्रुओं से उसकी रक्षा करेंगे।

ये शर्तें अत्यन्त अपमानजनक थीं, किन्तु अप्पा साहब ना तजरुबेकार, परवश और कायर था। अप्पा साहब ने ये सब शर्तें मञ्जूर कर लीं, किन्तु नागपुर की सेना में थोड़े बहुत लोग मौजूद थे जो इस आत्म-हत्या के लिए तैयार न थे। इन लोगों ने अंगरेज़ों के साथ लड़ने का निश्चय कर लिया, और अप्पा साहब तक को अंगरेज़ी छावनी में जाने से रोकने की कोशिश की। विशेष कर भोंसले राज में उस समय सैकड़ों अरब सिपाही और जमादार थे। ये लोग अपनी वीरता और स्वामिभक्ति के लिये प्रसिद्ध थे। नागपुर के महल की रक्षा अधिकतर इन अरबों ही के सुपुर्द थी।

अरबों की वफ़ादारी

१६ तारीख़ को ६ बजे राजा का यह सन्देश रेज़िडेण्ट के पास पहुँचा कि अरब लोग मुझे आने नहीं देते और हथियार अंगरेज़ों के हवाले करने में कुछ देर लगेगी, किन्तु दो तीन दिन के अन्दर सब ठीक कर दिया जायगा। इस पर जेनकिन्स ने राजा को लिख भेजा कि यदि आप ६ बजे तक हमारी छावनी में आ जायँ तो बाक़ी शर्तों के पूरा करने के लिए अधिक समय दे दिया जायगा। ६ बजे से कुछ पहले स्वयं राजा अप्पा साहब अंगरेज़ी छावनी के भीतर पहुँच गया।

अप्पा साहब की इस कातरता का ठीक भेद नहीं खुलता। फिर भी कुछ समय बाद राजा अप्पा साहब ने बयान किया कि

इस अवसर पर नारायण पण्डित, जो अंगरेज़ों से मिला हुआ था, अप्पा साहब को धोखा देकर अंगरेज़ी छावनी में ले गया।

इस पर भी राज की सेना ने अप्पा साहब की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। यह सेना अपने स्थान से न हटी। १६ दिसम्बर को १२ बजे दिन के जब अप्पा साहब की इजाज़त से अंगरेज़ी सेना तोपों पर क़ब्ज़ा करने के लिए पहुँची तो राज की सेना ने अंगरेज़ी सेना पर गोलियाँ चलाईं। युद्ध शुरू हो गया। राज की सेना में कोई योग्य सेनापति न था। उनका राजा तक शत्रु के हाथों में था। फिर भी अंगरेज़ी सेना इस वफ़ादार सेना को उसके स्थान से न हटा सकी, और बिना अपना कार्य पूरा किए हार कर अपने ख़ेमों की ओर लौट आई।

अंगरेज़ी सेना की असफलता

इस संग्राम के बाद अंगरेज़ों ने देख लिया कि इतनी विशाल सेना के होते हुए भी लड़ाई में अरबों को परास्त कर सकना इतना सरल न था। जेनकिन्स ने फिर अपनी कूटनीति से काम लिया। लिखा है कि १७ और १८ दो दिन अरब सेना के सरदारों को समझाने बुझाने में ख़र्च किए गए, किन्तु व्यर्थ। अरबों ने नगर ख़ाली करने से साफ़ इनकार कर दिया। मजबूर होकर अंगरेज़ सेनापति जनरल डवटन को फिर युद्ध का निश्चय करना पड़ा। नगर पर चढ़ाई करने के लिए एक नया तोपख़ाना अकोला से मँगाया गया। दोबारा मैदान गरम हुआ। २४ दिसम्बर को जनरल डवटन के अधीन अंगरेज़ी सेना ने पूरा ज़ोर लगा कर अरबों को

महल से हटाने का प्रयत्न किया। किन्तु अंगरेज़ी सेना को बेहद नुक़सान उठाना पड़ा। वीर और वफ़ादार अरब अपने स्थान से न हिले; कम्पनी की सेना को दूसरी बार हार कर पीछे हट जाना पड़ा।

इसके बाद फिर ५ दिन तक अरबों के साथ समझौते की बात चीत होती रही। अप्पा साहब ने भी अरबों पर महल छोड़ देने के लिए काफ़ी ज़ोर दिया। अन्त में मालूम नहीं किन शर्तों पर ३० दिसम्बर को प्रातःकाल नागपुर महल की संरक्षक अरब सेना महल से बाहर निकली। एक अंगरेज़ अफ़सर अरबों और उनके कुटुम्बियों को पहुँचाने के लिए मलकापुर तक उनके साथ गया। ३० दिसम्बर को दोपहर के समय कम्पनी की सेना ने अरक्षित नगर और महल पर क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह भोंसले राज के अस्त होने के दृश्य में इन वीर अरबों की अदम्य स्वामिभक्ति ही एक मात्र तेज की किरण थी।

अप्पा साहब के साथ दगा

गवरनर जनरल हेस्टिंग्स और रेज़िडेण्ट जेनकिन्स की सभी इच्छाएँ पूरी हो गईं। किन्तु राजा अप्पा साहब की आशाएँ फिर एक बार झूठी साबित हुईं। अप्पा साहब के रेज़िडेन्सी में आने से पहले उनसे यह साफ़ वादा कर लिया गया था कि आपके राज का कोई भाग आप से न लिया जायगा। किन्तु इस वादे के विरुद्ध राजा अप्पा साहब से कहा गया कि आप केवल निम्नलिखित शर्तों पर नागपुर का तख़्त वापस ले सकते हैं—

(१) नर्बदा के उत्तर का अपना सब इलाक़ा और उसके साथ कुछ इलाक़ा नर्बदा के दक्खिन का, और बरार, गाविलगढ़, सरगूजा और जशपुर में जो कुछ आपके अधिकार हैं, वे सब आप कम्पनी को दे दें।

(२) आपके बाक़ी राज का शासन-प्रबन्ध जिन मन्त्रियों द्वारा चलाया जाय वे कम्पनी सरकार के विश्वासपात्र हों और रेज़िडेण्ट की सलाह के अनुसार कार्य करें।

(३) आप और आपका कुटुम्ब नागपुर के महल में कम्पनी की सेना के संरक्षण में रहें।

(४) २४ अप्रैल सन् १८१६ की आधी रात को, जो तीस लाख सालाना की रक़म सबसीडीयरी सेना के ख़र्च के लिए नियत की गई थी, उसकी तमाम बक़ाया अदा की जाय और जब तक ऊपर लिखा इलाक़ा कम्पनी के हवाले न कर दिया जाय तब तक यह रक़म बराबर अदा की जाती रहे।

(५) भोंसले राज के जो जो क़िले अंगरेज़ चाहें, वे उनके हवाले कर दिए जायँ।

(६) राज के जिन जिन लोगों को अंगरेज़ कहें वे पकड़ कर अंगरेज़ों के हवाले कर दिए जायँ। और

(७) सीताबल्डी की दोनों पहाड़ियाँ, उसके पास का बाज़ार और आस पास की काफ़ी ज़मीन अंगरेज़ों के हवाले कर दी जाय, ताकि वे जिस तरह आवश्यक समझें, उसके ऊपर क़िलेबन्दी कर लें।

राजा अप्पा साहब को अब इसके सिवाय और कोई चारा

दिखाई न दिया कि इन लज्जाजनक शर्तों को स्वीकार करके अंगरेज़ों की क़ैद से अपने महल में आने की इजाज़त हासिल करे। राजा ने स्वीकार कर लिया, और ६ जनवरी सन् १८१८ को वह अपने महल में पहुँचा। महल और नगर दोनों पर अंगरेज़ी सेना का पहरा लग गया।

वास्तव में जिन शर्तों पर राजा अप्पा साहब ने नागपुर की गद्दी फिर से प्राप्त की वे केवल लज्जाजनक ही नहीं, वरन् असम्भव भी थीं; अर्थात् जो इलाक़ा राजा के पास बाक़ी छोड़ दिया गया था उसकी आय से क़ैदी राजा के लिए कम्पनी की नक़दी की माँग को पूरा कर सकना और शासन का ख़र्च चला सकना बिलकुल असम्भव था।

अप्पा साहब ने महल में पहुँचते ही इस बात को अनुभव कर लिया। उसने रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि मेरा शेष समस्त राज भी मुझसे ले लिया जाय और मेरे गुज़ारे के लिए एक सालाना पेनशन नियत कर दी जाय। किन्तु गवरनर जनरल ने इसे स्वीकार न किया।

कारण यह था कि गवरनर जनरल युवक अप्पा साहब का राज ले लेने के लिए लालायित अवश्य था, किन्तु पेनशन की फ़ज़ूल ख़र्ची करना न चाहता था। यह बात जानने योग्य है कि अप्पा साहब, जिसकी आयु इस समय केवल २२ वर्ष की थी, मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स को अपना 'बाप' और रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को अपना 'बड़ा भाई' कहा करता था।

अप्पा साहब की अन्तिम प्रार्थना

गवरनर जनरल ने अप्पा साहब की इस अन्तिम प्रार्थना को अस्वीकार करने का जो कारण कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिख कर भेजा वह यह था कि इस प्रार्थना को स्वीकार करने में कम्पनी को धन की हानि है।

अप्पा साहब पर दोषारोपण

किन्तु समस्त राज हड़पने के लिए किसी नए बहाने की आवश्यकता थी। तुरन्त रेज़िडेण्ट जेनकिन्स ने क़ैदी और पंगुल अप्पा साहब पर एक नया इलज़ाम लगाया कि अप्पा साहब और उसके दो मुख्य मन्त्री नागूपण्डित और रामचन्द्र वाग चौरागढ़ और मण्डला के क़िलेदारों, रतनपुर के सूबेदार और पेशवा बाजीराव के साथ अंगरेज़ों के विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं। इस इलज़ाम के थोथेपन पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है। जो सुबूत जेनकिन्स ने इन इलज़ामों के लिए पेश किए वे लॉर्ड हेस्टिंग्स को भी काफ़ी मालूम नहीं हुए।

इस पर जेनकिन्स ने नागपुर की पुरानी घटनाओं में से अप्पा साहब के विरुद्ध एक और नया इलज़ाम खोद निकाला। वह यह कि अप्पा साहब ही ने आज्ञा देकर पिछले राजा परसाजी 'बाला साहब' की हत्या करवाई थी। इस नए इलज़ाम के सुबूत में बयान और शहादतें तैयार कर ली गईं और इसी इलज़ाम की बिना पर जेनकिन्स ने १५ मार्च सन् १८१८ को अप्पा साहब और उसके

दोनों मन्त्रियों को महल से गिरफ़्तार करवा कर अपने जेलख़ाने में बन्द कर दिया।

झूठी गवाहियाँ

गवरनर जनरल को जब इस घटना का पता लगा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने डाइरेक्टरों को लिखा कि जो इलजाम रेज़िडेण्ट ने इससे पहले अप्पा साहब पर लगाया था उसके सुबूत किसी को भी सन्तोषजनक मालूम न होते, किन्तु इस नए इलज़ाम से काम चल जायगा। उसके कुछ शब्द ये हैं :—

"मुझे यह अनुभव हुआ कि अपनी कीर्ति बनाए रखने की दृष्टि से हमें अप्पा साहब को गद्दी से उतारने के लिए इससे अधिक ज़ोरदार वजह और कोई न मिल सकती थी कि उस पर इस तरह की हत्या का इलज़ाम लगाया जाय। यदि मुक़द्दमा चलाया जाता तो उसे दोषी साबित करने के लिए सुबूत आसानी से पेश किए जा सकते थे।"*

इस तरह के सुबूतों के विषय में एक स्थान पर लॉर्ड मैकॉले ने लिखा है :—

"लोग उसे एक हारा हुआ आदमी समझते थे, और उन्होंने उसके साथ इस तरह का व्यवहार किया जैसा कि हमारे कुछ पाठकों ने भारत में देखा होगा कि बहुत से कौवे मिलकर किसी बीमार गिद्ध को चोंच मार मार कर

---

* "It appeared, however, that for *our reputation*, we could not go on stronger grounds in deposing him than those of such a murder The *proofs* for conviction were easily producible, should the case be tried, ..."—Marquess of Hastings' Despatch to the Secret Committee of the Court of Directors, dated 21st August, 1820

ख़त्म कर डालते हैं। उस देश में जब जब भाग्य किसी ऐसे आदमी का साथ छोड़ देता है जो पहले कभी महान रह चुका हो और जिससे लोग डरते रहे हों, तब तब उस मनुष्य की जो गति होती है उसकी यह कौवों और गिद्ध वाली मिसाल कुछ बेजा मिसाल नहीं है। एक क्षण के अन्दर वे सभी खुशामदी, जो कुछ समय पहले उस मनुष्य के लिए झूठ बोलने को तैयार थे, जालसाज़ी करने को तैयार थे, उसकी विषय वासना के सामान जमा कर देने को तैयार थे, उसके लिए दूसरों को ज़हर दे देने को तैयार थे, वे सब अब उसके विजयी शत्रुओं के अनुग्रह पात्र बनने के लिए लपक लपक कर उस पर दोष लगाते हैं। कोई भारतीय गवरमेंट यदि किसी ख़ास आदमी को बरबाद कर देना चाहे तो गवरमेंट के लिए अपनी इस इच्छा को केवल प्रकट कर देना काफ़ी है, और २४ घण्टे के अन्दर गवरमेंट के पास उस आदमी के विरुद्ध गहरे इलज़ाम और उनके साथ साथ इस तरह की पूरी पूरी और मौक़े की गवाहियाँ पहुंच जायँगी कि जिन्हें देख कर कोई भी ऐसा मनुष्य, जो एशियाई झूठ से परिचित न हो, उन पर पक्का विश्वास कर लेगा। ग़नीमत समझना चाहिए यदि उस अभागे के जाली दस्तख़त किसी ख़िलाफ़ क़ानून पट्टे के नीचे न बना लिए जायँ और यदि कोई ख़िलाफ़ क़ानून काग़ज़ उसके मकान के किसी छिपे हुए कोने में चुपके से न डाल दिया जाय।"*

* "They considered him a fallen man, and they acted after the kind some of our readers may have seen in India, a crowd of crows pecking a sick vulture to death. No bad type of what happens in that country, as often as fortune deserts one who had been great and dreaded. In an instant, all the sycophants who had lately been ready to lie for him, to forge for him to pander for him to poison for him, hasten to purchase the favor of his victorious enemies by

निस्सन्देह प्रत्येक भारतवासी जानता है कि लॉर्ड मैकॉले का उपरोक्त कथन कितना सत्य है। किन्तु भारत के पिछले दो सौ वर्ष के इतिहास में क्लाइव, वारन हेस्टिंग्स, हॉलवेल, सर एलाइजाह इम्पे, एलफ़िन्सटन और जेनकिन्स जैसे सैकड़ों छोटे बड़े अंगरेज़ों के कारनामों से यह पूरी तरह साबित है कि इस तरह का झूठ और जालसाज़ी कोई विशेष 'एशियाई' गुण ही नहीं है। इतिहास से यह भी ज़ाहिर है कि भारतीय चरित्र में यह रोग कब से, कैसे और किनके संसर्ग से चमका।

बाला साहब की हत्या का दोषी

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि बाला साहब की हत्या का मुख्य अपराधी रेज़िडेण्ट जेनकिन्स था। उस समय के तमाम हालात और उल्लेखों से मालूम होता है कि अप्पा साहब इस विषय में सर्वथा निर्दोष था। अप्पा साहब को दोषी ठहराने का विचार तक अंगरेज़ों के चित्त में हत्या के कम से कम एक वर्ष बाद पैदा हुआ। फिर भी यदि अप्पा साहब दोषी भी होता तो भी जेनकिन्स और उसके साथियों को या कम्पनी सरकार को उसे दण्ड देने का कोई

---

accusing him An Indian Government has only to let it be understood that it wishes a particular man to be ruined, and in twenty-four hours it will be furnished with grave charges, supported by depositions so full and circumstantial, that any person, unaccustomed to Asiatic mendacity, would regard them as decisive It is well if the signature of the destined victim is not counterfeited at the foot of some illegal compact, and if some illegal paper is not slipped into a hiding place in the house"—Macaulay's *Essay on Warren Hastings*

अधिकार न था। इस पर अप्पा साहब को अपने तईं निर्दोष साबित करने का कोई मौक़ा नहीं दिया गया और न अप्पा साहब के सामने कोई सुबूत पेश किए गए। वास्तव में पेशवा बाजीराव और राजा अप्पा साहब दोनों के मामलों में क़िस्सा 'भेड़िए और मेमने' का था। अप्पा साहब को दोषी ठहरा कर फ़ैसला किया गया कि उसे इलाहाबाद के क़िले में क़ैद कर दिया जाय। उसकी जगह नागपुर की दिखावटी गद्दी पर राघोजी भौंसले का एक दुध मुंहा नाती राजा बना कर बैठा दिया गया, और तय कर दिया गया कि नए राजा की नाबालगी में राज का समस्त प्रबन्ध रेज़िडेण्ट के हाथों में रहे।

भौंसले राज का बटवारा

जो सन्धि हाल में अप्पा साहब के साथ की गई थी और जो नए राजा के साथ क़ायम रही, उसके अनुसार भौंसले राज का क़रीब आधा और अत्यन्त उर्वर भाग कम्पनी के शासन में आ गया। इस भाग में गढ़ामण्डला का प्रान्त, जिसमें मुख्य नगर जबलपुर है, और सोहागपुर, होशङ्गाबाद, सिवनी-छपारा और गाडरवाड़ा के ज़िले जो नर्बदा के दक्खिन में हैं शामिल थे। भौंसले राज की कुल सालाना आमदनी क़रीब साठ लाख थी, इसमें से वह हिस्सा जो कम्पनी को मिला, अट्ठाइस लाख रुपए सालाना से ऊपर का था, जिसमें से कि गवरनर जनरल के बयान के अनुसार वसूली के ख़र्च को निकाल कर साढ़े बाईस लाख रुपए सालाना नक़द कम्पनी को बचने लगे।

निस्सन्देह पेशवा बाजीराव और राजा अप्पा साहब दोनों के साथ कम्पनी के प्रतिनिधियों का व्यवहार इङ्गलिस्तान के प्रसिद्ध वक्ता एडमण्ड बर्क के निम्न लिखित शब्दों को बड़ी सुन्दरता के साथ चरितार्थ करता है। बर्क ने पहली दिसम्बर सन् १७८३ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने वक्तृता देते हुए कहा था—

देशी रियासतों के साथ कम्पनी का व्यवहार

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देश की अन्य रियासतों के साथ जो विश्वास घात किया है उसके सम्बन्ध में मैं आपके सामने नीचे लिखी तीन बातें साबित करने का आप से वादा करता हूँ। पहली बात मैं यह कहता हूँ कि इमास पहाड़ (हिमालय पर्वत) से लेकर × × × रासकुमारी तक × × × भारत में एक भी राज या राजा या नवाब, छोटा या बड़ा, ऐसा नहीं है जिसके साथ अंगरेज़ों का वास्ता पड़ा हो और जिसे उन्होंने बेच न डाला हो, मैं फिर कहता हूँ कि बेच न डाला हो, यद्यपि कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि अंगरेज़ों ने जो कुछ सौदा किया उसे वे अपनी ओर से पूरा न कर सके। दूसरी बात मैं यह कहता हूँ कि एक भी ऐसी सन्धि नहीं है जो अंगरेज़ों ने कभी की हो और जिसे फिर उन्होंने तोड़ा न हो। तीसरी बात मैं यह कहता हूँ कि एक भी राजा या राज ऐसा नहीं है जिसने कभी भी कम्पनी के ऊपर किसी तरह का एतबार किया हो और जो बिलकुल बरबाद न हो गया हो; और कोई भी राजा या राज यदि किसी दरजे तक भी सुरक्षित या खुशहाल है तो वह ठीक उस दरजे तक ही सुरक्षित या खुशहाल है जिस दरजे तक कि उसने अंगरेज़ी क़ौम पर लगातार अविश्वास किया और उस क़ौम के साथ अदम्य शत्रुता जारी रक्खी।

"मेरी यह तीनों बातें निरपवाद हैं; मैं कहता हूं कि पूरे अर्थों में निरपवाद हैं। ये बातें केवल दूसरी रियासतों के साथ कम्पनी के सम्बन्ध की हैं, किन्तु ठीक इसी प्रकार की दूसरी बातें मैं कम्पनी के अपने इलाके के विषय में भी पेश करूँगा।"*

भोंसले के क़िलों पर क़ब्ज़ा

नागपुर पर क़ब्ज़ा करने और राजा अप्पा साहब को क़ैद कर लेने के बाद अंगरेज़ों के लिए केवल भोंसले राज के आधे इलाक़े और अनेक छोटे बड़े क़िलों पर क़ब्ज़ा करना बाक़ी रह गया था। मध्यभारत के इन क़िलों में से अनेक इतने दुर्गम थे कि कई अंगरेज़ सेनापतियों ने उनकी मज़बूती की बड़ी प्रशंसा की है। एक अंगरेज़ लिखता है कि—"मालूम होता है प्रकृति ने इन क़िलों की भूमि को इसी लिए बनाया है कि स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के संग्राम वहाँ पर

* "*With regard, therefore, to the abuse of the external federal trust*, I engage myself to you to make good these three positions First, I say, that from Mount Imaus . to Cape Comorin . that there is not a single prince, state or potentate *great or small*, in India with whom they have come into contact *whom they* have not sold I say sold, though *sometimes* they have not been able to deliver according to their bargain. Secondly, I say that there is not a single treaty they *have ever made* which they have not broken Thirdly, I say that there is *not* a single prince or state who ever put any trust in the Company who is not utterly ruined and that none are in any degree secure or flourishing but in the exact proportion to their settled distrust and irreconcilable enmity to this *nation*

"These assertions are universal I say, in the full sense universal They regard the external and political trust only, but I shall produce others fully equivalent in the internal "—Burke's Speech on Fox India *Bill*, Ist *December, 1783*

सफलता के साथ लड़े जा सकें।"* इनमें से कुछ क़िलों के भारतीय संरक्षकों ने बड़ी वीरता और आत्मोत्सर्ग के साथ आख़ीर दम तक अपने क़िलों की रक्षा की। फिर भी एक दूसरे के पश्चात् राजदीर और त्रयम्बक, तालनेर और असीरगढ़ जैसे क़रीब तीस मज़बूत क़िले देखते देखते विदेशियों के हाथों में आगए। कहीं पर, जैसे राजदीर में, क़िलेदार और उसके सिपाहियों में झगड़ा हो गया और सिपाहियों ने अपने ही क़िले को आग लगा दी। कहीं पर, जैसे त्रयम्बक में, राजा अप्पा साहब के भाग जाने का समाचार सुन कर सेना के हाथ पाँव ढीले हो गए। कहीं पर, जैसे तालनेर में, क़िलेदार ने अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली, फिर भी अंगरेज़ी सेना ने शरणागत शत्रुओं का क़त्ल आम कर डाला। अनेक जगह क़िलेदारों को धन का लोभ देकर उनसे अपने स्वामी और राज के विरुद्ध विश्वासघात कराया गया। प्रायः सब जगह नागपुर के नए दुध मुंहे राजा की ओर से कम्पनी के पक्ष में परवाने बँटवाए गए। सब से अधिक देर असीरगढ़ के क़िले ने ली। इस क़िले के अन्दर अधिकांश अरब सेना थी, जिसने एक वर्ष से ऊपर तक अर्थात् ७ अप्रैल सन् १८१९ तक शत्रु को अधीनता स्वीकार न की। अन्त में असीरगढ़ के पतन के साथ साथ वह समस्त इलाक़ा कम्पनी के अधीन हो गया जो हाल की सन्धि से उसे प्राप्त हुआ था।

---

* 'She (Nature) seems to have marked them out as a theatre, on which the battles of freedom and independence might be successfully fought,'—*Journal of the Sieges of the Madras Army*, by Lieut Lake, p 107

अप्पा साहब के अन्तिम प्रयत्न

इसके बाद हमारे लिए केवल अप्पा साहब को शेष कहानी को संक्षेप में बयान करना बाक़ी रह जाता है। १५ मार्च सन् १८१८ को नागपुर में गिरफ़्तार होने के समय से लेकर मृत्यु के समय तक अप्पा साहब की कहानी अत्यन्त करुणाजनक और उपन्यास के समान मालूम होती है। अप्पा साहब को कम्पनी की कई सौ पैदल और कुछ सवार सेना की निगरानी में जबलपुर के रास्ते नागपुर से इलाहाबाद के लिए रवाना किया गया। मालूम होता है कि अप्पा साहब के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार उस समय बेहद बुरा था। मार्ग में एक दिन रात को दो बजे के क़रीब राचूरी नामक स्थान से अप्पा साहब अपनी गारद की आँख बचा कर और उसी गारद के छै विश्वस्त हिन्दोस्तानी सिपाहियों और तीन सवारों को साथ लेकर एक सिपाही की पोशाक में भाग निकला। कम्पनी की ओर से फ़ौरन् उसकी गिरफ़्तारी के लिए बड़े बड़े इनामों का एलान किया गया और अनेक प्रयत्न किए गए, किन्तु कई छोटे बड़े स्थानों में ठहरता हुआ अप्पा साहब महादेव पहाड़ पर पहुँचा, जहाँ पर कि गोंड जाति के लोग उसका स्वागत करने और उसकी सहायता करने के लिए तैयार थे। इन गोंडों की मदद से अप्पा साहब ने चौरागढ़ के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। कहते हैं कि उस समय नागपुर में भी अनेक लोग अप्पा साहब के पक्ष में थे, जो गुप्त रीति से उसे धन इत्यादि की सहायता पहुँचा रहे थे। बरहानपुर में भी कुछ अरब सेना अप्पा साहब के इन्तज़ार में मौजूद थी। अंगरेज़ों को

जब उसे फिर से गिरफ़्तार करने में सफलता प्राप्त न हो सकी तो उन्होंने एलान किया कि यदि अप्पा साहब लौट आए तो उसे एक लाख रुपए सालाना की पेनशन पर कम्पनी के इलाक़े के अन्दर किसी भी स्थान पर रहने दिया जायगा। किन्तु अप्पा साहब ने यह स्वीकार न किया। उसने अब छत्तीसगढ़ के लोगों, राजा कीरतसिंह और भोपाल के कुछ सरदारों इत्यादि को अपनी ओर करने की कोशिश की। अन्त में करनल ऐडम्स के अधीन अंगरेज़ी सेना अप्पा साहब को गिरफ़्तार करने के लिए कई ओर से महादेव पहाड़ पर पहुँची। अप्पा साहब अपने विश्वस्त अनुचर प्रसिद्ध चीतू पिण्डारी और कुछ सवारों सहित असीरगढ़ के क़िले में दाखिल हुआ। अंगरेज़ी सेना ने उसका पीछा किया। असीरगढ़ के क़िले के ठीक नीचे दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाई हुई। सम्भव है कि अप्पा साहब उस समय गिरफ़्तार कर लिया जाता, किन्तु ठीक समय पर क़िले के अन्दर से जसवन्तराव लार की सेना ने निकल कर अंगरेज़ी सेना से अप्पा साहब को बचा लिया। इसके कुछ समय बाद ही वफ़ादार चीतू पिण्डारी किसी चीते का शिकार होगया। असीरगढ़ के क़िले के अन्दर से अप्पा साहब और अंगरेज़ों में फिर कुछ पत्र व्यवहार हुआ। अंगरेज़ों ने उसे अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए कहा, किन्तु अप्पा साहब ने फिर इनकार कर दिया।

इसके बाद अप्पा साहब फ़क़ीर के वेश में केवल एक अनुचर सहित बरहानपुर की ओर निकल गया। बरहानपुर उस समय



राजा अप्पा साहब भौंसले

[श्रीयुत् वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा से

सींधिया की रियासत में था और सींधिया अंगरेज़ों के प्रभाव में आ चुका था। अप्पा साहब को बरहानपुर छोड़ कर लाहौर की राह लेनी पड़ी। कुछ दिनों वह एक साधारण व्यक्ति के समान लाहौर में रणजीत सिंह का मेहमान रहा। उसके बाद अप्पा साहब को लाहौर भी छोड़ना पड़ा। लाहौर से चल कर वह हिमालय पहाड़ के अन्दर कई बरस तक मराडी की रियासत में वहाँ के राजा का मेहमान रहा। इसके पश्चात् वह फिर मध्य भारत की ओर लौटा। इस बार उसने जोधपुर रियासत के अन्दर महामन्दिर नामक सुप्रसिद्ध मन्दिर में आश्रय लिया। अंगरेज़ों ने जोधपुर के राजा पर ज़ोर दिया कि अप्पा साहब को कम्पनी के हवाले कर दो। किन्तु जोधपुर के राजा मानसिंह ने मन्दिर के मान और एशियाई आतिथ्य धर्म की मर्यादा को उल्लंघन करने से इनकार कर दिया। अन्त में जोधपुर के महामन्दिर में ही राजा मानसिंह के आतिथ्य में नागपुर के निर्वासित राजा अप्पाजी भोंसले ने अपनी ऐहिक जीवन-यात्रा का अन्त किया।

अप्पा साहब का अन्त

केवल एक और स्वाधीन मराठा राज बाक़ी रह गया था। दस वर्ष पूर्व अंगरेज़ों को जसवन्तराव होलकर के साथ जो सन्धि करनी पड़ी थी वह किसी तरह भी अंगरेज़ों की कीर्ति को बढ़ाने वाली न थी। किन्तु इस बीच वीर जसवन्तराव होलकर पागल होकर मर चुका था, और होलकर राज के मुख्य कर्ता धर्ता अमीर ख़ाँ के साथ

होलकर के साथ युद्ध

कम्पनी की उन साज़िशों ने, जिनका ऊपर ज़िक्र आ चुका है, होलकर राज में चारों ओर फूट, कुशासन और अराजकता फैला रक्खी थी। लॉर्ड हेस्टिंग्स को होलकर राज पर हमला करने का यह अच्छा अवसर दिखाई दिया। कम्पनी की सेना ने बिना किसी कारण होलकर राज पर हमला किया।

महीदपुर का संग्राम

२० दिसम्बर सन् १८१७ को महीदपुर नामक स्थान पर राज की सेना और कम्पनी की सेना में युद्ध हुआ। इस कुशासन की हालत में भी होलकर की सेना के मुसलमान प्रधान सेनापति रोशन बेग ने अपने तोपख़ाने की मदद से बड़ी वीरता के हाथ दिखलाए; यहाँ तक कि लिखा है, एक बार अंगरेज़ी सेना के पैर उखड़े हुए नज़र आने लगे। किन्तु होलकर सेना के अन्दर अभी विश्वासघातक अमीर ख़ाँ का दामाद सेनापति नवाब अब्दुल ग़फ़ूर ख़ाँ भी मौजूद था। एक मुसलमान लेखक लुत्फ़ुल्लाह लिखता है—

"यदि विदेशी उस लड़ाई में हार जाते तो क़रीब दस हज़ार हथियार बन्द लोगों की सेना उनका सर्वनाश कर देने के लिए मौजूद थी, किन्तु ये सभी उम्मीदें ख़ाक में मिल गईं। × × × उन्हें यह मालूम न था कि ठीक उस समय, जब कि होलकर के तोपख़ाने के मुख्य सेनापति रोशन बेग की वफ़ादारी और उसके वीर प्रयत्नों द्वारा अंगरेज़ हारने ही को थे, उसी समय नवाब अब्दुल ग़फ़ूर ख़ाँ अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करके अपने साथ की पूरी सेना सहित मैदान छोड़ कर भाग गया। जब तक अब्दुल

ग़फ़ूर ज़िन्दा रहा, यह कलङ्क का टीका उसके माथे पर लगा रहा × × ×।"*

ज़ाहिर है कि विजय अंगरेज़ों की ओर रही। मौंडेश्वर नामक स्थान पर सन्धि हुई। होलकर का बहुत सा इलाक़ा कम्पनी के राज में मिला लिया गया। बालक महाराजा ने कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि कर ली। अब्दुल ग़फ़ूर की सेवाओं के बदले में आज तक उसके वंशजों को कम्पनी की ओर से मालवा में जाओरा की रियासत मिली हुई है।

सींधिया के प्रधान सामन्तों को उससे अलग कर लिया गया।

तीसरे मराठा युद्ध का अन्त

होलकर का बहुत सा इलाक़ा छीन कर उसे कम्पनी का सामन्त बना लिया गया। भौंसले का आधा राज छीन लिया गया और सबसीडीयरी सेना नागपुर में क़ायम कर दी गई। मराठा सत्ता के प्रधान स्तम्भ पेशवा और उसके राज दोनों का सदा के लिए अन्त कर दिया गया। इस प्रकार तीसरे मराठा युद्ध के साथ साथ मराठा

---

* "There would have been a host of about ten thousand armed men to destroy the foreigners, had they lost the battle, but all these hopes were frustrated . . Little did they know that Nawab Abdul Ghafoor Khan played the part of a traitor to his master, and deserted the field of battle with the force under his command, just at the moment when the English were on the point of loosing the battle, through the loyal and gallant exertions of Roshan Beg, the Captain-General of Holkar's artillery The stain of this disgrace clung too firmly to the name of Abdul Ghafoor as long as he lived, "—*The Autobiography of Lutufullah*, pp. 103, 104

साम्राज्य का अन्त हो गया और हेस्टिंग्स और उसके साथियों की आशाएँ पूरी हुईं।

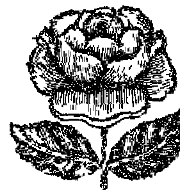
यह युद्ध मराठा जाति के साथ कम्पनी का अन्तिम महान युद्ध था। इस युद्ध द्वारा कम्पनी के भारतीय राज में ५०,००० वर्ग मील से अधिक की वृद्धि हुई; जिसमें सतारा के राजा के लिए थोड़े से इलाक़े को छोड़ कर पेशवा के शेष समस्त राज और सींधिया, होलकर और भोंसले तीनों के अनेक उर्वर प्रान्त शामिल थे। इन पिछले तीन नरेशों के ये प्रदेश ही बाद में 'मध्यप्रान्त और मध्य भारत' के नाम से विख्यात हुए और आज तक इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं। राजपूत राजाओं से भी उस रक्षा के बदले में, जो अंगरेज़ों ने इस युद्ध के समय उनकी की (!), बहुत सा धन और बहुत सी भूमि ले ली गई। इस प्रकार अजमेर के नए ब्रिटिश प्रान्त की रचना हुई।

मराठा रियासतों के अतिरिक्त मछेरी, रीवाँ, सावन्तवाड़ी और करनूल जैसी छोटी छोटी रियासतों के साथ भी हेस्टिंग्स ने कई छोटे मोटे संग्राम किए, जिनमें उसे अपनी कूटनीति के बल काफ़ी सफलता प्राप्त हुई।

हेस्टिंग्स के अन्य कृत्य

हेस्टिंग्स के कृत्यों में केवल एक और वर्णन करने योग्य है। मद्रास प्रान्त में उसने रय्यतवाड़ी और अनस्थायी बन्दोबस्त की उस प्रथा को प्रचलित किया, जिसके कारण वहाँ की प्रजा दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दरिद्र होती चली गई।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने तीसरे मराठा युद्ध की विजय के उपलक्ष में लॉर्ड हेस्टिंग्स को इङ्गलिस्तान में ज़मींदारी ख़रीदने के लिए साठ हज़ार पाउण्ड अर्थात् करीब ६ लाख रुपए नक़द इनाम दिए।



तैंतीसवाँ अध्याय

लॉर्ड ऐमहर्स्ट

१८२३—१८२८

ऐडम्स

लार्ड हेस्टिंग्स के बाद सात महीने ऐडम्स भारत का गवरनर जनरल रहा। ऐडम्स के समय में केवल एक ही उल्लेखनीय घटना हुई। कलकत्ते की एक अंगरेज़ी पत्रिका 'कैलकटा जरनल' के अंगरेज़ सम्पादक जे० एस० बकिङ्घम ने अपने पत्र में एक स्काच पादरी के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें लिख दीं जो ऐडम्स को नापसन्द थीं। ऐडम्स के हुक्म से उसका ज़बरदस्ती बँधना बोरिया बँधवा कर उसे इङ्गलिस्तान भिजवा दिया गया।

१ अगस्त सन् १८२३ को लॉर्ड ऐमहर्स्ट भारत का गवरनर

जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुँचा। ऐमहर्स्ट को भारत में आए चन्द महीने ही हुए थे कि उसने ब्रह्म देश के साथ, जिसे बरमा भी कहते हैं, युद्ध शुरू कर दिया।

लॉर्ड ऐमहर्स्ट

ब्रह्म देश उन दिनों एक विशाल, स्वाधीन और अत्यन्त समृद्ध साम्राज्य था। बङ्गाल की सरहद पर आसाम और अराकान के प्रान्त बरमी साम्राज्य में शामिल थे। बहुत दिनों से अंगरेज़ों की उस साम्राज्य के ऊपर नज़र थी। १८ वीं शताब्दी के अन्त से ही छेड़ छाड़ जारी थी। अराकान की सरहद बङ्गाल के ज़िले चट्टग्राम की सरहद से मिली हुई थी। अराकान का राजा बरमा के महाराज का सामन्त था। अंगरेज़ों ने अराकान की प्रजा के एक विद्रोही, किन्तु शक्ति शाली सरदार किङ्गबेरिङ्ग को अपनी ओर मिलाया।

बरमा युद्ध का सूत्रपात

इतिहास लेखक विलसन ने लिखा है कि सन् १७६७ और १७६८ में क़रीब तीस चालीस हज़ार अराकान निवासी अपना देश छोड़ कर किङ्गबेरिङ्ग के साथ चट्टग्राम ज़िले में आ बसे। मालूम नहीं, किन किन उपायों से और क्या क्या लोभ देकर बरमी प्रजा के इन लोगों को भड़का कर चट्टग्राम लाया गया। किन्तु लिखा है कि कम्पनी सरकार की ओर से इन लोगों के गुज़ारे के लिए उन्हें मुफ़्त ज़मीनें दी गईं; एक विशेष अफ़सर कप्तान कॉक्स इनके प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया गया, और जहाँ पर वे आकर बसे उस बस्ती का नाम कॉक्स बाज़ार रक्खा गया। विलसन लिखता है:—

"बङ्गाल की सरकार ने यह निश्चय कर लिया था कि इन नए आगन्तुकों का एक स्थायी उपनिवेश बना कर उन्हे हर तरह की सुविधाएँ दी जायँ, और ज़िले के दक्खिनी भाग मे जो खाली ज़मीनें पड़ी हुई थीं, वे उन्हे दे दी गई।"*

बरमा के इलाक़े में लूट मार

इसके बाद इन्हीं अराकानियों के ज़रिए कम्पनी के प्रतिनिधियों ने बरमा के अराकान प्रान्त पर हमले कराना और लूट मार कराना शुरू कर दिया। लॉर्ड मिण्टो के समय में, मई सन् १८११ में इन लोगों ने किङ्गबेरिङ्ग के अधीन कम्पनी के इलाक़े से निकल कर बरमा के इलाक़े पर धावा मारा और बहुत सा सामान लूट का साथ लेकर फिर कम्पनी के इलाक़े में लौट आए। लॉर्ड मिण्टो ने डाइरेक्टरों के नाम अपने २३ जनवरी सन् १८१२ के पत्र में किङ्गबेरिङ्ग और उसके हमले का पूरा हाल दिया है, जिसमें बरमा के महाराजा और किङ्गबेरिङ्ग के परस्पर वैमनस्य का भी ज़िक्र किया गया है। इस पत्र में साफ़ लिखा है कि किङ्गबेरिङ्ग अंगरेज़ी इलाक़े में रह कर सन् १७९७ से इस हमले की तैयारी कर रहा था और चटगाम में उसने ज़बरदस्त दल जमा कर रक्खा था।

किङ्गबेरिङ्ग

इस पर बरमा के दरबार का यह समझना कि किङ्गबेरिङ्ग का हमला अंगरेज़ों के उकसाने और उनकी मदद से हुआ, यथार्थ था। बरमा के साथ उस समय

* "The Government of Bengal had resolved to admit the *emigrants to the advantages of permanent colonisation, and assigned them unoccupied lands in the southern portion of the district*"—Mill, vol ix p 11

तक अंगरेज़ों का किसी तरह का कोई झगड़ा न था। उस देश के महाराजा ने कम्पनी सरकार को लिखा कि या तो किङ्गबेरिङ्ग और उसके साथियों को बरमा दरबार के हवाले कर दिया जाय, और या बरमा की सेना को कम्पनी के इलाके में जाकर उन्हें गिरफ्तार करने की इजाज़त दी जाय। अंगरेज़ों ने इस पर किङ्गबेरिङ्ग को हवाले करने का झूठा वादा कर लिया। इसके बाद किङ्गबेरिङ्ग प्रायः प्रति वर्ष बरमी इलाके पर धावे मारता रहा। कई बार बरमा की सेना ने उस पर हमला किया। हर बार हार खाकर किङ्गबेरिङ्ग भाग कर अंगरेज़ी इलाके में चला आता था। अंगरेज सरकार ने न बरमा की सेना को अपने इलाके में प्रवेश करने दिया और न किङ्गबेरिंग को उनके हवाले किया। अन्त में सन् १८१५ में किङ्गबेरिङ्ग की मृत्यु हो गई।

किन्तु किङ्गबेरिङ्ग की मृत्यु के साथ बरमा की प्रजा की मुसीबतें ख़त्म न हुई। उसके स्थान पर अब उसी तरह के दूसरे लोग खड़े कर दिए गए और बरमा की प्रजा पर बराबर धावे जारी रहे। बरमा दरबार ने अंगरेज़ों से प्रार्थना की कि इन डाकुओं को हमारे सुपुर्द कर दो। लॉर्ड मिण्टो ने डाइरेक्टरों के नाम अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि इन धावों के कारण अराकान की प्रजा की बहुत बड़ी हानि हो चुकी थी और बरमा दरबार की शिकायत और उनकी माँग सर्वथा न्याय्य थी। फिर भी भारत की अंगरेज़ सरकार ने यह कह कर साफ़ इनकार कर दिया कि ये लोग अब

अंगरेज़ सरकार की प्रजा हैं, इसलिए इन्हें दूसरों के हवाले करना अंगरेज़ सरकार के असूलों के खिलाफ़ है।*

कच्छ की स्वाधीन रियासत पर हमला करने और उसकी स्वाधीनता का अन्त कर देने का एक मात्र कारण अंगरेज़ों ने यह बतलाया था कि कच्छ के कुछ डाकुओं ने काठियावाड़ के कुछ इलाक़े पर धावा मारा था। काठियावाड़ पेशवा के अधीन था और पेशवा अंगरेज़ों का मित्र था। पिण्डारी डाकुओं के दमन के नाम पर ही अंगरेज़ों ने समस्त मराठा साम्राज्य के साथ युद्ध छेड़ दिया था। किन्तु अब क़रीब १५ वर्ष तक लगातार सहस्रों हथियारबन्द डाकू हर साल अंगरेज़ी इलाक़े से निकल निकल कर बरमी इलाक़े में लूट मार मचाते रहे और कम्पनी सरकार ने उन्हें 'अपनी प्रजा' कह कर उनका पक्ष लिया।

कप्तान कैनिङ्ग

किन्तु बरमा दरबार को किसी प्रकार सन्तुष्ट रखना और उस ओर भविष्य में अपना साम्राज्य बढ़ाने के प्रयत्न करना भी आवश्यक था। इस काम के लिए कप्तान कैनिङ्ग नामक एक अंगरेज़ को कुछ उपहारों सहित बरमा की राजधानी आवा भेजा गया। कैनिङ्ग ने बरमा के महाराजा को यह समझाने का प्रयत्न किया कि अंगरेज़ों का इन धावों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं और कम्पनी सरकार बरमा के महाराजा की सच्ची मित्र है।

---

* Papers relating to East India affairs, *viz*, Discussions with the Burmese Government, p 116, para 23

लॉर्ड मिण्टो के पत्रों मे साफ़ ज़िक्र आता है कि कप्तान कैनिङ्ग ने बरमा में वहाँ के राज के विरुद्ध उपद्रव खड़े करने, बरमा दरबार को अंगरेज़ कम्पनी के साथ सबसीडीयरी सन्धि में फाँसने और बरमा की स्वाधीनता का अन्त करने के अनेक प्रयत्न किए। बरमा की सैनिक शक्ति का पता लगाने में भी कैनिङ्ग ने जासूस का ख़ासा अच्छा काम किया। उसने एक पत्र में लॉर्ड मिण्टो को लिखा :—

बरमा को पराधीन करने की तजवीज़ें

"यदि गवरमेण्ट का यह विचार हो कि बरमा के राज के अन्दर अपना प्रभुत्व क़ायम किया जाय तो निस्सन्देह इसके लिए यह बहुत ही अच्छा अवसर है, क्योंकि वहाँ की सरकार की निर्बलता और लोगों के आम असन्तोष के कारण समस्त देश एक छोटी सी अंगरेज़ी सेना से काबू में आ जायगा।"*

इसका साफ़ मतलब यह है कि कप्तान कैनिङ्ग ने बरमा के लोगों में 'असन्तोष' पैदा करना और वहाँ के महाराजा के विरुद्ध साज़िशें करना शुरू कर दिया। कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम लॉर्ड मिण्टो ने १ अगस्त सन् १८१२ के पत्र में लिखा :—

"कप्तान कैनिङ्ग का यह कहना कि इस समय आवा के राज के साथ युद्ध छेड़ कर अंगरेज़ सरकार अमुक अमुक लाभ उठा सकती है, निस्सन्देह

* ". . . Should it enter into the views of Government to obtain a preponderating influence in the Burmese *dominions*, the present was certainly the most favourable *moment*, as *the* weakness of the Government and *general* discontent of *the people* would put the whole country at the disposal of a very small *British force*."—Minto's Despatch to the Court *of* Directors, 4th March, 1812

युक्ति सङ्गत है । उस देश के समुद्र तट और प्रान्त हमारे हमले के लिए खुले हैं, और उनकी रक्षा का कोई सामान नहीं है । हमारे इलाक़े का केवल एक हिस्सा है जहाँ तक बरमी सेनाएँ पहुँच सकती हैं, उसकी हम आसानी से और सफलता के साथ रक्षा कर सकते है । इसलिए इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि युद्ध में हमें शीघ्र और पूरी तरह विजय प्राप्त होगी ।"*

स्पष्ट है कि कम्पनी सरकार क्या चाहती थी और कप्तान कैनिङ्ग को भेजने का वास्तविक उद्देश क्या था । यह भी स्पष्ट है कि उस समय तक कोई किसी प्रकार का बहाना बरमा दरबार की ओर से युद्ध का न मिल सकता था ।

अन्य छेड़ छाड़

इन धावों और लूट मार के अतिरिक्त और भी कई तरह की छेड़ छाड़ अंगरेज़ों और बरमा के बीच जारी थीं । उदाहरण के लिए कम्पनी ने उन दिनों हाथी का शिकार करने के लिए अनेक लोग अपने यहाँ नौकर रख रक्खे थे । ये लोग बार बार कम्पनी की सरहद के उस पार बरमा की रामू नामक पहाड़ियों में ज़बरदस्ती घुस कर वहाँ से हाथी पकड़ लाते थे । अनेक बार बरमा दरबार के कर्मचारियों ने इनमें से कुछ लोगों को गिरफ़्तार भी किया । फिर भी इस तरह की ज़बरदस्तियाँ बराबर जारी रहीं और सन् १८२१ में भी जारी थीं ।

तिजारती माल के महसूल का झगड़ा

तीसरा एक और झगड़ा तिजारती माल के महसूल के विषय में था । अंगरेज़ों की अनेक माल से लदी हुई किश्तियाँ बरमा की नाफ़ नदी में प्रवेश करती

* Lord Minto to the Directors, 1st August, 1812.

रहती थीं। बरमा के कर्मचारी माल पर बाक़ायदा महसूल माँगते थे। अंगरेज़ यह बहाना लेकर इनकार कर देते थे कि नाफ़ नदी का एक किनारा बरमा के राज में है और दूसरा अंगरेज़ों के राज में।

अन्त में जनवरी सन् १८२३ में अंगरेज़ों की एक नाव ने जिसमें चावल भरे हुए थे, नाफ़ नदी में प्रवेश किया। बरमी अफ़सरों ने महसूल माँगा। नाव वालों ने देने से इनकार कर दिया। इस पर नाव वालों और बरमी अफ़सरों में कुछ झगड़ा हुआ, जिसमें कहा जाता है कि बरमियों ने गोलियाँ चलाईं और अंगरेज़ी नाव का माँझी मारा गया। इस पर अंगरेज़ी सेना ने जाकर शाहपुरी नामक एक बरमी टापू पर क़ब्ज़ा कर लिया। बरमा वालों ने एतराज़ किया, अंगरेज़ों ने न सुना। इस पर बरमा की सेना ने आकर अंगरेज़ों को निकाल कर शाहपुरी के टापू पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया।

दो कम्पनी हिन्दोस्तानी सिपाहियों की कलकत्ते से रवाना की गईं। २१ नवम्बर सन् १८२३ को वे शाहपुरी पहुँचीं। बरमी सेना ने उनका ज़रा भी विरोध न किया। शाहपुरी पर फिर से अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया। ये दोनों कम्पनियाँ, कुछ तोपें कुछ हथियारबन्द किश्तियाँ और कुछ और सेना अब शाहपुरी में छोड़ दी गईं। वहाँ की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए उनमें एक झूठा एलान प्रकाशित कर दिया गया।

कप्तान च्यू की गिरफ़्तारी

बरमा दरबार ने एतराज़ किया। अंगरेज़ों ने कहा कि शाहपुरी का टापू हमारा है। तय हुआ कि सरहद के प्रश्न का निबटारा करने के लिए एक संयुक्त

कमीशन बैठे। कम्पनी सरकार ने अपनी ओर से रॉबर्टसन और चीप दो प्रतिनिधि नियुक्त किए। अराकान के राजा ने, जो बरमा के महाराजा का एक सामन्त था, चार प्रतिनिधि अपनी ओर से नियुक्त करके भेजे। अराकान के प्रतिनिधियों ने एक निहायत उचित तजवीज़ पेश की कि पंचायत के बैठने से पहले दोनों ओर की सेनाएँ एक बार उस टापू से चली आवें। अंगरेज़ प्रतिनिधियों ने इस बात को स्वीकार न किया। मजबूर होकर बरमा के प्रतिनिधि बिना कुछ तय किए अपने देश लौट गए।

इसके बाद बरमा सरकार ने शाहपुरी टापू पर से अंगरेज़ी जहाज़ 'सोफ़िया' के कप्तान च्यू और उसके कुछ आदमियों को किसी अपराध में गिरफ़्तार कर लिया। बरमा दरबार ने अंगरेज़ों से कहला भेजा कि ये लोग उस समय रिहा किए जायँगे जब अंगरेज़ चट्टग्राम से बरमी इलाक़े पर धावा मारने वाले मुख्य मुख्य डाकुओं को बरमा सरकार के हवाले कर दें। अंगरेज़ों ने कोई ध्यान न दिया। मजबूर होकर १३ फ़रवरी सन् १८२४ को बरमियों ने च्यू और उसके साथियों को रिहा कर दिया।

अंगरेज़ बरमा के साथ युद्ध करने के लिए पूरी तैयारी कर चुके थे। कप्तान च्यू की गिरफ़्तारी से उन्हें बहाना मिल गया।

बरमी जाति

किन्तु उस समय के बरमी भारतवासियों की तरह जाति पाँति और मत मतान्तरों में बँटे हुए न थे। उस देश के रहने वाले एक संयुक्त क़ौम थे। सभ्यता के अनेक अंगों में वे उस समय के यूरोप निवासियों से कहीं बढ़े हुए

थे। शिक्षा का प्रचार जितना उस समय उनमें था उतना यूरोप के किसी भी ईसाई देश में न था। वे वीर, महत्वाकांक्षी और युद्ध-प्रेमी थे। उनकी वीरता के विषय में इतिहास लेखक विलसन लिखता है—

"अपनी सरकार की प्रबल और अनियमित सत्ता और लोगों के पराक्रम और आत्म विश्वास के कारण बरमियों को हर लड़ाई में विजय प्राप्त होती थी, और आधी शताब्दी से ऊपर तक प्रत्येक संग्राम में, चाहे बरमियों ने अपने किसी शत्रु पर हमला किया हो, और चाहे किसी शत्रु के हमले का मुक़ाबला किया हो, विजय सदा बरमी सेना की ओर ही रहती थी। पगू पर हमला करने के थोड़े दिनों बाद ही बरमी लोग उस राज के मालिक बन गए। इसके बाद उन्होंने तेनासरई तट के धन सम्पन्न ज़िले स्याम से छीने। चीन ने बरमा पर एक बार ज़बरदस्त हमला किया, किन्तु बरमियों ने बड़ी वीरता के साथ चीनियों के मुँह मोड दिए। अन्त में अराकान, मनीपुर और आसाम के प्रान्त अपने साम्राज्य में मिला कर बरमी लोग उस समस्त तङ्ग, किन्तु दूर तक फैले हुए देश के मालिक बन गए, जो चीन के पश्चिमी प्रान्तों और हिन्दोस्तान की बीच सरहद के बीच में है।"*

* 'The vigorous despotism of the Government, and the confident courage of the people, crowned every enterprise with success, and for above half a century the Burman arms were invariably victorious, whether wielded for attack or defence Shortly after their insurrection against Pegu the Burmans became the masters of that Kingdom They next wrested valuable districts of the Tenasserim coast from Siam They repelled with great gallantry, a formidable invasion from China, and by the final annexation of Arakan, Manipur, and Assam, to the Empire, they established themselves throughout the whole of the narrow, but extensive tract of the country

आसाम पर बरमी शासन

आसाम के अन्दर इससे पूर्व परस्पर झगड़े, विद्रोह और कुशासन फैला हुआ था। बरमा के महाराजा ने सेना भेज कर इन विद्रोहों को शान्त किया और मेंजी महासिल्व नामक एक सरदार को वहाँ का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया। लिखा है कि मेंजी महासिल्व का व्यवहार अपने पड़ोसी अंगरेज़ों के साथ बड़ी मित्रता का था। इस पर भी गवरनर जनरल ने १२ सितम्बर सन् १८२३ के एक पत्र में मेंजी महासिल्व के मित्रता के व्यवहार को स्वीकार करते हुए डाइरेक्टरों को लिखा—"फिर भी जो निर्बल शासन इससे पहले आसाम में था उसकी जगह एक वीर और उसके मुक़ाबले में बलवान शासन का वहाँ क़ायम हो जाना"* अंगरेज़ों के लिए अहितकर है। इसी पत्र में लिखा है कि अंगरेज़ों ने अब आसाम की प्रजा को बरमा दरबार के विरुद्ध भड़काना और उनके साथ साज़िशें करना शुरू कर दिया। विलसन ने भी उस समय के बरमियों की पराक्रमशीलता और आसाम की अवस्था को वर्णन करते हुए लिखा है कि—"एक ऐसे निर्बल राज की

which separates the Western provinces of China along the Eastern boundaries of Hindustan "—*Narrative of the Burmese War*, by H H Wilson, pp 1, 2

* " . . . yet the substitution of a war-like, and comparatively speaking, powerful Government, in the place of the feeble administration that formerly ruled Assam . . . "—Despatch of the Governor-General in Council to the Court of Directors, dated 12th September, 1823

जगह, जिसमें फूट पड़ी हुई थी, एक बलवान और महत्वाकांक्षी पड़ोसी का आ जाना" अंगरेज़ों के लिए ख़तरनाक है।

कहा गया कि बरमा का महाराजा हिन्दोस्तान की विविध रियासतों और ख़ास कर मराठों के साथ मिल कर अंगरेज़ों को भारत से निकालने की तजवीज़ें कर रहा है।

पहले बरमा युद्ध का प्रारम्भ

५ मार्च सन् १८२४ को लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने बरमा दरबार के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया। सर एडवर्ड पैजेट उस समय कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। दो ओर से बरमा पर हमला करने का निश्चय किया गया। एक ज़मीन के रास्ते आसाम की ओर से और दूसरे जलमार्ग से रंगून से होकर। सन् १८२३ के अन्त में अर्थात् युद्ध का एलान करने से महीनों पहले एक अत्यन्त विशाल सेना जनरल कैम्पबेल और कप्तान कैनिङ्ग के अधीन ज़मीन के रास्ते बरमा की सरहद पर भेज दी गई।

सबसे पहले अंगरेज़ों ने सिलहट और मनीपुर के बीच की एक छोटी सी स्वतन्त्र रियासत कछाड़ को अपने क़ाबू में किया। ५ मार्च को युद्ध का एलान किया गया और ६ मार्च सन् १८२४ को कछाड़ के भोले राजा गोविन्दचन्द्र नारिन ने अंगरेज़ों की चालों में आकर अपनी स्वाधीनता एक सन्धि द्वारा उनके हाथ बेच दी। बरमा दरबार अंगरेज़ों के इन समस्त कार्यों को देख रहा था। कछाड़ ही में अंगरेज़ों और बरमी सेना के बीच लड़ाई शुरू होगई। जलमार्ग से रंगून पर क़ब्ज़ा करने के लिए कुछ सेना कलकत्ते से

भेजी गई और कुछ मद्रास से। मद्रास की सेना करनल मैकबीन के अधीन थी जिसमें तीन पलटन गोरे सिपाहियों की और दस हिन्दोस्तानी सिपाहियों की थीं। ये दोनों सेनाएँ मार्ग में मिलकर १० मई सन् १८२४ को रंगून बन्दर के सामने जा पहुँचीं।

रंगून में उस समय कोई क़िलेबन्दी न थी। वहाँ के बरमी शासकों को शायद इतने बड़े अंगरेज़ी जहाज़ी बेड़े की आशा भी न थी। थोड़ी सी गोलाबारी के बाद क़रीब क़रीब बिना संग्राम ही रंगून पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया।

रंगून में अंगरेज़ों के साथ असहयोग

किन्तु रंगून पर क़ब्ज़ा करते ही अंगरेज़ी सेना को एक अत्यन्त विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा। अंगरेज़ों को आशा थी कि रंगून में हमें काफ़ी रसद का सामान, बोझ ले जाने के लिये जानवर और गाड़ियाँ और ऐरावती नदी में आगे बढ़ने के लिए नावें मिल जायँगी, और हम नदी के रास्ते बरमा की राजधानी आवा तक पहुँच सकेंगे। इसके लिए कुछ समय पहले से अंगरेज़ स्याम के बाशिन्दों और ख़ास रंगून के बाशिन्दों के साथ साज़िश कर रहे थे। ऐमहर्स्ट के पत्रों से मालूम होता है कि अंगरेज़ स्याम के लोगों को उकसा कर उनसे यह चाहते थे कि वे दक्खिन की ओर से बरमा पर हमला कर दें, और रंगून निवासियों को यह समझा रहे थे कि आप "रंगूनी" हैं "बरमी" नहीं! किन्तु अंगरेज़ों की ये सब आशायें झूठी साबित हुईं। स्याम निवासी उनके चक्कर में न आए और बरमा दरबार का व्यवहार अपनी समस्त प्रजा के

साथ इतना उदार और अच्छा था कि प्रजा ने अंगरेज़ों के साथ पूरा असहयोग किया।

अंगरेज़ों के रंगून पहुँचते ही रंगून की समस्त प्रजा तुरन्त नगर ख़ाली करके अपने सामान, बाल बच्चों, पशुओं, गाड़ियों और किश्तियों सहित दूर की झाड़ियों में छिप गई। अंगरेज़ी सेना को नगर बिलकुल ख़ाली मिला। यहाँ तक कि रंगून से आगे बढ़ सकना तो दूर रहा, अंगरेज़ी सेना को नगर के अन्दर कहीं एक दाना भी रसद का न मिल सका। इसके अतिरिक्त बरमी सेना ने, जो अपने कार्य में काफ़ी होशियार थी, प्रतिदिन रात को झाड़ियों से निकल निकल कर अंगरेज़ी सेना पर धावे मारने शुरू किए। अंगरेज़ न पीछे हट सकते थे और न आगे बढ़ सकते थे। रंगून में उनके पास खाने के लिए रसद तक न थी। उनकी हालत अत्यन्त करुणाजनक हो गई।

स्नॉडग्रास नामक लेखक लिखता है—

"विशेष कर यह मालूम था कि रंगून में किश्तियाँ बहुत हैं; और बहुतों को यह आशा थी कि × × × रङ्गून शहर से काफ़ी सामान इस तरह का मिल जायगा जिसकी सहायता से हम राजधानी को विजय करने के योग्य काफ़ी सेना नदी के मार्ग से ऊपर भेज सकेंगे, और इस प्रकार हम फ़ौरन् लड़ाई को ख़त्म कर सकेंगे।

× × ×

"अपनी इन योजनाओं में हम यह भूल गए थे कि बरमा दरबार जिन प्रान्तों को विजय कर लेता था उनकी ओर उसकी शासन नीति अत्यन्त

विचारपूर्ण और न्यायपूर्ण होती थी। बरमी क़ौम के वीर और अभिमानी चरित्र का भी हमें इतना कम बोध था कि हम इस बात का ठीक ठीक अनुमान न कर सके कि रंगून में हमारा स्वागत किस तरह का होगा।"*

अंगरेज़ी सेना की दुर्गति

दूसरी ओर जो सेना स्थलमार्ग से बरमा की सरहद पर भेजी गई थी उसकी हालत और भी अधिक ख़राब हुई। लॉर्ड ऐमहर्स्ट के २ अप्रैल सन् १८२४ के एक पत्र में लिखा है कि इस सेना ने आसाम निवासियों को लोभ देकर बरमियों के विरुद्ध भड़काने के पूरे प्रयत्न किए। विलसन लिखता है कि अंगरेज़ी सेना के आसाम में प्रवेश करते ही आसाम निवासियों और आस पास की अन्य जातियों के नाम एक एलान कम्पनी की ओर से प्रकाशित किया गया, जिसमें उनसे झूठे सच्चे वादे करके उन्हें अंगरेज़ों की ओर करने का प्रयत्न किया गया। अंगरेज़ यह सब कतर ब्योंत कर ही रहे थे कि बरमा के महाराजा ने अपने प्रसिद्ध सेनापति महाबंजी बन्दूला के अधीन करीब बारह हज़ार सेना अंगरेज़ों के मुक़ाबले के लिए भेजी।

* "In boats especially Rangoon was known to be well supplied, and it was by many anticipated, . that city would afford the means of pushing up the river a force sufficient to subdue the capital, and bring the war at once to a conclusion

* * *

"But in these calculations, the well considerated power and judicious policy of the Government towards its conquered provinces were overlooked and the warlike and haughty character of the nation was so imperfectly known, that no correct judgement could be formed of our probable reception"—*Narrative of the Burmese War*, by Snodgrass, pp 17, 18

मई सन् १८२४ के शुरू में इस सेना के एक दल ने नाफ़ नदी पार कर रामू पहाड़ से १४ मील दक्खिन में रत्नपुल्लङ्ग नामक स्थान पर डेरे डाले। कम्पनी की विशाल सेना तैयार थी ही, दोनों सेनाओं में एक घमासान युद्ध हुआ, जिसमें अंगरेज़ी सेना के अनेक अफ़सर और असंख्य सिपाही मारे गए। शेष अंगरेज़ी सेना को बुरी तरह हार खाकर पीछे हट आना पड़ा। अंगरेज़ी सेना की इस हार से कलकत्ते मे और वास्तव में समस्त भारत में एक तहलका मच गया। मेजर आरचर लिखता है :—

"कलकत्ते की सरकार को वास्तव में यह डर हो गया कि कहीं बरमी सेना सुन्दरवन के मार्ग से आकर कलकत्ते पर हमला न कर बैठे।"*

कलकत्ते में तहलका

इस पराजय के सम्बन्ध में सर चार्ल्स मेटकॉफ़ ने गवरनर जनरल के नाम ८ जून सन् १८२४ को एक पत्र लिखा जिसके कुछ वाक्य ये हैं :—

"हर समय समस्त भारत हमारे पतन की बाट जोहता रहता है। हर जगह लोग हमारे नाश को देख कर खुशी होंगे × × × और इस तरह के अनेक लोगों की भी कमी नहीं है जो अपनी शक्ति भर हर तरह से हमारे नाश में सहायता देंगे। यदि कभी भी हमारा नाश शुरू हुआ तो सम्भवतः अत्यन्त वेग के साथ और एकाएक होगा। × × × पहाड़ की चोटी से गिर कर खन्दक तक पहुँचने में हमें शायद एक ही क़दम लेना पड़े।

* "The Supreme Government was actually afraid of a Burmese invasion in Calcutta, by way of the Sundarbuns, " —Major Archar

"हमारी हिन्दोस्तानी सेना की वफ़ादारी पर हमारा अस्तित्व निर्भर है, और यह वफ़ादारी हमारी लगातार विजयों पर निर्भर है। × × ×

"बरमियों ने हमारे साथ युद्ध के शुरू ही में वह कर दिखाया जिसकी शायद हमें बिलकुल आशा न थी। पहली विजय का लाभ उनको हुआ और पहली पराजय की आपत्ति हमारी ओर रही, सम्भव है कि इससे × × × संसार की किसी भी दूसरी शक्ति के लिए इतने बुरे नतीजे पैदा न होते जितने हमारे लिए हो सकते हैं। × × ×

"× × × शत्रु की विजय से ढाका में और कलकत्ते तक में वह तहलका मच गया है जो सिराजुद्दौला और ब्लैक होल के समय से लेकर आज तक न हुआ था।

× × ×

"× × × मालूम होता है कि हमारे शत्रु न संख्या में कम हैं और न वीरता में; × × × हमारा समस्त भारतीय साम्राज्य अब सचमुच ख़तरे में है। हमारी हार की ख़बर जङ्गल की आग की तरह फैल जाती है और फ़ौरन् उससे उन करोड़ों मनुष्यों की आशाएँ और कल्पनाएँ जाग उठती हैं जिन्हें हमने पराधीन कर रक्खा है × × × इस आपत्ति से बचने के लिए और उसे अधिक फैलने और अधिक हानि पहुँचाने से रोकने के लिए हमें अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए।"*

---

* "All India is at all times looking out for our downfall. The people everywhere would rejoice, at our destruction; and numbers are not wanting who would promote it by all means in their power Our ruin, if it be ever commenced, will probably be rapid and sudden . From the pinnacle to the abyss might be but one step.

अंगरेज़ी सेना को रामू की पहाड़ी से पीछे भाग कर कई महीने मदरपुर में पड़ा रहना पड़ा। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि यदि बरमी सेनापति महा बन्दूला उस समय अपनी विजयी सेना सहित आगे बढ़ आता तो शायद कलकत्ते और बङ्गाल को विजय कर लेना उसके लिए अधिक कठिन न होता। किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से बन्दूला को उसी समय अपने महाराजा की आज्ञा के अनुसार बजाय आगे बढ़ने के अपनी अधिकांश सेना सहित रंगून की ओर चला जाना पड़ा।

महा बन्दूला की रंगून वापसी

कम्पनी सरकार के पास भारत के नरेशों और भारतीय प्रजा से कमाए हुए धन की कमी न थी। और अधिक सेनाएँ,

---

"The fidelity of our native army on which our existence depends, depends itself *on our* continued success

"The Burmans have commenced the war with us in a manner which perhaps was little expected They have the advantage of first success, and we have the disadvantage of disaster, which is likely to be of worse consequence to us *than it* would be to any *other power* in the world,

" . the progress of the enemy has carried alarm to Dacca and even to Calcutta, where alarm has not been felt from an external enemy since the time of Surajudoula and the Black Hole

* * *

" Our enemies appear not to be deficient in either spirit or numbers, there is real danger to our whole Empire in India The intelligence spreads like wild fire, and immediately excites the hopes and speculations of the millions whom we hold in subjugation Let us put forth our strength to prevent further misfortune, and crush the evil before it be fraught with more extensive injury and greater peril "—Sir Charles Metcalfe's papers to the Governor-General June 8th, 1824

जिनमें अधिकांश हिन्दोस्तानी थे, भारत से बरमियों के नाश के लिए भेजी गईं।

अनक़रीब इसी समय एक और अत्यन्त भीषण घटना हुई, जिसे बयान करने के लिए हमें बरमा युद्ध के प्रसंग से हटना पड़ेगा।

ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के आधार-स्तम्भ

ऊपर के उद्धरण में सर चार्ल्स मेटकॉफ़ ने स्वीकार किया है कि अंगरेज़ों के भारतीय साम्राज्य का मुख्य आधार अंगरेज़ों की हिन्दोस्तानी सेनाएँ हैं। अधिकतर हिन्दोस्तानी सिपाहियों ही के रक्त से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की नींव रक्खी गई, और उन्हीं की वीरता और वफ़ादारी के कारण यह साम्राज्य क़ायम है। वास्तव में हिन्दोस्तानी सिपाहियों के गुण ही उनके देश की स्वाधीनता के लिए घातक सिद्ध हुए। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक लैकी लिखता है—

"जो जाति आज्ञा मानने वाली, विनीत और राजभक्त होती है, वह अपने इन्हीं गुणों के कारण दूसरों के स्वेच्छाचारी शासन का शिकार बन जाती है।"*

अंगरेज़ इतिहास लेखकों और अंगरेज़ शासकों ने हिन्दोस्तानी सिपाहियों के इन गुणों की सदा मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। फिर भी हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ उनके अंगरेज़ मालिकों ने प्रायः कभी भी उचित व्यवहार नहीं किया। बरमा युद्ध के

हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ अनुचित व्यवहार

* "A people who are submissive, gentle and loyal, fall by reason of these very qualities under a despotic Government."—Lecky

दिनों में भी हिन्दोस्तानी और अंगरेज़ सिपाहियों के साथ दो तरह का व्यवहार होता था। उदाहरण के लिए प्रत्येक अंगरेज़ रङ्गरूट को भरती होते ही बाउण्टी की एक रक़म मिलती थी, हिन्दोस्तानी सिपाही को भरती के समय कुछ न मिलता था। अंगरेज़ सिपाहियों को छावनियों में रहने के लिए बनी बनाई बारग मिलती थी, हिन्दोस्तानी सिपाहियों को अपने झोपड़े खुद बनाने पड़ते थे। अंगरेज़ सिपाहियों के लिए फ़ौज का ऊँचे से ऊँचा ओहदा खुला हुआ था, किन्तु तीन लाख देशी सिपाहियों में से कभी कोई सूबेदार मेजर से बढ़ कर रुतबा प्राप्त न कर सकता था। देशी सिपाहियों की बन्दूकें गोरे सिपाहियों की बन्दूकों की अपेक्षा अधिक भारी होती थीं। बन्दूकें और साठ कारतूसों के अतिरिक्त हर देशी सिपाही को एक भारी थैला अपने कन्धे पर ले जाना पड़ता था, जिसमें उसकी सारी आवश्यक चीज़ें होती थीं। अंगरेज़ सिपाहियों को कोई बोझ न ले जाना पड़ता था। दोनों की तनख़ाह, फ़रलो, पेनशन और भत्ते के क़ायदों में बहुत बड़ा अन्तर था। एक स्थान से दूसरे स्थान बदली होने पर देशी सिपाहियों को अपने रहने का प्रबन्ध अपने ख़र्च से करना होता था, गोरे सिपाहियों को नहीं। देशी सिपाहियों के धार्मिक और सामाजिक भावों का बहुत कम ख़याल रक्खा जाता था। उनसे अंगरेज़ सिपाहियों की अपेक्षा कई गुना अधिक काम लिया जाता था।

बङ्गाल के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ बम्बई और मद्रास के हिन्दोस्तानी सिपाहियों से भी अधिक बुरा व्यवहार किया जाता

था। बङ्गाल के सिपाहियों की इन विशेष शिकायतों की गाथा कुछ लम्बी और हमारे प्रसंग से बाहर है।

हिन्दोस्तानी सिपाहियों की शिकायतें

बङ्गाल के हिन्दोस्तानी सिपाहियों की यह सब शिकायतें दिन प्रति दिन बढ़ती चली गईं। अनेक बार ये शिकायतें अंगरेज़ अफ़सरों के सामने पेश की गईं, किन्तु किसी ने इन पर ध्यान न दिया। इस परिस्थिति में बैरकपुर की ४७ नम्बर देशी पलटन को बरमा जाने की आज्ञा दी गई। इन सिपाहियों को जब कभी एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की आज्ञा मिलती थी तो उन्हें अपने सामान के लादने ले जाने का ख़र्च अपने पास से देना पड़ता था और स्वयं ही उसका प्रबन्ध करना होता था; जब कि इतिहास लेखक थॉर्नटन लिखता है कि गोरे सिपाही ऐसे अवसरों पर "अपना थैला भी स्वयं लेकर न चलते थे।" सर मॉर्क कबन स्वीकार करता है कि सन् १८५८ तक हिन्दोस्तानी सिपाहियों का थैला इतना भारी होता था कि वह उनकी जान का बवाल बन गया था।*

बैरकपुर का हत्या काण्ड

इतिहास लेखक थॉर्नटन लिखता है कि बैरकपुर की हिन्दोस्तानी पलटन को जब कूच की आज्ञा दी गई तो सामान के ले जाने के लिए उन्हें बैल गाड़ियाँ तक न मिल सकीं। सिपाहियों ने अपने अंगरेज़

* "The present knapsack . . . is the curse of the native army."—Sir Mark Cubbon, K. C. B. 1858

अफ़सरों से मदद माँगी। जवाब मिला कि तुम्हें अपना प्रबन्ध स्वयं करना होगा। इस सब के अतिरिक्त कहा गया कि इस पलटन को समुद्र के रास्ते कलकत्ते से रंगून जाना होगा। पलटन के सिपाही सब उच्च जाति के हिन्दू थे। इन लोगों ने केवल भारत के अन्दर स्थल सेवा के लिए कम्पनी की नौकरी की थी। समुद्रयात्रा करने पर वे सदा के लिए अपनी जाति से बाहर कर दिए जाते। सिपाहियों ने अपनी सब शिकायतों की एक लम्बी, किन्तु विनयपूर्ण अरज़ी लिख कर कमाण्डर-इन-चीफ़ को सेवा में भेजी। किन्तु इस पर भी कुछ ध्यान न दिया गया। लिखा है कि इन सभी सिपाहियों ने तुलसी और गंगाजल हाथ में लेकर इस बात की शपथ खाई कि हममें से कोई जहाज़ के ऊपर पैर न रक्खेगा। वे खुश्की पर कहीं भी जाने और लड़ने के लिए तैयार थे।

३० अक्तूबर सन् १८२४ को सारी पलटन परेड के लिए बुलाई गई। उनके थैले उस समय उनके कन्धों पर न थे। थैले फट चुके थे, उन्होंने अपनी शिकायतें कमाण्डिङ्ग अफ़सर के सामने पेश कीं। न उन्हें कोई जवाब दिया गया और न उनकी कोई शिकायत दूर की गई। उस दिन परेड बरख़ास्त कर दी गई। कलकत्ते में कमाण्डर-इन-चीफ़ को सूचना दी गई। फ़ौरन् दो पलटन पैदल गोरे सिपाहियों की, एक तोपख़ाना और कुछ गवरनर जनरल की बॉडी गार्ड सेना कलकत्ते से बैरकपुर भेजी गई।

पहली नवम्बर को सवेरे ४७ नम्बर हिन्दोस्तानी पलटन को फिर परेड के लिए बुलाया गया। परेड पर आते ही एकाएक इन

लोगों ने देखा कि उनके चारों ओर गोरी पलटनें खड़ी हुई हैं। हिन्दोस्तानी सिपाहियों से कहा गया कि या तो जहाँ कहा जाय, कूच के लिए राज़ी हो और या हथियार रख दो। इन लोगों को अभी तक यह मालूम न था कि भरा हुआ तोपख़ाना गोरी पलटनों के पीछे तैयार खड़ा है। वे कुछ समझे और कुछ न समझे। सर जॉन के लिखता है कि उन्हें किसी तरह की सूचना नहीं दी गई और न सावधान किया गया। फ़ौरन् तोपख़ाने के पीछे से उनके ऊपर गोले बरसने शुरू हो गए। असहाय हिन्दोस्तानी सिपाही इतना डर गए कि अपने हथियार फेंक कर वे नदी की ओर भागे। अधिकांश वहीं खेत हुए, कुछ नदी में डूब गए और जो बच निकले उन्हें बाद में कमाण्डर-इन-चीफ़ की आज्ञा से फाँसी पर लटका दिया गया। के लिखता है कि इन लोगों ने अपनी ओर से शस्त्र चलाने का ज़रा भी प्रयत्न न किया; उन्हें इसका विचार तक न था; उनकी बन्दूकें तक ख़ाली थीं। के लिखता है कि सम्भवतः उस समय के अंगरेज़ अफ़सरों का उद्देश इस प्रकार समस्त हिन्दोस्तानी सेना के दिलों में अंगरेज़ी सत्ता की धाक जमा देना होगा। के यह भी लिखता है कि इस हत्या काण्ड की ख़बर उन हिन्दोस्तानी सेनाओं तक पहुँच गई, जो बरमा की सरहद की ओर भेजी जा चुकी थीं और उनके दिलों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

बाद में उस पलटन का नाम हिन्दोस्तान की पलटनों की सूची से काट दिया गया।

मेटकॉफ़ लिखता है—

"अपनी सेनाओं को अपने ही तोपख़ाने से उड़ा देना, ख़ास कर उन सेनाओं को, जिनकी वफ़ादारी पर हमारे साम्राज्य का अस्तित्व निर्भर है, अत्यन्त भीषण कार्य है।"*

बैरकपुर के इस हत्याकाण्ड की ओर संकेत करते हुए प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने हाल में लिखा था—

"आज हम लोगों के समय तक वह कपटी निष्ठुर शासन बराबर जारी है जो देश की पराधीनता को क़ायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए देशी सिपाहियों ही का उपयोग करता है—इसी निष्ठुर शासन के नीचे अभी बहुत अधिक वर्ष नहीं हुए कि देशी सिपाहियों की एक पूरी पलटन इसलिए जान बूझ कर बध कर डाली गई, क्योंकि सिपाहियों ने बिना उचित कपड़ों के कूच करने से इनकार किया।"†

बरमा में कम्पनी की साज़िशें

अब हम फिर बरमा युद्ध की ओर आते हैं। अंगरेज़ों ने जब देख लिया कि केवल वीरता या युद्ध कौशल के बल हम बरमियों को विजय नहीं कर सकते, तो उन्होंने बरमी साम्राज्य के विविध प्रान्तीय शासकों और वहाँ की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए पानी की

---

* "It is an awful thing to mow down our own troops with our own artillery, specially those troops on whose fidelity the existence of our Empire depends."—Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalfe*, p. 153.

† "Down to our own day continues the cunning despotism which uses native soldiers to maintain and extend native subjection—a despotism under which, not many years since a regiment of sepoys was deliberately massacred for refusing to march without proper clothing."—Herbert Spencer.

तरह धन बहाना शुरू कर दिया। विलसन लिखता है कि ८ अगस्त सन् १८२४ को डल्ला नामक बरमी ज़िले के लोगों को बरमा दरबार के विरुद्ध भड़का कर अपनी ओर मिलाने के लिए करनल कैली को डल्ला भेजा गया। विलसन यह भी लिखता है कि रंगून की अंगरेज़ी सेना ने जब यह देखा कि आवा की ओर बढ़ सकना असम्भव है तो उसने समुद्र तट के कुछ प्रान्तों को अपनी ओर करना चाहा। इसके लिए तेनासई का ज़िला, जिसमें टैवाय और मरगुई शामिल हैं, चुना गया। २० अगस्त को रंगून से कुछ सेना तेनासई की ओर गई। पहली सितम्बर को यह सेना तेनासई पहुँची। लिखा है कि क़िले के अन्दर की संरक्षक बरमी सेना के एक मातहत बरमी अफ़सर ने अंगरेज़ों से मिल कर अपने सेनापति अर्थात् क़िलेदार और उसके कुटुम्बियों को स्वयं गिरफ़्तार करके अंगरेज़ों के हवाले कर दिया और अंगरेज़ों ने बिना संग्राम नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। मालूम नहीं कि उस मातहत बरमी अफ़सर को इस विश्वासघात का क्या इनाम दिया गया ?

महाबन्दूला की मृत्यु

इसी प्रकार की और भी कई लड़ाइयाँ हुईं, जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है और जिनमें से अधिकांश में ऐसी ही रिशवतों और साज़िशों के बल अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की। निस्सन्देह कूटनीति में वीर बरमी भी अंगरेज़ों से टक्कर न ले सके। इन्हीं पराजयों का हाल सुन कर महा बन्दूला को अराकान छोड़ कर रंगून की ओर लौटना पड़ा था। इतने ही में बरमा के दुर्भाग्य से



महाबन्दूला

[रामानन्द चट्टोपाध्याय, एडीटर 'माडर्न रिव्यु', कलकत्ता,
की कृपा द्वारा एक प्रचलित चित्र से]

महा बन्दूला पहली अप्रैल सन् १८२५ को दूनूब्यू के किले में शत्रु का मुक़ाबला करते हुए एक बम के फूटने के कारण अचानक वीर गति को प्राप्त हुआ। बन्दूला की मृत्यु बरमा दरबार के लिए अत्यन्त अशुभ सूचक थी। अनेक अंगरेज़ लेखकों ने बन्दूला की देशभक्ति, उसकी स्वामिभक्ति, उसकी वीरता और उसके युद्ध कौशल की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। मेजर स्नॉड ग्रास लिखता है कि दूनूब्यू में बन्दूला ने यह कह दिया था कि मैं या तो शत्रु पर पूर्ण विजय प्राप्त करूँगा और या इसी प्रयत्न में प्राण दे दूँगा।

सुलह के लिए अंगरेज़ों की उत्कण्ठा

मालूम होता है कि अंगरेज़ इस समय युद्ध बन्द करने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे। यद्यपि उस समय तक अंगरेज़ बरमी साम्राज्य के कई प्रान्तों में विद्रोह खड़े करवा चुके थे। फिर भी वे बरमियों की वीरता से लाचार हो गये थे। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि अंगरेज़ों ने अब अपनी ओर से सुलह की इच्छा प्रकट की, इस शर्त पर कि बरमा दरबार अंगरेज़ों की उस समय तक की हानि को पूरा कर दे।

विलसन लिखता है—

"उस समय बहुत सी ऐसी अफ़वाहें उड़ी हुई थीं जिनसे आशा की जाती थी कि हमारा सुलह का प्रयत्न सफल होगा। कहा जाता था कि बरमी साम्राज्य के अनेक भागों में विद्रोह खड़े हो गए हैं, और मालूम होता है कि यह अफ़वाह भी दूर दूर तक फैल गई थी कि बरमा का

महाराजा गद्दी से उतार दिया गया है। ये सब खबरें झूठी साबित हुईं × × ×।"*

बरमा दरबार ने अंगरेज़ों की शर्तों को स्वीकार न किया और लड़ाई जारी रही।

अंगरेज़ों ने दूसरी बार सुलह के लिए कोशिश की। इस बार एक बरमी पुरोहित से, जिसे राजगुरु कहते थे, अंगरेज़ सेनापति की ओर से एक पत्र बरमा के महाराजा के नाम राजधानी आवा भेजा गया। इस पत्र में अंगरेज़ सेनापति ने अपनी ओर से सुलह की तत्परता प्रकट की। राजगुरु के प्रयत्न से कुछ दिनों के लिए लड़ाई बन्द हो गई और ३० दिसम्बर सन् १८२५ की शाम को दोनों ओर के प्रतिनिधियों में बातचीत शुरू हुई। २ जनवरी सन् १८२६ तक एक सन्धिपत्र तैयार कर लिया गया, जिसमें यह भी तय हो गया कि कम से कम १८ जनवरी तक युद्ध बन्द रहे। किन्तु बरमा के महाराजा ने इस सन्धिपत्र को भी स्वीकार न किया और लड़ाई फिर शुरू हो गई।

इस बीच उत्तरी भारत के अन्दर एक और विशेष घटना हुई जिसका बरमा युद्ध पर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। इस घटना को बयान करने के लिये हमें फिर थोड़ी देर के वास्ते बरमा युद्ध के वृत्तान्त को छोड़ देना होगा।

भरतपुर के ऐतिहासिक क़िले के सन्मुख लॉर्ड लेक की पराजय

* *Narrative of the Burmese War*, p. 199

का वर्णन पहले किया जा चुका है। इसी असफलता के विषय में सन् १८१४ में मेटकॉफ़ ने लिखा था—

भरतपुर का पतन

"भरतपुर में चार बार के हमले और बङ्गाल और बम्बई की संयुक्त सेनाओं की हद दरजे की कोशिशें भी सफल न हो सकीं × × ×।"

भरतपुर की हार अंगरेज़ों के दिल में काँटे की तरह खटक रही थी। मेटकॉफ़ ने दुख के साथ लिखा है कि—"हमारी सैनिक कीर्ति का अधिकांश भाग भरतपुर में ही दफ़न हो गया।" खास कर दोआब और उत्तरी भारत में उस हार ने अंगरेज़ों की कीर्ति को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। अंगरेज़ बराबर अपनी उस ज़िल्लत को धोने का मौक़ा ढूँढ़ रहे थे। बरमा युद्ध की हारों ने और भी आवश्यक कर दिया था कि अंगरेज़ कहीं न कहीं कुछ करके दिखला दें।

सन् १८२५ में भरतपुर के महाराजा की मृत्यु हुई। दो चचेरे भाइयों में गद्दी के लिए झगड़ा हुआ। लॉर्ड ऐमहर्स्ट को मौक़ा मिला। उनमें से एक उम्मेदवार राजा बलवन्तसिंह का पक्ष लेकर कम्पनी का कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल कॉटन पच्चीस हज़ार सेना और बहुत सी तोपें साथ लिए १० दिसम्बर सन् १८२५ को भरतपुर के क़िले के सामने जा पहुँचा। जिस भरतपुर की दीवारों ने बीस वर्ष पहले लॉर्ड लेक और उसकी विशाल सेना के दाँत खट्टे कर दिए थे, वह भरतपुर एक दिल और एक मत था, किन्तु आज भरतपुर का दरबार फूट का घर बना हुआ था। राजा बलवन्तसिंह

और उसके साथी यानी क़रीब आधा भरतपुर इस समय विदेशियों की विजय में सहायक था। हाथरस के क़िले से अंगरेज़ों को भरतपुर के क़िले की रचना का भी काफ़ी पता चल चुका था। फिर भी सवा महीने तक भरतपुर का मुहासरा जारी रहा। सवा महीने के मुहासरे के बाद १८ जनवरी सन् १८२६ को भरतपुर का ऐतिहासिक क़िला एक बार अंगरेज़ी सेना के हाथों में आ गया। इतिहास लेखक करनल मालेसन अपनी पुस्तक "डिसाइसिव बैटल्स ऑफ़ इण्डिया" में लिखता है कि भरतपुर की इस लड़ाई में अंगरेज़ों के १०५० आदमी मरे और ज़ख्मी हुए, जिसमें सात अफ़सर मरे और ४१ अफ़सर घायल हुए।

करनल स्किनर लिखता है कि भरतपुर के क़िले को विजय करने में अंगरेज़ों ने जिस तरह की सुरङ्गों से काम लिया उस तरह की सुरङ्गें लगाना उन्होंने मराठों से सीखा था। एक दूसरा अंगरेज़ वेल्स लिखता है कि उन दिनों भारतवासियों में यह अफ़वाह गरम थी कि अंगरेज़ों ने भरतपुर का क़िला भीतर की सेना के कुछ लोगों को रिशवतें देकर धन के बल विजय किया।*

रिशवतों से भरतपुर विजय

भरतपुर के इस संग्राम के औचित्य के विषय में मेटकॉफ़ स्वीकार करता है कि अंगरेज़ों को भरतपुर की गद्दी के मामले में

---

* "Even after it was taken, no native would believe it was captured by storm, and to the last hour of my residence in India, they persisted in asserting that it was bought, not conquered "—Welsh's *Military Reminiscences*, vol ii, pp 240, 241

दख़ल देने का कोई अधिकार न था और न इस विषय की कोई सन्धि अंगरेज़ों और भरतपुर के बीच हुई थी। मेटकॉफ़ यह भी साफ़ लिखता है कि भरतपुर पर हमला करना केवल इसलिए आवश्यक था, क्योंकि पिछली हार की ज़िल्लत को धोना और फिर से अंगरेज़ी सत्ता की धाक जमाना उस समय अंगरेज़ों के लिए ज़रूरी था।* सम्भव है कि गद्दी का झगड़ा भी अंगरेज़ों ही का खड़ा किया हुआ हो और उसे बढ़ाने में "गुप्त उपायों" से खूब काम लिया गया हो। भरतपुर के क़िले के इस समय के पतन से भारत में कम्पनी का इलाक़ा नहीं बढ़ा, किन्तु कम्पनी की सैनिक कीर्ति अवश्य फिर से क़ायम हो गई।

नगर पर अत्याचार

भरतपुर के पतन के बाद गोरे अफ़सरों और सिपाहियों ने नगर के असहाय लोगों के ऊपर जो अत्याचार किए उनका कुछ अनुमान नीचे लिखे दो उद्धरणों से किया जा सकता है। मेजर आरचर २६ जनवरी सन् १८२८ को लिखता है —

"हम लोगों के खाना खाने के बाद कुछ भाँड आए, और उन्होंने हमारी भरतपुर विजय की अत्यन्त हास्योत्पादक नक़ल करके हमें हँसाया। इस

* "It is acknowleged as a general principle, that *we ought not to interfere in the internal affairs of other states*,

* * *

" the capture of Bharatpur, . . would do us more honour throughout India, by the removal of the hitherto unfaded impressions caused by our former failure, than any other event that can be conceived "—Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalfe*, pp. 122-131

नक़ल में उन्होंने यह दिखलाया कि अंगरेज़ों ने इतनी बेदर्दी के साथ नगर को लूटा कि लोगों के सरों से बाल तक उखाड़ लिए ।"*

कप्तान मण्डी इसी तरह की एक दूसरी घटना का ज़िक्र करता है, जिससे मालूम होता है कि अंगरेज़ों ने भरतपुर विजय के बाद वहाँ के निर्धन किसानों तक को बड़ी निर्दयता के साथ लूटा ।

धन वसूल करने का तरीक़ा

बरमा युद्ध और भरतपुर के संग्राम का ख़र्च पूरा करने के लिए लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने भारत के विविध नरेशों से क़र्ज़ के नाम पर ख़ूब धन वसूल किया । जॉन मैलकम लडलो लिखता है—

"देशी नरेशों को खुल्लम खुल्ला लूटने का समय वारन हेस्टिंग्स के साथ ख़त्म हो गया था । फिर भी इस समय देखा जाता है कि इन नरेशों से क़र्ज़ लेने की प्रथा बेहद फैली हुई थी । सन् १८२९ के अन्त में अवध के बादशाह ने अंगरेज़ों को दस लाख पाउण्ड क़र्ज़ दिए; और अगले साल, दो साल के लिए, पाँच लाख पाउण्ड फिर क़र्ज़ दिए । सींधिया की मृत्यु के बाद महारानी बैजाबाई ने आठ लाख पाउण्ड क़र्ज़ दिए और आम तौर पर जो कर्ज़ लिए गए उनसे मालूम होता है कि छोटे छोटे नरेशों ने भी अपना हिस्सा अदा किया । नागपुर के राजा ने पचास हज़ार पाउण्ड दिए । बनारस के राजा ने बीस हज़ार पाउण्ड, यहाँ तक कि अभागे पदच्युत पेशवा बाजीराव ने भी एक ख़ासी बड़ी रक़म बतौर क़र्ज़ अपनी पेनशन से बचा कर अंगरेज़ों को दे दी ।"†

* *Tours in Upper India*, p 101

† "The time for openly plundering native princes was gone with Warren Hastings One observes, however, at this time, the extreme

अनक़रीब इसी समय इसी तरह के उपायों से लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने अलवर की रियासत को भी अपने अधीन कर लिया।

भरतपुर के पतन के समाचार ने बरमा दरबार की हिम्मतों पर भी अपना असर डाला। उस दरबार के कई सामन्तों को इस बीच अंगरेज़ अपनी साजिशों द्वारा तोड़ चुके थे। अन्त में यन्दाबू नामक स्थान पर अंगरेज़ कम्पनी और बरमा दरबार के बीच सन्धि हो गई। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि इस युद्ध में दोनों पक्षों को गहरी हानि उठानी पड़ी। अंगरेज़ों को बेहद धन ख़र्च करना पड़ा और उनकी ओर असंख्य जानें गईं। बरमा दरबार की धन और जन की हानि के अतिरिक्त उस साम्राज्य के कई सामन्त नरेश जो बरमा दरबार को ख़िराज देते थे और जिनके प्रान्त उस साम्राज्य का एक अंग थे, अब सदा के लिए उससे पृथक हो गए।

बरमा के साथ सन्धि

बरमा युद्ध के पश्चात् लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने दिल्ली जाकर मुग़ल सम्राट से भेंट करने का विचार किया। इस भेंट में लॉर्ड ऐमहर्स्ट

prevalence of the practice of obtaining loan from them. At the end of 1825, the King of Oudh lends £ 10,00 000 sterling £ 5,00 000 for two years the next year. The Baiza Bai, after Scindhia's decease, lent £ 8 00,000. In the general loans which were contracted, we find smaller chiefs contributing their quota, the Raja of Nagpur £ 50 000, the Raja of Benares £ 20,000, even the unfortunate Baji Rao, the Ex-Peshwa refunding a very considerable sum for the purpose out of the savings from his pension. —John Malcolm Ludlow in his *British India* vol ii, p 63

का एक मात्र उद्देश यह था कि दिल्ली सम्राट को भारत और संसार की नज़रों से गिरा दिया जाय। उस समय तक अंगरेज़ दिल्ली सम्राट की प्रजा समझे जाते थे और स्वयं दिल्ली सम्राट को भारत का सम्राट और अपने को उसकी प्रजा स्वीकार करते थे। ऐमहर्स्ट ने यह चाहा कि इस विचार का अब धीरे धीरे अन्त कर दिया जाय। सम्राट से इस तरह की भेंटों की जो पुरानी रीति चली आती थी, जिसके अनुसार उस समय तक के गवरनर जनरल और अन्य समस्त भारतीय नरेश दिल्ली सम्राट से भेंट किया करते थे, ऐमहर्स्ट ने उसे बदलकर नई रीति बरतना चाहा।

दिल्ली सम्राट का अपमान

लिखा है कि सम्राट अकबरशाह को पहले से राज़ी कर लेने के लिए उससे यह साफ़ झूठा वादा किया गया कि यदि आप इस तरीके को स्वीकार कर लगे तो लॉर्ड लेक ने आपके पिता सम्राट शाहआलम से जो कुछ वादे किए थे, कम्पनी उन सब को तुरन्त पूरा कर देगी और इस नए तरीक़े की भेंट से आपके प्राचीन आदाब व अलक़ाब में कोई फ़रक़ न आएगा।* सम्राट अकबरशाह ने स्वीकार कर लिया।

लॉर्ड ऐमहर्स्ट १५ फ़रवरी सन् १८२७ को दिल्ली पहुँचा। १७ फ़रवरी को सम्राट और ऐमहर्स्ट में भेंट हुई। "सम्राट तख़्त ताऊस पैर बैठा हुआ था ऐमहर्स्ट सम्राट के सामने दाहिनी ओर एक

* *Tours in Upper India*, by Major Archer, p. 347

शाही कुरसी पर बैठा। ऐमहर्स्ट का रुख़ सम्राट की बाईं ओर था। रेज़िडेण्ट और सब अफ़सर और समस्त बड़े बड़े दरबारी खड़े हुए थे।"*

सम्राट ने अपनी सारी शिकायतें और कम्पनी के वादे लॉर्ड ऐमहर्स्ट के सामने बयान किए; किन्तु लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने बजाय इन शिकायतों और वादों की ओर ध्यान देने के सम्राट के "आदाब व अलक़ाब" को भी बदल दिया और अपने इस उद्धत व्यवहार से असहाय सम्राट को दरबारियों की नज़रों में नीचा दिखाया। ऐमहर्स्ट ने सम्राट पर प्रकट कर दिया कि कम्पनी के समस्त वादे केवल राजनैतिक चालें थीं। इसके बाद सम्राट के साथ पत्र व्यवहार करने में भी अंगरेज़ों ने पुराने आदाब व अलक़ाब का बरतना बन्द कर दिया।

सम्राट अकबरशाह का चित्त इस घटना से इतना दुखी हुआ कि बाद में इन्हीं सारी बातों की शिकायत के लिए लॉर्ड लेक का दस्तख़ती "इक़रारनामा" देकर अकबरशाह ने सुप्रसिद्ध राजा राममोहन राय को इङ्गलिस्तान भेजा, किन्तु वहाँ कौन सुनता था।

पीटर आबर नामक एक अंगरेज़ लिखता है कि इस मुलाक़ात से लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने—

दिल्ली में गहरा शोक

> "इससे पूर्व की इस कल्पना का अन्त कर दिया कि अंगरेज़ सरकार दिल्ली के सम्राट की प्रजा है। अत्यन्त

* *Punjab Government Records, Delhi Residency and Agency, 1807-1857* vol i, p 338.

स्वाभाविक था कि इस घटना ने उस समय ज़बरदस्त सनसनी पैदा कर दी, क्योंकि यह पहला अवसर था जब कि हमने खुले और निश्चित तौर पर ब्रिटिश सत्ता की स्वाधीनता का प्रतिपादन किया। लोग आम तौर पर यह कहते थे कि हिन्दोस्तान का ताज दिल्ली सम्राट के सर से उठा कर अब अंगरेज़ क़ौम के सिर पर रख दिया गया।

"कहा जाता है कि शाही ख़ानदान और उसके आश्रितों ने इस घटना पर गहरा शोक मनाया। उन्होंने अनुभव किया कि इससे पहले उन्हें मराठों के कारण और तकलीफ़ें चाहे कुछ भी क्यों न सहनी पड़ी हों, किन्तु मराठे दिल्ली सम्राट को सदा समस्त भारत का न्याय्य अधिराज स्वीकार करते रहे। अब पहली बार उनका यह रुतबा भी छीन लिया गया।"*

निस्सन्देह दिल्ली सम्राट का इस प्रकार का निरादर चुपचाप सहन कर लिया जाना इस बात को साबित करता है कि उस समय भारतवासियों में राष्ट्रीय आत्माभिमान का शोकजनक अभाव था।

यह भी कहा जाता है कि सन् १८२७ की यह घटना ३० वर्ष बाद के ग़दर के कारणों में से एक कारण थी।

भारत सम्राट का मान भङ्ग करने के बाद मानी ऐमहर्स्ट ने शिमले में गर्मियाँ गुज़ारी। इसके बाद मार्च सन् १८२८ में ऐमहर्स्ट ने इङ्गलिस्तान की राह ली।

---

* Peter Auber in his *Rise and Progress of the British Power in India*, Vol ii p 606

चौंतीसवाँ अध्याय

लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क

[१८२८—१८३५]

कम्पनी की शासन नीति

स्वयं लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क ने एक स्थान पर मुसलमान नरेशों और उस समय के अंगरेज़ी शासन की तुलना इस प्रकार की है—

"कई बातों में मुसलमानों का शासन हमारे शासन से बेहतर था; मुसलमान जिन देशों को विजय करते थे उन्हीं में बस जाते थे, वे देशवासियों के साथ मेल जोल और विवाह सम्बन्ध पैदा कर लेते थे, देशवासियों को हर तरह के अधिकार दे देते थे; इन विजेताओं को शासितों के हित में अपना हित दिखाई देता था और दोनों के हृदयों में एक

ही तरह के भाव उत्पन्न होते थे। इसके विरुद्ध हमारी नीति इसके ठीक विपरीत रही है—अर्थात् स्नेह शून्य, स्वार्थमय और निर्दय।"*

किन्तु लॉर्ड विलियम बेरिटङ्क का अपना शासन उतना ही 'स्नेहशून्य, स्वार्थमय और निर्दय' था जितना किसी भी दूसरे गवरनर जनरल का।

गवरनर जनरल बनने से पहले बेरिटङ्क कुछ दिनों मद्रास का गवरनर रह चुका था। उस समय बेरिटङ्क ने, अपनी कौन्सिल के एक प्रमुख सदस्य विलियम थैकरे की लेखनी द्वारा भारत में अंगरेज़ों की शासन नीति को इन स्पष्ट शब्दों में बयान किया था—

"इङ्गलिस्तान के अन्दर यह बहुत ही उचित है कि वहाँ की भूमि से जितनी पैदावार हो, उसका एक विशेष भाग कुछ ख़ास ख़ास कुटुम्बों को ख़ुशहाल और धनसम्पन्न बनाए रखने में ख़र्च किया जाय, ताकि उनमें से देश की सेवा और रक्षा के लिए शासन सभाओं के सदस्य, तत्ववेत्ता और वीर योधा उत्पन्न हो सकें × × ×। इस प्रकार की आमदनी के प्रताप से जो अवकाश, जो आज़ादी और जो उच्च विचार मनुष्य में पैदा होते हैं उन्हीं के बल इस श्रेणी के लोगों ने इङ्गलिस्तान को गौरव के शिखर तक पहुँचाया है। ईश्वर करे कि वे चिरकाल तक इस आनन्द को भोगते रहें;—किन्तु भारत में उस गर्व को, उस स्वाधीनता को और उस तरह के

* "In many respects the Mohammadens surpassed our rule, they settled in the countries which they conquered, intermixed and intermarried with the natives they admitted them to all privileges, the interests and the sympathies of the conquerors and the couquered became identified Our policy, on the contrary, has been the reverse of this,—cold, selfish and unfeeling"—Lord William Bentink.

गम्भीर विचारों को जो प्रायः अधिक धन के कारण उत्पन्न होते हैं, दबा देना आवश्यक है। ये चीज़ें हमारी सत्ता और हमारे हित के स्पष्ट विरुद्ध हैं × × ×। हमें यहाँ सेनापतियों, राजनीतिज्ञों और क़ानून बनाने वालों की ज़रूरत नहीं है, हमें इस देश मे केवल परिश्रमी किसानों की आवश्यकता है।"*

शुरू से ही कम्पनी के भारतीय शासन की यही निश्चित नीति थी। इस नीति को सामने रख कर गवरनर-जनरल बेंटिङ्क की काररवाइयों को समझना अत्यन्त सरल होगा।

अंगरेज़ सरकार की निश्चित नीति

एक दूसरा निष्पक्ष अंगरेज़ फ्रेड्रिक शोर लॉर्ड बेंटिङ्क के समस्त शासन काल का सार वर्णन करते हुए लिखता है—

"× × × उसके नेक इरादों से भारत की ब्रिटिश सरकार के मूल सिद्धान्त में कभी भी अन्तर नहीं पड़ने पाया, वह सिद्धान्त यह है कि हिन्दोस्तान के लोगों से धन चूस कर अपने को और अपने (इङ्गलिस्तान निवासी) मालिकों को धनवान बनाया जाय × × × रसद और बेगार की

* "It is very proper that in England, a good share of the produce of the earth should be appropriated to support certain families in affluence, to produce *senators*, sages, and heroes for the service and *defence* of the state, . The leisure, independence and high *ideas*, *which the* enjoyment of this rent affords, has enabled *them to raise* Britain to the pinnacle of glory Long may they enjoy *it*,—*but in India*, *that* haughty spirit independence, and deep thought, which the possession of great wealth sometimes gives, ought to be suppressed They are directly adverse to our power and interest We do not want generals, statesmen, and legislators, we want industrious husbandmen"—Minute of Mr William Thackeray Member Madras Council

घृणित प्रथाएँ अभी तक पूरे ज़ोरों पर जारी हैं। चुङ्गी और महसूलों की कष्टकर प्रणाली से देश का व्यापार और उद्योग धन्धे दिन प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं, और यह प्रणाली अभी तक जारी है। × × × लोग न पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हैं और न अधिक धनी—वास्तव में लोगों की दरिद्रता बढ़ती जा रही है—क्योंकि जब कि एक ओर ऊपर लिखी कुप्रथाएँ पूरे ज़ोर से जारी हैं, दूसरी ओर लगान के जिस शिकञ्जे ने प्रजा को कस रक्खा है उसके सैकड़ों पेचों में से आधा पेच भी ढीला नहीं किया गया × × ×"*

अब हम लॉर्ड बेरिटङ्क के मुख्य मुख्य कृत्यों को वर्णन करते हैं।

सब से पहले लॉर्ड बेरिटङ्क की नज़र मैसूर के निकट कुर्ग की छोटी सी रियासत की ओर गई। शायद भारत का कोई दूसरा भाग इतना सुन्दर, रमणीय और मानव स्वास्थ्य के लिए हितकर न होगा जितना कुर्ग का पहाड़ी इलाक़ा। सन् १७९० में जब कि अंगरेज़ों और टीपू सुलतान में युद्ध की तैयारी हो रही थी, कम्पनी और कुर्ग के राजा के बीच एक सन्धि हुई, जिसकी शर्तें ये थीं—

कुर्ग के साथ पहली सन्धि

* " his good intentions were never to interfere with the main principle of the British Indian Government, profit to themselves and their masters at the expense of the people of India The abominable system of purveyance and forced labour is still in full force The commerce and manufactures of the country are daily deteriorated by the vexatious system of internal duties which is still preserved the people are neither happier nor richer than they were before—indeed, their impoverishment has been progressive—for while the evils inumerated have continued in full force, the revenue screw has scarcely been relaxed half a thread of the many hundreds of which it is composed "—*Notes on Indian Affairs* by Frederick Shore, vol ii, pp 223, 224

"(१) जब तक सूर्य और चन्द्रमा क़ायम हैं, सन्धि करने वाले दोनों पक्ष अपने वचन पर क़ायम रहेंगे।

"(२) टीपू और उसके साथियों को दोनों अपना शत्रु समझेंगे। कुर्ग का राजा अपनी पूरी शक्ति भर टीपू को हानि पहुँचाने में अंगरेज़ों को मदद देगा।

"(३) जितना रसद इत्यादि का सामान कुर्ग में पैदा होता है वह सब उचित क़ीमत पर राजा अंगरेज़ों को देगा, और दूसरे टोपी वालों (अर्थात् फ़्रान्सीसी इत्यादि) से राजा किसी तरह का सम्बन्ध न रक्खेगा।

"(४) कम्पनी इस बात का वचन देती है कि यदि टीपू के साथ सुलह हो गई तो भी कुर्ग की स्वाधीनता क़ायम रक्खी जायगी और राजा के हितों की पूरी रक्षा की जायगी।

"(५) शान्ति होने के समय तक के लिए वादा किया जाता है कि राजा और उसके कुटुम्बियों को टेलिचरी में आश्रय दिया जायगा और हर तरह से उनकी ख़ातिरदारी की जायगी।

"ईश्वर, सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी हमारे साक्षी हैं!"

किन्तु कम्पनी के अंगरेज़ प्रतिनिधियों ने अपनी सन्धियों का मूल्य कभी भी एक रद्दी कागज़ के मूल्य से अधिक नहीं समझा। बेंटिङ्क जानता था कि दक्खिन भारत में अंगरेज़ों के उपनिवेश के लिए कुर्ग से अधिक उपयुक्त स्थान कोई नहीं मिल सकता था। इसलिए यद्यपि कुर्ग के राजाओं ने सदा अंगरेज़ों को लाभ ही पहुँचाया, फिर भी बेंटिङ्क ने किसी न किसी बहाने कुर्ग के साथ युद्ध करने का सङ्कल्प कर लिया। मालूम होता है कि कुर्ग के राजा

और प्रजा दोनों को वीर और मानी सुलतान टीपू के विरुद्ध विदेशियों का साथ देने के पाप का इस प्रकार प्रायश्चित्त करना पड़ा।

युद्ध का बहाना

कुछ वर्ष पहले लॉर्ड हेस्टिंग्स के समय में कुर्ग के राजा वीर राजेन्द्र की मृत्यु हुई। कुर्ग की प्रथा के अनुसार वीर राजेन्द्र की पुत्री देवम्मा जी अपने पिता के बाद गद्दी की अधिकारिणी थी। राजा वीर राजेन्द्र भी अपनी इस पुत्री ही को गद्दी देना चाहता था। अंगरेज़ सरकार ने राजा के जीते जी उससे वादा कर लिया था कि हम देवम्मा जी के अधिकार का समर्थन करेंगे। किन्तु पिता के मरते ही देवम्मा जी को छोड़कर उसके एक भाई को गद्दी पर बैठा दिया गया। कम्पनी सरकार ने उसे राजा स्वीकार कर लिया और इस प्रकार राजा वीर राजेन्द्र के साथ अपने वचनों का साफ़ उल्लंघन किया।

अंगरेज़ों का हस्तक्षेप

बेरिटङ्क को अब फिर कुर्ग के मामले में हस्तक्षेप करने की सूझी। देवम्मा जी और उसके पति को उभारा गया। कहा गया कि कुर्ग का राजा क्रूर और अन्यायी है और अपने आमोद के लिए अपने सम्बन्धियों और प्रजा का संहार किया करता है! यहाँ तक कहा गया कि राजा अपनी बहिन और उसके पति दोनों को क़त्ल करना चाहता है! देवम्मा जी और उसके पति ने भाग कर मैसूर के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के यहाँ शरण ली। मालूम नहीं कि देवम्मा जी अंगरेज़ों की मदद से गद्दी प्राप्त करना चाहती

थी, या अंगरेज़ अफ़सर देवम्मा जी को अपनी साज़िश का एक साधन बना रहे थे। यह भी मालूम नहीं कि असहाय राजा के अत्याचारों के अनेक झूठे क़िस्से देवम्मा जी के गढ़े हुए थे या अंगरेज़ों के। जो हो, अंगरेज़ों ने कुर्ग के शासन में दखल देने का मौक़ा निकाल लिया। ज़ाहिर है कि वे कुर्ग की स्वाधीनता को नष्ट करने का केवल बहाना ढूंढ़ रहे थे।

राजा की असमञ्जसता

युद्ध का एलान कर दिया गया। एक सेना अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन कुर्ग को विजय करने के लिए भेजी गई। राजा इस युद्ध के लिए बिलकुल तैयार न था और अन्त समय तक असमञ्जस में रहा। पादरी डॉक्टर मोगलिङ्ग अपने कुर्ग के इतिहास में लिखता है—

"राजा ने, कुछ इस आशा में कि अभी सम्भव है फिर से सुलह हो जाय, और कुछ इस डर से कि यदि मामला हद को पहुँचा तो सम्भव है मुझे अपना सब कुछ खो देना पड़े, चारों ओर यह आज्ञाएँ जारी कर दीं कि कोई कुर्गनिवासी कम्पनी की सेनाओं को न रोके और न उनका मुक़ाबला करे। अंगरेज़ी सेना की कई डिवीज़नें इस समय कुर्ग में प्रवेश कर रही थीं। उन सब की सफलता का, बल्कि उनकी जान बचने तक का अधिकतर श्रेय राजा की इस असमञ्जसता को मिलना चाहिए, न कि अंगरेज़ सेनापतियों के युद्ध कौशल या उनकी योग्यता को।"*

* "The Raja, incited partly by the hope that a reconciliation was yet possible, partly by the fear, that he might lose all, if matters went to extremities, sent orders prohibiting the Coorgs from encountering the *troops* of the Company To this vacillation of the Raja, the several *divisions of*

निस्सन्देह कुर्ग के दरबार में उस समय एक से अधिक दरबारी लॉर्ड बेंटिङ्क या उसके गुप्तचरों के ख़रीदे हुए थे, जिन्होंने राजा को तरह तरह से धोखे में रक्खा। अन्यथा राजा की इस भयंकर असमञ्जसता और कुर्ग निवासियों के नाम उसकी घातक आज्ञाओं का और कोई कारण आसानी से समझ में नहीं आ सकता।

कुर्ग की स्वाधीनता का अन्त

संक्षेप यह कि राजा को गद्दी से उतार कर क़ैद करके बनारस भेज दिया गया; देवम्मा जी और उसके पति को, जिनके नाम पर यह सब स्वाँग रचा गया था, ताक़ पर रख दिया गया और कुर्ग का रमणीय प्रान्त कम्पनी के इलाक़े में मिला लिया गया। इस प्रकार कुर्ग की स्वाधीनता का अन्त कर दिया गया।

इस अवसर पर कपट और झूठ से भरा हुआ एक एलान कुर्ग की प्रजा के नाम प्रकाशित किया गया, जिसके शुरू में ही लिखा था—

"चूँकि समस्त कुर्गनिवासियों की यह इच्छा है कि हमें अंगरेज़ सरकार की रक्षा में ले लिया जाय, इसलिए × × × इत्यादि इत्यादि।"

इसी एलान में आगे चल कर लिखा है कि—"कुर्गनिवासियों को विश्वास दिलाया जाता है कि उन्हें फिर कभी भी देशी शासन के अधीन न होने दिया जायगा, इत्यादि!" प्रायः समस्त अंगरेज़

the British Expedition, then marching into *Coorg*, were more indebted for their success and even safety, than to the skill and talents of their commanders."—Revd Dr Moegling, *in his* History of Coorg *published in the* *Calcutta Review* for September, 1856, p 199

इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि कुर्ग युद्ध में विजय नहीं किया गया। करनल फ्रेज़र ने इस एलान में कम्पनी सरकार की ओर से कुर्गनिवासियों के साथ साफ़ झूठा वादा किया कि कुर्ग के इलाक़े के अन्दर कभी भी पशु वध न किया जायगा। कुर्ग के देशी राजाओं के अधीन ज़मीन का लगान पैदावार के रूप में वसूल किया जाता था। एलान में वादा किया गया कि यह रिवाज न तोड़ा जायगा। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद लगान नक़दी की सूरत में वसूल किया जाने लगा। दुखित प्रजा ने लाचार होकर नए विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह को बड़ी निर्दयता के साथ कुचल डाला गया।

राजा के साथ दुर्व्यवहार

पदच्युत राजा के साथ बाद में इतना बुरा व्यवहार किया गया कि उसे अपनी शिकायतों के दूर करने के लिए सन् १८५२ में इंगलिस्तान जाना पड़ा। इंगलिस्तान में उसकी इकलौती बेटी बहका कर ईसाई बना ली गई और एक अंगरेज़ के साथ ब्याह दी गई। अंगरेज़ क़ौम ने राजा की शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया।

लूट का बटवारा

कुर्ग पर क़ब्ज़ा करते ही अंगरेज़ अफ़सरों ने उस देश को जी भर कर लूटा, यहाँ तक कि लूट का कुछ हिसाब न था। यह लूट का धन सेना के अंगरेज़ अफ़सरों में बाज़ाब्ता बाँटा गया। सेनापति लिण्डसे को कुल रक़म का सोलहवाँ हिस्सा मिला। शेष अफ़सरों को इस प्रकार रक़में बांटी गईं—

प्रत्येक करनल को २५,००० रुपए,

प्रत्येक लेफ्टेनेण्ट करनल को १५,००० रु०,

प्रत्येक मेजर को १०,००० रु०,

प्रत्येक कप्तान को ५,००० रु०,

और प्रत्येक सबआल्टर्न अर्थात् कप्तान से छोटे अफ़सर को २,५०० रु० ।*

इसके बाद कुर्ग को विजय करने में कम्पनी का जो मुख्य उद्देश था वह भी शीघ्र ही पूरा हो गया। कुर्ग की भूमि क़हवे (काफ़ी) की पैदावार के लिए अत्यन्त उपयुक्त थी। अनेक अंगरेज़ों को वहाँ बसा दिया गया और जंगल के जंगल उन्हें इस कार्य के लिए मुफ़्त दे दिए गए। सन् १६०४ में वहाँ लगभग ५०,००० एकड़ ज़मीन क़हवे की खेती में लगी हुई थी और क़हवे की खेती करने वाले हज़ारों अंगरेज़ काश्तकार वहाँ बसे हुए थे।

कछाड़ की रियासत का अन्त

पिछले अध्याय में आ चुका है कि सन् १८२४ में ऐमहर्स्ट ने बरमा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए कछाड़ के राजा गोविन्दचन्द्र नारिन के साथ सन्धि कर ली थी। कहा जाता है कि सन् १८३० में किसी ने (?) राजा गोविन्दचन्द्र को क़त्ल कर दिया। राजा के कोई पुत्र न था, वेरिटङ्क ने इसी बिना पर शान्ति के साथ कछाड़ की रियासत को कम्पनी के इलाक़े में मिला लिया।

भारत छोड़ने से थोड़े दिनों पहले वेरिटङ्क ने जैन्तिया के राजा

* *Asiatic Journal*, May, 1836, p 33

का कुछ इलाक़ा इसलिए ज़ब्त कर लिया कि राजा ने कम्पनी के साथ सन्धि की कुछ शर्तों का उल्लङ्घन किया था।

कुर्ग और कछाड़ के अतिरिक्त और कोई रियासत बेण्टिङ्क ने बाक़ायदा कम्पनी के इलाक़े में नहीं मिलाई, किन्तु अनेक अन्य रियासतों के शासन प्रबन्ध में उसने बलात् हस्तक्षेप किया। इनमें से मुख्य मैसूर की रियासत थी।

मैसूर राज में हस्तक्षेप

हैदरअली और टीपू सुलतान ने अपनी वीरता से मैसूर की प्राचीन हिन्दू रियासत को बढ़ा कर एक बहुत बड़ी सल्तनत बना दिया था। सन् १७९९ में टीपू की वीरगति के बाद अंगरेज़ों ने उस विशाल सल्तनत का एक टुकड़ा अनेक कठिन शर्तों के साथ मैसूर के राजकुल को लौटा दिया। राजा और कम्पनी के बीच सबसीडीयरी सन्धि हो गई। मैसूर के राजा सन् १७९९ से १८३१ तक उस सन्धि की शर्तों का ईमानदारी के साथ पालन करते रहे और प्रति वर्ष सबसीडी की रक़म ठीक समय पर कम्पनी को अदा करते रहे।

मैसूर को साफ़ साफ़ कम्पनी के राज में मिलाने में एक और बड़ी कठिनाई थी। कम्पनी और निज़ाम में यह समझौता हो चुका था कि यदि मैसूर की रियासत को कभी समाप्त किया जायगा तो आधा मैसूर कम्पनी के पास रहेगा और आधा निज़ाम को दिया जायगा। निज़ाम के बल को बढ़ाना लॉर्ड बेण्टिङ्क को पसन्द न हो सकता था। किन्तु निज़ाम की मित्रता बनाए रखना

भी कम्पनी के लिए आवश्यक था। इसलिये बेंटिङ्क ने एक और चाल चली।

मैसूर के शासन प्रबन्ध में अनेक झूठे सच्चे दोष निकाले गए, और ७ सितम्बर सन् १८३१ को मैसूर के असहाय राजा को अचानक लॉर्ड बेंटिङ्क का पत्र मिला कि आपके शासन के अमुक अमुक दोषों के कारण राज का समस्त प्रबन्ध आपके हाथों से लेकर अमुक अमुक अंगरेज़ अफ़सरों के हाथों में दे दिया गया है। राजा को इस पत्र का उत्तर देने या बेंटिङ्क के इलज़ामों को ग़लत साबित करने का भी मौक़ा नहीं दिया गया। अंगरेज़ अफ़सर काम सँभालने के लिए पहुँच गए और राजा को अपना समस्त कारबार उनके हाथों में सौंप देना पड़ा। जो दोष मैसूर के शासन में निकाले गए उनकी सत्यता या असत्यता के विषय में हम केवल एक विद्वान अंगरेज़ मेजर ईवन्स बेल के शब्द नीचे उद्धृत करते हैं—

"लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क का मैसूर देश को क़ुर्क कर लेना न तो सन्धि की शर्तों के अनुसार सर्वथा न्याय्य था, और न सदाचार की दृष्टि से उचित था; क्योंकि कोई विशेष बात मनुष्यत्व के विरुद्ध राजा की ओर से न हुई थी, और न इसी बिना पर क़ुर्की जायज़ थी कि हमारे पास के प्रान्तों की शान्ति को किसी प्रकार का ख़तरा रहा हो। × × × सच यह है कि सबसीडी की सालाना रक़म हमेशा बिलकुल ठीक समय पर अदा की जाती थी, और जिस दिन गवरनर जनरल ने राजा को पत्र लिखा उस दिन कोई क़िस्त भी कम्पनी को राजा से लेनी बाक़ी न थी।

"इस प्रकार जो दलीलें मैसूर की उस शुरू की क़ुर्की के लिए दी जाती

हैं वे न केवल सन्धि की शर्तों के सर्वथा विरुद्ध हैं, बल्कि × × × सत्य के भी कहीं अधिक विरुद्ध मालूम होती हैं।"*

इसके बाद ५० वर्ष तक अर्थात् सन् १८८१ तक अंगरेज़ अफ़सरों का एक कमीशन मैसूर का समस्त शासन करता रहा। सन् १८८१ में फिर पहले से भी अधिक कठिन शर्तों के साथ मैसूर का शासन प्राचीन हिन्दू राजकुल को सौंप दिया गया।

जयपुर और जोधपुर

जयपुर में लॉर्ड बेण्टिङ्क ने जूठाराम नामक अपने एक आदमी को वहाँ का मन्त्री नियुक्त कर के ज़बरदस्ती महाराजा के सिर मढ़ दिया। लिखा है कि जूठाराम की नियुक्ति कम्पनी और जयपुर के बीच की सन्धि के विरुद्ध थी और इस नियुक्ति से समस्त राज में अराजकता फैल गई।

जोधपुर के महाराजा के ज़िम्मे अंगरेजों की सबसीडी की कुछ रक़म बाकी थी। तुरन्त सेना भेज कर साँभर का जिला और साँभर झील का कुछ भाग बतौर ज़मानत महाराजा से ले लिया गया।

इसी अवसर पर लॉर्ड बेण्टिङ्क ने साँभर झील और साँभर जिले के उस हिस्से पर भी ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर लिया जो जयपुर

* " . . . thus the grounds alleged for the original attachment of the country are not only unsustainable by the terms of the treaty, but are found to be even more opposed to truth . . ."—*The Mysore Reversion*, by Major Evans Bell, pp, 21-24

की रियासत में था। लडलो लिखता है कि इस ज़बरदस्ती के कारण जयपुर के राजा और प्रजा दोनों में गहरा असन्तोष फैल गया और ४ जून सन् १८३५ को लोगों ने रेज़िडेएट के ऊपर हमला करके उसके असिस्टेएट मिस्टर ब्लेक को मार डाला।

वास्तव में लॉर्ड बेरिटङ्क धीरे धीरे इन सभी रियासतों को ख़त्म करने की तैयारी कर रहा था।

अवध का दौरा

सन् १८३१ में लॉर्ड बेरिटङ्क ने अवध का दौरा किया। अवध के नवाब को, जिसे अंगरेज़ उन दिनों "अवध का का बादशाह" कहते थे, ख़ूब डराया धमकाया, और राज के एक एक महकमे में इस प्रकार का अनधिकार हस्तक्षेप और राज के कर्मचारियों में मनमाने उलट फेर करने शुरू किए कि उन दिनों यह एक आम अफ़वाह थी, यहाँ तक कि कलकत्ते के समाचार पत्रों तक में प्रकाशित हो गया था, कि अंगरेज़ नवाबी का ख़ात्मा करके अवध की सल्तनत को अपने इलाके में मिला लेना चाहते हैं। नवाब ने घबरा कर इंगलिस्तान की पार्लिमेएट से अपील करने का इरादा किया और करनल दूबॉय नामक एक फ्रान्सीसी को इङ्गलिस्तान भेजना चाहा। दूबॉय यूरोप के लिए रवाना होगया इस पर बेरिटङ्क ने नवाब को डरा कर उससे ज़बरदस्ती दूबॉय की बरख़ास्तगी का परवाना लिखा कर फ़ौरन् विलायत भेज दिया। इस मामले में नवाब और दूबॉय दोनों के साथ बेरिटङ्क की ज़बर दस्ती और दूबॉय के विरुद्ध उसके षड्यन्त्र का विस्तृत वृत्तान्त एक लेखक ने वेरीटस (Veritas) के नाम से अप्रैल सन् १८४७

की "इण्डियन एक्ज़ॉमिनर एण्ड यूनिवर्सल रिव्यु" नामक पत्रिका में प्रकाशित किया था।

दिल्ली सम्राट

सम्राट अकबरशाह का जो अपमान लॉर्ड ऐमहर्स्ट ने किया था उसकी शिकायत के लिए राजा राममोहन राय के विलायत भेजे जाने का वर्णन पिछले अध्याय में आ चुका है। लॉर्ड बेण्टिङ्क ने दिल्ली के रेज़िडेण्ट द्वारा सम्राट अकबरशाह पर ज़ोर दिया कि राजा राममोहन राय को शाही दूत के पद से बरख़ास्त कर दिया जाय। सम्राट ने स्वीकार न किया, फिर भी राजा राममोहन राय की इङ्गलिस्तान में कौन सुन सकता था। देहली सम्राट की ओर बेण्टिङ्क का समस्त व्यवहार अपमान जनक रहा।

ग्वालियर

सींधिया कुल की गद्दी पर उस समय एक बालक जङ्कोजी सींधिया विराजमान था। रियासत के अन्दर अंगरेज़ों ने अपनी साज़िशों से अनेक तरह के उपद्रव खड़े करवा रक्खे थे। इस रियासत की ओर बेंटिङ्क की नियत और प्रयत्नों के विषय में एक अंगरेज़ लेखक जॉन होप लिखता है :—

"किन्तु यदि अपनी राजधानी के अन्दर महाराजा जङ्को सींधिया को इन आपत्तियों ने घेर रक्खा था तो बाहर भी कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल से उसे कुछ कम आपत्ति की आशङ्का न थी। कलकत्ते में इस बात का पता लगाने के लिए गुप्त सलाहें हो रही थीं कि इस निर्बल, किन्तु अत्यन्त

वफ़ादार नौजवान नरेश की आपत्तियों से क्या क्या फ़ायदा उठाया जा सकता है। × × × गवरनर जनरल के चीफ़ सेक्रेटरी ने रेज़िडेण्ट के नाम एक गुप्त पत्र लिखा जिसमें उसे हिदायत की कि आप निजी तौर पर महाराजा से मिल कर इधर उधर की बातों मे यह पता लगाने की कोशिश करें कि क्या महाराजा उन गम्भीर आपत्तियों से घिरा हुआ होने के कारण, जो अधिकतर हमारी ही सरकार की खड़ी की हुई हैं, पदत्याग करना पसन्द करेगा या नहीं। यदि वह कर लें तो महाराजा का देश ब्रिटिश सरकार को मिल जायगा और महाराजा को एक सुन्दर पेनशन दे दी जायगी जो उसी की रियासत की आमदनी में से अदा की जायगी।"*

रेज़िडेण्ट कैवेनडिश लॉर्ड बेरिटङ्क की इच्छा को पूरा न कर सका। इस पर जॉन होप लिखता है—

"फ़ौरन् एक दूसरा गुप्त पत्र पहुँचा × × × जिसमें मिस्टर कैवेनडिश की लानत मलामत की गई, और अन्त में यह अर्थ सूचक वाक्य लिखा गया

---

* "But if these dangers surrounded him (Maharaja Junko Scindia) in his capital, he was threatened with no less danger from the council of Calcutta Secret deliberations were there being held, with a view to discover what profit could be made out of the troubles of this weak but most faithful young prince, A demiofficial letter was written to the Resident by the Chief Secretary of the Foreign Department, desiring him to learn, at a private interview, by way of a feeler, if the Maharajah, encircled as he was by serious troubles—*troubles mainly caused by our government*—would like to resign, assigning over the country to the British Government, and receiving a handsome pension, which would be paid out of his own revenues "—*The House of Scindia, a Sketch*, by John Hope, published in 1863, by Messrs Longman, Green, Longman, Roberts and Green

के—'इस प्रकार तुमने बम्बई प्रान्त को आगरा प्रान्त के साथ जोड़ देने का एक बहुत अच्छा मौक़ा हाथ से खो दिया'।"

जॉन होप इस सम्बन्ध में एक और अत्यन्त मनोरञ्जक घटना सुनाता है। वह लिखता है—

एक मनोरञ्जक घटना।

"कोई यह न समझे कि × × × दूसरी रियासतों के साथ लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क की नीति को इस प्रकार संक्षेप में चित्रित करने में हमने थोड़ा बहुत भी उस पर अपना रंग चढ़ाया है। हम मिसाल के तौर पर एक मनोरञ्जक घटना बयान करते हैं, जो कि इस समय के जीवित लोगों में केवल तीन या चार को मालूम है और जिससे हमारे इस कथन का काफ़ी समर्थन होगा कि देशी रियासतों के अधिकारों के विषय में लॉर्ड बेण्टिङ्क हज़रत मूसा की उस दसवीं आज्ञा की बिलकुल परवा न करता था जिसमें कहा गया है कि—'अपने पड़ोसी का माल कभी न छीनना।' बात यह थी कि मिस्टर कैवेनडिश की जगह मेजर सदरलैण्ड रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ। × × × मेजर सदरलैण्ड यह जानने के लिए कि ग्वालियर पहुँच कर किस नीति का पालन किया जाय, अर्थात् वहाँ के रियासत के मामलों में हस्तक्षेप किया जाय या न किया जाय, गवरनर जनरल से मिलने के लिए कलकत्ते गया। लॉर्ड बेण्टिङ्क को × × × मज़ाक़ का शौक़ था। उसने फ़ौरन् जवाब दिया—'मेजर इधर देखो।' यह कह कर लॉर्ड बेण्टिङ्क ने अपनी गरदन पीछे को लटका दी, मुंह खोल दिया और अँगूठा और एक उँगली इस प्रकार मुँह में देकर, जिस प्रकार कि कोई लड़का मिठाई मुंह में डालने लगता है, चकित मेजर से मुख़ातिब होकर कहा—'यदि ग्वालियर की रियासत आपके मुँह में आकर गिरने लग

तो आप मिस्टर कैवेनडिश की तरह अपना मुंह बन्द न कर लीजिएगा, बल्कि उसे निगल जाइएगा; यही मेरी नीति है।"*

इस घटना पर टीका करने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय रियासतों की ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति का यह एक खासा सच्चा चित्र है। बेण्टिङ्क को आशा थी कि जो गहरी आपत्तियाँ अंगरेज़ अफ़सरों ने सींधिया के चारों ओर खड़ी कर रक्खी थीं उनसे घबरा कर महाराजा सींधिया चुपचाप अपना राज बेण्टिङ्क के हवाले कर देगा। किन्तु इस विषय में उसकी आशा पूरी न हुई।

---

* "Presently another demi-official letter arrived . . . strongly expostulating with Mr Cavendish upon his proceedings, and concluding with this significant remark 'You have thus allowed a favourable chance to escape of connecting the Agra to the Bombay Presidency' .

"Lest it should be thought by any one that in this little sketch of his (Lord William Bentinck's) foreign policy, we have given even the slightest touch of colouring, we will relate, by way of illustration an amusing anecdote, which is known to three or four persons now living, and which sufficiently confirms our statement that in respect of the rights of native states, His Lordship entirely overlooked the tenth commandment It happened that Major Sutherland was selected to fill the office vacated by Mr Cavendish He therefore waited on the Governor-General in Calcutta to learn what the policy was to be at Gwalior, was it to be intervention? Lord Bentinck loved a joke, quickly replied 'Look here, Major, and his Lordship threw back his head, opened wide his mouth, and placed his thumb and finger together like a boy about to swallow a sugar-plum Then turning to the astonished Major he said 'If the Gwalior State will fall down your throat, you are not to shut your mouth, as Mr Cavendish did but swallow it that is my policy —Ibid

झाँसी

सन् १८३५ में झाँसी के राजा की मृत्यु हुई। राजा ने एक पुत्र गोद ले रक्खा था। फिर भी लॉर्ड बेंटिङ्क ने बिना किसी तरह की तहक़ीक़ात या किसी तरह के अधिकार के युवराज के विरुद्ध पिछले राजा के एक चचा रघुनाथराव का पक्ष लेकर उसे गद्दी पर बैठा दिया। उसी समय से झाँसी में कम्पनी की साज़िशें शुरू हो गईं।

इन्दौर

इसी तरह सन् १८३४ में इन्दौर के महाराजा मलहरराव होलकर की मृत्यु हुई। मलहरराव के एक दत्तक पुत्र मौजूद था। फिर भी दो हक़दार और खड़े होगए। बेंटिङ्क ने दत्तक पुत्र के विरुद्ध इन दोनों में से किसी एक से सौदा करना चाहा। दुर्भाग्यवश सौदा न हो सका। बेंटिङ्क के पत्रों से ज़ाहिर है कि वह अन्त समय तक यह न तय कर पाया कि कम्पनी का अधिक हित किस का पक्ष लेने में है। अन्त में लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क की इच्छा और गुप्त प्रयत्नों के विरुद्ध दत्तक पुत्र ही उस समय गद्दी पर बैठा। इस पर बेंटिङ्क ने इन्दौर के रेज़िडेण्ट को नए राजा के राजतिलक के समय दरबार में जाने तक की मनाही कर दी।

सिन्ध और पञ्जाब

लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क के कार्यों में शायद सबसे महत्वपूर्ण कार्य सिन्धु नदी में जहाज़ और सेना भेज कर उसके जल इत्यादि की थाह लेना था। उद्देश यह था कि भविष्य में सिन्धु नदी से सेना ले जाने इत्यादि की कठिनाइयों और सम्भावनाओं का पहले से पता लगा लिया जाय,

क्योंकि अरसे से सिन्ध, पञ्जाब और अफ़ग़ानिस्तान तीनों पर कम्पनी की नज़र गड़ चुकी थी। सर जॉन मैलकम ने एक पत्र भारत सरकार और इङ्गलिस्तान के डाइरेक्टरों के सामने पेश किया, जिसमें उसने दिखलाया कि हैदराबाद और सिन्धु नदी दोनों पर अंगरेज़ सरकार का कब्ज़ा होना कितने अधिक महत्व का है। इस पर सबसे पहले इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सिन्धु नदी की थाह ली जाय और जहाज़ों के आने जाने के लिए नदी की उपयोगिता का ठीक ठीक पता लगा लिया जाय। पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने में भी इस नदी का उपयोग किया जा सकता था। किन्तु सिन्ध एक स्वाधीन देश था। सिन्ध के अमीर अंगरेज़ों को इस प्रकार अपने देश में क्यों घुसने देते। इसलिए एक बाज़ाब्ता कपट प्रबन्ध रचा गया। कहा गया कि इंगलिस्तान के बादशाह विलियम चतुर्थ की ओर से पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के पास उपहार स्वरूप एक घोड़ा गाड़ी भेजनी है जिसे केवल जलमार्ग से ही पंजाब पहुँचाया जा सकता है। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है कि—"तय किया गया कि इस उपहार को भेजने के बहाने सिन्धु नदी की सब बातों और उस नदी द्वारा यात्रा की सुविधाओं और असुविधाओं का पता लगाया जाय।"* कम्पनी के डाइरेक्टरों ने

* "It was resolved to make the transmission of this present, a means of obtaining information in regard to the Indus, and the facilities, or the contrary it might offer to navigation."—*Origin of the Sikh Power in the Punjab and Political Life of Maharaja Ranjit Singh*, chapter x

गवरनर जनरल को साफ़ लिख दिया कि यदि सिन्ध के अमीर राज़ी न हों तो उनकी कुछ परवाह न की जाय।

सर चार्ल्स मेटकॉफ़ उस समय गवरनर जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य था। उसे डर था कि यदि यह भेद सिन्ध के अमीरों पर खुल गया और यदि वे अंगरेज़ों के विरुद्ध होगए तो भविष्य में बाहर के किसी भी शत्रु को अंगरेज़ों के विरुद्ध उनसे सहायता मिल सकेगी। इसलिए मेटकॉफ़ इस समस्त कपट प्रबन्ध के विरुद्ध था। उसने अक्तूबर सन् १८३० को गवरनर जनरल को लिखा—

कपट योजना

"राजा रणजीतसिंह को उपहार भेजने के बहाने सिन्धु नदी की सरवे करने की योजना मुझे अत्यन्त अनुचित प्रतीत होती है।

"मेरी सम्मति में यह एक ऐसी चाल है जो हमारी सरकार को शोभा नहीं देती, जिसका भेद बहुत सम्भव है कि कभी न कभी खुल जायगा, और जब भेद खुलेगा तो जिन ताक़तों को हम इस समय धोखा दे रहे हैं उनके हम क्रोध और ईर्षा के पात्र बने बिना न रह सकेंगे। *

× × ×

"× × × हमें बीच की रियासतों को इस तरह के कामों से नाराज़ नहीं

* "The scheme of surveying the Indus, under the pretence of sending a present to Raja Ranjit Singh, seems to me highly objectionable

"It is a trick, in my opinion, unworthy of our Government, which can not fail when detected, as most probably it will be, to excite the jealousy and indignation of the powers on whom we play it."—Minute of Sir Charles Metcalf, October, 1830

कर लेना चाहिए, जिनमें हमारे विरुद्ध उनकी शत्रुता भड़कने की सम्भावना हो, बल्कि हमें उनके साथ मित्रता क़ायम करनी चाहिए × × ×"

"जिन बातों का पता लगाना है यदि वे क़तई ज़रूरी हों और खुले तौर पर ईमानदारी के साथ उनका पता नहीं लगाया जा सकता तो मैं समझता हूँ कि मामूली तरीक़े से गुप्तचर भेज कर चुपचाप पता लगा लेना चाहिए, और दूसरों को धोखा नहीं देना चाहिए, क्योंकि हमारा असली उद्देश कुछ और है और ऊपर से हम बहाना दूसरा ले रहे हैं, जब कि हम जानते हैं कि सच्ची बात कहने से हमें इजाज़त न मिलेगी।"*

सर चार्ल्स मेटकॉफ़ के इन शब्दों के बाद इस सम्बन्ध में बेंटिङ्क के कपट के और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है।

सिन्धु नदी की सरवे

सिन्धु नदी की सरवे के साथ साथ एक दूसरी योजना इस समय यह हो रही थी कि काबुल में कम्पनी का एक व्यापारिक एजएट रहा करे। मेटकॉफ़ ने इस योजना का भी विरोध किया। इतिहास लेखक के लिखता है—

"सिन्धु नदी की सरवे और काबुल में व्यापारिक एजेन्सी का क़ायम करना, ये दोनों मानों भावी अफ़ग़ान युद्ध के महाकाव्य की प्रस्तावना थीं।"

---

* "If the information wanted is indispensable, and can not be obtained by fair and open means, it ought, I conceive, to be sought by the usual mode of sending unacknowledged emissaries, and not by a deceitful application for a passage under the fictitious pretence of one purpose when the real object is another, which we know would not be sanctioned"—Kaye's *Selections from the Writings of Lord Metcalf*, pp 211-217

वास्तव में लॉर्ड बेंटिङ्क की ये दोनों योजनाएँ केवल सन् १८३९—१८४२ के अफ़ग़ान युद्ध और उसके बाद के सिन्ध और पंजाब के युद्धों की तैयारी थी।

ज़ाहिर है कि लॉर्ड बेंटिङ्क की नज़र सिन्ध, पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान तीनों पर थी। इतिहास लेखक मेसन ने इस सम्बन्ध में लॉर्ड बेंटिङ्क के कपट को बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है।* विक्टर जैकमॉण्ड ने लिखा है कि बेंटिङ्क ने सिन्ध के अमीरों को यह डर दिखाया कि यदि आप लोग अंगरेज़ी जहाज़ों के जाने में बाधक होंगे तो कम्पनी सरकार और महाराजा रणजीतसिंह दोनों आप से नाराज़ हो जायँगे और फिर मजबूर होकर अंगरेज़ों को रणजीतसिंह को सिन्ध के विजय करने में सहायता देनी पड़ेगी। दूसरी ओर अमीरों को यह भी विश्वास दिलाया गया कि इस कार्य द्वारा अंगरेज़ों का कोई इरादा सिन्ध को हानि पहुँचाने का नहीं है, और यदि आप लोगों ने इजाज़त दे दी तो सिन्ध और कम्पनी की मित्रता सदा के लिए पक्की हो जायगी। इस प्रकार डरा कर और बहका कर बेंटिङ्क ने अमीरों से इजाज़त हासिल कर ली। अमीरों ने कम्पनी के जहाज़ों के लिए सिन्धु नदी के तट के बराबर बराबर हर तरह की सुविधाएँ कर दीं। मेसन लिखता है कि इस उपहार भेजने के बहाने सिन्धु नदी के किनारे फ़ौजें भेज दी गईं और क़रीब छै सशस्त्र जहाज़ नदी में पहले से भेज दिए गए।

* Masson's *Travells*, vol III, p 432

सिन्ध पर दोहरी नज़रें

महाराजा रणजीतसिंह स्वयं बहुत दिनों से सिन्ध विजय करने की इच्छा कर रहा था। सन् १८०६ में कम्पनी और रणजीतसिंह के बीच जो सन्धि हुई थी, उसमें यह साफ़ शर्त थी कि सतलज के इस पार का पूरा इलाक़ा कम्पनी के लिए छोड़ दिया जाय और सतलज के दूसरी ओर महाराजा रणजीतसिंह चाहे जितना अपना साम्राज्य बढ़ाने का प्रयत्न करे, अंगरेज़ उसमें बाधक न होंगे। रणजीतसिंह ने इस सन्धि का ईमानदारी के साथ पालन किया और धीरे धीरे समस्त काश्मीर, मुलतान और पेशावर के इलाक़ों को विजय करके अपने साम्राज्य में मिला लिया। रणजीतसिंह की विशाल सेना उस समय भारत की सबसे अधिक वीर और सुसम्बद्ध सेनाओं में गिनी जाती थी। उसका साम्राज्य विशाल, समृद्ध और उर्वर था। पेशावर तक पहुँचने के बाद उसने सिन्ध विजय करने का इरादा किया, किन्तु दूसरी ओर कम्पनी की भी सिन्ध पर नज़र थी, इसलिये सन् १८०६ की सन्धि के विरुद्ध बेंटिङ्क ने अब रणजीतसिंह को सिन्ध विजय करने से रोकने का प्रयत्न किया।

इसी प्रयत्न के सिलसिले में रणजीतसिंह के पास उपहार भी भेजे गए। बेंटिङ्क ने स्वयं रणजीतसिंह से मिलने की प्रार्थना की। रणजीतसिंह ने इंगलिस्तान के बादशाह विलियम की भेजी हुई गाड़ी और घोड़े और बेंटिङ्क के अन्य उपहारों से प्रसन्न होकर बेंटिङ्क की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

सन् १८३१ के अन्त में रोपड़ नामक स्थान पर पूर्वीय शानो-शौकत के साथ लॉर्ड बेरिटङ्क और महाराजा रणजीतसिंह की मुलाक़ात हुई। लॉर्ड बेरिटङ्क इस मुलाक़ात के समय ख़ासी सेना अपने साथ ले गया। जॉन मैलकम लडलो लिखता है कि अंगरेज़ों का शाही अफ़ग़ान क़ैदी शाहशुजा उस समय लुधियाने में रहता था। लॉर्ड बेरिटङ्क और महाराजा रणजीतसिंह की इस मुलाक़ात के अवसर पर यह तय हुआ कि शाहशुजा को सामने करके अफ़ग़ानिस्तान पर हमला किया जाय। जनवरी १८३३ में रणजीतसिंह की इजाज़त से तीस हजार सेना सहित शाहशुजा ने पहले सिन्ध पर हमला किया। उसके बाद वह कन्धार की ओर बढ़ा, अन्त में काबुल के बादशाह दोस्त मुहम्मद ख़ाँ ने शाहशुजा को हरा दिया और सन् १८३४ में शाहशुजा को फिर भाग कर लुधियाने में आश्रय लेना पड़ा।

महाराजा रणजीतसिंह और बेरिटङ्क की मुलाक़ात

सिन्ध ही के मामले पर रोपड़ में बेरिटङ्क और रणजीतसिंह में कुछ मतभेद भी हो गया। बेरिटङ्क ने यह प्रकट किया कि अंगरेज़ सिन्धु नदी के नीचे के हिस्से पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं और उस ओर अपना व्यापार बढ़ाना चाहते हैं; इसलिये उन्हें सिन्धु के किनारे किनारे अपनी छावनियाँ बनानी होंगी। रणजीतसिंह ने इसे सुन कर पहले एतराज़ किया, क्योंकि बेरिटङ्क की माँग सन् १८०९ की सन्धि के विरुद्ध थी। अन्त में किसी न किसी प्रकार लॉर्ड बेरिटङ्क ने महाराजा रणजीतसिंह को राज़ी कर लिया और उसे

सिन्ध पर चढ़ाई करने से रोक दिया। रणजीतसिंह अंगरेज़ों की इच्छा के विरुद्ध चलने का साहस न कर सका। फिर भी इस समय से ही रणजीतसिंह के दिल में अंगरेज़ों की ओर से गहरी शङ्का उत्पन्न हो गई। उस समय के अनेक पत्रों से यह भी साबित है कि रणजीतसिंह के राज के विरुद्ध भी बेरिटङ्क के समय से ही अंगरेज़ों में गुप्त सलाहें और तजवीज़ें हो रही थीं।

कप्तान कनिङ्घम लिखता है कि सिख युद्ध के कारणों में से एक कारण यह था कि लॉर्ड बेरिटङ्क की गवरनर जनरली के दिनों में अंगरेज़ों ने स्वयं सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने के उद्देश से रणजीतसिंह को सिन्ध विजय करने या सिन्ध को अपनी एक सामन्त रियासत बनाने से रोकने के लिए हर तरह के छल, कपट और बहानेबाज़ी का उपयोग किया।*

बेरिटङ्क के शासन का सार

संक्षेप में लॉर्ड बेरिटङ्क का व्यवहार भारत की अन्य रियासतों के साथ इस प्रकार रहा। कुर्ग और कछाड़ को उसने कम्पनी के राज में मिला लिया। अवध की बादशाहत के आन्तरिक मामलों में उसने अनुचित हस्तक्षेप किया, जिससे बाद में उसके उत्तराधिकारियों को अवध के स्वाधीन अस्तित्व को मिटाने में मदद मिली। उसने दिल्ली सम्राट का अकारण अपमान किया। ग्वालियर की मराठा रियासत को हड़प जाने की उसने भरपूर कोशिश की। मैसूर को उसने बहाना निकाल कर अंगरेज़ों के शासन में कर लिया और

* *History of the Sikhs*, by Captain Cunningham, chapter, vii

भी कई छोटी बड़ी रियासतों में उसने अनधिकार हस्तक्षेप किया। और सब से महत्वपूर्ण बात सिन्धु नदी की सरवे के लिये उसने वह कपट प्रबन्ध रचा जिससे अफ़गानिस्तान, पञ्जाब और सिन्ध तीनों की भावी आपत्तियों की बुनियाद पड़ गई।

लॉर्ड बेरिटङ्क की अन्य काररवाइयों में से दो चार उल्लेख करने योग्य हैं—

पुराने घरानों का नाश

बेरिटङ्क के आने के सैकड़ों वर्ष पहले से हज़ारों पुराने घरानों को और हज़ारों धार्मिक, विद्या प्रचार सम्बन्धी अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को मुग़ल सम्राटों और अन्य हिन्दू मुसलमान नरेशों की ओर से जगह जगह माफ़ी की ज़मीनें मिली हुई थीं, जिन्हें 'लाख़िराज' ज़मीन कहते थे। अभी तक अंगरेज़ों ने ब्रिटिश भारत के अन्दर इन माफ़ी की ज़मीनों में हस्तक्षेप न किया था। किन्तु बेरिटङ्क ने भारत पहुँचते ही हर ज़िले के कलेक्टर को यह अधिकार दे दिया कि वह अपने ज़िले के अन्दर की जिस लाख़िराज ज़मीन को उचित समझे कम्पनी के नाम ज़ब्त कर ले। इस अन्याय ने उस समय के सहस्रों ही खुशहाल भारतीय घरानों को बरबाद कर दिया, उनके बाल बच्चों को अपने जीवन निर्वाह के उपाय ढूंढने के लिये घरों से बाहर निकाल फेंका और सहस्रों प्राचीन धार्मिक और अन्य संस्थाओं का अन्त कर दिया।

बेरिटङ्क भारत के अन्दर कोई पुराना धनाढ्य या सम्मानित घराना बाक़ी छोड़ना न चाहता था। जितनी जागीरों या जायदादों के मालिक पुत्र विहीन मर जाते थे उन्हें वह कम्पनी सरकार में

नाम ज़ब्त कर लेना न्याय्य समझता था। पिछले मालिक के दत्तक पुत्रों या भाई भतीजों के अधिकार की कोई परवा न की जाती थी। अकेले बम्बई प्रान्त के अन्दर अनेक जागीरदारों और सरदारों की रियासतें उनके दत्तक पुत्रों या भाई भतीजों के होते हुए इस प्रकार ज़ब्त कर ली गईं।

राष्ट्रीयता के भावों का नाश

लॉर्ड बेण्टिङ्क ने ब्रिटिश भारत की कचहरियों में फ़ारसी और देशी भाषाओं को बिलकुल हटा कर अंगरेज़ी को उनका स्थान देने की पूरी कोशिश की। बेण्टिङ्क इस बात में विश्वास करता था कि भारतवासियों की भाषा, उनके भेष और उनके रहन सहन में अंङ्गरेज़ियत पैदा करके ही उन्हें देश प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों से दूर रक्खा जा सकता है और विदेशी सत्ता के अधिक उपयोगी यन्त्र बनाया जा सकता है। इसी लिए वह भारत में अंगरेज़ी शिक्षा और ईसाई धर्म दोनों के प्रचार का पक्षपाती था। किन्तु शिक्षा का महान विषय एक दूसरे अध्याय का विषय है।

बेण्टिङ्क ने भारत में अंगरेज़ों के उपनिवेश क़ायम कराने का भरसक प्रयत्न किया।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता का बेण्टिङ्क पक्का शत्रु था।

सरांश यह कि लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क के शासन काल ने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को अधिक मज़बूत और भारत की पराधीनता की बेड़ियों को और अधिक पक्का कर दिया।

पैंतीसवाँ अध्याय

सन् १८३३ का चारटर एक्ट

सन् १८३२ का रिफ़ॉर्म एक्ट

भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारों को क़ायम रखने के लिए इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट हर बीस वर्ष के बाद एक नया क़ानून पास किया करती थी; जिसे चारटर एक्ट कहते थे। सन् १८१३ के चारटर एक्ट और उसके द्वारा भारत के प्राचीन व्यापार और उद्योग धन्धों के सर्वनाश का ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। इसके बाद लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क के शासन काल में सन् १८३३ में फिर नया चारटर एक्ट पास करने का समय आया।

यह समय इङ्गलिस्तान में बढ़ते हुए राष्ट्रीय जीवन का समय था। कारण यह था कि भारतीय साम्राज्य, भारत की लूट और भारतीय उद्योग धन्धों के नाश के प्रताप से इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों और इङ्गलिस्तान के व्यापार ने पिछले बीस वर्ष के अन्दर अपूर्व उन्नति की थी। इङ्गलिस्तान का धन बढ़ रहा था। शहरों की आबादी बढ़ती जा रही थी। धन की वृद्धि के साथ साथ लोगों के हौसले भी बढ़े हुए थे। राजनैतिक क्षेत्र में प्रजा नए नए अधिकार माँग रही थी। इसीलिए सन् १८३२ में वहाँ की प्रजा के अधिकारों को बढ़ाने के लिए पार्लिमेण्ट को नया 'रिफ़ॉर्म एक्ट' पास करना पड़ा था।

सब अन्यायों से बड़ा अन्याय

किन्तु सदा यह देखने में आया कि इङ्गलिस्तान के अन्दर प्रजा के अधिकार और उनके हौसले जब जब, जितने जितने बढ़ते गए, पराधीन भारत की बेड़ियाँ तब तब, उतनी उतनी ही अधिक कसती गईं। स्वाभाविक भी यही है, क्योंकि विदेशी शासन के अधीन शासक और शासित दोनों देशों के परस्पर विरोधी हित होते हैं। भारत की दरिद्रता में इङ्गलिस्तान की समृद्धि, और भारत की जागृति में इङ्गलिस्तान को ख़तरा। इङ्गलिस्तान की जनता के अधिकार जितने जितने बढ़ते जायँगे, भारतवर्ष के क्रियात्मक शासकों की संख्या उतनी उतनी ही बढ़ती जायगी और भारत की परवशता और दरिद्रता भी उतनी उतनी ही अधिक होती जायगी। लॉर्ड मैकॉले ने एक स्थान पर सत्य लिखा है—

"मुझे विश्वास है कि सब प्रकार के अन्यायों में सब से बुरा अन्याय एक क़ौम का दूसरी क़ौम के ऊपर अन्याय करना है।"*

अमरीका के सुप्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहम लिङ्कन ने एक स्थान पर लिखा है—

"कोई क़ौम भी इतनी भली नहीं हो सकती कि जो दूसरी कौम पर शासन कर सके।"†

सारांश यह कि सन् १८३२ के 'रिफ़ार्म एक्ट' का परिणाम भारत के लिए और बुरा हुआ, और इसी अहितकर परिस्थिति में पार्लिमेण्ट ने सन् १८३३ का 'चारटर एक्ट' पास किया।

बीस वर्ष के अंगरेज़ी शासन का परिणाम

इस नए 'चारटर एक्ट' से भारत के ऊपर अंगरेज़ी शासन का आर्थिक भार और अधिक बढ़ गया, सन १८१३ के एक्ट का क्षेत्र और अधिक विस्तीर्ण कर दिया गया, और अंगरेज़ों के लिए भारत से धन बटोरने के ज़रिए और अधिक बढ़ा दिए गए। एक्ट के इक्का दुक्का इस तरह के वाक्यों पर, जिनमें भारत की ओर अंगरेज़ों की हितचिन्तकता दर्शाई गई है और जो केवल भारतवासियों की आँखों में धूल डालने के लिए दर्ज किए गए थे, समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। न उक्त एक्ट की पृथक पृथक

* 'Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation "—Lord Macaulay

† " there is no nation good enough to govern another nation —President Abraham Lincoln

धाराओं पर बहस करने की आवश्यकता है। यह दिखाने के लिए कि सन् १८१३ के एक्ट के समान सन् १८३३ का एक्ट भी भारत के लिए कितना नाशकर साबित हुआ, हम केवल इङ्गलिस्तान की 'इण्डिया रिफ़ॉर्म सोसाइटी' की एक पत्रिका के कुछ वाक्य नीचे उद्धृत करते हैं। यह सोसायटी सन् १८५३ में क़ायम हुई थी। एक पत्रिका द्वारा इसने इङ्गलिस्तान की प्रजा को यह दिखाने की कोशिश की कि सन् १८३३ के क़ानून के अनुसार जिस तरह का शासन बीस वर्ष तक भारत पर जारी रहा उसका परिणाम भारत के लिए कितना अहितकर हुआ। हम ठीक इस पत्रिका के ही शब्दों में सन् १८३३ के चारटर के परिणामों को नीचे बयान करते हैं।

इस पत्रिका में लिखा है —

"× × × इस जाँच में हमारा पहला काम यह है कि हम भारत के उस शासन को, जो सन् १८३३ की पद्धति के अनुसार चलाया गया, सुशासन की कुछ कसौटियों पर कस कर देखें।

"पहली कसौटी—शान्ति।

"सन् १८२४ से अब तक × × × १६ साल में से १५ साल भारत की अंगरेज़ सरकार के युद्धों में बीते।

"ये युद्ध भारतवासियों की रक्षा के लिए आवश्यक न थे, भारतवासियों की उन्नति इन युद्धों से रुकी है और उनके सुख में बाधा पड़ी है, × × × किन्तु ये सब युद्ध उस शासन पद्धति के साधारण परिणाम थे जो सन् १८३३ में क़ायम की गई। × × ×

"दूसरी कसौटी—सरकार की आर्थिक स्थिति।

"× × × पिछले १४ वर्ष के अन्दर भारत के सालाना बजट में लगातार घाटा ही घाटा पड़ता रहा है।

"सन् १८३३ में सेना विभाग का ख़र्च क़रीब अस्सी लाख पाउण्ड अर्थात् भारत सरकार का कुल आमदनी का ४१ फ़ी सदी था। × × × अब भारत के सेना विभाग का ख़र्च एक करोड़ बीस लाख पाउण्ड से अधिक और कुल आमदनी का ५६ फ़ीसदी है × × ×।

"तीसरी कसौटी—देश की भौतिक उन्नति।

"× × × भारत सरकार का क़रज़ा बढ़ता जा रहा है × × × सड़कें, पुल, नहरें इत्यादि सार्वजनिक हित के कामों पर सरकार पाँच लाख पाउण्ड सालाना से कम अर्थात् अपनी दो करोड़ दस लाख पाउण्ड सालाना से अधिक की आमदनी में से, × × × कुल आमदनी का सवा दो फ़ी सदी ख़र्च करती है।

"इस रक़म में से भी, जो कहने के लिए सार्वजनिक कामों मे ख़र्च होती है, एक हिस्सा गोरे सिपाहियों के लिए उन बारगों पर ख़र्च होता है, जो सिर्फ़ सेना के लिए बनती हैं; और इस रक़म में से कभी कभी ७० फ़ीसदी तक केवल देख भाल करने वालों की तनख़ाहों आदिक पर ख़र्च हो जाता है।

"चौथी कसौटी—साधारण प्रजा की अवस्था।

[इस स्थान पर पत्रिका के लेखक ने सरकारी रिपोर्टों से यह दिखलाया है कि यद्यपि लगान वसूल करने के लिए बङ्गाल मे ज़मींदारी पद्धति थी, मद्रास में रय्यतवाड़ी और बम्बई प्रान्त में मिश्रित पद्धति, फिर भी तीनों

प्रान्तों में कम्पनी के शासन में किसानों की अवस्था दिन प्रति दिन कितनी ख़राब होती जा रही थी।]

'जो बयान इस प्रकार संक्षेप में ऊपर दिया गया है, उससे कुछ दरजे तक मालूम हो जायगा कि बङ्गाल में, जिसकी आबादी चार करोड़ है, किसानों की हालत कितनी करुणाजनक है। मद्रास में, जिसकी आबादी सवा दो करोड़ है, किसानों की हालत और भी ज़्यादा ख़राब है, और बम्बई में जिसकी आबादी एक करोड़ है, किसानों की स्थिति कितनी बुरी है। केवल किसानों का ही नाश नहीं हुआ है, बल्कि धीरे धीरे समस्त क़ौम का नाश हो रहा है। देश के भद्र लोगों (अर्थात् पुराने ख़ान्दान वालों) की श्रेणी प्रायः हर जगह लोप हो चुकी है। × × × नैतिक पतन भी इस शारीरिक पतन का स्वाभाविक परिणाम है। जो लोग इस स्थिति के लिए ज़िम्मेवार हैं वे इसे भले ही 'सन्तोषजनक' समझें, किन्तु भारत के लिए यह बरबादी और सर्वनाश है; इङ्गलिस्तान के लिए इसमें ख़तरा और ज़िल्लत।

''पाँचवीं कसौटी—क़ानून और न्याय।

'' × × × बड़े बड़े और मँहगे क़ानून।

'' × × × रेगुलेशन प्रान्तों में क़ानून कहलाने योग्य कोई चीज़ है ही नहीं, × × × अदालतों की काररवाई पेचीदा कर दी गई है, और ख़र्च बढ़ा कर असह्य कर दिया गया है। जिन्हें अदालतें कहा जाता है उनमें प्रवेश करने के लिए केवल इतना ही ज़रूरी नहीं है कि मनुष्य को कोई दावा करना हो, बल्कि (वकीलों को नहीं) सरकार को देने के लिए उसके पास धन भी होना चाहिये। कम्पनी की उस समस्त भारतीय प्रजा के लिए, जो न्याय ढूँढ़ने के लिए सरकार को टैक्स नहीं दे सकती, अदालतों के दरवाज़े

बन्द हैं। उनके लिए न क़ानून है और न इन्साफ़, और जिनके पास धन है वे अन्दर घुस कर क्या देखते हैं ? कैम्पबेल ने स्वीकार किया है कि जज इस तरह के हैं जो अंगरेज़ जाति के नाम पर एक कलङ्क हैं।

"छठी कसौटी—पुलिस।

"× × × इस विषय में हम बङ्गाल के १२५२ अंगरेज़ और अन्य ईसाई बाशिन्दों का यह बयान उद्धृत करते हैं कि वहाँ की पुलिस न केवल जुर्मों के बन्द करने, अपराधियों के गिरफ़्तार करने और जान माल की रक्षा करने में ही असफल रही, बल्कि हमारी पुलिस स्वयं अत्याचार का एक साधन है और लोगों के नैतिक पतन का एक प्रबल कारण बन गई है × × × इस प्रकार क़ानून, इन्साफ़ और जुर्मों की कसौटी पर कसने से मालूम होता है कि १८३३ के क़ानून से भारतवासियों की उन्नति या उनके सुख की वृद्धि नहीं हुई।

"सातवीं कसौटी—शिक्षा।

"× × × अब हम सन् १८३३ की पद्धति को शिक्षा की कसौटी पर कसते हैं। × × × जब कि भारतवासियों के अपने शासन के दिनों में हर गाँव में पाठशाला थी, हमने इन ग्रामों की पञ्चायतों का नाश करके उनके साथ साथ वहाँ के स्कूल भी तोड़ डाले और उनकी जगह कोई नई चीज़ क़ायम नहीं की। × × × दो करोड़ बीस लाख की आबादी में से भारत सरकार इस समय हर साल १६० विद्यार्थियों को शिक्षा देती है! × × × जब कि कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के टैक्सों की वसूली में से पिछले २० वर्ष के अन्दर ४३,००० पाउण्ड केवल दावतों पर ख़र्च कर चुके हैं। × × ×

[प्राचीन भारतीय शिक्षा के सर्वनाश का वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा ।]

"आठवीं कसौटी—सरकारी नौकरियाँ ।

"× × × धीरे धीरे योग्य भारतवासियों को निकाल कर हर एक ऐसी नौकरी, जिसमें तनख़ाह अधिक हो, जिसमें कुछ ज़िम्मेवारी हो और जिसकी कुछ क़द्र हो, अंगरेज़ों को दे दी गई है । इससे शासन का ख़र्च बेहद बढ़ गया है । यहाँ तक कि यही हमारी स्थायी नीति हो गई । सन् १८३३ के कानून का भी परिणाम यही हुआ कि × × × जो नौकरियाँ पहले भारत-वासियों के लिए थीं वे अब यूरोपियनों को दे दी गईं ।

"× × × भारतवासी चाहे कितने भी शिक्षित, योग्य और उपयुक्त क्यों न हों, उन्हें तमाम ऊँची और अधिक तनख़ाह की नौकरियों से अलग रक्खा जाता है । × × × १६ करोड़ की आबादी मे से तीन या चार हज़ार को छोटी छोटी नौकरियां मिल जाती हैं जिनकी औसत तनख़ाह क़रीब ३० पाउण्ड सालाना है । किन्तु शासन के कार्य मे, विश्वास और ज़िम्मेवारी के कार्य मे, कोई वास्तविक हिस्सा भारतवासियों को नहीं दिया जाता ।

[इसके बाद यह दिखाया गया है कि जो व्यवहार अंगरेज़ यहाँ पर हिन्दोस्तानियों के साथ कर रहे थे उससे अच्छा व्यवहार वे अफ़्रीक़ा मे वहाँ की हब्शी जातियों के साथ कर रहे थे ।]

"किन्तु भारत में एक ऐसी क़ौम, जो उस समय सुसभ्य जीवन के समस्त धन्धों में कुशल थी, जब कि हम अभी जङ्गलों में घूमा करते थे, अफ़्रीका की फाँसी क़ौम से भी ज़्यादा अभागी है और उनकी क़ौम की क़ौम

को अयोग्य, असहाय और नालायक कह कर सदा के लिए उसी देश के अन्दर नीच बना कर रक्खा जाता है जिसे कि उनके पूर्वजों ने जगत भर में प्रसिद्ध कर रक्खा था।

"नवीं कसौटी—सार्वजनिक सन्तोष।

"क्या भारतवासी सन् १८३३ के क़ानून की काररवाई से सन्तुष्ट हैं? यदि वे हों तो बड़े आश्चर्य की बात है; और वे सन्तुष्ट नहीं हैं। वे बलवा नहीं करते; वे विरोध नहीं करते; वे भारतीय सरकार के ख़िलाफ़ सिर नहीं उठाते; × × × क्योंकि अंगरेज़ी शासन के अधीन सरकार की ताक़त उनके मुकाबले में बहुत ज़बरदस्त और सुसङ्गठित है × × ×।

"मद्रास की प्रजा शिकायत करती है कि उनके समाज का समस्त ढाँचा उलट पुलट कर दिया गया, जिसमें उनको हानि ही नहीं, बल्कि उनकी बरबादी है।

"वे शिकायत करते हैं कि नमक के व्यापार पर, जो कि उनके फीके भात का एक मात्र मसाला है, और जिसके बिना न वे जी सकते हैं और न उनके जानवर, कम्पनी सरकार का ठेका है।

"वे शिकायत करते हैं कि उनसे न केवल शहर की दूकानों पर और सड़क के ऊपर की दूकानों और सायबानों पर ही टैक्स लिया जाता है, बल्कि उनके धन्धों के हर एक औज़ार पर भी; यहाँ तक कि चाक़ुओं तक पर टैक्स लिया जाता है, उन्होंने पार्लिमेण्ट को लिखा है कि उन्हें चाक़ुओं पर जो टैक्स देना पड़ता है वह कभी कभी चाक़ुओं की क़ीमत के छैगुने से भी अधिक होता है।

"वे शिकायत करते हैं कि शराब के ऊपर कर वसूल करने के लिए

सरकार ज़बरदस्ती लोगों को शराब पीने की आदत डाल रही है, जब कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मग्रन्थ शराब पीने का निषेध करते हैं।

"इसलिये यदि सन्तोष ही सुशासन की एक कसौटी हो तो सन् १८३३ का क़ानून पूरी तरह असफल रहा।

"दसवीं कसौटी—अंगरेज़ों द्वारा देश का संरक्षण।

"× × × हिन्दोस्तान के बजट में हर साल घाटा पड़ता है, फिर भी कम्पनी के अंगरेज़ हिस्सेदारों को बराबर और ठीक ठीक १०½ फ़ीसदी मुनाफ़ा दिया जाता रहा है × × ×।"*

सन् १८३३ का क़ानून पास होने के बाद से भारत के विदेशी शासक और भी अधिक ज़ोरों के साथ रही सही देशी रियासतों को अंगरेज़ी राज में मिलाने के प्रयत्नों में लग गए।

नया लॉ मेम्बर लॉर्ड मैकॉले

सन् १८३३ के क़ानून के अनुसार भारत के गवरनर जनरल की कौन्सिल में एक नया सदस्य बढ़ाया गया, जिसे 'लॉ मेम्बर' कहते थे। लॉ मेम्बर का कार्य ब्रिटिश भारत की जनता के लिये क़ानून बनाना बतलाया गया। प्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान् लॉर्ड मैकॉले को पहला 'लॉ मेम्बर' नियुक्त करके सन् १८३३ में भारत भेजा गया। हिन्दोस्तान की 'ताज़ीरात हिन्द' (भारतीय दण्ड विधान) अर्थात् इण्डियन पीनल कोड की रचना और हिन्दोस्तानियों में अंगरेज़ी

* *The Government Of India since* 1834, by The India Reform Society of England, 1853

शिक्षा के प्रचार, इन दोनों बातों का श्रेय मैकॉले ही को दिया जाता है।

मैकॉले एक विद्वान, किन्तु निर्धन अंगरेज़ था। उस समय के अन्य अंगरेज़ों के समान भारत आने में उसका मुख्य उद्देश भारत से धन कमाना था। उसने स्वयं अपने एक पत्र में लिखा है कि इङ्गलिस्तान के अन्दर अपनी लेखनी द्वारा वह मुश्किल से दो सौ पाउण्ड सालाना कमा सकता था। सन् १८३४ में वह गवरनर जनरल की कौन्सिल का लॉ मेम्बर नियुक्त होकर भारत पहुँचा। इस नए पद के विषय में उसने १७ अगस्त सन् १८३३ को इङ्गलिस्तान में रहते हुए अपनी बहिन के नाम एक पत्र में लिखा कि लॉ मेम्बर का पद—

"अत्यन्त मान और आमदनी का पद है। वेतन दस हज़ार पाउण्ड सालाना है, जो लोग कलकत्ते से अच्छी तरह परिचित हैं, वहाँ उच्च से उच्च लोगों की श्रेणी के लोगों में मिलते रहे हैं, और उच्च से उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त रह चुके हैं, वे मुझे विश्वास दिलाते हैं कि मैं वहाँ पर पाँच हज़ार पाउण्ड सालाना में शान के साथ रह सकता हूँ, और अपनी बाक़ी तनख्वाह मय सूद के बचा सकता हूँ। इसलिये मुझे आशा है कि केवल ३९ साल की उम्र में, जब कि मेरे जीवन की शक्तियाँ अपनी शिखर पर होंगी, तीस हज़ार पाउण्ड की रक़म लेकर मैं इङ्गलिस्तान वापस आ सकूँगा। इससे अधिक धन की मुझे कभी इच्छा भी न हुई थी।"

इन दस हज़ार पाउण्ड सालाना के अलावा भारत के खज़ाने से लॉर्ड मैकॉले को लॉ कमिश्नर की हैसियत से पाँच हज़ार

पाउण्ड सालाना और दिए जाते थे। इतिहास लेखक विलसन ने साफ़ लिखा है कि कोई विशेष कार्य इस पद के लिये न था, जिसके लिये एक नए आदमी को इतनी बड़ी तनख़ाह दी जाती।

भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन का नाश

लॉर्ड मैकॉले का काम भारतवासियों के लिए क़ानून बनाना था; किन्तु वह न भारतवर्ष की कोई भाषा जानता था और न भारतवासियों के इतिहास, उनके रस्मो रिवाज इत्यादि से ही परिचित था। भारतवासियों, भारत की धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और समस्त भारतीय चीज़ों से उसे घृणा थी।

मैकॉले भारतवासियों को अंगरेज़ी शिक्षा देने और अंगरेज़ी के माध्यम द्वारा शिक्षा देने का पक्षपाती था। किन्तु इसमें उसका उद्देश भारतवासियों का उपकार करना न था। उसका स्पष्ट उद्देश था भारतवासियों में से राष्ट्रीयता के भावों को मिटा कर अंगरेज़ी शासन को चिरस्थायी करना। सन् १८३६ में अपने बाप के नाम एक पत्र में उसने लिखा कि—"मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा की योजनाओं के अनुसार कार्य होता रहा, तो आज से तीस वर्ष के बाद बङ्गाल के बाइज़्ज़त लोगों में एक भी मूर्ति-पूजक न रहेगा।" इस पर 'दी इण्डियन डेली न्यूज़' का अंगरेज़ सम्पादक लिखता है—

"× × × लॉर्ड मैकॉले की जीत वास्तव में भारतवासियों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को नाश करने के स्पष्ट सङ्कल्प की जीत थी।"*

* "Lord Macaulay's triumph . was really the triumph of a

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारतीय सरकार को उस समय अपने विशाल साम्राज्य के लिए अनेक वफ़ादार और कुशल हिन्दोस्तानी बाबुओं की भी ज़रूरत थी।

लॉर्ड मैकॉले के बनाए हुए कानून 'ताज़ीरात हिन्द' का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। हिन्दोस्तान के अन्दर अंगरेज़ों का शासन और आयरलैण्ड के अन्दर अंगरेज़ों का शासन इन दोनों में बहुत बड़ी समानता है। इसी तरह के आयरलैण्ड के ताज़ीरात के क़ानून (आयरिश पीनल कोड) के विषय में बर्क ने लिखा है—

ताज़ीरात हिन्द

"आयरिश पीनल कोड एक सुसम्पादित और अपने सभी हिस्सों की दृष्टि से योग्यता से लिखा हुआ ग्रन्थ है। यह एक चतुर और पेचीदा यन्त्र है, और कभी किसी भी कुशाग्रधी किन्तु सदाचार रहित मनुष्य ने किसी क़ौम पर अत्याचार करने, उसे दरिद्र बनाने और उसे आचार भ्रष्ट करने, और उनके अन्दर से मनुष्यत्व तक का नाश करने के लिए इससे अधिक उपयुक्त यन्त्र न रचा होगा।"*

क़रीब क़रीब यही बात लॉर्ड मैकॉले के इण्डियन पीनल कोड

deliberate intention to undermine the religious and social life of India."—*The Indian Daily News*, 29th March, 1909.

* "Well digested and well disposed in all its parts, a machine of wise and elaborate contrivance and as well fitted for the oppression, impoverishment and degradation of a people, and the debasement in them of human nature itself, as ever proceeded from the perverted ingenuity of man."—Burke, on the Irish Penal Code

के विषय में कही जा सकती है। इस क़ानून का उद्देश ही भारतवासियों को निर्धन बनाना, उन्हें चरित्र भ्रष्ट करना, उनमें बेईमानी और मुक़दमेबाज़ी की आदत डालना और उन्हें सर्वथा बरबाद करना था। मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स ने सन् १८१६ में डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र लिखा था जिसमें उसने विस्तार के साथ यह दिखलाया कि किस प्रकार सन् १७८० से लेकर उस समय तक नई अंगरेज़ी अदालतों ने बङ्गाल को जायदादों को बरबाद कर दिया, देश के सुखी और समृद्ध किसानों को निर्धनता और दरिद्रता की नीचतम स्थिति तक पहुँचा दिया, उनके सदाचार का सत्यानाश कर दिया, पुरानी सामाजिक संस्थाओं को तोड़ फोड़ डाला और भारतवासियों की परवशता को और भी बढ़ा दिया। लॉर्ड मैकॉले के पीनल कोड ने इस स्थिति को सुधारने के स्थान पर उसे और भी अधिक ख़राब कर दिया। इस क़ानून के अनेक दोषों को दर्शाना यहाँ पर हमारे लिए अप्रासङ्गिक होगा। अनेक विद्वान अंगरेज़ों की स्पष्ट सम्मतियाँ इस विषय में देखी जा सकती हैं। मुजरिमों को रिहाई का रास्ता दिखाना और निर्दोषों को फँसाना, सरकार के हाथ मज़बूत करना और प्रजा को असहाय बना देना इस अनोखे क़ानून के मुख्य लक्षण हैं। संसार के किसी सभ्य देश में इतनी ज़बरदस्त सज़ाएँ नहीं दी जातीं जितनी भारत में। वास्तव में लॉर्ड मैकॉले भारतवासियों को इङ्गलिस्तान की सम्पत्ति समझता था। उसने एक स्थान पर लिखा है—"हम जानते हैं कि भारतवर्ष को स्वतन्त्र राज नहीं दिया जा

सकता। किन्तु इससे उतर कर चीज़ अर्थात् एक मज़बूत और निष्पक्ष स्वेच्छा-शासन उसे मिल सकता है।" *

नए लॉ मेम्बर का काम था भारतवासियों को क़ानूनों की सुनहरी ज़ञ्जीरों में जकड़ डालना, और यही मैकॉले ने पूरा किया।

क़रीब बीस वर्ष तक जितने अंगरेज़ भारत की कौन्सिल के लॉ मेम्बर रहे उन्हें कुल मिला कर ३५, ६८, ८०५ रुपए भारत के निर्धन किसानों की टेंट से निकाल कर दिए गए, और इसके बदले में उन्होंने काम किया—अक्षरशः भारतवासियों में नैतिक रोग फैला कर उनके रहे सहे चरित्र का नाश करना।

* "We know that India can not have a free government. But she may have the next best thing—a firm and impartial despotism."—Lord Macaulay

